॥ श्री ॥

यस्यालोकपदेऽशेषमेयान्मानाञ्च शान्तायते
माता सा जयते प्रमातृ जननी वैश्वी च विश्वोत्तरा
शान्तात्कान्तमुदीयमान लहरी निर्व्याजलीलावती
शृङ्गारोज्ज्वलचन्द्रकान्तवपुषी त्रैलोक्यदीपङ्करी
पश्यन्तीमरुणत्परापरजगत्सादाख्यभुक्ता च भू
ज्ञानाभिन्न कलाकलङ्करहिता सा एव ह्रिस्योमय
सम्पृक्त क्षपितान्तरावसुमती पीयूषपर्जन्यत·
कल्याणी करुणामयी प्रबोधनकरीमाम्नातमार्पोविच
विच्छित्ति विहरन्ति मर्मपटले उत्क्रान्तभावेक्षिणी
त्र्यक्योभूत प्रसादवाङ्मयनिधि सरक्ष्यमाण सदा

यद्विरजपदाब्जामृतरसाराधितोऽहम्,
तद्भवति । कृपामूर्तेर्ग्रन्थमुत्सङ्गितोऽयम्

विनयावतेन सम्पादकेन

अनुक्रम

प्राक्कथन

जयशकर प्रसाद अपने समय के प्रयोगधर्मी रचनाकार थे। भारतेन्दु युगीन खुमारी से मुक्त होकर उन्होने नाटक और कविता के क्षेत्र मे ही नही कथा साहित्य के क्षेत्र मे भी प्रयोग किया। १९२६ से १९२८ ई० के बीच प्रसाद के दृष्टिकोण मे यथार्थ के प्रति परिवर्तन दिखाई पडता है, जिसका प्रमाण 'प्रतिध्वनि', 'स्कदगुप्त' और 'चन्द्रगुप्त' म भी मिलता है। यह परिवतन उनकी मूल स्थापनाओ मे कम ससार की पहचान के स्तर पर ही अधिक हुआ है। साहित्य, समाज और मानव सस्कृति आदि उनके लिए अलग अलग प्रत्यय नही बल्कि प्रत्यय शृखलाएँ हैं। उनकी प्रमुख समस्या है कि मनुष्य बिना किसी विकृति और अवरोध क कैसे पूणता प्राप्त कर सकता है। कैसे वह अपनी मुक्ति के साथ-साथ दूसरो को मुक्त रख सकता है। वे प्रारम्भ से ही आनन्द को एक मूल्य मानकर चलते हैं और बुद्धि या विवेक को अपूर्णता का कारण मानते हैं। अपूर्णता का बोध ही प्रगति का लक्षण है और प्रसाद जी की प्रगति की अवधारणा देहात्मवादियो, वैज्ञानिक भौतिकवादियो और साम्यवादियो से नितान्त भिन्न हैं। इसलिए प्रसाद जी सास्कृतिक प्रगतिशीलता शब्द का व्यवहार करते हैं। जगत और जीव के प्रति उनका दृष्टिकोण अपने समकालीनो से नितान्त भिन्न है और इसलिए मनुष्य के सारे कृतित्व या हर प्रकार की अभिव्यक्ति की परिभाषा भी भिन्न है। प्रसाद जी के लिए साहित्य ही नहीं ससार का समग्र चिंतन दो स्पष्ट वर्गो मे विभक्त है, जिसकी पुरातात्विक मीमासा वरुण और इन्द्र के मूल सघर्षो म है। वे इन्द्र को आनन्द साहित्य, सगीत और नृत्य आदि से सम्बद्ध ललित कलाओ के प्रतीक के रूप म देखते हैं और इस तर्क से सारे एन्द्रिक बोध और सवेदनाएँ भी इन्द्र से जुड जाती हैं। वरुण को उन्होने विवेक और बुद्धि की परम्परा से जोडा है क्योकि वह वैज्ञानिकता का प्रतीक है। प्रसाद जी के इस विवेचन के मूल मे 'सुखद खात्मको भाव' को भी देखा जा सकता है और आत्मवशता और परवशता की परिभाषा भी खोजी जा सकती है। वस्तुत प्रसाद जी साहित्य को सास्कृतिक प्रक्रिया का एक अग मानते हैं। संस्कृति बोध

उनकी दृष्टि से साहित्य बोध से अलग नहीं है। विवेकवाद की यह धारा दुःख और दुःख से मुक्ति के उपायों को केन्द्र में मानने के कारण वाजपेयी जी के अनुसार साहित्य में आदर्शवादी विवेकवाद और यथार्थवादी विवेकवाद की प्रतिष्ठा करती है।

रामायण के आदर्शात्मक विवेकवाद और महाभारत के यथार्थवादी विवेकवाद के परिणाम प्रसाद जी के अनुसार लौकिक संस्कृत के क्लासिक और रोमांटिक धाराओं में तथा रासो, आल्हा एवं भक्तिकाल की विभिन्न रचनाओं में परिणत हुए परंतु "विवेकवादी काव्यधारा मानव में राम हैं—या लोकातीत परम शक्ति इसी के विवेचन में लगी रही। मानव ईश्वर से भिन्न नहीं है, यह बोध, यह रसानुभूति विवृत्त नहीं हो सकी।" कंकाल, तितली और इरावती में विवेकवादी धारा के परिणाम यथार्थवादी रूप में वर्णित, कथित और दर्शित किये गये हैं। और अंततः मानव ईश्वर से भिन्न नहीं है, इसकी प्रतिष्ठा करने की कोशिश भी की गई है। लेकिन उपन्यास में इस कोशिश के बावजूद कई प्रश्न और प्रश्नों के उत्तर प्रसाद से पहले के सामाजिक स्थिति और उसके अभिव्यक्ति विधानों में पूछे गए प्रश्नों के उत्तरों से भिन्न हैं और यही भिन्नता प्रसाद के कंकाल और तितली को महत्त्वपूर्ण उपन्यास बनाती है। मेरी राय में इस दृष्टि से कंकाल अधिक महत्त्वपूर्ण और युगान्तरकारी है अपेक्षाकृत तितली के। परंतु इस प्रकार के प्रश्नोत्तरों को समझने के पूर्व प्रसाद के आदर्श और यथार्थ सम्बन्धी दृष्टिकोण को समझना आवश्यक है क्योंकि प्रसाद जी इस सम्बन्ध में स्वयं भी वरुण और इन्द्र की कई परिणतियों को एक तर्कक्रम में रखकर देखना चाहते हैं। कृति, विकृति और संस्कृति के तर्क से दो प्रतिगामी धाराओं के मिलने से उत्पन्न नयी धारा यथार्थ और जीवन्त होती है क्योंकि वह किसी दबाव का नहीं प्रक्रिया का परिणाम होती है। "भौगोलिक परिस्थितियाँ और काल की दीर्घता तथा उसके द्वारा होने वाले सौन्दर्य सम्बन्धी विचारों का सतत अभ्यास एक विशेष ढंग की रुचि उत्पन्न करता है, और वही रुचि सौन्दर्य अनुभूति की तुला बन जाती है, इसी से हमारे सजातीय विचार बनते हैं और उनमें स्निग्धता मिलती है। इसी के द्वारा हम अपने रहन-सहन, अपनी अभिव्यक्ति का सामूहिक रूप से संस्कृत रूप में प्रदर्शन कर सकते हैं। यह संस्कृति विश्ववाद की विरोधिनी नहीं; क्योंकि इसका उपयोग तो मानव समाज में आरंभिक प्राणित्व-धर्म में सीमित मनोभावों को सदा प्रशस्त और विकासोन्मुख बनने के लिए होता है। संस्कृति मन्दिर, गिरजा और मस्जिद विहीन प्रान्तों में अतः प्रतिष्ठित होकर सौन्दर्य बोध की बाह्य सत्ताओं का सृजन करती है। संस्कृति का सामूहिक

चेतनता से, मानसिक घोल और शिष्टाचारो से मनोभावो से मौलिक सम्बन्ध है।···संस्कृति सौन्दर्य बोध के विकसित होने की मौलिक चेष्टा है। इसलिए साहित्य के विवेचन म भारतीय संस्कृति और तदनुकूल सौंदर्यानुभूति की खोज अप्रासगिक नही, किन्तु आवश्यक है।" सौंदर्य बोध के इसी मूल्याकन क्रम में प्रसाद जी पाश्चात्य और भारतीय सौदर्य दृष्टि का मूल्याङ्कन करते हुए हेगेल के आधार पर बने मूर्तता और अमूर्तता के सिद्धात को नकारते हुए यह स्थापना करते हैं कि "भारतीय विचारधारा ज्ञानात्मक होने के कारण मूर्त और अमूर्त का भेद हटात हुए बाह्य और आभ्यतर का एकीकरण करन का प्रयत्न करती है।' १६२५ के बाद जयशकर प्रसाद के साहित्य म यह सस्कृति बोध अत्यन्त प्रबलता से पाया जाता है। कामायनी, ककाल और इरावती मे बाह्य और आभ्यतर के एकता की यही समस्या है। वे इस सदर्भ मे अद्वयता के सिद्धात का प्रतिपादन करते हैं और यह अद्वयता एक प्रकार की घुलनशीलता है जो बुद्धि का अनुभूति म घुलाने स ही आ सकती है। अपना कचुक या आवरण छाडकर एक दूसरे मे लय होने का सिद्धात कामायनी मे ही नही अजातशत्रु, स्कदगुप्त, चन्द्रगुप्त, एक घूंट और ध्रुवस्वामिनी म पाया जाता है। यह सतुलन व्यष्टि और समष्टि के घुलान या समझौता कराने का समीकरण भी है।

ईश्वर के प्रति निष्काम भावना और विश्वास प्रसाद म अतिम समय तक बना रहा। आनन्द और नियतिवादिता का यह घना रिश्ता ईश्वर के माध्यम से ही बनता है। शैवमतावलम्बी जयशकर प्रसाद की सभी कृतियो मे प्राय एक 'अदृश्य शक्ति के सचालनत्व' का तर्क दिखाई पडता है, जो घार से घोर नास्तिक को अतत आस्तिक बना देता है। ककाल का विजय इसका प्रमुख उदाहरण है। यह एक विचित्र अन्तर्विरोध है जो उनकी कृतियो मे पाया जाता है। ककाल, तितली और इरावती नियतिवादी उपन्यास है। शैला का यह कथन है कि "नियति दुस्तर समुद्र पार कराती है, चिरकाल के अतीत को वर्तमान से क्षण भर म जाड देती है और अपरिचित मानवता सिंधु मे से उसी एक से परिचय करा देती है। जिससे जीवन की अग्रगामिनी धारा अपना पथ निर्दिष्ट करती है" (तितली, पृ० ५४) नियतिवादी तर्क है। यह तर्क उपन्यास में कही भी अकर्मण्यता का भाव नही पैदा करता है बल्कि मानवता के कल्याण के लिए निरतर सेवा और त्याग को एक मूल्य मानकर स्थापित करता है। प्रसाद की प्रमुख चिंता 'दिव्य आर्य सस्कृति की स्थापना है' यह सस्कृति व्यक्तित्व के स्वतन्त्र विकास को मान कर चलती है और 'विधि निषेध' के बधनो से मुक्त रहती है। आर्य समाज से प्रभावित होत हुए भी प्रसाद का यह दृष्टिकोण आर्य समाज की शुष्कता से रहित है

क्योकि इसमे प्रेम, प्रमोद और आनन्द को प्राप्य माना गया है। 'इरावती' मे आनन्दवाद का 'एक घूंट' नाटक की भांति प्रचार ही पाया जाता है। भारत की निर्वीयता और आलस्य का कारण विवेकवाद और बुद्धिवाद को मानते हुए आनन्द की ही दुन्दुभी बजाए जाने का इसमे सकल्प है, क्योकि आनन्द एक ऐसा मूल्य है, जो मानव-जीवन मे 'रागतत्व' पैदा करता है और यही रागतत्व संगीत, नृत्य आदि विविध कलाओ के रूप मे अवतरित होकर जीवन्त समाज की सृष्टि करता है। 'इरावती' मे इसीलिए बौद्ध धर्म की निवृत्तिमूलकता और निषेधात्मकता से विद्रोह का भाव पाया जाता है, जो भारतीय समाज की निवृत्तिमूलक निषेधात्मक प्रवृत्तिया को निरर्थक मानकर आत्मवादी साधना को प्रमुखता देता है। आनन्दवाद व्यक्ति की मनोवृत्तियो की सतुष्टि को केन्द्र मे रखकर 'व्यक्ति' को प्रमुख इकाई मानता है और समष्टि को गौण। 'असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय और मृत्योर्मामृतगमय' यद्यपि आर्यसमाज का प्रमुख नारा है और बनजरिया के बाबा रामनाथ महर्षि दयानद से प्रभावित भी है परन्तु बाबा रामनाथ या ककाल के स्वामी कृष्णशरण जी आर्य समाजी नही हैं बल्कि मैथिलीशरण गुप्त के 'भारत भारती' के उद्बोधनो के समान सोते हुए भारतीय जनता को जगाने का कार्य करने वाले ऐसे सस्कृति पुरुष हैं, जिसके माध्यम से प्रसाद जी केवल भारतीय जाति का ही नही बल्कि मानवता के कल्याण की सास्कृतिक उद्घोषणा करते हैं। प्रसाद प्रेमचन्द की तरह उपन्यास मे इनकी स्थापना के लिए कही स्वतः नही उपस्थित होते हैं बल्कि दूर खड़े होकर दृश्य का प्रस्तुतीकरण देखते हैं।

प्रसाद जी की समस्या है कि रूढ़ियो और अधविश्वासो से जर्जरित भारतीय समाज का विकल्प क्या है? यह वेदना ही संकल्पात्मक रूप धारण करके १८२६ के बाद से उनके हर कृतित्व का विषय बनती रही है। दु.ख और दु.ख के विभिन्न कारणो के प्रसादीय निष्कर्ष 'स्कदगुप्त', 'चन्द्रगुप्त', 'एक घूंट', 'ध्रुवस्वामिनी', 'प्रतिध्वनि', 'आंधी', 'इन्द्रजाल', 'ककाल', और 'तितली', की कृतियो के रूप मे सृजित हुए हैं। और इन उपन्यासो मे प्रवाहित जीवन दृष्टि ही वाद मे उनके निबधो का विषय बनी। ये कृतियाँ बदलते हुए समाज और उसके नये बनते हुए मानव सम्बन्धो को ही नही बल्कि ढहते, सड़ते, और डूबते हुए उन सस्थानो को भी उद्घाटित करती हैं, जो बीसवी शताब्दी मे अपना अर्थ खो चुके हैं। छायावादी प्रवृत्ति के सामाजिक आधार को चित्रित करने या दिखाने के साथ-साथ जयशकर प्रसाद के दिमाग मे अपने समकालीन रचनाकारो से कही अधिक बढ़कर 'विश्व मानवता' की चिन्ता थी। मुझे तो यह भी लगता है कि ससार मे उठते हुए नये सामाजिक प्रश्नो के फ्रायड, मार्क्स, डार्विन और न्यूटन आदि के द्वारा दिये गये

उत्तरा से वे सन्तुष्ट नहीं थे। इन मनीषियों की वाणियाँ ककाल और तितली म सुनाई पडती हैं। कुछ उत्तर तो वे महात्मा गाँधी की तरह भी देना चाहते है परतु कुछ उनसे भिन्न हैं। इरावती महात्मा गाँधी के द्वारा दिये गये अहिंसा के उत्तर के प्रतिकूल है। प्रसाद की यह चिन्तनशीलता प्रेमचन्द के बाद उपन्यासों का विषय क्यो बनी या हिन्दी उपन्यास प्रसाद के रास्ते क्यो चला प्रेमचन्द के रास्ते क्यो नही? इस प्रकार का प्रश्न हो सकता है परतु यहाँ उसका औचित्य नही है। वस्तुत सामाजिक स्थिति की यह पहचान प्रसाद को एक प्रकार के संकल्पात्मकता की तरफ ले जाती है और वह सकल्प उनकी काव्यात्मक प्रवृत्ति के कारण संकोच के साथ उपन्यासो म भी दिखाई पडता है। 'वेदना' की इस विवृत्ति का कारण क्या है? और साहित्य का समाज बीज क्या है? इसके लिए निम्न उद्धरण महत्त्वपूर्ण है।

"हमारी धार्मिक भावनाएँ बँटी हुई हैं, सामाजिक जीवन दम्भ से और राजनीतिक क्षेत्र कलह और स्वार्थ से जकडा हुआ है। शक्तियाँ हैं पर उनका कोई केन्द्र नही किस पर अभिमान हो किसके लिए प्राण दूँ।'

(दासी—आँधी, पृ० ४८)।

"क्या, क्या हिन्दू होना परम सौभाग्य की बात है। जब उस समाज का अधिकाश पददलित और दुर्दशाग्रस्त है, जब उसके अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नही बची—उसकी संस्कृति विडबना, उसकी सस्था सारहीन, और राष्ट्र बौद्धो के शून्य के सदृश बन गया है, जब ससार की अन्य जातियाँ सार्वजनिक भ्रातृभाव और साम्यवाद को लेकर खडी हैं तब आपके इन खिलौना (मूर्तियो) स भला उनकी संतुष्टि होगी?'

(ककाल, पृ० ५६)।

"भारतवष आज वर्णों और जातियो के बधन म जकड कर कष्ट पा रहा है और दूसरो को कष्ट दे रहा है। यद्यपि अन्य देशों म भी इस प्रकार के समूह बन गय हैं, परन्तु यहाँ इसका भीषण रूप है। यह महत्त्व का सस्कार अधिक दिना तक प्रभुत्व भोग कर खोखला हो गया है। दूसरो की उन्नति से उसे डाह होने लगा है। समाज अपना महत्त्व धारण करने की क्षमता खो चुका है परतु व्यक्तियो की उन्नति का दल बनाकर सामूहिक रूप से विरोध करने लगा है प्रत्येक व्यक्ति अपनी झूठी महत्ता पर इतराता हुआ दूसरे को नोचा—अपन से छोटा समझता है जिससे सामाजिक विपमता का विषमय प्रभाव फैल रहा है।"

(ककाल, पृ० २०२)।

भगवान की भूमि भारत मे स्त्रियो पर तथा मनुष्यो का पतित बनाकर बडा अन्याय हो रहा है। करोडो मनुष्य जगलो म अभो पशु जोवन बिता रहे हैं। स्त्रियाँ विपथ पर जाने के लिए बाध्य की जाती हैं, तुमको उनका पक्ष लेना पडेगा। उठो!

(ककाल, पृ० १११)।

“हिन्दुओ मे पारस्परिक तनिक भी सहानुभूति नही। मैं जल उठा। मनुष्य, मनुष्य के दु ख-सुख से सौदा करने लगता है और उसका मापदण्ड बन जाता है रुपया। आप देखते नही कि हिन्दू की छोटी-सी गृहस्थी म कूडा-करकट तक जुटा रखने की चाल है, और उन पर प्राण से बढ कर माह। दस-पाँच गहने, दो-चार बर्तन, उनको बीसो बार बन्धक करना और घर मे कलह करना, यही हिन्दू घरो मे आये दिन के दृश्य हैं। जीवन का जैसे कोई लक्ष्य नही! पद दलित रहते-रहते उनकी सामूहिक चेतना जैसे नष्ट हो गयी है।’

(तितली, पृ० ४७)।

मुझे धीरे-धीरे विश्वास हो चला है कि भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब की योजना की कडियाँ चूर-चूर हो रही हैं। वह आर्थिक सगठन अब नही रहा, जिसमे कुल का एक प्रमुख सबके मस्तिष्क का संचालन करता हुआ रुचि की समता का भार ठीक रखता था। मैंने जा अध्ययन किया है, उसके बल पर इतना तो कहा जा सकता है कि हिन्दू समाज की बहुत-सी दुर्बलताएँ इस खिचरी कानून के कारण हैं। क्या इनका पुनर्निर्माण नही हो सकता। प्रत्येक प्राणी, अपनी व्यक्तिगत चेतना का उदय होने पर, एक कुटुम्ब म रहने के कारण अपने को प्रतिकूल परिस्थिति म देखता है। इसलिए सम्मिलित कुटुम्ब का जीवन दु खदायी हो रहा है।

(तितली, ८७)।

सर्व साधारण आर्यों मे अहिंसा, अनात्म और अनित्यता के नाम पर जो कायरता, विश्वास का अभाव और निराशा का प्रचार हो रहा है उसके स्थान पर उत्साह, साहस और आत्मविश्वास की प्रतिष्ठा करनी होगी।

“हम सच ही निर्वीर्य हो रहे हैं।”

हाँ! मैं इसलिए प्रयत्न करूँगा कि इनकी वाणी शुद्ध, आत्मा निर्मल और शरीर स्वस्थ हो।

(इरावती, पृ० ३१)।

इन उद्धरणो का चयन इस इस उद्देश्य से भी किया गया है कि हमे उस मूल उत्प्रेरक का भी ज्ञान हो सके या उस ज्ञानात्मक संवेदना तक हम पहुँच सके हैं, जो प्रसाद के उपन्यासो का विषय रही है। यही मूल वेदना है जिसे प्रसाद जी 'यथार्थवाद का मूल भाव' समझते हैं।

दृष्टि से रामचन्द्र शुक्ल की निबन्ध शैली का आभ्यंतरी कृत रूप है। पद्धति मूलक विश्लेषण की दृष्टि से इसे 'उदाहरण और निष्कर्ष' कहा जा सकता है।

'पत्थर की पुकार' मे 'अतीत' और 'करुणा' को साहित्य का चित्ताकर्षक तत्त्व माना गया है। यह दो तत्त्व प्रसाद के साहित्य मे अंत तक बने रहे हैं। उपन्यासो मे जब भी अवसर मिला है उन्होंने धार्मिक शवता और सामाजिक अपगता को ऐतिहासिकता से जोड़कर सांस्कृतिक प्रगतिशीलता का एक नया अर्थ भी देने का प्रयास किया है। वर्तमान जिस रूप मे भयावह और निन्दनीय है उसके कारण और विकल्प की चेतना प्रसाद के उपन्यासो के काल का आयाम फैला देती है। प्रसाद जो कुछ जैसा है उसके साथ-साथ कैसा होना चाहिए की दृष्टि भी रखते हैं और यह दृष्टि व्यापक परिवर्तन की मांग से जुड़ती है परन्तु प्रेमचद की भांति वे 'वर्तमान' को ही प्रमुख नही मानते बल्कि भविष्य को भी ध्यान मे रखते हैं, जो उनके 'अतीत और करुणा' के सिद्धात से मेल खाता है। यह आश्चर्य है कि अज्ञेय और मुक्तिबोध दोनों ही करुणा को सृजनात्मक शक्ति मानते हैं और दोनो मे ऐतिहासिक चेतना भावात्मक और अभावात्मक रूपो मे मौजूद है। मेरा तात्पर्य उस दिशा की ओर सकेत करना है जिसकी ओर प्रसाद सकेत करते हैं।'प्रगतिशील विश्व' को स्वीकार करते हुए भी प्रसाद 'छलांग' के सिद्धांत मे विश्वास नहीं करते हैं। उनके अनुसार "जब हम समझ लेते हैं कि कला को प्रगतिशील बनाए रखने के लिए हमको वर्तमान सभ्यता का—जो सर्वोत्तम है—अनुसरण करना चाहिए तो हमारा दृष्टिकोण भ्रमपूर्ण हो जाता है; अतीत और वर्तमान को देखकर भविष्य का निर्माण होता है, इसलिए हमको साहित्य मे एकागी लक्ष्य नही रखना चाहिए" (काव्य कला तथा अन्य निबध, पृ० ११२) यह दृष्टिकोण प्रसाद के उपन्यासो मे पहले से है। उपन्यासों की संरचना मे जयशकर प्रसाद इसका इस्तेमाल नहो करते हैं बल्कि उपन्यास उनकी विश्व दृष्टि—आर्य दृष्टि-के परिणाम ही होते हैं, जिसमे 'इतिहास' के रूप मे अतीत हमारे जातीय स्मृति का न केवल अग बनकर आता है बल्कि संकल्पात्मक अनु-अनुभूति या 'वेदना' के प्रत्यय मे ही वह निहित है। क्योकि प्रसाद जी युंग की भांति 'सामूहिक अचेतन' को स्वीकार करते हैं जो एक प्रकार से उनके विश्वात्मा के सिद्धान्तों का प्रतिरूप ही है। परतु यह ऐतिहासिकता कथा के रूप मे लगभग 'पद्मावत' की भांति जुड़ती है और वेदना को व्यापक और गम्भीर दोनो बना देती है। ककाल मे प्रसाद 'पद्मावत' को मानव जीवन की समस्याओ के सात्वनापरक हल का आधार मानते हैं। वेदना की विवृत्ति का—स्वप्न और

आकांक्षा का, आदर्श और यथार्थ की जो द्विभाजिकता पद्मावत मे है वही प्रसाद के उपन्यासों मे है।

प्रसाद जी यह मानते हैं कि "यथार्थवाद क्षुद्रो का ही नही अपितु महानों का भी है। वस्तुत यथार्थवाद का मूल भाव है वेदना। जब सामूहिक चेतना छिन्न-भिन्न होकर पीडित होने लगती है, तब वेदना की विवृत्ति आवश्यक हो जाती है। कुछ लोग कहते हैं—साहित्यकार को आदर्शवादी होना ही चाहिए और सिद्धान्त से ही आदर्शवादी धार्मिक प्रवचन कर्त्ता बन जाता है। वह समाज को कैसा होना चाहिए, यही आदेश करता है। और यथार्थवादी सिद्धात स ही इतिहासकार स अधिक कुछ नही ठहरता, क्योकि यथार्थवाद इतिहास की सम्पत्ति है। वह चित्रित करता है कि समाज कैसा है या था, किन्तु साहित्यकार न तो इतिहास कर्त्ता है और न धर्मशास्त्र प्रणेता। इन दोनो के कर्त्तव्य स्वतत्र हैं। साहित्य इन दोनो की कमी पूरा करने का काम करता है। साहित्य समय की वास्तविक स्थिति क्या है, इसका दिखाते हुए भी उसम आदर्शवाद का सामजस्य स्थिर करता है। दु ख दग्ध जगत और आनन्द पूर्ण स्वर्ग का एकीकरण साहित्य है। इसीलिए असत्य अघटित घटना पर कल्पना की वाणी महत्त्वपूर्ण स्थान देती है, जो निजी सौन्दर्य के कारण सत्य पद पर प्रतिष्ठित होती है। उसमे विश्व मगल की भावना ओत-प्रोत रहती है।' (काव्यकला तथा अन्य निबध, पृ० १२४) ककाल, तितली और इरावती मे दु ख दग्ध' जगत और आनन्दपूर्ण स्वर्ग' के इसी एकीकरण का प्रयास है। और इसीलिए कई कमियो के बावजूद ककाल कथा साहित्य की परिधि पर होता हुआ भी केन्द्र को प्रभावित करने वाला सबसे प्रमुख उपन्यास है। किशोरी, तारा, घटी, लतिका, सरला, रामो, गाला, विजय आदि की 'दु ख दग्ध दुनिया का, कृष्णशरण की दुनिया-आनन्दपूर्ण स्वर्ग—से एकीकरण, ककाल की वस्तु है। ये दोनो दुनियाएँ ककाल म मिलते मिलते रह जाती हैं। देव निरजन, तारा यानी यमुना और विजय का ककाल 'पद्मावत की धूल की तरह हकीकत को अधिक गहरा और विषाद पूर्ण बना देता है। विजय देवनारायण साही ने पद्मावत म जायसी की जिस विषाद दृष्टि का उल्लेख किया है वही अतत 'ककाल' मे भी उत्पन्न होती है और 'ककाल' की 'गाला' या 'तितली' की तितली की कथा उस करुणा को अधिक गहराती ही है। 'ककाल' मे विजय का ककाल एक प्रश्न चिह्न है। विजय को उपन्यास म देवता, विद्रोही और मगलदेव द्वारा अत मे सही भी कहा गया है और वही सत्य एक प्रकार से सामूहिक सत्य के प्रतीक के रूप मे अनदेखा और अनपहचाना मर जाता है। शबनम की कथा मे प्रसाद जी द्वारा पद्मावत का वह दोहा यदि

ककाल के अंत मे जोड दिया जाय तो वह ककाल के अलग मे संस्थित हो नही हो जायगा बल्कि मौजू भी होगा—जमुना के प्रसंग मे 'नये' की यह स्थिति और स्वयसेवको द्वारा उसका संस्कार गाला द्वारा अन्य प्रसग मे की गई इस टिप्पणी को महत्वपूर्ण और सार्थक भी बना देता है कि "पदमिनी के समान जल मरना स्त्रियाँ ही जानती हैं, और पुरुष केवल उसी जली हुई राख को उठा कर अला-उद्दीन के सदृश बिखेर देना ही तो जानते हैं?" (ककाल, पृ० १८६) मेरा उद्देश्य पद्मावत और ककाल की तुलना करना नहीं है बल्कि यह दिखाना है कि जयशंकर प्रसाद 'कला माध्यम' को कितना महत्त्व देते हैं और विषाद की जो हल्की छाया सभी उपन्यासो मे पडती है उसका कही न कही कोई कारण भी है। यह विषाद 'आधी' की कहानियो मे बहुत अधिक है, जो एक प्रकार के वैराग्य को उत्पन्न करता है और मेरी राय मे यही 'वैराग्य' प्रसाद का अभिप्रेत है। 'तितली' मे विषाद की जो छाया है वह नियतिवाद को प्रतिष्ठित करती है। दोनो उपन्यासो मे एक साम्य यह भी है कि दोनो ही ईश्वर मे विश्वास को प्रतिष्ठित करते हैं—'नीरा' कहानी मे नीरा की तरह। यह प्रतिष्ठा विषाद की गहराई को कम नही करती है। ककाल और तितली की दुनिया काफी भिन्न है कथा समय अवश्य एक है। परतु दृष्टि मे उत्पन्न सशय और यथार्थता तितली मे एक प्रकार का गाधीवादी हल प्रस्तुत करती हैं। यह गाधीवादी हल इरावती मे नही है। 'इरावती' मे इतिहास आदर्श के रूप मे नही है बल्कि वर्तमान के लिए स्पष्टत. माध्यम है। इसमे प्रसाद की दार्शनिकता और चिन्तनशीलता 'वर्तमान' को अहिंसा और हिंसा, कायरता और निर्भयता, दु ख और आनन्द, हृदयहीनता और हार्दिकता के स्तरो के रूप मे प्रस्तुत करती है। स्पष्टतः प्रसाद जी इसमे गाधी जी के सिद्धातो से भिन्न सिद्धात प्रस्तुत करते हैं और देश मे होने वाले हिंसात्मक आन्दोलनो को नैतिक और सैद्धान्तिक समर्थन देते हैं, जब कि 'तितली' मे लगभग सभी पात्र हृदय परिवर्तन के दौर से गुजरते हैं। तितली शैला ,को 'प्रसन्नता से सब कुछ ग्रहण करने के अभ्यास को' बापू का उपदेश बताकर समझाती है। बापू का उल्लेख जयशकर प्रसाद के पूरे साहित्य मे केवल एक बार तितली मे ही पाया जाता है। और यह पाया जाना इस अर्थ मे सार्थक भी है कि इसमे ग्राम सुधार, त्याग, सेवा, शिक्षा और मानव कल्याण एक आदर्श के रूप मे किये गए हैं। बैंक, अस्पताल, चकबन्दी आदि आधुनिक सुधार समतावाद और स्वतन्त्रता के बीच के गाधीवादी रास्ते ही हैं। जिस आदर्शवाद को प्रसाद जी दुःखवाद का परिणाम मानते हैं वही तितली मे वाटसन और रामनाथ नन्दरानी जैसे मानव चरित्रो मे अभिव्यक्त होता है। तितली का परिणाम ककाल

के ठीक वि रीत है। इसमे सभी दुष्ट चरित्र तहसीलदार, चौबेजी, वेश्या मैना और महंथ जी एक साथ मारे जाते हैं। पुजारी मरते तो नही परन्तु मृततुल्य अवश्य हो जाते हैं। तितली मे सत्य की अन्तत विजय होती है और ककाल म सत्य की पराजय। १९२८ और १९३४ ई० का यह परिवर्तन राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सघर्ष के आन्दोलन के निराशा और आशा से व्याख्यायित किया जा सकता है। यद्यपि सेवा और मानवता का कल्याण, 'राम, कृष्ण' और महात्मा बुद्ध की आर्य सस्कृति—प्रसाद ने ईसा मसीह को भी आर्य संस्कृति से ही सम्बद्ध माना है—का प्रचार एक प्रकार स ककाल का प्रमुख उपदेश और विकल्प है। परन्तु तितली म आर्य सस्कृति का यह विकल्प एक प्रकार के सामाजीकरण का परिणाम है। ककाल मे भारत सघ की स्थापना का आश्रमवादी दृष्टिकोण है परतु इस दृष्टिकाण से प्रसाद सतुष्ट नहीं लगते। उन्हें यह हल या उत्तर सही नहीं लगता है क्योकि निरजनदव, जमुना और विजय का ककाल इस पर अतिम टिप्पणी करत हैं। यह टिप्पणा 'व्यक्तिगत पवित्रता' को अधिक महत्त्व देती है। मठीकरण और संस्थानीकरण के विरुद्ध विजय क तर्क और यमुना, गाला, लतिका और घटी का पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था के प्रति अविश्वास, उपन्यास मे कई प्रकार के प्रश्न और जिज्ञासायें अनुत्तरित छोड जाता है, जो उपन्यास को प्रसाद की समय की सीमा के बावजूद अपने समय का भरी राय मे अधिक महत्वपूर्ण उपन्यास बना देता है। हो सकता है विजय का ककाल 'गोदान' की रचना के मूल म रहा हो। सबसे महत्त्वपूर्ण बात है कि सारे संस्थानो अन्ध-विश्वासो, कपटाचरण और भेदभाव के प्रति प्रश्नचिह्न लगाने वाला विजय केवल नाराज नवयुवक नही है उस प्रसाद ने प्राय 'नये' से सम्बोधित किया है और यह सम्बोधन सवेदना क उस स्वरूप को व्यक्त करता है जो बाद म हिन्दी के उपन्यासो मे व्यक्त हुआ।

चित्रलेखा (१९३४) त्यागपत्र और शेखर एक जीवनी (१९४२) की प्रमुख समस्याएँ ककाल म विद्यमान हैं। ककाल एक प्रकार से पाप और पुण्य की समस्या का उपन्यास है और चित्रलेखा भी। आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास म जीवन के मूलभूत प्रश्नो के रूप म उपन्यास के अन्तर्गत पाप और पुण्य की समस्या को प्रमुख माना है। परन्तु उदाहरण उन्होंने चित्रलेखा का दिया है। ककाल का निष्कर्ष ही चित्रलेखा का भी निष्कर्ष है। ककाल कुछ कर्मों को पाप और कुछ कर्मों को पुण्य कहने की धार्मिक रूढ़ि और ढाग का ही निरन्तर विरोधी है। वह स्वतन्त्र वैयक्तिक विकास और समता दोनो को मूल्य मानता है। विजय, यमुना, लतिका, घटी, निरजनदेव और कृष्णशरण 'पापबोध' की इस चेतना

से भारतीय समाज को मुक्त करना चाहते हैं। जैसे "छोटे-छोटे ब्रह्मचारी दण्ड, कमण्डल और पीत वसन धारण किये समस्वर से गाते जा रहे थे—

कस्यचित्किमपिनोहरणीय मर्म्मवाक्यमऽपिनोच्चरणीय

श्रीपतेः पदयुगस्मरणीय लीलया भवजल तरणीय

उन सबो के आगे दाढी और घने बालो एक युवक चद्दर धोती पहने जा रहा था। गृहस्थ लोग उन ब्रह्मचारियों की झोली म कुछ डाल देते थे। विजय ने एक दृष्टि से देखकर मुँह फिराकर यमुना से कहा—देखा यह बीसवी शताब्दी मे तीन हजार बी० सी० का अभिनय ! समग्र ससार अपनी स्थिति रखने के लिए चचल है, रोटी का प्रश्न सबके सामने है, फिर भी मूर्ख हिन्दू अपनी पुरानी असभ्यताओ का प्रदर्शन कराकर पुण्य-सचय किया चाहत है ! आप तो पाप-पुण्य कुछ मानते ही नही विजय बाबू ! पाप और कुछ नही है यमुना जिन्हे हम छिपाकर किया चाहते हैं, उन्ही कर्मों को पाप कह सकते हैं परन्तु समाज का एक बडा भाग उसे यदि व्यवहार्य बना दे, तो वही कर्म हो जाता है, धर्म हो जाता है। देखती नही हो, इतने विरुद्ध मत रखने वाले ससार के मनुष्य अपने-अपने विचारो मे धार्मिक बने है। जो एक के यहाँ पाप है वही तो दूसरो के यहाँ पुण्य है।" (ककाल, पृ० ७२)।

पाप और पुण्य का यह विश्लेषण मूल सामन्ती धारणा पर ही आघात है। विजय और निरजनदेव का विकसित रूप ही क्या बीजगुप्त और कुमार गिरि नही है ? विद्रोही विजय और यमुना मे शेखर और शशि की छवियाँ हैं। विजय का यमुना के प्रति प्रेम और विवाह का प्रस्ताव तथा यमुना का पुरुष प्रधान समाज मात्र से विरक्ति के हात हुए भी विजय के प्रति अव्यक्त स्नेह जो बाद म भाई बहन, के सही रिश्ते म बदल कर नियतिवादी हो जाता है शेखर और शशि म दूसरे रूप मे मिलता है। इसे नये सम्बन्धो की शुरुआत की पहचान मानने से भी ककाल का यह 'नये' महत्त्वपूर्ण हो उठता है। मृणाल मे कही घण्टी तो नही है ? हिन्दी के तीनो प्रतिष्ठित और निश्चय ही कई दृष्टियो से महत्त्वपूर्ण इन उपन्यासो का सम्बन्ध 'ककाल' से मैं जानबूझ कर नही जोडना चाहता और न मैं ककाल को इनसे श्रेष्ठ सिद्ध करना चाहता हूँ। मेरा कुल उद्देश्य इतना ही है कि प्रेमचन्द के प्रचार और प्रतिष्ठा के दबाव मे ककाल म अकुरित सवेदना के उस स्वरूप को हमे नही भूलना चाहिए जो परवर्ती हिन्दी उपन्यासो म विकसित हुयी है। ककाल भारतीय समाज की सडाध और बदबू पर पडी हुई राख को खुरच देता है। लेकिन उपन्यास का यह उद्घाटन बन्दर वृत्ति वाला उद्घाटन नही है कि इसे अति यथार्थवादी कह दिया जाय। यह उद्घाटन

लोकमगल की भावना से युक्त है—इसलिए कि वह फोडे को खुरचकर उसमे मलहम पट्टी करना चाहता है। उपन्यास का उद्देश्य वेश्या जीवन और रखैलो का वर्णन करना नही है बल्कि धर्म के नाम पर होने वाले शोषण और स्त्रिया के प्रति अमानवीय व्यवहार को उद्घाटित करना और ऐसी आध्यात्मिकता का प्रचार करना है जिससे किसी प्रकार की रूढ़ि और साम्प्रदायिकता न पनप सके।

कथावस्तु के स्वरूप और 'लक्ष्य' के आधार पर हिन्दी के उपन्यासो का वर्गीकरण करते हुए रामचन्द्र शुक्ल 'ककाल' और 'तितली' को 'समाज के भिन्न-भिन्न वर्गों की परस्पर स्थिति और उनके संस्कार चित्रित करने वाले वर्ग म रखा है। शुक्ल जी का यह विभाजन गलत नही है परन्तु अपूर्ण अवश्य है। ककाल वर्गों के हिसाब स स्थितियो का चित्रण नही करता है कि क्योकि वर्गीय मनोवृत्ति के स्वरूप प्रेमचन्द और प्रसाद म भिन्न है। तितली म वर्गीय चरित्रा का चित्रण है परतु ककाल मे तो मूल समस्या ही दूसरी है। ककाल उस युग का एकमात्र ऐसा बोल्ड उपन्यास है जो धार्मिक आडम्बर का न केवल पर्दाफाश करता है बल्कि उसे सामाजिक सडन का प्रमुख कारण मानता है। शुक्ल जी मे पाश्चात्य सस्कृति और समाज क प्रति पाये जान वाला चौकन्नेपन का भाव जयशकर प्रसाद और प्रेमचन्द दोनो मे पाया जाता है, जो प्रकारान्तर से उभरते हुए वर्ग की ओर सकेत ही नही करता है बल्कि आने वाले भविष्य का संकेतक भी है। शुक्ल जी भी प्रसाद जी की भाँति उपन्यास को एक प्रकार से सामाजिक बुराइया को रोकन वाला और सशोधन करन वाला मानते हैं। वस्तुत प्रसाद जी ककाल म समस्यामूलक और प्रश्न-चिन्हात्मक मुद्रा अपनाते हैं और तितली म सुधारात्मक और सात्वनावादी। सुधार और सात्वना के ही तर्क से उनके उपन्यासो मे प्राचीन उपन्यासो की उपदेशात्मक भी मिलती है। यद्यपि यह उपदेशात्मकता कलात्मक सयोजन से उपन्यास की समग्रता का हिस्सा लगती है अलग से लगाई गई कलम नही। कारण यह है कि प्रसाद का जोवन और जगत के बारे म एक दृष्टिकोण था और उसको वे परवर्ती काल म रचनाओ मे एक जीवन दर्शन के रूप मे अभिव्यक्त भी करते हैं ककाल, तितली, कामायनी और इरावती इस आनन्दवादी जीवन दर्शन की क्रमश प्रौढ से प्रौढ़तर होती हुयी कृतियाँ है। भौतिक जडता और धार्मिक या मठी निरकुशता से मुक्ति उनकी रचनाओ का विषय है। यथार्थ और यूटोपिया को एक साथ रचनाओ प्रस्तुत करना और दोनो के प्रति शका भी प्रसाद म मिलती है। ककाल मे जो आन्तरिक और वाह्य विसंगति बोध है वह आगामी उपन्यासो का ही

बीज है। समाजवाद और प्रजातन्त्र दोनो से भिन्न एक मार्ग की खोज लगभग सर्वोदय के स्वर को प्रसाद मे पायी जाती है। मेरी राय मे तो वे पहले सर्वोदयी हैं। कंकाल, तितली और कामायनी म एक प्रकार का सर्वोदयत्व पाया जाता है जो भौतिकता और आध्यात्मिकता की मिलावट का परिणाम है। निम्न-लिखित उद्धरणो स यदि कामायनी के इडा, संघर्ष और आनन्द आदि सर्गों की तुलना जाय तो मेरी धारणा स्पष्ट हो जायगी। इन उद्धरणो का प्रसाद के उपन्यासों के रचना विधान की दृष्टि से ही नही बल्कि १६२५ के बाद की उनकी अधिकांश रचनाओ की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है। सामाजिक वास्तविकता का उदाहरण मैं पहले भी कई दे चुका हूँ। कुछ उद्धरण बिस्तार से देकर अपनी बात प्रसाद के सदर्भ म ही नही बल्कि छायावादी दौर के सभी रचनाकारो—रामचन्द्र शुक्ल, प्रेमचन्द, जैनेन्द्र और अज्ञेय आदि तर्कश इसी दौर के लगते हैं—की सृजनशील रूढ़ियो और जीवन-जगत के प्रति एक संभव रुख का संकेत भी करना चाहता हूँ। प्रसाद के माध्यम स यह इसलिए व्यक्त किया जा सकता है कि प्रसाद अपने समय के एकमात्र रचनाकार है जो सभावना के छोर पर पहुँच कर मानव भविष्य की चिंता करते हैं और एक निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं।

"मैं, सोचता हूँ कि मेरा सामाजिक बन्धन इतना विशृंखल है कि उसमे मनुष्य केवल ढोंगी बन सकता है। दरिद्र किसानो से अधिक स अधिक रस चूसकर एक धनी थोडा-सा दान कही कही दया और कभी-कभी छोटा-मोटा उपकार—करके, सहज म ही आप जैसे निरीह लोगो का विश्वास-पात्र बन सकता है। सुना है कि आप धर्म मे प्राणिमात्र की समता देखते हैं, किन्तु वास्तव मे कितनी विषमता है। सब लोग जीवन मे अभाव-ही-अभाव देख पाते। प्रेम का अभाव, स्नेह का अभाव धन का अभाव, शरीर-रक्षा की साधारण आवश्यकताओ का अभाव, दु ख और पीडा यही तो चारो ओर दिखायी पडता है। जिसको हम धर्म या सदाचार कहते है वह भी शान्ति नही देता। सबमे बनावट सबमे छल प्रपच! मैं कहता हूँ कि आप लोग इतने दु खी हैं कि थोडी-सी सहानुभूति मिलते ही कृतज्ञता नाम की दासता करने लग जाते हैं। इसस तो अच्छी है पश्चिम की आर्थिक या भौतिक समता, जिसमे ईश्वर के न रहने पर भी मनुष्य की सब तरह की सुविधाओ की योजना है।" (तितली, पृ० १०३)।

"मैं समझ रहा हूँ कि आप व्यावहारिक समता खोजते हैं, किंतु उसकी आधार शिला तो जनता की सुख समृद्धि ही है न। जनता को अर्थ प्रेम की शिक्षा देकर उसे पशु बनाने की चेष्टा व्यर्थ करेगी। उसमे ईश्वर भाव का आत्मा का निवास

न होगा तो सब लोग उस दया सहानुभूति और प्रेम के उद्गम से अपरिचित हो जायँगे जिससे आपका व्यवहार टिकाऊ होगा। प्रकृति मे विषमता तो स्पष्ट है। नियन्त्रण के द्वारा उसमे व्यावहारिक समता का विकास न होगा। भारतीय आत्मवाद की मानसिक समता ही उसे स्थायी बना सकेगी। यान्त्रिक सभ्यता पुरानी होते ही ढीली होकर बेकार हो जायगी। उसमे प्राण बनाये रखने के लिए व्यावहारिक समता के ढाँचे या शरीर मे, भारतीय आत्मिक साम्य की आवश्यकता कब मानव समाज समझ लेगा, यही विचारने की बात है। मैं मानता हूँ कि पश्चिम एक शरीर तैयार कर रहा है किन्तु उसमे प्राण देना पूर्व के अध्यात्मवादियो का काम है। यही पूर्व और पश्चिम का वास्तविक सगम होगा, जिससे मानवता का स्रोत प्रसन्नधार मे बहा करेगा।"

उस दिन की आशा मे हम लोग निश्चेष्ट बैठे रहे।

नही मानवता की कल्याण कामना मे लगना चाहिए।

(तितली, पृ० १०४)।

"सच्चा वेदान्त व्यावहारिक है। वह जीवन-समुद्र आत्मा को उसकी सम्पूर्ण विभूतियो के साथ समझता है। भारतीय आत्मवाद के मूल मे व्यक्तिवाद है, किन्तु उसका रहस्य है समाजवाद की रूढ़ियो से व्यक्ति की स्वतन्त्र की रक्षा करना और व्यक्ति की स्वतत्रता का अर्थ है व्यक्ति समता की प्रतिष्ठा, जिसमे समझौता अनिवार्य है।" (तितली, पृ० ७४)।

"पिछले दिनो म मैंने पुरुषोत्तम की प्रारम्भिक जीवनी सुनाई थी, आज सुनाऊँगा उनका सदेश। उनका सदश था—आत्मा की स्वतत्रता का, साम्य का, कर्मयोग का, और बुद्धिवाद का। आज हम धर्म के जिस ढाँचे को शव को घेरकर रो रहे हैं, वह उनका धर्म नही था। धर्म को वे बड़ी दूर की पवित्र या डरने की वस्तु नही बतलाते थे। उन्होंने स्वर्ग का लालच छोडकर रुढियों के धर्म को पाप कहकर घोषणा की। उन्होने जीवन्मुक्ति होने का प्रचार किया। सबकी आत्मा स्वतत्र हो, इसलिए समाज की व्यावहारिक बातो को वे शरीर कर्म कहकर व्याख्या करते थे—क्या यह पथ सरल नही, क्या हमारे वर्तमान दु खों म वह अवलम्बन न होगा? सब प्राणियो से निर्वैर रखनेवाला शाति पूर्ण शक्ति सवलित मानवता का ऋजु पथ, क्या हम लोगो के चलने योग्य नही है? समवेत जनमण्डली ने कहा—है, अवश्य है।

हाँ, और उसमे कोई आडम्बर नही। उपासना के लिए एकान्त निश्चित अवस्था, और स्वाध्याय के लिए चुने हुए श्रुतियों के सारभाग का सग्रह, गुण कर्मों से विशेषता और पूर्ण आत्मनिष्ठा, सबका साधारण समता इतनी ही तो

चाहिए। कार्यालय मत बनाइये, मित्रो के सदृश एक दूसरो को समझाइए, किसी गुरुडम की आवश्यकता नहीं। आर्य संस्कृति अपना तामस त्याग झूठा विराग छोडकर जागेगी भू पृष्ठ के भौतिक देहात्मवादी चौंक उठेंगे। यान्त्रिक सभ्यता के पतन काल मे ही वही मानव जाति का अवलम्बन होगी।''

(ककाल, ११४)।

'कंकाल' और 'तितली' का यह स्वरूप इरावती मे बदला हुआ दिखाई पड़ता है। वस्तुतः 'इरावती' 'कामायनी' के बाद की कृति है। पुष्यमित्र शुग के काल की कथा वस्तु को आधार बनाकर प्रसाद जी ने इस उपन्यास मे पाप-पुण्य के बजाय अच्छे और बुरे का विचार करते हुए 'ककाल' की ही तरह से इसमे भी प्रयोग करने वाले व्यक्ति की दृष्टि को निर्णायक माना गया है। इस उपन्यास मे प्रसाद के नाटकों की तरह से अतीत से वर्तमान की ओर प्रक्षेपण नही है बल्कि इसमे वर्तमान मनुष्य की दशा के आधार पर अतीत को उदाहरण या आदर्श के रूप मे प्रस्तुत किया गया। प्रसाद के नाटको और उपन्यासो की सरचना मे वैसे भी आदर्श और यथार्थ एक दूसरे के सामने रखे हुए शीशे की भाँति प्रतीत होते हैं। नाटको मे शीशा आदर्श और अतीत का है प्रतिबिम्ब यथार्थ का है। उपन्यासो मे शीशा यथार्थ का है प्रतिबिम्ब आदर्श का है। और यह प्रतिबिम्ब समय की दृष्टि से पूर्वार्ध और परार्ध के क्रम से लघु और वृद्धिमान होता रहता है। इरावती उपन्यास अधूरा है कोई निष्कर्ष निकालना उचित नही है परन्तु जितना लिखा गया है उसके चक्रानुक्रम का एक नियम अवश्य बना है। उपन्यास की यही विशेषता है कि वह वर्तमान की तरह से भविष्य को निर्मित करता चलता है। इरावती का अन्त निश्चित है क्योकि उसका सिद्धात निश्चित है। प्रारम्भ से सुनायी पडने वाली आनन्द के उद्घोष की वाणी अत तक विद्यमान है। सासारिकता और आध्यात्मिकता के समन्वय की नही बल्कि 'सहजता' की चिन्ता ही इरावती का विषय है। कामायनी मे बुद्धिवाद का प्रलयकर स्वरूप है और इच्छा क्रिया और ज्ञान की 'लयता' का उद्घोष उसका एक विकल्प है जो कामायनी की भूमिका के अनुसार लेखक को मानवता के इतिहास के प्रतीक रूपक के रूप मे यह स्वीकृत है। 'इरावती' मे विवेकवाद को क्षुद्र और सकुचित दृष्टि का कारण माना गया है। ससार से विच्छिन्न करने वाले विराग और दर्शन की निंदा इस उपन्यास मे एक प्रकार से संघर्ष और युद्ध के उद्घोष के रूप मे प्रयुक्त हुई है। इसलिए इरावती यदि पूरी हो गई होती तो गद्यात्मक कामायनी होती। यह दृष्टि उस द्विवेदी युगीन चेतना से भिन्न है जिसमे बुद्धिपक्ष को हृदयपक्ष की तुलना मे प्रधान माना गया है। रामचन्द्र शुक्ल और जयशकर प्रसाद मे यही अन्तर है कि

शुक्ल जी मे इडा श्रद्धा को लिवा जाती है और कामायनी म इडा और मनु दोनो श्रद्धा को खोजते हैं। इरावती के इस उद्धरण से प्रसाद के 'रहस्यवाद' निबन्ध के सिद्धान्त निरूपण का तात्पर्य न केवल स्पष्ट हो जायगा बल्कि पृथ्वी या ससार के प्रति उनके यथार्थवादी आग्रह का भी सकेत मिल जायगा—

"अतिक्रमण करके आपका विवेक संसार स आपको अलग अपनी और सकुचित भूमिका मे खडा कर देगा । जहाँ केवल विराग ही नहीं, अपितु आसपास के फैले हुए ससार से घृणा भी नाक सिकोडने लगेगी । उस विवेक को भी हम क्या कहे, जो हमको संसार से विच्छिन्न करके, वैराग्य और अपनी पवित्रता के अभिमान मे, हमे अद्भुत परिस्थिति मे डाल दे । हमारा विश्व से सामजस्य होना असम्भव कर दे । शकाओ से, निषेधों से हमे जकडकर काल्पनिक उच्च आदर्शों के लिए वामन की तरह उचकते रहने को हास्य जनक स्थिति म सदैव डाल रक्खे ।" (इरावती, पृ० ८८) ।

प्रसाद जी के इस उपन्यास का लक्ष्यीभूत पाठक मध्यवर्ग ही है । बल्कि यह भी कहा जा सकता है कि मध्यवर्ग के लिए ही पूरा छायावाद का साहित्य मध्य वर्ग द्वारा ही लिखा गया । फलत उभरते हुए मध्यवर्ग की आशा आकाक्षा, प्रतिध्वनि, मनोव्यथा, पिंजरबद्धता और नवीनता, अनुकरण तथा मुक्ति की आकाक्षा पायी जाती है । परन्तु इरावती के पहले के उपन्यासो म विशेषकर ककाल के पात्र भी 'ककाल' यानी सर्वहारा है । सर्वहारा का यह अर्थ भारत की तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था मे एक विशेष प्रकार का अर्थ रखता है जो सर्वहारा क श्रम प्रक्रिया के अर्थ से भिन्न है परन्तु महत्त्वपूर्ण अवश्य है । तितली का समाज भिन्न समाज है वह भारतीय समाज के उच्च और मध्यवर्ग का ही समाज नही है बल्कि आर्थिक दृष्टि से विपन्न परन्तु वर्ण सस्कारो से युक्त लोगो का समाज है । प्राय सभी पात्र शिक्षित और सामाजिक दृष्टि से सजग पात्र है । निम्नवर्ग के पात्रा का जो प्रयोग है भी वह पात्र के रूप मे नहीं बल्कि प्रसगात है । 'प्रतिध्वनि' और आधी मे निम्न पात्र भी मिलते हैं । परन्तु इतना निश्चित है कि इन कहानियो के अधिकाश पात्र विवश, विपन्न, आश्रित परन्तु तेजस्वी और स्वाभिमानी हैं । और यह जिस प्रकार के सम्बन्धो के द्वारा जगत को उद्घाटित करते हैं वह उपन्यास का स्थायी तत्त्व बनता है । वस्तुत उपन्यास के रचना विधान की दृष्टि से इन तीनो उपन्यासों मे कोई विशेष अन्तर नही है ।

प्रसाद जी का सरचनात्मक आधार सादृश्य और वैपरीत्य है । नाटको और उपन्यासा मे इसी मूल आधार पर शुभ और अशुभ की आदर्शवादी धारणा का प्रयोग करते हुए वस्तु सगठन किया गया है । इस तर्क से ककाल थोडा भिन्न है ।

उसके सगठन मे शील वैचित्र्य का प्रयोग होते हुए भी निश्चित आदर्शों की ही स्थापना की गई है। कथा के भीतर कथा का प्रयोग कंकाल और तितली मे समान्तरित है। देवनन्दन और शबनम की कथाएँ विषाद ग्रस्त हैं। इन दोनो ही कथाओं का प्रयोग भारतीय साहित्य की परम्परा का उपन्यास के पश्चिमी रचना विधान मे एक प्रयोग कहा जा सकता है और निश्चय ही यह प्रयोग मूल कथा की वेदना को अधिक गहराता ही है। अन्तर्वैयक्तिक वेदनाओ के एकत्र सघटन से ही इन उपन्यासो का सृजन हुआ है। काल वैचित्र्य और व्यक्ति वैचित्र्य की दृष्टि से ककाल बेहतर है जब कि तितली का कथानक चन्द्रगुप्त की तरह से निश्चयात्मक है। उपन्यास का जीवन अभिनेताओ के कारण है। उपन्यास मे पात्रात्मकता कथा वैचित्र्य और शिल्प की दृष्टि से ठीक होती है परन्तु एक प्रकार की निर्जीवता भी उत्पन्न करती है। नाटकीयता के प्रयोग का एक लाभ अवश्य है कि उपन्यासो मे अन्तर्व्यथा भी साकेतिक हो सकी है। उपन्यास मैथिलीशरण के महाकाव्यो की तरह केवल घटनाओ के प्रवाह नहीं लगते हैं, बल्कि उनमे व्यक्तियो की पीडा और मनोव्यथा का भी असर है। यह मनोव्यथा वर्णन से नहीं बल्कि उपन्यास की बनावट का अग बनकर आती है, कथ्य के भीतर निबद्धमान संकेतो और सूचनाओ से प्रतीत होती है। यह प्रतीति प्रसाद के उपन्यासों की वह विशेषता है जो जैनेन्द्र और अज्ञेय मे पायी जाती है। अन्तर केवल इतना है कि प्रसाद मे बाहरी यथार्थ की फाक से वह छाया—वेदना-झलकती है जब कि जैनेन्द्र और अज्ञेय मे भीतरी दुनिया की फाक से बाहरी दुनिया झलकती है। 'हम हैं इसलिए दुनिया है' का मुहावरा प्रसाद के बाद का है यद्यपि मुझे वह प्रसाद का ही प्रसार लगता है। प्रसाद का आधार है कि मैं और जगत दोनो ही स्वतन्त्र सत्ताएँ हैं परन्तु दोनो से परे भी एक सत्ता है जिसके कारण ही ये सत्ताएँ हैं। यानी जो कुछ भी व्यक्त है वह अव्यक्त के कारण। और यही कारण है कि आस्तिकता और नियतिवादिता उनकी सभी कृतियो मे प्रति-फलनात्मक तत्त्व के रूप मे पाये जाते हैं।

विषमता प्रसाद जी के लिए वास्तविकता है कामायनी मे ही नही उपन्यासो मे भी और समता एक मूल्य है। परन्तु इस 'समता' की उनकी व्याख्या शील को एक गुण और वैयक्तिकता को आदर्श का प्रमुख आधार मानकर चलती है। इसलिए प्रसाद की समाज की परिभाषा अन्तर्वैयक्तिकता को आधार मानती है। आत्मशुद्धि और आत्मनिरीक्षण के अतिरिक्त वे स्वतन्त्रता को इसी अर्थ मे एक मूल्य मानते हैं। प्रजातान्त्रिक प्रणाली का कोई सीधा उल्लेख प्रसाद ने कहीं नही किया है। जिस प्रकार की ग्राम स्वराज्य की वे कल्पना करते हैं वह तितली का

ग्राम स्वराज्य है जो वाटसन, शैला, इन्द्रदेव, तितली आदि के प्रयत्न से धामपुर म शुरू और सफल होता है। परन्तु प्रसाद जी प्रमुख प्रजातान्त्रिक मूल्यो 'समता 'विश्वबन्धुत्व और स्वतन्त्रता का कहकर नही बल्कि बाह्य जगत म व्यक्तियो के व्यवहार से प्रकट और स्थापित करते है। आचरण और वाणी से इन मूल्यो की स्थापना व्यक्तियो क सघर्ष मे ही नही, बल्कि रामनाथ, कृष्णशरण और ब्रह्मचारी की स्थापनाओ से भी प्रमाणित और सम्पुष्ट होती है। यह दृष्टि प्रसाद को प्रेमचन्द से अलग अवश्य करती है। इस आधार पर विवचन स गोदान के प्रेमचन्द वाममार्गी और तितली क प्रसाद दक्षिणमार्गी लगते हैं। हिन्दी उपन्यास के आगामी विकास का इस सदर्भ म भी विवचित किया जा सकता है।

भारतीय समाज म स्त्रियो की दशा भारतेन्दु की तरह प्रसाद का प्रमुख विषय रही है। सामाजिक चेतना क बदलाव और सामाजिक जीवन के विविध क्षेत्रो की हिस्सेदारी न स्त्रियो को भी अपने अधिकारो क प्रति जागृत किया। यद्यपि यह सारी अधिकार चेतना एक विशष प्रकार क वर्ग और समाज म ही थी। प्रसाद के नाटको, कहानियो और उपन्यासो मे इस स्त्री चेतना क विविध रूप मिलते हैं। वस्तुत १९२२ के आस-पास जैसा की प्रेमचद न लिखा है पूरा गगन सुधार-सुधार के नारे से निनादित हो रहा था। सुधार की यह आवाज प्रेमचद और प्रसाद दोनो म है। और दोनो म धनिया तथा यमुना पुरुषो की पराजय और टूट क बाद अपने यथार्थ स्वरूप मे खडी रहती है। प्रसाद ने प्रारभ म स्त्रियो का प्रयोग आदर्शीकृत रूप म किया है। 'जनमजय क नागयज्ञ' से लेकर चन्द्रगुप्त तक स्त्रियो का एक आदर्शी कृत स्वरूप मिलता है जिसम स्थिर चरित्रो का प्रयोग किया गया है। परन्तु ध्रुवस्वामिनी म यह समस्या भिन्न रूप म आती है। वस्तुत 'प्रतिध्वनि, स स्त्रियो क प्रति प्रसाद का आदर्शीकृत स्वरूप बदला है। और यह बदलाव नेतृत्व के स्तर पर भी है। 'ध्रुवस्वामिनी, तितली' और कामायनी मे स्त्रियाँ ही प्रतिनिधित्व करती हैं। ककाल भी वस्तुत यमुना की कथा है। क्योकि ककाल की मूल कथा प्रारभ से अत तक यमुना और विजय पर केन्द्रित है शेष धाराएँ मिलती है और साथ-साथ चलती हैं। ठीक वैसे ही जैसे की तितली प्रारभ से अत तक विद्यमान है और उपन्यास के अत म वह शैला से अधिक महत्वपूर्ण ही नही किसी पुरुष पात्र से भी अधिक साहसी, संघपरत, सहनशील और अतत सफल है। यद्यपि तितली पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था के प्रति समर्थन का उपन्यास है जबकि ककाल पुरुषसत्तात्मक व्यवस्था क प्रति पूर्णत असतोष और विद्रोह की रचना है। स्त्री और शक्ति के प्रति प्रसाद का मत जीवन दृष्टि, शैव दर्शन और गभीर चितन का परिणाम है।

कंकाल मे सभी स्त्रियाँ पुरुष की सत्तात्मकता पर आघात करती हैं वैसे ही जैसे की ध्रुवस्वामिनी। वस्तुतः ध्रुवस्वामिनी और कंकाल मे एक प्रकार का साम्य है। धर्म और राज्य, समाज और पुरुष सत्तात्मकता पर लगाये गये प्रश्न चिह्न दोनो मे समान है। यमुना और घंटी का यह कथन ध्रुवस्वामिनी के कथन से मिलता है अंतर केवल इतना है कि ध्रुवस्वामिनी और तितली इस समाज से संघर्ष करके अपने प्राप्य प्राप्त कर लेती हैं और अंततः विद्रोह को नही संतुलन को बनाये रखती हैं।

"यमुना ने कहा—कोई समाज और धर्म स्त्रियो का नही बहन ! सब पुरुषो के हैं। सब हृदय को कुचलने वाले क्रूर हैं। फिर भी मैं समझती हूँ कि स्त्रियो का एक धर्म है वह है आघात सहने की क्षमता।" (कंकाल, २८८)।

घण्टी ने कहा—मैं भी ! बहन स्त्रियों को स्वयं घर पर जाकर अपनी दुखिया बहनो की सेवा करनी चाहिए। पुरुष उन्हे उतनी ही शिक्षा और ज्ञान देना चाहते हैं, जितना उनके स्वार्थ मे बाधक नही। घरो के भीतर अधकार है, धर्म के नाम पर ढोंग की पूजा है और शील तथा आचार के नाम पर रूढ़ियो की। बहनें अत्याचार के परदे मे छिपाई गई हैं।" (कंकाल, पृ० २०१)।

स्त्रियो को उनकी आर्थिक पराधीनता के कारण जब हम स्नेह करने के लिए बाध्य करते, तब उनके मन मे विद्रोह की सृष्टि भी स्वाभाविक है आज प्रत्येक कुटुम्ब उनके इस स्नेह और विद्रोह के द्वन्द्व से जर्जर है और असगठित है। हमारा सम्मिलित कुटुम्ब उनकी इस आर्थिक पराधीनता की अनिवार्य असफलता है। उन्हे चिरकाल से वंचित एक कुटुम्ब के आर्थिक सगठन को ध्वस्त करने के लिए दिन-रात चुनौती मिलती रहती है। जिस कुल से वे आती हैं उस पर से ममता हटती नही, यहाँ भी अधिकार की कोई संभावना न देखकर, वे सदा घूमने वाली अपराधी जाति की तरह प्रत्येक कौटुम्बिक शासन को अव्यवस्थित करने मे लग जाती हैं। यह किसका अपराध है ? प्राचीन-काल मे स्त्री धन की कल्पना हुई थी। किन्तु आज उसकी जैसी दुर्दशा है, जितने कांड उसके लिए खडे होते हैं, वे किसी से छिपे नही।" (तितली, पृ० ११८)।

"ध्रुवस्वामिनी—कुछ नही, मैं केवल यह कहना चाहती हूँ कि पुरुषो ने स्त्रियो को अपनी पशु सम्पत्ति समझकर उन पर अत्याचार करने का अभ्यास बना लिया है, वह मेरे साथ नही चल सकता। यदि तुम मेरी रक्षा नही कर सकते, अपने कुल की मर्यादा, नारी का गौरव, नही बचा सकते, तो मुझे बेच भी नहीं सकते। हाँ तुम लोगो को आपत्ति से बचाने के लिए मैं स्वयं यहाँ से चली जाऊँगी।" (ध्रुवस्वामिनी—प्रसाद वाङ्मय पृ० ७५६)।

इन उपन्यासो की एक विशेषता की ओर सकेत करना और आवश्यक है और वह है भाषा के प्रयोग के प्रति दृष्टि का। जयशकर प्रसाद पात्रो के वर्ग और यथार्थ के तर्क से प्रयुक्त को जाने वाली भाषा स परिचित थे कालिदास और भारतेन्दु इसके प्रयोक्ता और प्रमाण थे। उपन्यास मे वे बोलियों के प्रयोग करने के पक्ष म नही थे बल्कि भाषा म ही कलात्मक कौशल से विभिन्न संवेदनाओ, स्थितियो और मनोवृत्तियो की आम व्यजनात्मक क्षमता के पक्ष म थे। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि स्वतत्रता सघर्ष के दौरान लिखे गये महत्त्वपूर्ण रचनाओ मे आचलिकता का यह औपनिवेशिक दृष्टिकोण नही मिलता है, जो यथाय के नाम पर भाषिक सृजनशीलता से पलायन का दरवाजा खोलता है। भाषा को यह 'छविमयता' प्रसाद म है। विशेषकर कवाल म। प्रकृति चित्रण और वातावरण तथा स्थिति के बोध मे प्रसाद निश्चय ही अपने समकालीनो से अधिक दक्ष हैं। 'ककाल' और 'तितली' दोनो का प्रारभ इस प्रकार की अरेस्टिग क्षमता से युक्त है। प्रसाद की यह विशेषता सारे उपन्यासो म है। प्रेमचद में इस क्षमता का अभाव है। जबकि कथात्मक तत्वो का प्रयोग उन्होंने भी किया है। अन्तर केवल श्रव्य और दृश्य विधान का है। प्रेमचद पाठ्यगुण और श्रव्य विधान का प्रयाग अधिक करत हैं। दृश्य नियोजन मे वह सटीकता नही है, जो प्रसाद मे है। और यह क्षमता उस बौद्धिक क्षमता की अन्तर्सुप्त स्थिति के कारण है, जो उपन्यास मे निर्मित ही नहीं है बल्कि उसकी कल्पना का अग है। यही क्षमता है जो प्रसाद को तितली के माध्यम से उस क्षणवादी विचार विन्दु तक ल जाती है जो 'शेखर एक जीवनी' और 'नदी के द्वीप' का प्रमुख विषय है। इन्द्रदेव का यह कथन कि "जितने समय तक वह ऐसी दृढ़ता दिखा सके, अपने अस्तित्व का प्रदर्शन कर सके, उतने क्षण तक क्या जिया नही' आधुनिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। ऐसा निष्कर्ष केवल तितली का ही नहीं बल्कि ककाल म जमुना का भी है। प्रसाद जी वस्तुत गाँव और शहर का इकाई मानकर नही बल्कि होनेवाले परिवर्तनो के आधार पर आदर्श गाँव और शहर को चरित्र विकसित करते हैं। 'तितली का गाँव' टूटते हुए जमीदारो, बेदखल होते किसाना, गाँव से शहर भागते ग्रामीणो और नष्टप्राय ग्रामीण पारिवारिकताओ, कारिन्दो और पिट्ठुओ से सताये जाते हुए निरपराध किसानो, ऐयाशी करते हुए सामन्तो तथा इन सबसे लडते हुए मधुवन, तितली, रामजस और रामदीन का गाँव है।

प्रसाद जी ब्योरेवार वर्णन के बजाय लाक्षणिक और सकेतात्मक वर्णन करते हैं। गाँव की प्रवृत्ति और उसका समाज प्रसाद के लिए एक इकाई है और इस इकाई

का सुधार प्रसाद का लक्ष्य है। महात्मा गांधी की आवाज इस इकाई मे सुनायी पडती है। त्याग, तपस्या, संयम और साधना की प्रतिष्ठा उपन्यास मे पूर्णतः आदर्शवादी स्तर पर है। 'तितली' म शैला और तितली अपने-अपने ढग से इसे करते भी हैं। इन्द्रदेव इस सुधार के लिए लगभग गांधी जी की आवाज मे ही बोलते हैं कि "मैं तो समझता हूँ कि गांवो का सुधार होना चाहिए। कुछ पढ़े-लिखे संपन्न और स्वस्थ लोगो की नागरिकता के प्रलोभनो को छोडकर, देश के गांवो मे बिखर जाना चाहिए। उनके सरल जीवन मे—जो नागरिको के संसर्ग से विपाक्त हो रहा है।—विश्वास, प्रकाश और आनन्द का प्रचार करना चाहिए। उनके छोटे-छोटे उत्सवो मे वास्तविकता, उनकी खेती मे सम्पन्नता और चरित्र मे सुरुचि उत्पन्न करके उनके दारिद्रय और अभाव को दूर करने की चेष्टा होनी चाहिए। इसके लिए सम्पत्तिशालियो को स्वार्थ त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है।" (तितली, पृ० १६३)।

सत्याग्रह युग का स्वप्न तितली मे संघर्ष और विरोध के स्तर पर भी है और संगठन के स्तर पर भी है। प्रसाद का यह चित्रण महत्त्वपूर्ण और सांकेतिक है तथा 'कंकाल' की समस्याओ को समेटे हुए भी है। परन्तु प्रसाद की विशेषता ग्रामीण यथार्थ के केवल समस्यात्मक पहलू—गलाजत और टूटन-को व्यक्त करने मे ही नही जीवन्त और मूल्यवान पहलू का सकेत करन मे भी है। गाँव का सिवान, हरियाली और खेती बारी के साथ जिससे प्रसाद जी ग्रामीण गद्य विकसित करने मे सफल हुए है, लोकगीतो और हंसी ठिठोली से एक भिन्न स्वरूप का भी चित्रण करते हैं। सम्बधो की पवित्रता, जैविक वासना, सहज आकर्षण, ऐय्याशी, स्वालम्बन, मानवीयता, लाठी-डडा और भाई-चारा के साथ-साथ 'तितली' का गांव अपनी समग्रता से जीवित है। वस्तुतः प्रसाद की सरचना एक रेखीय नही है बल्कि चक्रीय है। तितली मे भी वही चक्रीयता है, जो नियतिवादी भी है और भारतीय भी है। प्रसाद जी के उपन्यासो का महत्व अपने वर्तमान के सदर्भ मे तो है ही उससे अधिक है उपन्यास को प्रचार और कलामाध्यमो से भिन्न एक स्वतत्र विधा के रूप मे विकसित करने म—प्रयोग मे। महत्व और लघुत्व के सीमात का बोध रचना को चैलेंज प्रदान करता है और प्रसाद ने इस चैलेज को स्वीकार किया है।

हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय —सत्यप्रकाश मिश्र
इलाहाबाद

प्रसाद ग्रन्थावली
प्रसाद वाङ्मय खण्ड-३

ककाल

प्रथम खण्ड

1

प्रतिष्ठान के खडहर म और गगा-तट की सिकता-भूमि म अनेक शिविर और फूस क झापडे खडे ह। माघ की अमावस्या की गोधूली म प्रयाग क बाँध पर प्रभात का-सा जनरव और कोलाहल तथा धर्म लूटन की धूम कम हो गई ह परन्तु बहुत-स घायल और कुचले हुए अर्धमृतका की आर्त्त ध्वनि उस पावन प्रदेश को आशीर्वाद द रही है। स्वय-सवक उह सहायता पहुँचान म व्यस्त है। यो तो प्रतिवर्ष यहाँ पर जन-समूह एकत्र होता है, पर अबकी बार कुछ विशेष पर्व की घोषणा की गई थी इसीलिए भीड अधिकता म हुई।

कितनो क हाथ टूटे, कितना का सिर फूटा और कितन ही पसलिया की हड्डियाँ गँवाकर अधोमुख होकर त्रिवेणी को प्रणाम करन लग। एक नीरव अवसाद, सध्या म गगा क दोना तट पर खड झापडो पर अपनी कालिमा बिखेर रहा था। नगी पीठ घोडो पर नगे साधुओ के चढन का जो उत्साह था, जो तलवार की फिकैती दिखलाने की स्पर्धा थी, दर्शक-जनता पर बालू की वर्षा करन का जो उन्माद था बड बडे कारचोबी झडो को आगे स चलने का जो आतक था, वह सब अब फीका हो चला था।

एक छायादार डोगी जमुना के प्रशान्त वक्ष को आकुलित करती हुई गगा की प्रखर धारा को काटन लगी—उस पर चढन लगी। माझियो न कसकर डाँडे लगाये। नाव झूसी क तट पर जा लगी। एक सम्भ्रान्त सज्जन और युवती, साथ म एक नौकर उस पर स उतरे। पुरुष यौवन म होन पर भी कुछ खिन्न-सा था युवती हँसमुख थी परन्तु नौकर बडा ही गभीर बना था। यह सम्भवत उस पुरुष का प्रभावशालिनी शिष्टता की शिक्षा थी। उसक हाथ म एक बास की डालची थी जिसम कुछ फल और मिठाइयाँ थी। साधुओ के शिविरो की पक्ति सामने थी वे लोग उसी ओर चले।

सामने स दो मनुष्य बात करते आ रह थ—

ऐसी भव्य मूर्ति इस मेले भर में दूसरी नही है।

जैसे साक्षात् भगवान् का अंश हो।

अजी ब्रह्मचर्य का तेज है।

अवश्य महात्मा है।

वे दोनो चले गये।

यह दल भी उसी शिविर की ओर चल पड़ा, जिधर से दोनों बात करते आ रहे थे। पट-मण्डप के समीप पहुँचने पर देखा, बहुत-से दर्शक खड़े हैं। एक विशिष्ट आसन पर एक बीस वर्ष का युवक हलके रंग का काषाय वस्त्र अंग पर डाल बैठा है। जटा-जूट नहीं था, कंधे तक बाल बिखरे थे। आँखें संयम के मद से भरी थीं। पुष्ट भुजाएँ, और तेजोमय मुख-मण्डल से आकृति बड़ी प्रभावशालिनी थी। सचमुच वह युवक तपस्वी भक्ति करने योग्य था। आगन्तुक और उसकी युवती स्त्री ने विनम्र होकर नमस्कार किया और नौकर के हाथ से लेकर उपहार सामने रक्खा। महात्मा ने सस्नेह मुस्करा दिया। वे सामने बैठे हुए भक्त लोग कथा कहनेवाले एक साधु की बातें सुन रहे थे। वह एक पद की व्याख्या कर रहा था—'तासों चुप ह्वै रहिये' गूँगा गुड़ का स्वाद कैसे बतावेगा, नमक की पुतली जब लवण-सिन्धु में गिर गई फिर वह अलग होकर क्या अपनी सत्ता बतावेगी! ब्रह्म के लिए भी वैसे ही 'इदमित्थं' कहना असम्भव है, इसीलिए महात्मा ने कहा है—'तासों चुप ह्वै रहिये'।

उपस्थित साधु और भक्तों ने एक-दूसरे का मुँह देखते हुए प्रसन्नता प्रकट की। सहसा महात्मा ने कहा—ऐसा ही उपनिषदों में भी कहा है—'अवचनेन प्रोवाच!' भक्त-मण्डली ने इस विद्वत्ता पर आश्चर्य प्रकट किया और धन्य-धन्य के शब्द से पट-मण्डप गूँज उठा।

सम्भ्रान्त पुरुष सुशिक्षित था। उसके हृदय में यह बात समा गई कि महात्मा वास्तविक ज्ञान-सम्पन्न महापुरुष है। उसने अपने साधु-दर्शन की इच्छा की सराहना की और भक्तिपूर्वक बैठकर सत्संग सुनने लगा।

रात हो गई, जगह-जगह पर अलाव धधक रहे थे। शीत की प्रबलता थी। फिर भी धर्म-संग्राम के सेनापति लोग शिविरों में डटे रहे। कुछ ठहरकर आगन्तुक ने जाने की आज्ञा चाही। महात्मा ने पूछा—आप लोगों का शुभ नाम और परिचय क्या है?

हम लोग अमृतसर के रहने वाले हैं। मेरा नाम श्रीचन्द्र है और यह मेरी धर्मपत्नी है।—कह कर श्रीचन्द्र ने युवती की ओर संकेत किया। महात्मा ने भी उसकी ओर देखा। युवती ने उस दृष्टि से यह अर्थ निकाला कि महात्माजी मेरा

भी नाम पूछ रहे है। वह जैसे किसी पुरस्कार पाने की प्रत्याशा और लालच से प्रेरित होकर बोल उठी—दासी का नाम किशोरी है।

महात्मा की दृष्टि में जैसे एक आलोक घूम गया। उसने सिर नीचा कर लिया और बोला—अच्छा विलम्ब होगा जाइए। भगवान् का स्मरण रखिए।

श्रीचन्द्र किशोरी के साथ उठे। प्रणाम किया और चले।

साधुओं का भजन-कोलाहल शान्त हो गया था। निस्तब्धता रजनी के मधुर क्रोड में जाग रही थी। निशीथ के नक्षत्र, गंगा के मुकुर में अपना प्रतिबिम्ब देख रहे थे। शीत पवन का झोंका सबको आलिंगन करता हुआ विरक्त के समान भाग रहा था। महात्मा के हृदय में हलचल थी। वह निष्पाप हृदय ब्रह्मचारी दुश्चिन्ता से मलिन, शिविर छोड़कर कम्बल डाले, बहुत दूर गंगा की जलधारा के समीप खड़ा होकर अपने चिरसञ्चित पुण्यों को पुकारने लगा।

वह अपने विराग को उत्तेजित करता, परन्तु मन की दुर्बलता प्रलोभन बनकर विराग की प्रतिद्वन्द्विता करने लगती और इसमें उसके अतीत की स्मृति भी उसे धोखा दे रही थी। जिन-जिन सुखों को वह त्यागने के लिए चिन्ता करता वे ही उसे धक्का देने का उद्योग करते। दूर सामने दीखने वाली कलिन्दजा की गति का अनुकरण करने के लिए वह मन को उत्साह दिलाता परन्तु गम्भीर अर्द्ध निशीथ के पूर्ण उज्ज्वल नक्षत्र बालकाल की स्मृति के सदृश मानस पटल पर चमक उठते थे। अनन्त आकाश में जैसे अतीत की घटनाएँ रजताक्षरों से लिखी हुई उसे दिखाई पड़ने लगीं—

झेलम के किनारे एक बालिका और एक बालक अपने प्रणय के पौधे को अनेक क्रीड़ा-कुतूहलों के जल से सींच रहे है। बालिका के हृदय में असीम अभिलाषा और बालक के हृदय में अदम्य उत्साह। बालक रंजन आठ वर्ष का हो गया और किशोरी सात की। एक दिन अकस्मात् रंजन को लेकर उसके माता-पिता हरद्वार चल पड़े। उस समय किशोरी ने उससे पूछा—रंजन कब आओगे?

उसने कहा—बहुत ही जल्द। तुम्हारे लिए अच्छी-अच्छी गुड़ियाँ ले आऊंगा।

रंजन चला गया। जिस महात्मा की कृपा और आशीर्वाद से उसने जन्म लिया था, उसी के चरणों में चढ़ा दिया गया। क्योंकि उसकी माता ने सन्तान होने के लिए ऐसी ही मनौती की थी।

निष्ठुर माता पिता ने अन्य सन्तानों के जीवित रहने की आशा में अपने ज्येष्ठ पुत्र को महात्मा का शिष्य बना दिया। बिना उसकी इच्छा के वह संसार से—जिसे उसने अभी देखा भी नहीं था—अलग कर दिया गया। उसका गुरुद्वार

का नाम देवनिरंजन हुआ। वह सचमुच आदर्श ब्रह्मचारी बना। वृद्ध गुरुदेव ने उसकी योग्यता देखकर उसे उन्नीस वर्ष की ही अवस्था में गद्दी का अधिकारी बनाया। वह अपने संघ का संचालन अच्छे ढंग से करने लगा।

हरद्वार में उस नवीन तपस्वी की सुख्याति पर बूढ़े-बूढ़े बाबा लोग ईर्ष्या करने लगे। और इधर निरंजन के मठ की भेंट-पूजा बढ़ गई परन्तु निरंजन सब चढ़े हुए धन का सदुपयोग करता था। उसके सदनुष्ठान का गौरव चित्र आज उसकी आँखों के सामने खिंच गया और वह प्रशंसा और सुख्याति के लोभ दिखाकर मन को इन नई कल्पनाओं से हटाने लगा, परन्तु किशोरी के नाम ने उसे बारह वर्ष की प्रतिमा का स्मरण दिला दिया। उसने हरद्वार आते हुए कहा था—किशोरी, तेरे लिए गुड़ियाँ ले आऊँगा। क्या यह वही किशोरी है? अच्छा यदि है, तो इस संसार में खेलने के लिए गुड़िया मिल गई। उसका पति है, वह उसे बहलायेगा। मुझ तपस्वी को इससे क्या। जीवन का बुल्ला विलीन हो जायगा। ऐसी कितनी ही किशोरियाँ अनन्त समुद्र में तिरोहित हो जायगी। मैं क्या चिन्ता करूँ?

परन्तु प्रतिज्ञा। ओह वह स्वप्न था खिलवाड़ था। मैं कौन हूँ किसी को देनेवाला, वही अन्तर्यामी सबको देता है। मूर्ख निरंजन! सम्हल!! कहाँ मोह के थपेड़े में झूमना चाहता है? परन्तु यदि वह कल फिर आई तो?—भागना होगा। भाग निरंजन, इस माया से हारने के पहले युद्ध होने का अवसर ही मत दे।

निरंजन धीरे-धीरे अपने शिविर को बहुत दूर छोड़ता हुआ, स्टेशन की ओर विचरता हुआ चल पड़ा। भीड़ के कारण बहुत-सी गाड़ियाँ बिना समय भी आ जा रही थीं। निरंजन ने एक कुली से पूछा—यह गाड़ी कहाँ जायगी?

सहारनपुर—उसने कहा।

देवनिरंजन गाड़ी में चुपचाप बैठ गया।

दूसरे दिन जब श्रीचन्द्र और किशोरी साधु-दर्शन के लिए फिर उसी स्थान पर पहुँचे, तब वहाँ अखाड़े के साधुओं को बड़ा व्यग्र पाया। पता लगाने पर मालूम हुआ कि महात्माजी समाधि के लिए हरद्वार चले गये। यहाँ उनकी उपासना में कुछ विघ्न होता था। वे बड़े त्यागी हैं। उन्हें गृहस्थों की बहुत झंझट पसन्द नहीं। यहाँ धन और पुत्र माँगनेवालों तथा कष्ट से छुटकारा पानेवालों की प्रार्थना से वे ऊब गये थे।

किशोरी ने कुछ तीखे स्वर से अपने पति से कहा—मैं पहले ही कहती थी कि तुम कुछ न कर सकोगे। न तो स्वयं कहा और न मुझे प्रार्थना करने दी।

विरक्त होकर श्रीचन्द्र ने कहा—तो तुमको किसने रोका था। तुम्हीं ने क्या न सन्तान के लिए प्रार्थना की। कुछ मैंने बाधा तो दी न थी।

उत्तेजित किशोरी ने कहा—अच्छा तो हरद्वार चलना होगा।

चलो, मैं तुम्हें वहाँ पहुँचा दूँगा। और, अमृतसर आज तार द दूँगा कि मैं हरद्वार होता हुआ आता हूँ, क्योकि मैं व्यवसाय इतने दिनो तक यो ही नही छोड सकता।

अच्छी बात ह, परन्तु मैं हरद्वार अवश्य जाऊँगी।

सो तो मैं जानता हूँ—कहकर श्रीचन्द्र ने मुँह भारी कर लिया, परन्तु किशोरी को अपनी टेक रखनी थी। उसे पूर्ण विश्वास हो गया था कि उन महात्मा स मुझे अवश्य सन्तान मिलेगी।

उसी दिन श्रीचन्द्र न हरद्वार क लिए प्रस्थान किया। और अखाडे क भण्डारी न भी जमात लकर हरद्वार जान का प्रबन्ध किया।

हरद्वार क समीप ही जाह्नवी क तट पर तपोवन का स्मरणीय दृश्य है। छोटे-छोटे कुटीरो की श्रेणी बहुत दूर तक चली गई है। खरस्रोता जाह्नवी की शीतल धारा उस पावन प्रदेश का अपन कल-नाद स गुजरित करती ह। तपस्वी अपनी योग-चर्या-साधन क लिए उन छोटे-छोटे कुटीरो म रहत है। बड-बडे मठो स अन्नसत्र का प्रबन्ध ह। वे अपनी भिक्षा ल आते है और इसी निभृत स्थान म बैठकर अपन पाप का प्रक्षालन करते हुए ब्रह्मानन्द का सुख भोगते ह। सुन्दर शिला-खण्ड, रमणीय लता-वितान, विशाल वृक्षो की मधुर छाया, अनेक प्रकार क पक्षियो का कोमल कलरव वहाँ एक अद्भुत शान्ति का सृजन करता ह। आरण्यक-पाठ के उपयुक्त स्थान है।

गगा की धारा जहाँ घूम गई है वह छोटा-सा कोना अपने सब साथियो को छोडकर आगे निकल गया ह। वहाँ एक सुन्दर कुटी है, जो नीची पहाडी की पीठ पर जैसे आसन जमाय बैठी ह। उसी की दालान म निरजन गगा की धारा की ओर मुँह किये ध्यान म निमग्न है। यहाँ रहत हुए कई दिन बीत गय। आसन और दृढ धारणा से अपन मन को सयम म ल आने का प्रयत्न लगातार करत हुए भी शान्ति नही लौटी। विक्षेप बराबर होता था। जब ध्यान करन का समय होता, एक बालिका की मूर्ति सामने आ खडी होती। वह उस माया-आवरण कहकर तिरस्कार करता, परन्तु वह छाया जैसे ठोस हो जाती। अरुणोदय की रक्त किरण आँखो म घुसने लगती थी। घबराकर तपस्वी न ध्यान छोड दिया। देखा कि पगडण्डी से एक रमणी उस कुटीर के पास आ रही है। तपस्वी को क्रोध आया। उसने समझा कि देवताओ का तप म प्रत्यूह डालन का क्या

अभ्यास होता है ? क्या वे मनुष्यों के समान ही द्वेष आदि दुर्बलताओं से पीड़ित है ?

रमणी चुपचाप समीप चली आई। साष्टांग प्रणाम किया। तपस्वी चुप था, वह क्रोध से भरा था, परन्तु न जाने क्या उसे तिरस्कार करने का साहस न हुआ। उसने कहा—उठो, तुम यहाँ क्या आई ?

किशोरी ने कहा—महाराज, अपना स्वार्थ ले आया—मैंने आज तक संतान का मुँह नहीं देखा।

निरंजन ने गम्भीर स्वर में पूछा—अभी तो तुम्हारी अवस्था अठारह-उन्नीस से अधिक नहीं, फिर इतनी दुश्चिन्ता क्यों ?

किशोरी के मुख पर लज्जा की लाली थी, वह अपनी वयस की नाप-तोल से संकुचित हो रही थी। परन्तु तपस्वी का विचलित हृदय इस व्रीडा समझ लगा। वह जैसे लड़खड़ाने लगा। सहसा सम्हल कर बोला—अच्छा। तुमने यहाँ आकर ठीक नहीं किया। जाओ मेरे मठ में आना—अभी दो दिन ठहरकर। यह एकान्त योगियों की स्थली है, यहाँ से चली जाओ।—तपस्वी अपने भीतर किसी से लड़ रहा था।

किशोरी ने अपनी स्वाभाविक तृष्णा भरी आँखों से एक बार उस सूखे यौवन का तीव्र आलोक देखा, वह बराबर देख न सकी, छलछलाई आँखें नीची हो गईं। उन्मत्त के समान निरंजन ने कहा—बस जाओ।

किशोरी लौटी और अपने नौकर के साथ जो थोड़ी ही दूर पर खड़ा था, 'हर की पैड़ी' की ओर चल पड़ी। चिन्ता और अभिलाषा से उसका हृदय नीचे-ऊपर हो रहा था।

रात एक पहर गई होगी, 'हर की पैड़ी' के पास ही एक घर की खुली खिड़की के पास किशोरी बैठी थी। श्रीचन्द्र को यहाँ आते ही तार मिला कि तुम तुरन्त चले आओ। व्यवसाय-वाणिज्य के काम अटपट होते हैं, वह चला गया। किशोरी नौकर के साथ रह गई। नौकर विश्वासी और पुराना था। श्रीचन्द्र की लाडली स्त्री किशोरी मनस्विनी थी ही।

ठंड का झोंका खिड़की से आ रहा था, परन्तु अब किशोरी के मन में बड़ी उलझन थी—कभी वह सोचती, मैं क्यों यहाँ रह गई, क्यों न उन्हीं के संग चली गई। फिर मन में आता, रुपये-पैसे तो बहुत हैं, जब उन्हें भोगनेवाला ही कोई नहीं, फिर उसके लिए उद्योग न करना भी मूर्खता है। ज्योतिषी ने भी कह दिया है, संतान बड़े उद्योग से होगी। फिर मैंने क्या बुरा किया ?

अब शीत की प्रबलता हो चली थी। उसने चाहा, खिडकी का पल्ला बन्द कर ले। सहसा किसी के रोने की ध्वनि सुनाई दी। किशोरी को उत्कठा हुई, परन्तु क्या करे, 'बलदाऊ बाजार गया था। चुप रही। थोडे ही समय म बल दाऊ आता दिखाई पडा।

आते ही उसने कहा—बहूरानी, कोई गरीब स्त्री रो रही है। यही नीच पडी ह।

किशोरी भी दु खी थी। सवेदना से प्रेरित होकर उसन कहा—उसे लिवात क्यो नही आय, कुछ उस द दिया जाता।

बलदाऊ सुनते ही फिर नीचे उतर गया। उसे बुला लाया। वह एक युवती विधवा थी। बिलख बिलखकर रो रही थी। उसके मलिन वसन का अचल तर हो गया था। किशोरी के आश्वासन देने पर वह सम्हली और बहुत पूछने पर उसने अपनी कथा सुना दी—विधवा का नाम रामा है बरेली की एक ब्राह्मण-वधू है। दुराचार का लाछन लगाकर उसके देवर ने उसे यहा लाकर छोड दिया। उसके पति के नाम की कुछ भूमि थी, उस पर अधिकार जमाने क लिए उसन यह कुचक्र रचा है।

किशोरी न उसके एक-एक अक्षर पर विश्वास किया क्योकि वह देखती है कि परदेश म उसके पति न ही उसे छोड दिया और स्वय चला गया। उसन कहा—तुम घबराओ मत, मैं यहाँ अभी कुछ दिन रहूँगी। मुझे एक ब्राह्मणी चाहिए ही, तुम मेरे पास रहो। मैं तुम्हे बहन क समान रक्खूगी।

रामा कुछ प्रसन्न हुई। उसे आश्रय मिल गया। किशोरी शैया पर लेटे लेटे सोचने लगी—पुरुष बडे निर्मोही होते है देखो वाणिज्य-व्यवसाय का इतना लोभ कि मुझे छोडकर चले गये। अच्छा, जब तक वे स्वय नही आवेग, मैं भी नही जाऊँगी। मरा भी नाम किशोरी ह!—यही चिन्ता करते-करते किशोरी सो गई।

दो दिन तक तपस्वी न मन पर अधिकार जमाने की चेष्टा की, परन्तु वह असफल रहा। विद्वत्ता के जितने तर्क जगत को मिथ्या प्रमाणित करने के लिए थे, उन्होने उग्र रूप धारण किया। वे अब समझाते थे—जगत् तो मिथ्या है ही, इसके जितने कर्म है वे भी माया हैं। *प्रमाता जीव भी प्रकृति है, क्योकि वह भी* अपरा प्रकृति है। जब विश्व मात्र प्राकृत है तब इसमे अलौकिक अध्यात्म कहाँ। यही खेल यदि जगत् बनानेवाले का है, तो वह मुझे खेलना ही चाहिए। वास्तव म गृहस्थ न होकर भी मै वही सब तो करता हूँ जो एक ससारी करता है—वही

आय-व्यय का निरीक्षण और उसका उपयुक्त व्यवहार, फिर यह सहज उपल
मुख क्या छोड दिया जाय ?

त्यागपूर्ण थोथी दार्शनिकता जब किसी ज्ञानाभास को स्वीकार कर लती ह तब उसका धक्का सम्हालना मनुष्य का काम नही ।

उसने फिर सोचा—मठधारियो, साधुओ के लिए व सब पथ खुले होते है । यद्यपि प्राचीन आर्यों को धमनीति म इसीलिए कुटीचर और एकान्तवासियो का ही अनुमादन किया है, परन्तु सघवद्ध होकर बौद्धधर्म ने जा यह अपना कूडा छोड दिया है, उस भारत के धार्मिक सम्प्रदाय अभी भी फेक नही सकत । तो फिर चल ससार अपनी गति से ।

देवनिरजन अपन विशाल मठ म लौट आया । आर महन्ती नय ढग स दखी जान लगी । भक्तो की पूजा और चढाव का प्रवन्ध हान लगा । गद्दी और तकिय की दख-भाल चली । दो ही दिन म मठ का रूप वदल गया ।

एक चाँदनी रात थी । गगा क तट पर अखाडे स मिला हुआ उपवन था । विशाल वृक्ष की विरल छाया म चाँदनी उपवन की भूमि पर अनेक चित्र बना रही थी । वसत-समीर न कुछ रग वदला था । निरजन मन के उद्वेग स वही टहल रहा था । किशारी आई । निरजन चौंक उठा । हृदय म रक्त दौडन लगा ।

किशारी न हाथ जाडकर कहा—महाराज, मर ऊपर दया न हागी ?

निरजन न कहा—किशारी, तुम मुझको पहचानती हो ?

किशारी न उस धुँधल प्रकाश म पहचानन की चष्टा की, परन्तु वह अस-फल होकर चुप रही ।

निरजन न फिर कहना प्रारम्भ किया—झलम क तट पर रजन और किशोरी नाम क दो बालक और बालिका खलते थे । उनम वडा स्नेह था । रजन जब अपने पिता क साथ हरद्वार जान लगा, तव उसन कहा था कि—किशारी, तेरे लिए मै गुडिया ले आऊँगा, परन्तु वह झूठा वालक अपनी वाल-सगिनी क पास फिर न लौटा । क्या तुम वही किशोरी हो ?

उसका बाल-सहचर इतना वडा महात्मा !—किशारी की समस्त धमनियो म हलचल मच गयी । वह प्रसन्नता स वोल उठी—"और क्या तुम वही रजन ो ?"

लडखडात हुए निरजन न उसका हाथ पकड कर कहा— 'हाँ किशोरी, मैं ी रजन हूँ । तुमको पान क लिए ही जैस आज तक तपस्या करता रहा, यह वत तप तुम्हारे चरणा म निछावर है । सतान, एश्वर्य और उन्नति दन की न जो कुछ शक्ति ह, वह सब तुम्हारी है ।

अतीत की स्मृति, वर्तमान की कामनाएँ, किशोरी को भुलावा देने लगी। माथे से पसीना बहने लगा। दुर्बल हृदया किशोरी को चक्कर आने लगा। उसन ब्रह्मचारी के चौडे वक्ष पर अपना सिर टेक दिया।

कई महीने बीत गये। बलदाऊ न स्वामी का पत्र लिखा कि—आप आइए, बिना आपके आये बहूरानी नही जाती और मैं अब यहा एक घडी भी रहना अच्छा नही समझता।

श्रीचन्द्र आय। हठीली किशारी न बडा रूप दिखलाया। फिर मान-मनाव हुआ। दवनिरजन को समझा-बुझा कर किशोरी फिर आन की प्रतिज्ञा करके पति के साथ चली गयी। किशोरी का मनोरथ पूर्ण हुआ।

रामा वहाँ रह गयी। हरद्वार जैस पुण्यतीर्थ मे क्या विधवा का स्थान और आश्रय की कमी थी!

पन्द्रह बरस बाद—

काशी म ग्रहण था। रात म घाटा पर नहान का बडा सुन्दर प्रबन्ध था। चन्द्र-ग्रहण हा गया। घाट पर बडी भीड थी। आकाश म एक गहरी नीलिमा फैली। नक्षत्रा म चौगुनी चमक थी, परन्तु खगाल म कुछ प्रसन्नता न थी। दखत-दखते एक अच्छे चित्र क समान पूर्णमासी का चन्द्रमा आकाश-पट पर स धा दिया गया। धार्मिक जनता म कालाहल मच गया। लाग नहान, गिरन तथा भूलने भी लगे। कितनो का साथ छूट गया।

विधवा रामा अब सधवा होकर अपनी कन्या तारा क साथ भण्डारीजी क साथ आई थी। भीड के एक ही धक्के म तारा अपनी माता तथा साथिया स अलग हो गई। यूथ स बिछडी हुई हरिनी के समान बडी-बडी आखा स वह इधर-उधर दख रही थी। कलेजा धक-धक करता था, आख छलछला रही थी, और उसकी पुकार उस महा कोलाहल म विलीन हुई जाती थी। तारा अधीर हो गई, अब फूट-फूट कर रोन लगी। एक अधेड स्त्री पास म खडी हुई तारा को ध्यान स दख रही थी। उसन पास आकर पूछा—बेटी, तुम किसको खोज रही हा?

तारा का गला रुँध गया, वह उत्तर न द सकी।

तारा सुन्दरी थी। हानहार सौन्दय उसक प्रत्यक अग म छिपा था। वह युवती हा चली थी, परन्तु अनाघ्रात कुसुम के रूप की पखुरियाँ विकसी न थी। अधड स्त्री न स्नह स उस छाती स लगा लिया, और कहा—मैं अभी तेरी माँ क

पास पहुँचा देती हूँ, वह तो मेरी बहन है, मै तुझे भलीभाँति जानती हूँ। तू घबडा मत।

हिन्दू स्कूल का एक स्वय-सेवक पास आ गया। उसन पूछा—क्या तुम भूल गई हो ?

तारा रो रही थी। अधेड स्त्री ने कहा—मैं जानती हूँ, यही इसकी माँ है, वह भी खोजती थी। मैं लिवा जाती हूँ।

स्वय-सेवक मगलदेव चुप रहा। युवक छात्र एक युवती बालिका के लिए हठ न कर सका। वह दूसरी ओर चला गया, और तारा उसी स्त्री के साथ चली।

२

लखनऊ, सयुक्तप्रान्त म एक निराला नगर है। बिजली की प्रभा से आलोकित सन्ध्या 'शाम अवध' की सम्पूर्ण प्रतिमा है। पण्य म क्रय-विक्रय चल रहा है, नीचे और ऊपर स सुन्दरियो का कटाक्ष। चमकीली वस्तुओ का झलमला, फूलो क हार का सौरभ और रसिको क वसन म लगे हुए गन्ध स खेलता हुआ मुक्त पवन,—यह सब मिलकर एक उत्तेजित करन वाला मादक वायुमण्डल बन रहा है।

मगलदेव अपन साथी खिलाडियो के साथ मैच खलने लखनऊ आया था। उसका स्कूल आज विजयी हुआ है। कल वे लाग बनारस लौटेंगे। आज सब चौक म अपना विजयाल्लास प्रकट करने के लिए और उपयोगी वस्तु क्रय करने के लिए एकत्र हुए हैं।

छात्र सभी तरह क होत है। उनके विनाद भी अपने-अपने ढग के परन्तु मगल इनम निराला था। उसका सहज सुन्दर अग ब्रह्मचर्य और यौवन से प्रफुल्ल था। निमल मन का आलोक उसके मुख मण्डल पर तेज बना रहा था। वह अपन एक साथी को ढूढने के लिए चला था, परन्तु वीरेन्द्र न उस पीछे स पुकारा। वह लौट पडा।

वीरेन्द्र—मगल, आज तुमको मेरी एक बात माननी होगी।

मगल—क्या बात है, पहले सुनू भी।

वीरेन्द्र—नही, पहल तुम स्वीकार करो।

मगल—यह नही हा सकता क्याकि फिर उस न करने स मुझे कष्ट होगा।

वीरेन्द्र—बहुल बुरी बात है परन्तु मेरी मित्रता क नाते तुम्हे करना ही होगा।

मगल—यही ता ठीक नही।

वीरेन्द्र—अवश्य ठीक नही, तो भी तुम्ह मानना होगा।

मगल—वीरेन्द्र, ऐसा अनुरोध न करा।

वीरेन्द्र—यह मेरा हठ है। और तुम जानते हो कि मेरा काई भी विनोद तुम्हारे विना असम्भव है निस्सार है। दखो, तुमसे स्पष्ट वहता हूँ। उधर दखो—वह एक बाल वश्या है, मैं उसके पास जाकर एक बार केवल नयनाभिराम रूप देखना चाहता हूँ। इससे विशेष कुछ नही।

मगल—यह वैसा कुतूहल।—छि।

वीरेन्द्र—तुम्हे मरी सौगध पाँच मिनट म अधिक नही लगेगा, हम लौट आवगे। चलो, तुम्हे अवश्य चलना हागा। मगन क्या तुम जानत हो, मैं तुम्हे क्या ले चल रहा हूँ?

मगल—क्या?

वीरेन्द्र—जिसम तुम्हारे भय स म विचलित न हा सकूँ। मैं उस दखूँगा अवश्य, परन्तु आगे के डर स बचाने वाला साथ रहना चाहिए। मित्र, तुमको मेरी रक्षा क लिए साथ चलना ही चाहिए।

मगन न कुछ सोचकर वहा—चला। परन्तु क्रोध म उसकी आँख लाल हो गई थी।

वह वीरेन्द्र के साथ चल पडा। सीढियो स ऊपर कमरे म दोना जा पहुँचे। एक षोडशी युवती सजे हुए कमरे म बैठी थी। पहाडी रूखा सौदय उसक गहुएँ रग म ओत-प्रोत ह। सब भर हुए अगा म रक्त का वगवान सचार कहता ह कि इसका तारुण्य इसस कभी न छूटेगा। बीच स मिली हुइ घनी भौहो के नीच न जाने कितना अन्धकार खल रहा था। सहज नुकीली नाक उसकी आकृति की स्वतन्त्र सत्ता बनाये थी। नीचे सिर किये हुए उसने जब इन लोगो का दखा, तब उस समय उसकी बडी-बडी आँखो क कान और भी खिन्न हुए जान पडे। घने वाले बालो के गुच्छे दोनो कानो क पास क कन्धो पर लटक रहे थे। बाय कपोल पर एक तिल उसके सरल सौन्दय को बाँका बनाने के लिए पर्याप्त था। शिक्षा के अनुसार उसने सलाम किया परन्तु यह खुल गया कि अन्यमनस्क रहना उसकी स्वाभाविकता थी।

मगलदव न दखा कि यह तो वेश्या का-सा रूप नही है।

वीरेन्द्र न पूछा—आपका नाम?

उसक 'गुलनार' कहने म काइ बनावट न थी।

सहसा मगल चौंक उठा उसने पूछा—क्या हमने तुमको कही और भी दखा है?

यह अनहोनी बात नही है।

कई महीने हुए, काशी म ग्रहण की रात को जब मैं स्वय-सेवक का काम कर रहा था, मुझे स्मरण होता है, जैसे तुम्हे देखा हो, परन्तु तुम तो मुसलमानी हो।

हो सकता है कि आपने मुझे देखा हो, परन्तु उस बात को जान दीजिए अभी अम्मा आ रही है।

मगलदेव कुछ कहना ही चाहता था कि 'अम्मा आ गई। वह विलासजीर्ण दुष्ट मुखाकृति देखते ही घृणा होती थी।

अम्मा ने कहा—आइय बाबू साहब, कहिये क्या हुक्म है ?

कुछ नही, गुलेनार को देखन क लिए चला आया था—कहकर वीरेन्द्र मुस्करा दिया।

आपकी लौडी है, अभी तो तालीम भी अच्छी तरह नही लेती, क्या कहूँ बाबू साहब, बडी बादी है। इसकी किसी बात पर ध्यान न दीजिएगा।—अम्मा न कहा।

नही-नही, इसकी चिन्ता न कीजिए। हम लोग तो परदेशी है। यहाँ घूम रहे थे, तब तक इनकी मनमोहिनी छवि दिखाई पडी, चले आय।—वीरेन्द्र ने कहा।

अम्मा न भीतर की ओर देखकर पुकारते हुए कहा—अरे इलायची ले आ, क्या कर रहा है ?

अभी आया। कहता हुआ एक मुसलमान युवक चादी की थाली म पान इलायची ल आया। वीरेन्द्र न इलायची ले ली और उसम दो रुपय रख दिय। फिर मगलदव की ओर देखकर कहा—चलो भाई, गाडी का भी समय देखना होगा, फिर कभी आया जायगा। प्रतिज्ञा भी पाँच मिनट की है।

अभी बैठिए भी, क्या आये और क्या चले—फिर सक्रोध गुलनार को देखती हुई अम्मा कहने लगी—क्या कोई बैठे और क्या आये! तुम्हे तो कुछ बोलना ही नही है और न कुछ हँसी-खुशी की बात ही करनी है, कोई क्यो ठहरे ?—अम्मा की त्योरियाँ बहुत ही चढ गई थी। गुलनार सिर झुकाय चुप थी।

मगलदव जो अब तक चुप था, बोला—मालूम होता है, आप दोनो म बनती बहुत कम है, इसका क्या कारण है ?

गुलेनार कुछ बोला ही चाहती थी कि अम्मा बीच ही म बोल उठी—अपने-अपने भाग्य होते है बाबू साहब, एक ही बेटी, इतने दुलार से पाला पोसा, फिर भी न जाने क्यो रूठी ही रहती है—कहती हुई बुड्ढी के दो बूद आँसू भी निकल पडे। गुलेनार की वाक्-शक्ति जैसे बन्दी होकर तडफडा रही थी। मगलदव न

मगल—वीरेन्द्र, एसा अनुरोध न करा।

वीरेन्द्र—यह मेरा हठ है। और तुम जानते हो कि मेरा काई भी विनाद तुम्हारे बिना असम्भव है, निस्सार है। दखो, तुमसे स्पष्ट कहता हूँ। उधर देखो—वह एक वाल वेश्या है, मैं उसके पास जाकर एक बार केवल नयनाभिराम रूप देखना चाहता हूँ। इससे विशेष कुछ नही।

मगल—यह कैसा कुतूहल !—छि !

वीरेन्द्र—तुम्हे मेरी सौगध पाँच मिनट म अधिक नही लगेगा, हम लौट आवेंगे। चलो, तुम्हे अवश्य चलना हागा। मगल, क्या तुम जानत हा, मैं तुम्हे क्या ले चल रहा हूँ ?

मगल—क्यो ?

वीरेन्द्र—जिसमे तुम्हार भय स मै विचलित न हो सकू ! मैं उस दखूगा अवश्य, परन्तु आग के डर से बचाने वाला साथ रहना चाहिए। मित्र, तुमको मेरी रक्षा क लिए साथ चलना ही चाहिए।

मगल न कुछ मोचकर कहा—चलो। परन्तु क्रोध स उसकी आँख लाल हो गई थी।

वह वीरन्द्र के साथ चल पडा। सीढिया स ऊपर कमरे म दोना जा पहुचे। एक षोडशी युवती सजे हुए कमर म बैठी थी। पहाडी रूखा सौंदय उसक गेहुएँ रग म ओत-प्रोत ह। सब भरे हुए अगो म रक्त का वेगवान सचार कहता ह कि इसका तारुण्य इसस कभी न छूटेगा। बीच स मिली हुई घनी भौहो क नीचे न जाने कितना अन्धकार खेल रहा था ! सहज नुकीली नाक उसकी आकृति की स्वतन्त्र सत्ता बनाये थी। नीचे सिर किये हुए उसने जब इन लोगो को दखा, तब उस समय उसकी बडी-बडी आँखा क कोन और भी खिचे हुए जान पडे। घने काले बालो के गुच्छे दोनो कानो के पास क कन्धो पर लटक रहे थ। बाये कपोल पर एक तिल उसक सरल सौन्दय को बाका बनाने के लिए पर्याप्त था। शिक्षा के अनुसार उसने सलाम किया परन्तु यह खुल गया कि अन्यमनस्क रहना उसकी स्वाभाविकता थी।

मगलदेव ने दखा कि यह तो वेश्या का-सा रूप नही है।

वीरन्द्र ने पूछा—आपका नाम ?

उसके 'गुलनार' कहने म कोई बनावट न थी।

सहसा मगल चौंक उठा उसने पूछा—क्या हमने तुमको कही और भी देखा है ?

यह अनहोनी बात नही है।

कई महीने हुए, काशी में ग्रहण की रात को जब मैं स्वयं-सेवक का काम कर रहा था, मुझे स्मरण होता है, जैसे तुम्हें देखा हो, परन्तु तुम तो मुसलमानी हो।

हो सकता है कि आपने मुझे देखा हो, परन्तु उस बात को जाने दीजिए अभी अम्मा आ रही हैं।

मंगलदेव कुछ कहना ही चाहता था कि अम्मा आ गई। वह विलासजीर्ण दुष्ट मुखाकृति देखते ही घृणा होती थी।

अम्मा ने कहा—आइये बाबू साहब, कहिये क्या हुक्म है?

कुछ नहीं, गुलनार को देखने के लिए चला आया था—कहकर वीरेन्द्र मुस्करा दिया।

आपकी लौंडी है, अभी तो तालीम भी अच्छी तरह नहीं लेती, क्या कहूँ बाबू साहब, बड़ी वादी है। इसकी किसी बात पर ध्यान न दीजिएगा।—अम्मा ने कहा।

नहीं नहीं, इसकी चिन्ता न कीजिए। हम लोग तो परदेशी हैं। यहाँ घूम रहे थे, तब तक इनकी मनमोहिनी छवि दिखाई पड़ी, चले आये।—वीरेन्द्र ने कहा।

अम्मा ने भीतर की ओर देखकर पुकारते हुए कहा—अरे इलायची ले आ क्या कर रहा है?

अभी आया। कहता हुआ एक मुसलमान युवक चाँदी की थाली में पान-इलायची ले आया। वीरेन्द्र ने इलायची ले ली और उसमें दो रुपये रख दिये। फिर मंगलदेव की ओर देखकर कहा—चलो भाई, गाड़ी का भी समय देखना होगा, फिर कभी आया जायगा। प्रतिज्ञा भी पाँच मिनट की है।

अभी बैठिए भी, क्या आये और क्या चले—फिर सक्रोध गुलनार को देखती हुई अम्मा कहने लगी—क्या कोई बैठे और क्या आये! तुम्हें तो कुछ बोलना ही नहीं है और न कुछ हँसी-खुशी की बात ही करती हैं, कोई क्या ठहरे?—अम्मा की त्योरियाँ बहुत ही चढ़ गई थीं। गुलनार सिर झुकाये चुप थी।

मंगलदेव जो अब तक चुप था, बोला—मालूम होता है, आप दोनों में बनती बहुत कम है, इसका क्या कारण है?

गुलनार कुछ बोला ही चाहती थी कि अम्मा बीच ही में बोल उठी—अपने-अपने भाग्य होते हैं बाबू साहब, एक ही बेटा, इतने दुलार से पाला-पोसा, फिर भी न जाने क्यों रूठा ही रहता है—कहती हुई बुढ़िया के दो बूँद आँसू भी निकल पड़े। गुलनार को बार-बार शक्ति जैसे बन्दी होकर तड़पता रहा था। मंगलदेव ने

कुछ-कुछ समझा। कुछ उसे सन्देह हुआ। परन्तु वह सम्भलकर बोला—सब आप ही ठीक हो जायगा, अभी अल्हड़पन है। अच्छा फिर आऊँगा।

वीरेन्द्र और मंगलदेव उठे, सीढ़ी की ओर चले। गुलेनार ने झुककर सलाम किया, परन्तु उसकी आँखें पलकों का पल्ला पसारकर करुणा की भीख माँग रही थी। मंगलदेव ने—चरित्रवान मंगलदेव ने—जाने क्या एक रहस्यपूर्ण संकेत किया। गुलेनार हँस पड़ी, दोनों नीचे उतर गये।

मंगल! तुमने तो बड़े लम्बे हाथ-पैर निकाले—यहाँ तो आते ही न थे, कहाँ ये हरकतें! —वीरेन्द्र ने कहा।

वीरेन्द्र! तुम मुझे जानते हो, परन्तु मैं सचमुच यहाँ आकर फँस गया। यही तो आश्चर्य की बात है।

आश्चर्य काहे का, यही तो काजल की कोठरी है।

हुआ करे, चलो ब्यालू करके सो रहें। सवेरे की ट्रेन पकड़नी होगी।

नहीं वीरेन्द्र, मैंने तो कैनिंग कालेज में नाम लिखाने का निश्चय-सा कर लिया है, कल मैं नहीं चल सकता।—मंगल ने गंभीरता से कहा।

वीरेन्द्र जैसे आश्चर्य-चकित हो गया। उसने कहा—मंगल, तुम्हारा इसमें कोई गूढ़ उद्देश्य होगा। मुझे तुम्हारे ऊपर इतना विश्वास है कि मैं कभी स्वप्न में भी नहीं सोच सकता कि तुम्हारा पद-स्खलन होगा, परन्तु फिर भी मैं कम्पित हो रहा हूँ।

सिर नीचा किये मंगल ने कहा—और मैं तुम्हारे विश्वास की परीक्षा करूँगा। तुम तो बचकर निकल आये, परन्तु गुलेनार को बचाना होगा। वीरेन्द्र मैं निश्चयपूर्वक कहता हूँ कि यह वही बालिका है, जिसके सम्बन्ध में मैं ग्रहण के दिनों में तुमसे कहता था कि मेरे देखते ही एक बालिका कुटनी के चंगुल में फँस गई और मैं कुछ न कर सका।

ऐसी बहुत-सी अभागिनी इस देश में हैं। फिर कहाँ-कहाँ तुम देखोगे?

जहाँ-जहाँ देख सकूँगा।

सावधान!

मंगल चुप रहा।

वीरेन्द्र जानता था कि मंगल बड़ा हठी है, यदि इस समय मैं इस घटना को बहुत प्रधानता न दूँ, तो सम्भव है कि वह इस कार्य से विरक्त हो जाय, अन्यथा मंगल अवश्य वही करेगा, जिससे वह रोका जाय, अतएव वह भी चुप रहा। सामने ताँगा दिखाई दिया। उस पर दोनों बैठ गये।

दूसरे दिन सब को गाड़ी पर बैठाकर अपने एक आवश्यक काम का बहाना

कर मगल स्वय लखनऊ रह गया। कैनिंग कालेज के छात्रो को यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई कि मगल वही पढेगा। उसके लिए स्थान का भी प्रबन्ध हो गया। मगल वही रहने लगा।

दो दिन बाद मगल अमीनाबाद की ओर गया। वह पार्क की हरियाली म घूम रहा था कि उसे अम्मा दिखलाई पडी और वही पहले बोली—बाबू साहब, आप तो फिर नही आये।

मगल दुविधा मे पड गया। उसकी इच्छा हुई कि कुछ उत्तर न द। फिर सोचा—अरे मगल, तू तो इसीलिए यहाँ रह गया ह! उसने कहा—हाँ-हाँ, कुछ काम मे फँस गया था। आज मै अवश्य आता, पर क्या करूँ, मेरे एक मित्र साथ मे है। वह मेरा आना-जाना नही जानते। यदि वे चले गये, तो आज ही आऊँगा, नही तो फिर किसी दिन।

नही नही, आपको गुलेनार की कसम, चलिए वह ता उसी दिन से बडी उदास रहती है।

अच्छा देखो, वे चले जाये तो आता हूँ।

आप मेरे साथ चलिए, फिर जब आइएगा, ता उनसे कह दीजिएगा—मैं तो तुम्ही को ढूँढता रहा, इसीलिए इतनी देर हुई, और तब तक तो दो बाते करके चले आयेंगे।

कर्त्तव्यनिष्ठ मगल ने विचार किया—ठीक तो हे। उसने कहा—अच्छी बात ह।

मगल गुलेनार की अम्मा के पीछे-पीछे चला।

गुलेनार बैठी हुई पान लगा रही थी। मगलदेव को देखते ही मुस्कराई; पर जब उसके पीछे अम्मा की मूर्ति दिखलाई पडी, वह जैसे भयभीत हो गई। अम्मा ने कहा—बाबू साहब बहुत कहने-सुनने से आये है, इनसे बातें करो। मैं अभी मीर साहब से मिलकर आती हूँ, देखूँ क्यों बुलाया है।

गुलेनार ने कहा—कब तक आओगी ?

आध घण्टे मे—कहती हुई अम्मा सीढियाँ उतरने लगी।

गुलेनार ने सिर नीचे किये हुए पूछा—आपके लिए तो पान बाजार मे मँगवाना होगा न ?

मगल ने कहा—उसकी आवश्यकता नही, मैं तो केवल अपना कुतूहल मिटाने आया हूँ—क्या सचमुच तुम वही हो, जिसे मैंने ग्रहण की रात काशी मे देखा था ?

जब आपको केवल पूछना ही है तो मैं क्यों बताऊँ ? जब आप जान जायेंगे कि वही हूँ, तो फिर आपको आने की कोई आवश्यकता ही न रह जायगी।

मंगल ने सोचा, संसार कितनी शीघ्रता से मनुष्य को चतुर बना देता है।—अब तो पूछने का काम भी नहीं है।

क्यों ?

आवश्यकता ने सब परदा खोल दिया, तुम मुसलमानी कदापि नहीं हो।

परन्तु अब मैं मुसलमानी हूँ।

हाँ, यही तो एक भयानक बात है।

और यदि मैं न होऊँ ?

तब की तो बात ही दूसरी है।

अच्छी तो मैं वही हूँ, जिसका आपको भ्रम है।

तुम किस प्रकार यहाँ आ गई हो।

वह बड़ी कथा है। यह कह गुलेनार ने लम्बी साँस ली। उसकी आँख आँसू से भर गईं।

क्या मैं सुन सकता हूँ ?

क्या नहीं, पर सुनकर क्या कीजिएगा। अब इतना ही समझ लीजिए कि मैं एक मुसलमानी वेश्या हूँ।

नहीं गुलेनार, तुम्हारा नाम क्या है, सच-सच बताओ।

मेरा नाम तारा है। मैं हरद्वार की रहने वाली हूँ। अपने पिता के साथ काशी में ग्रहण नहाने गई थी। बड़ी कठिनता से मेरा विवाह ठीक हो गया था। काशी से लौटते ही मैं एक कुल की स्वामिनी बनती, परन्तु दुर्भाग्य।—उसकी भरी आँखों से आँसू गिरने लगे।

धीरज धरो तारा। अच्छा यह तो बताओ, यहाँ कैसी कटती है ?

मेरा भगवान् जानता है कि कैसी कटती है। दुष्टों के चंगुल में पड़कर मेरा आहार-व्यवहार तो नष्ट हो चुका, केवल सर्वनाश होना बाकी है। उसमें कारण है अम्मा का लोभ। और मेरा कुछ आनेवालों से ऐसा व्यवहार भी होता है कि अभी वह जितना रुपया चाहती है, नहीं मिलता। बस इसी प्रकार बची जा रही हूँ, परन्तु कितने दिन। —गुलेनार सिसकने लगी।

मंगलदेव ने कहा—तारा, तुम यहाँ से क्यों नहीं निकल भागती ?

निकलकर कहाँ जाऊँ ?

मंगलदेव चुप रह गया। वह सोचने लगा—मूढ़ समाज इसे शरण देगा ?

गुलेनार ने पूछा—चुप क्यो हो गये, आप ही वताइए, निकलकर कहा जाऊँ और क्या करूँ ?

अपने माता पिता के पास। मैं पहुँचा दूँगा, इतना मेरा काम है।

वडी भोली दृष्टि मे देखते हुए गुलेनार ने कहा—आप जहाँ कहे मैं चल सकती हूँ।

अच्छा पहले यह तो वताओ कि कैसे तुम काशी से यहाँ पहुँच गई हो ?

किसी दूसरे दिन सुनाऊँगी, अम्मा आती होगी।

अच्छा, तो आज मै जाता हूँ।

जाइए पर इस दुखिया का ध्यान रखिए। हा अपना पता तो वताइए मुझे कोई अवसर निकलने का मिला, तो मै कैसे सूचित करूँगी ?

मगल न एक चिट पर पता लिखकर दे दिया, और कहा—मैं भी प्रवन्ध करता रहूँगा। जब अवसर मिले, लिखना, पर एक दिन पहले।

अम्मा के पैरो का शब्द सीढियो पर सुनाई पडा और मगल उठ खडा हुआ। उसके आते ही उसने पाच रुपये हाथ पर धर दिये।

अम्मा न कहा—वावू साहव, चले कहाँ ! वैठिए भी।

नही, फिर किसी दिन आऊगा, तुम्हारी वेगम साहवा तो कुछ वोलती ही नही, इनके पास वैठकर क्या करूँगा।

मगल चला गया। अम्मा क्रोध मे दाँत पीसती हुई गुलेनार को घूरने लगी।

दूसरे-तीसरे मगल गुलेनार के यहाँ जाने लगा, परन्तु वह वहुत सावधान रहता। एक दुश्चरित युवक इन्ही दिनो गुलनार के यहाँ आता। कभी-कभी मगल से उससे मुठभेड हो जाती, परन्तु मगल ऐसे कँडे से वात करता कि वह मान गया। अम्मा न अपने स्वार्थ-साधन के लिए इन दोनो म प्रतिद्वन्द्विता चला दी। युवक शरीर म हृष्ट पुष्ट कसरती था। उसके ऊपर के होठ मसूडो के ऊपर ही रह गये थे। दाँतो की श्रेणी सदैव खुली रहती, उसकी लम्बी नाक और लाल आँख वडी डरावनी और रोवीली थी, परन्तु मगल की मुस्कराहट पर वह भौचक-सा रह जाता और अपने व्यवहार स मगल को मित्र बनाये रखने की चेष्टा किया करता। गुलेनार अम्मा को यह दिखलाती कि वह मगल म वहुत वोलना नही चाहती।

एक दिन दोनो गुलेनार के पास वैठे थे। युवक ने, जो अभी अपने एक मित्र के साथ दूसरी वेश्या के यहाँ से आया था—अपना डीग हाँकते हुए मित्र के लिए कुछ अपशब्द कहे, फिर उसने मगल स कहा—वह न जाने क्या उस चुडैल के

यहाँ जाता है। और क्यो कुरूप स्त्रियाँ वेश्या बनती हैं, जब उन्ह मालूम है कि उन्हें तो रूप क बाजार म बैठना है।—फिर अपनी रसिकता दिखाते हुए हँसने लगा।

परन्तु मैं तो आज तक यही नही समझता कि सुन्दरी स्त्रियाँ क्या वेश्या बने। ससार का सबस सुन्दर जीव क्या सबसे बुरा काम करे ?—कहकर मगल ने सोचा कि यह स्कूल की विवाद-सभा नही है। वह अपनी मूर्खता पर चुप हा गया। युवक हँस पडा। अम्मा अपनी जीविका को बहुत बुरा सुनकर तन गई। गुलेनार सिर नीचा किये हँस रही थी। अम्मा ने कहा—फिर ऐसी जगह बाबू साहब आते ही क्या हैं ?

मगल न उत्तेजित होकर कहा—ठीक है यह मरी मूखता है ?

युवक अम्मा का लेकर बात करने लगा, वह प्रसन्न हुआ कि प्रतिद्वन्द्वी अपना ही ठोकर से गिरा, धक्का दन की आवश्यकता ही न पडी। मगल की ओर देखकर धीरे स गुलेनार न कहा—अच्छा हुआ, पर जल्द—।

मगल उठा और सीढियाँ उतर आया।

शाह मीना की समाधि पर गायका की भीड है। सावन की हरियाली क्षेत्र पर और नील मेघमाला आकाश के अचल म फैल रही ह। पवन के आन्दोलन से बिजली के आलोक म बादलो का हटना-बढना गगन-समुद्र म तरगा का सृजन कर रहा ह। कभी फूही पड जाती है, समीर का झाका गायको को उन्मत्त बना देता है। उनकी इकहरी तान तिहरी हो जाती है। सुनन वाले झूमने लगते है। वेश्याओ का दर्शका के लिए आवपक समारोह है। एक घण्टे रात बीत गई है।

अब रसिको के समाज म हलचल मची, बूद लगातार पडन लगी। लाग तितर-बितर होने लगे। गुलेनार, युवक और अम्मा क साथ आई थी। वह युवक से बाते करने लगी। अम्मा भीड म अलग हो गई, दोना और आगे बढ गये। सहसा गुलेनार ने कहा—आह! मेरे पाव म चटक हा गई, अब मैं एक पग चल नही सकती, डोली ल आओ, वह बैठ गई। युवक डोली लेने चला।

गुलनार न इधर-उधर दखा, तीन तालिया बजी। मगल आ गया, उसन कहा—तागा ठीक है।

गुलनार ने कहा—किधर ? चलो!—दोनो हाथ पकडकर बढे। चक्कर दकर दोना बाहर आ गये तागे पर बैठे और वह तागे वाला कौवालो की तान—'जिस जिस को दिया चाहे' को दुहराता हुआ चाबुक लगाता घोडे को उडा

ल चला। चारवाग स्टेशन पर दहरादून जान वाली गाडी खडी थी। ताँगे वाल को पुरस्कार देकर मगल सीधे गाडी म जाकर बैठ गया। सीटी वजी, सिगनल हुआ, गाडी खुल गई।

तारा, थोडा भी विलम्ब स गाडी न मिलती।

ठीक समय से पानी आ गया। हा, यह तो कहो, मेरा पत्र कब मिला ?

आज नौ बजे। मै सामान ठीक करके सध्या की बाट दख रहा था। टिकट ल लिये थे और ठीक समय पर तुमस भेंट हुई।

कोई पूछे तो क्या कहा जायगा ?

अपन वेश्यापन के दा-तीन आभूषण उतार दा, और किसी क पूछने पर कहना—अपन पिता के पास जा रही हूँ, ठीक पता बताना।

तारा ने फुरती से वैसा ही किया। वह एक साधारण गृहस्थ बालिका वन गई।

वहा पूरा एकान्त था, दूसर यात्री न थे। दहरा-एक्सप्रेस वेग स जा रही थी।

मगल न कहा—तुम्हे सूझी अच्छी। उस तुम्हारी दुष्टा अम्मा को यही विश्वास होगा कि कोई दूसरा ही ल गया। हमारे पास तक तो उसका सदह भी न पहुँचेगा।

भगवान् की दया से नरक स छुटकारा मिला। आह कैसी नीच कल्पनाआ स हृदय भरा जाता था—सन्ध्या मे बैठकर मनुष्य-समाज की अशुभ कामना करना, उसे नरक क पथ की आर चलन का सकेत बताना, फिर उसी स अपना जीविका।

तारा, फिर भी तुमन अपन धर्म की रक्षा की। आश्चर्य।

यही कभी-कभी मैं भी विचारती हूँ कि ससार दूर स, नगर, जनपद सौध-श्रेणी, राजमार्ग और अट्टालिकाआ स जितना शोभन दिखाई पडता है, वैसा ही सरल और सुन्दर भीतर नही है। जिस दिन मैं अपने पिता स अलग हुइ, एस-ऐसे निर्लज्ज और नीच मनावृतिया के मनुष्या स सामना हुआ, जिन्ह पशु भी कहना उन्ह महिमान्वित करना है।

हाँ, हाँ, यह तो कहो, तुम काशी स लखनऊ कैस आ गई ?

तुम्हारे सामन जिस दुष्टा ने मुझे फँसाया, वह स्त्रिया का व्यापार करने वाली एक सस्था की कुटनी थी। मुझे ले जाकर उन सवा न एक घर म रक्खा, जिसम मेरी ही जैसी कई अभागिने थी, परन्तु उनम सब मरो जैसी रोन वाली न थी। बहुत-सी स्वेच्छा से आई थीं और कितनी ही कलक लगन पर अपन घर

वालो स ही मेले म छोड दी गई थी । मैं अलग बैठी रोती थी । उन्ही म स कई मुझे हँसाने का उद्योग करती, कोई समझाती, कोई झिडकियाँ सुनाती और कोई मेरी मनोवृत्ति के कारण मुझे बनाती । मैं चुप होकर सुना करती, परन्तु कोई पथ निकलने का न था । सब प्रबन्ध ठीक हो गया था, हम लोग पजाब भेजी जाने वाली थी । रेल पर बैठन का समय हुआ मैं सिसक रही थी । स्टेशन के विश्राम-गृह म एक भीड-सी लग रही थी, परन्तु मुझे कोई न पूछता था । यही दुष्टा अम्मा वहाँ आई और बडे दुलार स बोली—चल बेटी, मैं तुझे तरी माँ के पास पहुँचा दूँगी । मैंने उन सबा को ठीक कर लिया है— मैं प्रसन्न हो गई । मैं क्या जानती थी कि मैं चूल्हे स निकलकर भाड म जाऊँगी । बात भी कुछ ऐसी थी । मुझे उपद्रव मचाते देखकर उन लागो न अम्मा स कुछ रुपया लेकर मुझ उसक साथ कर दिया, मैं लखनऊ पहुँची ।

हाँ, हाँ, ठीक ह, मैंने भी सुना ह कि पजाब म स्त्रिया की कमी ह, इसी-लिए और प्रान्ता स स्त्रियाँ वहाँ भेजी जाती ह जा अच्छे दामा पर बिकती हैं । क्या तुम भी उन्ही के चगुल म ?

हाँ, दुर्भाग्य स ।

स्टेशन पर गाडी रुक गई । रजनी की गहरी नीलिमा म नभ क तारे चमक रहे थे । तारा उन्ह खिडकी स दखने लगी । इतन म उस गाडी म एक पुरुष यात्री न प्रवेश किया । तारा घूघट निकालकर बैठ गई । और वह पुरुष अपना गट्ठर रखकर साने का प्रबन्ध करन लगा । दा-चार क्षण म गाडी चली । तारा ने घूमकर दखा कि वह पुरुष मुँह फेर कर सा गया है, परन्तु अभी जग रहन की सभावना थी । बाते आरम्भ न हुईं । कुछ दर तक दोना चुपचाप थे । फिर झपकी आन लगी । तारा ऊँघने लगी । मगल भी झपकी लन लगा । गभीर रजनी क अचल स उस चलती हुइ गाडी पर पखा चल रहा था । आमन-सामन बैठे हुए मगल और तारा निद्रावश होकर झूम रह थे । मगल का सिर टकराया । उसकी आँखे खुली । तारा का घूंघट उलट गया था । दखा, ता गल का कुछ अश, कपोल, पाली और निद्रानिमीलित पद्मपलाशलोचन, जिस पर भौहा की काली सेना का पहरा था । वह न जाने क्यो उसे दखने लगा । सहसा गाडी रुकी और धक्का लगा । तारा मगलदव के अक म आ गई । मगल ने उसे सम्हाल लिया । वह आँखे खोलती हुई मुस्कुराई और फिर सहारे से टिककर सोने लगी । यात्री, जा अभी दूसरे स्टेशन पर चढा था, सोते-सोते वेग से उठ पडा और सिर खिडकी से बाहर निकालकर वमन करने लगा । मगल स्वयसवक था । उसन जाकर उस पकडा और तारा स कहा—"लोटे मे पानी होगा, दो मुझे ।"

—तारा न जल दिया, मगल न यात्री का मुँह धुलाया। वह आँखा को जल स ठढक पहुँचात हुए मगल क प्रति कृतज्ञता प्रकट करना ही चाहता था कि तारा और उसकी आँख मिल गईं। तारा पर पकडकर रोन लगी। यात्री ने निदयता स झिटकार दिया। मगन अवाक था।

वाबूजी मेरा क्या अपराध ? म ता आप ही लोगा को खाज रही थी।

अभागिनी ! खाज रही थी मुझे या किसी और को—

किसको बाबूजी ? बिलखते हुए तारा ने कहा।

जो पास बैठा है। क्या मुझे खोजना चाहती ता एक पोस्टकार्ड न डाल देती ? कलकिती ! दुष्टा ! मुझे जल पिला दिया, प्रायश्चित्त करना पडेगा !

अब मगन की समझ म आया कि वह यात्री तारा का पिता है परन्तु उस विश्वास न हुआ कि यही तारा का पिता है। क्या पिता भी इतना निदय हा सकता है ? उस अपन ऊपर किय गय व्यग का भी वडा दुख हुआ, परन्तु क्या करे इस कठोर अपमान को तारा का भविष्य साचकर वह पी गया। उसन धीरे-स सिसकती हुई तारा स पूछा—क्या यही तुम्हारे पिता है ?

हा, परन्तु मैं अब क्या करूँ। बाबूजी मरी मा हाती तो इतनी कठारता न करती। मै उन्ही को गोद म जाऊँगी।—तारा फूट फूट कर रो रही थी।

तेरी नीचता स दुखी हाकर महीनो हुआ, वह मर गई, तू न मरी —कालिख पोतन के निए जीती रही ? —यात्री न कहा।

मगल से न रहा गया उसन कहा—महाशय, आपका क्राध व्यथ है। यह स्त्री कुचक्रिया के फेर म पड गइ थी परन्तु इसकी पवित्रता म कोई अतर नही पडा, वडी कठिनता स इसका उद्धार करके मै इस आप ही के पास पहुँचान के लिए जाता था। भाग्य से आप यही मिल गये।

भाग्य नही, दुर्भाग्य स !—घृणा और क्रोध से यात्री क मुँह का रग वदल रहा था।

तब यह किसकी शरण म जायगी ? अभागिनी की कौन रक्षा करगा ? मे आपको प्रमाण दूगा कि तारा निरपराधिनी है। आप इस—बीच ही म यात्रा न रोककर कहा—मूर्ख युवक ! ऐसी स्वैरिणी को कौन गृहस्थ अपनी कन्या कहकर सिर नीचा करेगा। तुम्हारे-जैस इसके वहुत-स सरक्षक मिलगे। बस अब मुझे स कुछ न कहो—यात्री का दम्भ उसक अधरो म स्फुरित हा रहा था। तारा अधीर हाकर रो रही थी और युवक इस कठोर उत्तर को अपने मन म ताल रहा था।

गाडी बीच के छाटे स्टेशन पर नही रुकी। स्टेशन की लालटेन जल रही थी। तारा न देखा, एक सजा सजाया घर भागकर छिप गया। तीनो चुप रह।

तारा क्रोध और ग्लानि से फूल रही थी। निराशा और अन्धकार में विलीन हो रही थी। गाड़ी दूसरे स्टेशन पर रुकी। सहसा यात्री उतर गया।

मगलदेव कर्त्तव्य-चिन्ता मे व्यस्त था। तारा भविष्य की कल्पना कर रही थी। गाडी अपनी धुन म गम्भीर तम का भेदन करती हुई चलने लगी।

३

हरद्वार की बस्ती म अनग गगा के तट पर एक छोटा-सा उपवन ह। दो-तीन कमरे और दालाना का उसी स लगा हुआ छोटा-सा घर है। दालान म बैठी हुई तारा माग सवार रही है। अपनी दुबली-पतली लम्बी काया की छाया प्रभात क कोमल आतप म डालती हुइ तारा एक कुलवधू क समान दिखाइ पडता है। बाला स लपटकर बँधा हुआ जूडा, छलछलाइ आख, नमित आर ढीली अग-लता, पतली-पतली लम्बी उँगलियाँ, जैस चित्र सजाव होकर काम कर रहा है। पखवारा म ही तारा क कपोला क ऊपर और भवा क नीच श्याम-मण्डल पड गया ह। वह काम करत हुए भी, जैस अन्यमनस्क-सी ह। अन्यमनस्क रहना हो उसकी स्वाभाविकता है। आज-कल उसकी झुकी हुई पलक काली पुतलियां का छिपाये रखती है। आख सकत स कहती ह कि हम कुछ न कहो, नही बरसन लगगी।

पास हा तून की छाया म पत्थर पर बैठा हुआ मगल एक पत्र लिख रहा है। पत्र समाप्त करक उसन तारा की आर दखा और पूछा—मैं पत्र छाडन जा रहा हूँ, काई काम बाजार का हो, ता करता आऊँ।

तारा न पूर्ण गृहिणी भाव स कहा—थाडा कडवा तल चाहिए, और सब वस्तुएँ है। मगलदव जान के निए उठ खडा हुआ। तारा न फिर पूछा—आर नौकरी का क्या हुआ ?

नौकरी मिल गइ ह। उसी की स्वीकृति-सूचना लिखकर पाठशाला क अधिकारी के पास भेज रहा हूँ। आर्य-समाज की पाठशाला म व्यायाम-शिक्षक का काम करूँगा।

वतन ता थाडा ही मिलगा। यदि मुझे भी काई काम मिल जाय, ता दखना, मै तुम्हारा हाथ बँटा लूगी।

मगलदव न हँस दिया आर कहा—स्त्रियाँ बहुत शीघ्र उत्साहित हा जाती

है और उतने ही अधिक परिमाण मे निराशावादिनी भी होती हैं। भला मैं तो पहले टिक जाऊँ ! फिर तुम्हारी दखी जायगी।—मगलदेव चला गया। तारा ने उस एकान्त उपवन की ओर देखा—शरद का निरभ्र आकाश छोटे-स उपवन पर अपन उज्ज्वल आतप क मिस हँस रहा था। तारा सोचन लगी—

यहाँ से थोडी दूर पर मेरा पितृ-गृह है, पर मैं वहाँ नही जा सकती। पिता समाज और धर्म क भय म त्रस्त है। आह, निष्ठुर पिता ! अब उनकी भी पहली-सी आय नही, महन्तजी प्राय बाहर, विशेषकर काशी रहा करत है। मठ की अवस्था बिगड गई है। मगलदव—एक अपरिचित युवक—कवल सत्साहस क बल पर मेरा पालन कर रहा है। इस दासवृत्ति स जीवन बितान स क्या वह बुरा था, जिस मै छोड कर आई। किस आवषण न यह उत्साह दिलाया और अब वह क्या हुआ, जो मेरा मन ग्लानि का अनुभव करता है, परतन्त्रता स। नही, मै भी स्वावलम्बिनी बनूँगी, परन्तु मगल ! वह निरीह निष्पाप हृदय !

तारा और मगल—दोना म मन क सकल्प-विकल्प चल रह थ। समय अपन मार्ग चल रहा था। दिन पीछे छूटते जात थे। मगल की नौकरी लग गई। तारा गृहस्थी जमान लगी।

धीर-धीर मगल क बहुत स आय मित्र बन गय। और कभी-कभी दवियाँ भी तारा स मिलन लगी। आवश्यकता स विवश होकर मगल और तारा न आय-समाज का साथ दिया था। मगल स्वतत्र विचार का युवक था। उसक धम-सबधी विचार निराल थ, परन्तु बाहर स वह पूर्ण आर्य-समाजी था। तारा की सामाजिकता बनान क लिए उस दूसरा मार्ग न था।

एक दिन कइ मित्रा के अनुरोध स उसने अपन यहाँ प्रीतिभोज दिया। श्रीमती प्रकाशदवी, सुभद्रा, अम्बालिका, पीलामी आदि नामाकित कई दविया, अभिमन्यु, वेदस्वरूप, ज्ञानदत्त और वरुणप्रिय, भीष्मव्रत आदि कई आर्यसभ्य एकत्रित हुए।

वृक्ष के नीचे कुर्सियाँ पडी थी। सब बैठे थ। बातचीत हो रही थी। तारा अतिथिया के स्वागत म लगी थी। भाजन बनकर प्रस्तुत था। ज्ञानदत्त ने कहा—अभी ब्रह्मचारीजी नही आय !

अरुण—आते ही होग।

वेद—तब तक हम लोग सध्या कर ल।

इन्द्र—यह प्रस्ताव ठीक ह, परन्तु लीजिए वह ब्रह्मचारीजी आ रहे है।

एक घुटनो स नीचा लबा कुरता डाल, लम्बे बाल और छोटी दाढी वाले गौरवर्ण युवक को दखते ही नमस्त की धूम मच गई। ब्रह्मचारीजी बैठे। मगल-

देव का परिचय देते हुए वेदस्वरूप न कहा—आपका ही शुभ नाम मगलदेव ह ! इन्हान ही इन देवी का यवना के चगुल स उद्धार किया हे !—तारा न नमस्ते किया, ब्रह्मचारी न पहल हँसकर कहा—सो ता हाना चाहिए, ऐस ही नवयुवका स भारतवप को आशा है । इस सत्साहस क लिए मैं धन्यवाद दता हूँ । आप समाज म कब स प्रविष्ट हुए है ?

अभी ता मैं मभ्या म नही हूँ—मगल न कहा ।

बहुत शीघ्र हा जाइए, बिना भित्ति क कोई घर नही टिकता और बिना नीव की कोई भित्ति नही । उसी प्रकार सद्विचार क बिना मनुष्य की स्थिति नही और धम-सस्कारा क बिना सद्विचार टिकाऊ नहीं हात । इसके सम्बन्ध म मै विशेष रूप स फिर कहूँगा । आइए हम लोग सन्ध्या-वन्दन कर ल ।

सन्ध्या आर प्रार्थना क समय मगलदव कवल चुपचाप वैठा रहा ।

थालिया परसी गईं । भाजन करन क लिए लाग आसन पर बैठ । वद-स्वरूप न कहना आरम्भ किया—हमारी जाति म धर्म क प्रति इतना उदासीनता का कारण ह एक कल्पित ज्ञान, जो इस दश क प्रत्यक प्राणी क लिए मुलभ हो गया है । वस्तुत उन्ह ज्ञानाभाव होता ह और व अपन साधारण नित्यकम स वचित हाकर अपनी आध्यात्मिक उन्नति करन म भी असमर्थ होत है ।

ज्ञानदत्त—इसालिए आर्यों का कमवाद ससार के लिए विलक्षण कल्याण-दायक ह । ईश्वर क प्रति विश्वास करत हुए भी उस स्वावलम्बन का पाठ पढाता ह । यह ऋपिया का दिव्य अनुसधान ह ।

ब्रह्मचारी न कहा—ता अब क्या विलम्ब ह, वात भा चला करेगी ।

मगलदव न कहा—हाँ, हा, आरम्भ कीजिए ।

ब्रह्मचारी न गभीर स्वर स प्रणवाद किया और दन्त-अन्न का युद्ध प्रारम्भ हुआ ।

मगलदव न कहा—परन्तु ससार की अभाव-आवश्यकताआ का दखकर यह कहना पडता है कि कमवाद का सृजन करके हिन्दू जाति न अपन लिए असन्तोप आर दौड-धूप, आशा और सकल्प का फन्दा बना लिया है ।

कदापि नही, एसा समझना भ्रम है महाशयजी ! मनुष्या का पाप पुण्य की सीमा म रखने क लिए इसस बढकर कोई उपाय जगत् को नही मिला !—सुभद्रा न कहा ।

श्रीमती ! मैं पाप-पुण्य की परिभाषा नही समझता, परन्तु यह कहूँगा कि मुसलमान-धम इस आर बडा दृढ है । वह सम्पूर्ण निराशावादी होत हुए, भौतिक कुल शक्तिया पर अविश्वास करत हुए, कवल ईश्वर की अनुकम्पा पर अपन का

निर्भर करता है। इसीलिए उनम इतनी दृढ़ता होती है। उन्ह विश्वाम होता है कि मनुष्य कुछ नही कर सकता—विना परमात्मा की आज्ञा क। और कवल इसी एक विश्वास क कारण वे ससार म सतुष्ट हैं।

परसनेवाल ने कहा—मूँग का हलवा ले आऊँ। खीर म ता अभी कुछ विलम्ब है।

ब्रह्मचारी न कहा—भाई हम जीवन का मुख के अच्छे उपकरण ढूंढ़न म नही बिताना चाहत। जा कुछ प्राप्त है, उसी म जीवन सुखी हाकर बीते, इसी की चेष्टा करते ह। इसीलिए जा प्रस्तुत हो, ल आओ।

सब लोग हँस पड।

फिर ब्रह्मचारी न कहा—महाशयजी आपन एक वड धम का बात कही ह। म उसका कुछ निराकरण कर दना चाहता हूँ। मुसलमान-धर्म निराशावादी हात हुए भी क्या इतना उन्नतिशील ह, इसका कारण तो आपन स्वय कहा है कि ईश्वर म विश्वास परन्तु इसक साथ उनकी सफलता का एक और भी रहस्य ह। वह ह उनकी नित्य-क्रिया की नियम-बद्धता, क्योंकि नियमित रूप स परमात्मा की कृपा का लाभ उठान क लिए प्राथना करनी आवश्यक है। मानव-स्वभाव दुर्बलताओ का सकलन ह, सत्कम विशष हान पात नही, क्योंकि नित्य-क्रियाओ द्वारा उनका अभ्यास नही। दूसरी आर ज्ञान की कमी स ईश्वर-निष्ठा भी नहीं। इसी अवस्था का देखते हुए ऋषि न यह सुगम आर्य-पथ बनाया ह। प्रार्थना नियमित रूप से करना, ईश्वर म विश्वास करना यही तो आर्य-समाज का सदेश है। यह स्वावलम्बपूर्ण है, यह दृढ विश्वास दिलाता ह कि हम सत्कम करेंगे, ता परमात्मा की कृपा अवश्य हागी।

सब लागा न उन्हे धन्यवाद दिया। ब्रह्मचारी न हँसकर सबका स्वागत किया। अब एक क्षणभर क लिए विवाद स्थगित हा गया और भोजन म सब लोग दत्तचित्त हुए। कुछ भी परसन क लिए जब पूछा जाता तो वे 'हूँ' कहत। कभी-कभी न लेने के लिए भी उसी का प्रयोग होता। परसनवाला घवरा जाता और भ्रम से उनकी थाली म कुछ-का-कुछ डाल देता, परन्तु वह सब यथास्थान पहुँच जाता। भोजन समाप्त करके सब लोग यथास्थान बैठे। तारा भी देवियो के साथ हिल-मिल गई।

चाँदनी निकल आई थी। समय सुन्दर था। ब्रह्मचारी न प्रसग छेडते हुए कहा—मगलदेवजा! आपन एक आर्य-बालिका का यवना स उद्धार करके वडा पुण्यकर्म किया है। इसके लिए आपको हम सब लाग बधाई देते है।

वेदस्वरूप—और इस उत्तम प्रीतिभोज के लिए धन्यवाद।

विदुषी सुभद्रा ने कहा—परमात्मा की कृपा से तारादेवी के शुभ पाणि-ग्रहण के अवसर पर हम लोग फिर इसी प्रकार सम्मिलित हो।

मगलदेव ने, जो अभी तक अपनी प्रशसा का बोझ सिर नीचे किये उठा रहा था, कहा—जिस दिन इतना हो जाय, उसी दिन मै अपने कर्त्तव्य का पूरा कर सकूँगा।

तारा सिर झुकाय रही। उसके मन म इन सामाजिको की सहानुभूति ने एक नई कल्पना उत्पन्न कर दी। वह एक क्षण भर के लिए अपने भविष्य स निश्चिन्त-सी हो गई।

उपवन के बाहर तक तारा और मगलदेव ने अतिथियो का पहुँचाया। ये लाग विदा हो गय। मगलदेव अपनी कोठरी म चला गया और तारा अपने कमरे म जाकर पलग पर लेट गई। उसन एक बार आकाश के सुकुमार शिशु को देखा। छोटे-से चन्द्र की हलकी चादनी म वृक्षा की परछाईं उसकी कल्पनाओ को रजित करन लगी। वह अपन उपवन का मूक दृश्य खुली आखा स देखन लगी। पलका म नीद न थी, मन म चैन न था, न जाने क्यो उसके हृदय म धडकन बढ रही थी। रजनी के नीरव ससार म वह उस साफ सुन रही थी। जगत जगते रात दो पहर स अधिक चली गई। चन्द्रिका के अस्त हो जान से उपवन म अँधेरा फैल गया। तारा उसी म आख गडाकर न जाने क्या देखा चाहती थी। उसका भूत, वर्तमान और भविष्य—तीनो अन्धकार म कभी छिपत और कभी ताराओ के रूप मे चमक उठते। वह एक बार अपनी उस वृत्ति को आवाहन करने की चेष्टा करन लगी, जिसकी शिक्षा उस वेश्यालय स मिली थी। उसने मगल का तब नही, परन्तु अब खीचना चाहा। रसीली कल्पनाओ से हृदय भर गया। रात बीत चली। उषा का आलोक प्राची म फैल रहा था। उसने खिडकी स झाककर देखा, तो उपवन म चहल-पहल थी। जूही की प्यालियो म मकरन्द-मदिरा पीकर मधुपो की टोलियाँ लडखडा रही थी, और दक्षिणपवन मौलसिरी के फूलो की कौडियाँ फेक रहा था। कमर म झुकी हुई अलबेली बेलियाँ नाच रही थी। मन की हार-जीत हो रही थी।

मगलदेव ने पुकारा—नमस्कार।

तारा न मुस्कराते हुए पलग पर बैठकर दोनो हाथ सिर से लगाते हुए कहा—नमस्कार।

मगल न देखा—कविता म वर्णित नायिका जैसे प्रभात की नैया पर बैठी है।

समय के साथ-साथ तारा अधिकाधिक गृहस्थी म चतुर और मगल परिश्रमी हाता जाता था। सवरे जलपान बनाकर तारा मगल का दती, समय पर भोजन और ब्यालू। मगल के वेतन मे मव प्रबन्ध हो जाता कुछ बचता न था। दोना का बचान की चिन्ता भी न थी परन्तु इन दिना एक बात नई हा चली। तारा मगल के अध्ययन म बाधा डालने लगी। वह प्रात उसक पास ही बैठ जाती। उसकी पुस्तका को उलटती यह प्रकट हो जाता कि तारा मगन स अधिक बात-चीत करना चाहती है और मगल कभी-कभी इसम घबरा उठता।

वसन्त का प्रारम्भ था पत्त दखत-ही-दखत एठते जात थ और पतझड क बीहड समीर स वे झडकर गिरते थ। दोपहर था। कभी-कभी बीच मे कोई पक्षी वृक्षो की शाखो म छिपा हुआ बोल उठता। फिर निस्तब्धता छा जाती। दिवस विरस हो चले थ। अँगडाइ लेकर तारा न वृक्ष के नीच बैठे हुए मगन मे कहा—आज मन नही लगता हे।

मरा भी मन उचाट हो रहा है। इच्छा होनी है कही घूम आऊँ परन्तु तुम्हारा ब्याह हुए बिना मैं कही जा नही मकता।

मै तो ब्याह न करूँगी।

क्यो ?

दिन तो बिताना ही ह कही नौकरी कर लूगी। ब्याह करन की क्या आवश्यकता है ?

नही तारा यह नही हो मकता। तुम्हारा निश्चित लक्ष्य बनाये बिना कर्त्तव्य मुझे धिक्कार देगा।

मरा लक्ष्य क्या ह अभी मैं स्वय स्थिर नही कर मकी।

मैं स्थिर करूँगा।

क्या यह भार अपन ऊपर लेत हा ? मुझे अपनी धारा म बहन दा।

मा नही हा सकगा।

मैं कभी-कभी विचारती हूँ कि छायाचित्र सदृश जनस्रोत म नियति क पवन की थपेडे लग रही है वह तरग-सकुल हाकर झूम रहा है। और मै एक तिनके के सदृश उमी म इधर-उधर वह रही हूँ। कभी भँवरो म चक्कर खाती हूँ कभी लहरा म नीचे ऊपर हाती हूँ। कही कूल-किनारा नही।—कहते-कहते तारा की आख छलछला उठी।

न घबडाओ तारा भगवान् मव के सहायक है—मगन ने कहा। और जी बहलान के लिए कही घूमन का प्रस्ताव किया।

दोनो उतरकर गगा के समीप के शिला-खण्डो से लगकर बैठ गये। जाह्नवी के स्पर्श से पवन अत्यन्त शीतल होकर शरीर मे लगता है। यहाँ धूप कुछ भली लगती थी। दोनो विलम्ब तक बैठ चुपचाप निसर्ग मुन्दर दृश्य देखते थे। सध्या हो चली। मगल न कहा—तारा चलो, घर चले। तारा चुपचाप उठी। मगल ने देखा, उसकी आँखे लाल है। मगल ने पूछा—क्या सिर मे दर्द है।

नही तो।

दोनो घर पहुँचे। मगल ने कहा—आज ब्यालू बनाने की आवश्यकता नही जो कहो बाजार से लेता आऊँ।

इस तरह कैसे चलेगा। मुझे हुआ क्या है थोडा दूध ले आओ, तो खीर बना दूँ। कुछ पूरियाँ बची हैं।

मगलदेव दूध लेने चला गया।

तारा सोचने लगी—मगल मेरा कौन है, जो मे इतनी आज्ञा देती हूँ। क्या वह मेरा कोई है।—मन म सहसा बडी-बडी अभिलाषाएँ उदित हुईं और गभीर आकाश के शून्य मे ताराओ के समान डूब गईं। वह चुप बैठी रही।

मगल दूध लेकर आया। दीपक जला। भोजन बना। मगल न कहा—तारा, आज तुम मेरे ही साथ बैठकर भोजन करो।

तारा को कुछ आश्चय न हुआ, यद्यपि मगल ने कभी एसा प्रस्ताव न किया था, परन्तु वह उत्साह के साथ सम्मिलित हुई।

दोनो भोजन करके अपने-अपने पलग पर चले गये। तारा की आँखो म नीद न थी। उस कुछ शब्द सुनाई पडा। पहले तो उसे भय लगा, फिर साहस करके उठी। आहट लगा कि मगल का सा शब्द है। वह उसक कमरे म जाकर खडी हो गई। मगल सपना दख रहा था, बर्राता था—कौन कहता है कि तारा मरी नही है? मैं भी उसी का हूँ। तुम्हारे हत्यारे समाज की मैं चिन्ता नही करता वह दवी ह। मैं उसकी सवा करूँगा नही-नही, उस मुझस न छीनो।

तारा पलग पर झुक गई थी। वसन्त की लहरीली समीर उसे पीठ स ढकेल रही थी। रोमाच हो रहा था, जैस कामना-तरगिनी म छोटी-छोटी लहरियाँ उठ रही थीं। कभी वक्षस्थल म कभी कपोलो पर स्वेद हो जाते थे। प्रकृति प्रलोभन स सजी थी। विश्व एक भ्रम बनकर तारा के यौवन की उमग म डूबना चाहता था।

सहसा मगल न उसी प्रकार सपने म बर्राते हुए कहा—मरी तारा, प्यारी तारा आओ!—उसक दोनो हाथ उठ रहे थ कि आँख बन्द कर तारा न अपने को मगल क अक म डाल दिया।

प्रभात हुआ, वृक्षो के अक मे पक्षिया का कलरव होने लगा। मगल की आँखे खुली, जैसे उसने रातभर एक मनोहर सपना देखा हो। वह तारा को सोई छोडकर बाहर निकल आया, टहलने लगा। उत्साह से उसके चरण नृत्य कर रहे थे। बडी उत्तेजित अवस्था म टहल रहा था। टहलते-टहलते एक बार अपनी कोठरी म गया। जँगले से पहली लाल किरण तारा के कपोल पर पड रही थी। मगल ने उसे चूम लिया। तारा जग पडी। वह लजाती हुई मुस्कुराने लगी। दोनो का मन हलका था।

उत्साह म दिन बीतने लगे। दोनो के व्यक्तित्व म परिवर्तन हो चला। अब तारा का वह नि सकोच भाव न रहा। पति-पत्नी का-सा व्यवहार होने लगा। मगल बडे स्नेह से पूछता वह सहज सकोच म उत्तर देती। मगल मन-ही-मन प्रसन्न होता। उसके लिए ससार पूर्ण हो गया था—कही रिक्तता नही, कही अभाव नही।

तारा एक दिन बैठा कसीदा काढ रही थी। धम-धम का शब्द हुआ। दोपहर था। आख उठाकर देखा—एक बालक दौडा हुआ आकर दालान म छिप गया। उपवन के किवाड तो खुले ही थे और भी दो लडके पीछे-पीछे आये। पहला बालक सिमटकर सबकी आँखो की ओट हो जाना चाहता था। तारा कुतूहल से देखने लगी। उसने सकेत से मना किया कि बतावे न। तारा हँसने लगी। दोनो खोजनेवाले लडके ताड गये। एक ने पूछा—सच बताना रामू यहाँ आया है ? पडोस के लडके थे, तारा ने हँस दिया रामू पकड गया। तारा ने तीनो को एक-एक मिठाइयाँ दी। खूब हँसी होती रही।

कभी-कभी कुल्लू की माँ आ जाती। वह कसीदा सीखती। कभी बल्लो अपनी किताब लेकर आती, तारा उसे कुछ बताती। विदुषी सुभद्रा भी प्राय आया करती। एक दिन सुभद्रा बैठी थी, तारा ने कुछ उससे जलपान करने का अनुरोध किया। सुभद्रा ने कहा—तुम्हारा ब्याह जिस दिन होगा, उसी दिन जलपान करूँगी।

और जब तक न होगा, तुम मेरे यहाँ जल न पीओगी ?

'जब तक क्यो ? तुम क्या विलम्ब करती हो ?

मैं ब्याह करने की आवश्यकता यदि न समझूँ तो ?

यह तो असम्भव है। बहुत आवश्यकता होती ही है।

सुभद्रा रुक गई। तारा के कपोल लाल हो गये। उसकी ओर कनखियो से देख रही थी। वह बोली—क्या मगलदेव ब्याह करने पर प्रस्तुत नही होते।

मैने कभी प्रस्ताव तो किया नही।

मैं कहूँगी बहन ! ससार बडा खराब है। तुम्हारा उद्धार इसलिए नही हुआ है कि तुम यो ही पडी रहो। मगल मे यदि साहस नही है, तो दूसरा पात्र ढूँढा जायगा, परन्तु सावधान ! तुम दोनो का इस तरह रहना कोई भी समाज हो, अच्छी आँखो से नही देखेगा। चाहे तुम दोनो कितने ही पवित्र हो !

तारा को जैसे किसी ने चुटकी काट ली। उसने कहा—न देखे समाज, भले ही, मै किसी से कुछ चाहती तो नही, पर मैं अपने से ब्याह का प्रस्ताव किसी से नही कर सकती।

भूल है प्यारी बहन ! हमारी स्त्रियों की जाति इसी म मारी जाती है। वे मुँह खोलकर सीधा-सादा प्रस्ताव नही कर सकती, परन्तु सकेतो से, अपनी कुटिल अग-भगियो के द्वारा प्रस्ताव से अधिक करके पुरुषों का उत्साहित किया करती है। और बुरा न मानना, तब वे अपना सर्वस्व अनायास ही नष्ट कर देती है। ऐसी कितनो ही घटनाएँ जानी गई हैं।

तारा जैसे घबरा उठी। वह कुछ भारी मुँह किये बैठी रही। सुभद्रा भी कुछ समय बीतने पर चली गई।

मगलदेव पाठशाला से लौटा। आज उसके हाथ मे एक भारी गठरी थी। तारा उठ खडी हुई। पूछा—आज यह क्या लाये ?

हँसते हुए मगल ने कहा—देख लो।

गठरी खुली—साबुन, रूमाल, काँच की चूडियाँ, अतर और भी कुछ प्रसाधन के उपयोगी पदार्थ थे। तारा ने हँसते हुए उन्हे अपनाया।

मगल ने कहा—आज समाज म चलो, उत्सव है। कपडे बदल लो।

तारा ने स्वीकार-सूचक सिर हिला दिया। कपडे का चुनाव होने लगा। साबुन लगा, कघी फेरी गई। मगल ने तारा की सहायता की, तारा ने मगल की। दोनो नई स्फूर्ति से प्रेरित होकर समाज-भवन की ओर चले।

इतने दिनो बाद तारा आज ही हरद्वार के पथ पर बाहर निकल कर चली। उसे गलियो का, घाटो का, बाल्यकाल का दृश्य स्मरण हो रहा था—यहाँ वह खेलने जाती, वहाँ दर्शन करती, वहाँ पर पिता के साथ घूमने आती। राह चलते-चलते उसे स्मृतियो ने अभिभूत कर लिया। अकस्मात् एक प्रौढा स्त्री उसे देखकर रुकी और साभिप्राय देखने लगी। वह पास चली आई। उसने फिर आँखे गडाकर देखा—तारा तो नही।

हाँ, चाची !

अरी तू कहाँ ?

भाग्य !

क्या तेरे बाबूजी नही जानते।

जानते हैं चाची, पर मैं क्या करूँ?

अच्छा तू कहाँ है?—मैं आऊँगी।

लालाराम की बगीची म।

चाची चली गई। ये लोग समाज-भवन की आर चल।

कपडे सूख चुके थे। तारा उन्हे इकट्ठा कर रही थी। मगल बैठा हुआ तह लगा रहा था। बदली थी। मगल ने कहा—आज खूब जल बरसगा।

क्यो?

बादल भीग रहे हैं, पवन रुका है। प्रेम का भी पूर्व रूप ऐसा ही हाता ह तारा। मैं नही जानता था कि प्रेम-कादम्बिनी हमारे हृदयाकाश म कबस अ थी और तुम्हारे सौन्दय का पवन उस पर घेरा डाले हुए था।

मैं जानती थी। जिस दिन परिचय की पुनरावृत्ति हुई, मरे सार आँसुआ क प्रेम-घन बन चुके थ। मन मतवाला हो गया था, परन्तु तुम्हारी सौम्यसयत चेष्टा ने रोक रखा था। मैं मन-ही-मन मसूसकर रह जाती। और इसीलिये मैंने तुम्हारी इच्छा पर अपने को चलन के लिए बाध्य किया। मैं तुम्हारी आज्ञा मान-कर तुम्हे अपन जीवन के साथ उलझान लगी थी।

मैं नही जानता था तुम इतनी चतुर हो। अजगर के श्वास म खिचे हुए मृग के समान मैं तुम्हारी इच्छा के भीतर निगल लिया गया।

क्या तुम्हे इसका खेद है?

तनिक भी नही प्यारी तारा, हम दोनो इसीलिए उत्पन्न हुए थ। अब मैं उचित समझता हूँ कि हम लाग समाज के प्रचलित नियमो म आवद्ध हो जायँ, यद्यपि मेरी दृष्टि म सत्य प्रेम के सामने उसका कुछ मूल्य नही।

जैसी तुम्हारी इच्छा।

अभी ये लोग बाते कर रह थे कि उस दिन की चाची दिखलाई पडी। तारा न प्रसन्नता से उसका स्वागत किया। उसकी चादर उतारकर उस बैठाया। मगलदव बाहर चला गया।

तारा, तुमने यहाँ आकर अच्छा नही किया—चाची ने कहा।

क्या चाची। जहाँ अपने परिचित होते हैं, वही तो लोग जाते हैं।

परन्तु दुर्नाम की अवस्था म उस जगह से अलग रहना चाहिए।

तो क्या तुम लोग चाहती हो कि मैं यहाँ न रहूँ?

नही-नही, भला एसा भी कोई कहगा।—जीभ दबात हुए चाची ने कहा।

पिताजी ने मेरा तिरस्कार किया, मैं क्या करती चाची !—तारा रोने लगी ।

चाची न मान्त्वना देते हुए कहा—न रो तारा !

समझाने के बाद फिर तारा चुप हुई परन्तु वह फूल रही थी । फिर मगल के प्रति सकेत करते हुए चाची ने पूछा—क्या यह प्रेम ठहरेगा ? तारा, मैं इसीलिए चिन्तित हो रही हूँ । ऐसे बहुत-से प्रेमी ससार म मिलते है, पर निबाहने वाले कम होते है । मैंने तेरी माँ को ही देखा है !—चाची की आँखो मे आँसू भर आये, पर तारा को अपनी माता का इस तरह का स्मरण किया जाना बहुत बुरा लगा । वह कुछ न बोली । चाची को जलपान कराना चाहा, पर वह जाने के लिए हठ करने लगी । तारा समझ गई और बोली—अच्छा चाची ! मेरे ब्याह म तो आना । भला और कोई नही, तो तुम तो इस अकेली अभागिनी पर दया करना ।

चाची को जैसे ठोकर-सी लग गई । वह सिर उठाकर कहने लगी—कब है ? अच्छा-अच्छा आऊँगी !—फिर इधर-उधर की बात करके वह चली गई ।

तारा ने सशक होकर एक बार उस विलक्षण चाची को देखा, जिसे पीछे स देखकर कोई नही कह सकता था कि चालीस बरस की स्त्री है । वह अपनी इठलाती चाल स चली जा रही थी । तारा ने मन म सोचा—ब्याह की बात करके मैंने अच्छा नहीं किया परन्तु करती क्या, अपनी स्थिति साफ करने के लिए दूसरा उपाय ही न था ।

मगल जब तक लौट न आया, वह चिन्तित बैठी रही ।

चाची अब प्राय नित्य आती । तारा के विवाहोत्सव-सबध की वस्तुओ की सूची बनाती । तारा उत्साह स भर गई थी । मगलदेव से जो कहा जाता, वही ले आता । बहुत शीघ्रता स काम का प्रारभ हुआ । चाची को अपना सहायक पाकर तारा और मगल दोनो प्रसन्न थ । एक दिन तारा गगा-स्नान करने गई थी । मगल चाची के कहने पर आवश्यक वस्तुओ की तालिका लिख रहा था । वह सिर नीचा किये हुए लखनी चलाता था और आगे बढने के लिए 'हूँ' कहता जाता था । सहसा चाची ने कहा—परन्तु यह ब्याह होगा किस रीति से ? मैं जो लिखा रही हूँ, वह तो पुरानी चाल के ब्याह के लिए है ।

क्या ब्याह भी कई चाल के होते है ?—मगल न कहा ।

क्यो नही—गम्भीरता स चाची बोली ।

मैं क्या जानू, आर्य समाज के कुछ लोग उस दिन निमत्रित होंगे और वही

लोग उसे करावेंगे। हाँ, उसमे पूजा का टट-घट वैसा न होगा, और सब तो वैसा ही होगा।

ठीक है—मुस्कुराती हुई चाची ने कहा—ऐसे वर-वधू का ब्याह और किस रीति से होगा ?

क्यो ! आश्चर्य मे मगल उसका मुँह देखने लगा। चाची के मुंह पर उस समय बडा विचित्र भाव था। विलास-भरी आँखें, मचलती हुई हँसी देखकर स्वय मगल को सकोच होने लगा। कुत्सित स्त्रियो के समान वह दिल्लगी के स्वर म बोली—मगल, बडा अच्छा है, ब्याह जल्द कर ला, नही तो वाप बन जाने के पीछे ब्याह करना ठीक नही होगा।

मगल को क्रोध और लज्जा के साथ घृणा भी हुई। चाची ने अपना अचल सम्भालते हुए तीखे कटाक्षो से मगल की ओर देखा। मगन मर्माहत होकर रह गया। वह बोला—चाची !

और भी हँसती हुई चाची ने कहा—सच कहती हूँ, दो महीने से अधिक नही टले हैं।

मगल सिर झुकाकर सोचने के बाद बोला—चाची, हम लोगो का सब रहस्य तुम जानती हो तो तुमसे बढकर हम लोगो का शुभ-चिन्तक और मित्र कौन हो सकता है, अब जैसा तुम कहो वैसा करें।

चाची अपनी विजय पर प्रसन्न होकर बोली—ऐसा प्राय होता है। तारा की माँ ही कौन कही की भण्डारीजी की ब्याही धर्मपत्नी थी ! मगल ! तुम इसकी चिन्ता न करो, ब्याह शीघ्र कर लो, फिर कोई न बोलेगा। खोजने म ऐसो की सख्या भी ससार मे कम न होगी।

चाची अपनी वक्तृता झाड रही थी। उधर मगल तारा की उत्पत्ति के सबध म विचारने लगा। अभी-अभी उस दुष्टा चाची ने एक मार्मिक चोट उसे पहुँचाई। अपनी भूल और अपने अपराध मगल का नही दिखाई पडे, परन्तु तारा की माता भी दुराचारिणी !—यह बात उसे खटकने लगी। वह उठकर उपवन की ओर चला गया। चाची ने बहुत चाहा कि उसे फिर अपनी बातो म लगा ले, पर वह दुखी हो गया था। इतने म तारा लौट आई। बडा आग्रह दिखाते हुए चाची ने कहा—तारा, ब्याह के लिए परसो का दिन अच्छा है। और देखो, तुम नही जानती हो कि तुमने अपने पेट मे एक जीव और बुला लिया है, इसलिए ब्याह का हो जाना अत्यन्त आवश्यक है।

तारा चाची की गम्भीर मूर्ति देखकर डर गई। वह अपने मन म सोचने लगी—जैसा चाची कहती है वही ठीक है। तारा सशक हो चली।

चाची के जाने पर मगल लौट आया। तारा और मगल दोना का हृदय उछल रहा था। साहस कर क तारा ने पूछा—कौन दिन ठीक हुआ ?

सिर झुकाते हुए मगल ने कहा—परसो।—फिर अपना कोट पहनत हुए वह उपवन के बाहर हो गया।

तारा सोचने लगी—क्या सचमुच मैं एक बच्चे की मा हो चली हूँ। यदि एसा हुआ तो क्या होगा। मगल का प्रेम एसा ही रहेगा—वह सोचते-सोचते लेट गई। सामान बिखरे रहे।

परसो के आत विलम्ब न हुआ।

घर म ब्याह का समारोह था। सुभद्रा और चाची काम म लगी हुई थी। होम क लिए वदी बन चुकी थी। तारा का प्रसाधन हो रहा था, परन्तु मगलदेव स्नान करन हर की पैडी गया था। वह स्नान करके घाट पर आकर बैठ गया। घर लौटन की इच्छा नही हुई। वह सोचने लगा—तारा दुराचारिणी की सतान है, वह वेश्या क यहाँ रही, फिर मेरे साथ भाग आई, मुझसे अनुचित सबध हुआ और अब वह गभवती है। मैं आज ब्याह करके कई कुकर्मों के कलुषित सतान का पिता कहलाऊँगा! मैं क्या करन जा रहा हूँ!—घडी भर वह इसी चिन्ता म निमग्न था। अन्त म इसी समय उसके ध्यान म एक ऐसी बात आ गई कि उसक सत्साहस ने उसका साथ छोड दिया। वह स्वय समाज की लान्छना सह सकता था परन्तु भावी सतान के प्रति समाज की कल्पित लाञ्छना और अत्याचार न उसे विचलित किया। वह जैसे एक भावी विप्लव के भय स त्रस्त हो गया। भगोड के समान वह बडे स्टेशन की ओर अग्रसर हुआ। उसने देखा, गाडी आया ही चाहती ह। उसक कोट की जेब म कुछ रुपये थे। पूछा—इस गाडी स बनारस पहुँच सकता हूँ ?

उत्तर मिला—हाँ, लकसर म बदलकर, वहा दूसरी ट्रेन तैयार मिलगी।

टिकट लकर वह दूर से हरियाली म निकलत हुए धुएँ का चुपचाप देख रहा था, जो उडनवाले अजगर के समान आकाश पर चढ रहा था। उसके मस्तक म कोई बात जमती न थी। वह अपराधी के समान हरद्वार से भाग जाना चाहता था। गाडी आते ही उस पर चढ गया। गाडी छूट गई।

इधर उपवन म मगलदेव क आने की प्रतीक्षा हो रही थी। ब्रह्मचारीजी और वदस्वरूप तथा और दो सज्जन आये। कोई पूछता था—मगलदव जी कहाँ हैं? कोई कहता—समय हा गया! कोई कहता—विलम्ब हो रहा है। परन्तु मगलदव कहाँ ?

तारा का कलजा धक-धक करन लगा। वह न जान किस अनागत भय से

डरन लगी। रोने-रोन हो रही थी। परन्तु मगल म रोना न चाहिए—वह खुल-कर न रा सकती थी।

जो बुलाने गया, वही लौट आया। खोज हुई, पता न चला। सन्ध्या हो आई, पर मगल न लौटा। तारा अधीर होकर रोन लगी। ब्रह्मचारीजी मगल का भला-बुरा कहन लग। अन्त म उन्होंने यहाँ तक कह डाला कि यदि मुझे यह विदित होता कि मगल इतना भीरु ह, तो मै किसी दूसरे स यह सम्बन्ध करन का उद्योग करता। सुभद्रा तारा का एक ओर ले जाकर सान्त्वना द रही थी। अवसर पाकर चाची न धीरे स कहा—वह भाग न जाता तो क्या करता, तीन महीने का गर्भ वह अपने सिर पर ओढकर ब्याह करता ?

ए ? परमात्मन्, यह भी है ! —कहत हुए ब्रह्मचारीजी लम्बी डग बढात उपवन के बाहर चले गय। धीरे-धीरे सब चले गय। चाची न यथापरवश होकर सामान बटोरना आरम्भ किया और उसस छुट्टी पाकर तारा के पास जाकर बैठ गई।

तारा सपना दख रही थी—झूले के पुल पर वह चल रही ह। भीषण पर्वत-श्रेणी ! ऊपर और नीच भयानक खड्ड ! वह पेर सम्हाल कर चल रही है। मगलदव पुल के उस पार खडा बुला रहा है। नीचे वग स नदी बह रही ह। बरफ के बादल घिर रहे है। अचानक बिजली कडकी, पुल टूटा, तारा भयानक वग स नीचे गिर पडी। वह चिल्ला कर जग गई। दखा, तो चाची उसका सिर सहला रही है। वह चाची की गोद म सिर रखकर सिसकन लगी।

४

पहाड जैस दिन वीतते ही न थ। दु ख की सब राते जाडे की रात स भी लम्वा वन जाती हैं। दुखिया तारा की अवस्था शोचनीय थी। मानसिक और आर्थिक चिन्ताआ स वह जर्जर हा गई। गर्भ के वढन स शरीर स भी कृश हा गई। मुख पीला हो चला। अव उसने उपवन म रहना छाड दिया। चाची क घर म जाकर रहन लगी। वही सहारा मिला। खर्च न चल सकने के कारण वह दा-चार दिन क वाद एक वस्तु वेचती। फिर रोकर दिन काटती। चाची न भी उस अपन ढग पर छाड दिया। वही तारा टूटी चारपाई पर पडी कराहा करती।

अँधेरा हा चला था। चाची अभी-अभी घूमकर वाहर स आयी था। तारा क पास आकर बैठ गई। पूछा—तारा कैसी हो ?

क्या वताऊँ चाची, कैसी हूँ !—भगवान जानत ह, कैसी वीत रही है !

यह सब तुम्हारी चाल स हुआ।

सा तो ठीक कह रही हो।

नही, वुरा न मानना। देखा यदि मुझे पहली ही तुम अपना हाल वह दती, ता मैं ऐसा उपाय कर दती कि यह सब विपत्ति ही न आने पाती।

कौन उपाय चाची ?

वही जव दा महीने का था, उसका प्रवन्ध हा जाता। किसी का कानो-कान खबर भी न हाती। फिर तुम और मगल एक वन रहत।

पर क्या इसी क लिए मगल भाग गया ? कदापि नही, उसक मन स मरा प्रम ही चला गया। चाची, जो विना किसी लोभ के मेरी इतना सहायता करता था, वह मुझे इस निस्सहाय अवस्था म इसलिए छाडकर कभी नहा जाता। इसम कोई दूसरा ही कारण है।

हागा, पर तुम्ह यह दु ख दखना न पडता और उसक चल जान पर भी एक वार मैंन तुमस सकत किया, पर तुम्हारी इच्छा न दखकर मैं कुछ न वाली।

नही तो अब तक मोहनदास तुम्हारे पैरो पर नाक रगडता। वह कई बार मुझसे कह भी चुका है।

बस करो चाची, मुझसे ऐसी बात न करो। यदि ऐसा ही करना होगा, तो मैं किसी कोठे पर जा बैठूँगी, पर यह टट्टी की ओट मे शिकार करना मैं नही जानती। —तारा ने ये बाते कुछ क्रोध से कही। चाची का पारा चढ गया। उसने बिगड कर कहा —देखो निगोडी मुझी को बाते सुनाती है। करम आप करे और आँख दिखावे दूसरे को।

तारा रोने लगी। वह उस खुर्राट चाची से लडना न चाहती थी, परन्तु अभिप्राय न सधने पर चाची स्वयं लड गई। वह सोचती थी कि अब इसका सामान धीरे-धीरे ले ही लिया, दाल-रोटी दिन मे एक बार खिला दिया करती थी। जब इसके पास कुछ बचा ही नही और आगे को कोई आशा भी न रही, तब इसका झंझट क्या अपने सिर रक्खूँ। वह क्रोध से बोली—रो मत रॉड कही की। जा हट, अपना दूसरा उपाय देख। मैं सहायता भी करूँ और बाते भी सुनूँ, यह नही हो सकता। कल मेरी कोठरी खाली कर देना, नही तो झाडू मारकर निकाल दूँगी।

तारा चुपचाप रो रही थी, वह कुछ न बोली। रात हो चली। लोग अपने-अपने घरो मे दिन भर के परिश्रम का आस्वाद लेने के लिए किवाडे बन्द करने लगे, पर तारा की आँखे खुली थी। उनमे अब आँसू भी न थे। उसकी छाती मे मधु-विहीन मधुचक्र-सा एक नीरस कलेजा था, जिसमे वेदना की ममाछियो की भन्नाहट थी। संसार उसकी आँखो मे घूम जाता था, वह देखते हुए भी कुछ न देखती थी।

चाची अपनी कोठरी मे जाकर खा-पी कर सो रही। बाहर कुत्ते भूँक रहे थे। रात आधी बीत रही थी। रह-रहकर निस्तब्धता का झोंका आ जाता था। सहसा तारा उठ खडी हुई। उन्मादिनी के समान वह चल पडी। फटी धोती उसके अंग पर लटक रही थी। बाल बिखरे थे। बदन विकृत। भय का नाम नही। जैसे कोई यंत्रचालित शव चल रहा है। वह सीधे जाह्नवी के तट पर पहुँची। ताराओ की परछाइँ गंगा के वक्ष मे खुल रही थी। स्रोत मे हर-हर की ध्वनि हो रही थी। तारा एक शिलाखण्ड पर बैठ गई। वह कहने लगी—मेरा अब कौन रहा, जिसके लिए मैं जीवित रहूँ। मंगल ने मुझे निरपराध ही छोड दिया, पास मे पाई नही, लाञ्छनापूर्ण जीवन, कही धंधा करके पेट पालने लायक भी न रही। फिर, इस जीवन को रखकर क्या करूँ। हाँ, गर्भ मे कुछ है, वह

क्या है कौन जाने ! यदि आज न सही, तो भी एक दिन अनाहार से प्राण छट-पटाकर जायगा ही—तब विलम्ब क्या ?

मंगल ! भगवान् जानते होंगे कि तुम्हारी शय्या पवित्र है। कभी मैंने स्वप्न में भी तुम्हें छोड़कर इस जीवन में किसी से प्रेम नहीं किया, और न तो मैं कलु-षित हुई। यह तुम्हारी प्रेम-भिखारिनी पैसे की भीख नहीं माँग सकती और न पैसे के लिए अपनी पवित्रता बेच सकती है। तब दूसरा उपाय ही क्या ? मरण को छोड़ कर दूसरा कौन शरण देगा ? भगवान् ! तुम यदि कहीं हो, तो मेरे साक्षी रहना !

वह गंगा में जा ही चुकी थी कि सहसा एक बलिष्ठ हाथ ने उसे पकड़कर रोक लिया। उसने छटपटाकर पूछा—तुम कौन हो, जो मेरे मरने का भी सुख छीनना चाहते हो ?

अधम होगा, आत्महत्या पाप है ! —एक लम्बा सन्यासी कह रहा था।

पाप कहाँ ! पुण्य किसका नाम ? मैं नहीं जानती। सुख खोजती रही दुख मिला दुख ही यदि पाप है, तो मैं उससे छूटकर सुख की मौत मर रही हूँ—पुण्य कर रही हूँ, करने दो !

तुमको अकेले मरने का अधिकार चाहे हो भी, पर एक जीव-हत्या तुम और करने जा रही हो, वह नहीं होगा। चलो तुम अभी, यहीं पर्णशाला है, उसमें रात भर विश्राम करो। प्रातःकाल मेरा शिष्य आवेगा और तुम्हें अस्पताल ले जायगा। वहाँ तुम अन्न चिन्ता से भी निश्चिन्त रहोगी। बालक उत्पन्न होने पर तुम स्वतंत्र हो, जहाँ चाहो चली जाना—सन्यासी जैसे आत्मानुभूति से दृढ़ आज्ञा भरे शब्दों में कह रहा था। तारा को बात दुहराने का साहस न हुआ। उसके मन में बालक का मुख देखने की अभिलाषा जग गई। उसने भी संकल्प कर लिया कि बालक का अस्पताल में पालन हो जायगा, फिर मैं चली जाऊँगी।

वह सन्यासी के संकेत किये हुए कुटीर की ओर चली।

अस्पताल की चारपाई पर पड़ी हुई तारा अपनी दशा पर विचार कर रही थी। उसका पीला मुख, धँसी हुई आँखें, करुणा की चित्रपटी बन रही थी। मंगल का इस प्रकार छोड़कर चले जाना, सब कष्टों से अधिक कसकता था। दाई जब साबूदाना लेकर उसके पास आती, तब वह बड़े कष्ट से उठकर थोड़ा-सा पी लेती। दूध कभी-कभी मिलता था, क्योंकि अस्पताल जिन दीनों के लिए बनते हैं, वहाँ उनकी पूछ नहीं। उसका लाभ भी सम्पन्न ही उठाते हैं। जिस रोगी के अभिभावकों से कुछ मिलता, उसी की सेवा अच्छी तरह होती, दूसरे

के कष्टो की गिनती नही। दाई दाल का पानी और हल्की रोटी लेकर आई। तारा का मुँह खिड़की की ओर था।

दाई ने कहा—लो, कुछ खा लो।

अभी मेरी इच्छा नही—मुँह फेरे ही तारा ने कहा।

तो क्या कोई तुम्हारी लौंडी लगी है, जो ठहरकर ले आवेगी। लेना हो, तो अभी ले लो।

मुझे भूख नही दाई!—तारा ने करुण स्वर से कहा।

क्या, आज क्या है?

पेट मे बड़ा दर्द हो रहा है—कहते-कहते तारा कराहने लगी। उसकी आँखो से आँसू बहने लगे। दाई ने पास आकर देखा, फिर चली गई। थोड़ी देर मे डाक्टर के साथ दाई फिर आई। डाक्टर ने परीक्षा की। फिर दाई से कुछ सकेत किया। डाक्टर चला गया। दाई ने कुछ सामान लाकर वहाँ रखा, और भी एक दूसरी दाई आ गई। तारा की व्यथा बढ़ने लगी—वही कष्ट जिसे स्त्रियाँ ही झेल सकती है, तारा के लिए असह्य हो उठा, वह प्रसव-पीड़ा से मूर्छित हो गई। कुछ क्षणो मे चेतना हुई, फिर पीड़ा होने लगी। दाई ने अवस्था भयानक होने की सूचना डाक्टर को दी। वह प्रसव कराने के लिए प्रस्तुत होकर आया। सहसा बड़े कष्ट से तारा ने पुत्र-प्रसव किया। डाक्टर ने भीतर आने की आवश्यकता न समझी, वह लौट गया। सूतिका-कर्म मे शिक्षित दाइयो ने शिशु को सँभाला।

तारा जब सचेत हुई, नवजात शिशु को देखकर एक बार उसके मुख पर मुस्कराहट आ गई।

तारा रुग्ण थी, उसको दूध नही पिलाया जाता। वह दिन मे दो बार बच्चे को गोद मे ले पाती, पर गोद मे लेते ही उसे जैसे शिशु से घृणा हो जाती। मातृस्नेह उमड़ता, परन्तु उसके कारण तारा की जो दुर्दशा हुई थी, वह सामने आकर खड़ी हो जाती। तारा काँप उठती। महीनो बीत गये। तारा कुछ चलने-फिरने योग्य हुई। उसने सोचा—महात्मा ने कहा था कि बालक उत्पन्न होने पर तुम स्वतन्त्र हो, जो चाहे कर सकती हो। अब मैं अपना जीवन क्यो रखूँ, अब गगा माई की गोद मे चलूँ। इस दु खमय जीवन से छुटकारा पाने का दूसरा उपाय नही।

तीन पहर रात बीत चुकी थी। शिशु सो रहा था, तारा जाग रही थी। उसने एक बार उसके मुख का चुम्बन किया, वह चौक उठा, जैसे हँस रहा हो।

फिर उस थपकियाँ देने लगी। शिशु निधडक सा गया। तारा उठी, अस्पताल स बाहर चली आई, पगली की तरह गगा की ओर चली। निस्तब्ध रजनी थी। पवन शात था। गगा जैस सा रही थी। तारा न उसक अक म गिरकर उस चाका दिया। स्नेहमयी जननी क समान गगा न तारा का अपन वक्ष म ल लिया।

हरद्वार की बस्ती स कई कास दूर गगा-तट पर बैठे हुए एक महात्मा अरुण को अर्घ द रह थ। मामन तारा का शरीर दिखलाइ पडा, अजलि दकर तुरन्त महात्मा न जल म उतरकर उस पकडा। तारा जावित थी। कुछ परिश्रम क बाद जल पट स निकला। धीर-धीर उस चेतना हुइ। उसन आख खालकर दखा कि एक झापडी म पडी ह। तारा की आखा स भी पानी निकलन लगा—वह मरने जाकर भी न मर सकी। मनुष्य की कठार करुणा का उसन धिक्कार दिया।

परन्तु महात्मा की *शुश्रूषा स वह कुछ ही दिना म स्वस्थ हा गई। अभा-*गिनी न निश्चय किया कि गगा का किनारा न छाडूगी—जहाँ यह भी जाकर विलीन हा जाती है, उस समुद्र म जिसका कूल-किनारा नहीं, वहा चलकर डूबूगी, दखू कौन बचाता है। वह गगा क किनारे-किनार चली। जगली फल गाँवा की भिक्षा, नदी का *जल और कन्दराएँ* उसकी *यात्रा म सहायक थ। वह* दिन-दिन आगे बढती जाती थी।

५

जब हरद्वार से श्रीचन्द्र किशोरी को लिवा ले गये और छः महीने बाद एक पुत्र उत्पन्न हुआ, तभी से किशोरी के प्रति उनकी घृणा बढ़ गई। वे अपने भाव, समाज में तो प्रकट नहीं कर सके पर मन में एक दरार पड़ गई। बहुत सोचने पर श्रीचन्द्र ने यही स्थिर किया कि किशोरी काशी जाकर अपनी जारज-संतान के साथ रहे और उसके खर्च के लिए वह कुछ भेजा करें।

पुत्र पाकर किशोरी पति से वंचित हुई और वह काशी के एक सुविस्तृत गृह में रहने लगी। अमृतसर में यह प्रसिद्ध किया गया कि यहाँ माँ-बेटा का स्वास्थ्य ठीक नहीं रहता।

श्रीचन्द्र अपने कार-बार में लग गये—वैभव का परदा बहुत मोटा होता है। किशोरी के भी दिन अच्छी तरह बीतने लगे। देवनिरंजन भी कभी-कभी काशी आ जाते। और उन दिनों किशोरी की नई सहेलियाँ भी इकट्ठी हो जातीं।

बाबाजी की काशी में बड़ी धूम थी। प्रायः किशोरी के ही घर पर भण्डारा होता। बड़ी सुख्याति फैल चली। किशोरी की प्रतिष्ठा बढ़ी। वह काशी की एक भद्र महिला गिनी जाने लगी। ठाकुरजी की सेवा बड़े ठाट से होती—धन की कमी न थी, निरंजन और श्रीचन्द्र दोनों ही रुपये भेजते रहते।

किशोरी के ठाकुरजी जिस कमरे में रहते थे, उसके आगे दालान था संगमरमर की चौकी पर स्वामी देवनिरंजन बैठते। चिक लगा दी जाती। भक्त महिलाओं का भी समारोह होता। कीर्तन, उपासना और गीत की धूम मच जाती। उस समय निरंजन सचमुच भक्त बन जाता। उसका अद्वैत ज्ञान उसे निस्सार प्रतीत होता, क्योंकि भक्ति में भगवान् का अवलम्बन रहता है। सांसारिक सब आपदा विपदाओं के लिए कच्चे ज्ञानी को अपने ही ऊपर निर्भर करने में बड़ा कष्ट होता है। इसलिए गृहस्थों के सुख में फँसे हुए निरंजन को बाध्य होकर भक्त बनना पड़ा। आभूषणों से लदी हुई वैभव-मूर्ति के सामने उसका कामना-

पूण हृदय झुक जाता । उसकी अपराध से लदी हुई आत्मा अपनी मुक्ति के लिए दूसरा उपाय न दखती । बडे गर्व से निरजन लोगा को गृहस्थ बने रहन का उपदेश देता । उसकी वाणी और भी प्रखर होने जाती । जब वह गार्हस्थ्य जीवन का समर्थन करने लगता, वह कहता कि 'भगवान् सवभूत हिते रत' हैं, ससार-यात्रा—गार्हस्थ्य जीवन म ही भगवान् की सर्वभूतहित कामना के अनुसार हो सकती है। दुखियो की सहायता करना, सुखी लागो को देखकर प्रसन्न होना सबकी मगल-कामना करना, यह साकार उपासना के प्रवृत्ति-मार्ग क ही साध्य है । —इन काल्पनिक दार्शनिकताआ से उसे अपने लिए बडी आशा थी। वह धीरे-धीरे हृदय से विश्वास करने लगा कि साधु-जीवन असगत है ढाग है । गृहस्थ होकर लोगो का अभाव-मोचन करना ही भगवान् की कृपा के लिए यथेष्ट है। प्रकट म ता नही, पर विजयचन्द्र पर पुत्र का-मा किशोरी पर स्त्री का-सा विचार रखने का उसे अभ्यास हो चला ।

किशोरी अपने पति को भूल-सी गई । जब रुपया का बीमा आता तब एसा भासता मानो उसका कोई मुनीम अमृतसर का कार बार दखता हो और उस कोठी से लाभ का अश भेजा करता हो। घर के काम-काज म वह बडी चतुर थी। अमृतसर के आय हुए सब रुपये उसके बचते थ । उसस बराबर स्थावर सम्पत्ति खरीदी जाने लगी । किशारी को किसी बात की कमी न रह गई ।

विजयचन्द्र स्कूल म बड ठाट स पढने जाता था । स्कूल के मित्रा की कमी न थी। वह आये दिन अपन मित्रा का निमत्रण देकर बुलाता था । स्कूल म उसकी बडी धाक थी।

विद्यालय के सामने शस्य स्यामल समतल भूमि पर छात्रा का झुण्ड इधर उधर घूम रहा था। दस बजन म कुछ विलम्ब था। शीतकाल की धूप छोडकर क्लास क कमरा मे घुसने के लिए अभी विद्यार्थी प्रस्तुत न थ ।

विजय ही ता है—एक न कहा ।

घाडा उसक वश म नही ह, अब गिरा ही चाहता ह । —दूसरे न कहा ।

पवन स विजय के बाल बिखर रह थ, उसका मुख भय से विवर्ण था । उस अपने गिर जान की निश्चित आशका थी। सहसा एक युवक दौडता हुआ आगे बढा—बडी तत्परता से घोडे की लगाम पकड कर उसके नथुने पर उसन सबल घूसा मारा और दूसरे क्षण वह उच्छृङ्खल अश्व सीधा होकर खडा हो गया । विजय का हाथ पकडकर उसन धीरे स उतार लिया । अब तो और भी कई लडके एकत्र हो गये । युवक का हाथ पकडे हुए विजय उसके होस्टल की आर चला । यह एक सिनेमा का सा दृश्य था । युवक की प्रशसा म तालियाँ बजन लगी ।

विजय उस युवक के कमरे म वैठा हुआ बिखरे हुए सामाना का दख रहा था। सहसा उसने पूछा—आप यहाँ वितने दिना से हैं ?

थोडे ही दिन हुए हैं ?

यह किस लिपि का लेख है ?

मैंने पाली का अध्ययन किया है।

इतने म नौकर न चाय की प्याली सामन रख दी। इस क्षणिक घटना ने दोना को विद्यालय की मित्रता के पार्श्व म बाँध दिया, परन्तु विजय बडी उत्सुकता से युवक के मुख की आर देख रहा था, उसकी रहस्यपूण उदासीन मुखकान्ति विजय के अध्ययन की वस्तु वन रही थी।

चोट तो नही लगी ? —अव जाकर युवक न पूछा।

कृतज्ञ होते हुए विजय ने कहा—आपन ठीक समय पर महायता की, नही तो आज अग-भग होना निश्चित था।

वाह, इस साधारण आतक म ही तुम अपने को नही सम्हाल सक्ते थे, अच्छे सवार हो !—युवक हँसन लगा।

किस शुभनाम से आपका स्मरण करूँगा ?

तुम भी विचित्र जीव हो स्मरण करन की आवश्यकता क्या मैं तो प्रतिदिन तुमसे मिल मकता हूँ—कहकर युवक जोर मे हँसने लगा।

विजय उसके स्वच्छन्द व्यवहार और स्वतन्त्र आचरण को चकित होकर देख रहा था। उसके मन म इस युवक क प्रति अकारण श्रद्धा उत्पन्न हुई। उसकी मित्रता के लिए वह चचल हो उठा। उसने पूछा—आपके यहाँ आने म कोई वाधा तो नही ?

युवक ने कहा—मगलदेव की कोठरी म आने क लिए किसी को भी रोक-टोक नही, फिर तुम तो आज से मेरे अभिन्न हो गये हो !

समय हो गया था। होस्टल स निकलकर दोना विद्यालय की ओर चल। भिन्न-भिन्न कक्षाओ मे पढते हुए भी दानो का एक बार मिल जाना अनिवार्य हाता। विद्यालय के मैदान म हरी हरी दूब पर आमन-सामने लेटे हुए दोनो वडी देर तक प्राय बातें किया करते। मगलदेव कुछ कहता था और विजय बडी उत्सुकता से सुनते हुए अपना आदश सकलन करता।

कभी कभी होस्टल से मगलदेव विजय के घर पर जाता, वहाँ उसे घर का-सा सुख मिलता। स्नेह—सरल स्नेह ने उन दोनो के जीवन मे गाँठ दे दी।

किशोरी के यहाँ शरदपूर्णिमा का शृगार था। ठाकुरजी चन्द्रिका म रत्न-आभूषणो मे सुशोभित हाकर शृगार-विग्रह बने थे। चमेली के फूलो की बहार

थी। चाँदनी मे चमेली का सौरभ मिल रहा था। निरजन रास की राका-रजनी का विवरण सुना रहा था। गोपियो ने किस तरह उमग म उन्मत्त होकर कालिन्दी-कूल म कृष्णचन्द्र के साथ रास-क्रीडा म आनन्द-विह्वल होकर शुल्क-दासियो के समान आत्मसमर्पण किया था, उसका मादक विवरण स्त्रिया के मन का बेसुध बना रहा था। मगल-गान होने लगा। निरजन रमणिया के कोकिल-कण्ठ म अभिभूत होकर तकिये के सहारे टिक गया। रात-भर गीत-वाद्य का समारोह चला।

विजय ने एक बार आकर देखा दशन किया, प्रसाद लेकर जाना चाहता था कि सामने बैठी हुई सुन्दरियो के झुण्ड पर सहसा दृष्टि पड गई। वह रुक गया। उसकी इच्छा हुई कि बैठ जाय, परन्तु माता के सामने बैठने का साहस न हुआ। जाकर अपन कमरे म लेट रहा। अकस्मात् उसके मन म मगलदेव का स्मरण हा गया। उस रहस्यपूर्ण युवक के चारो ओर उसके विचार लिपट गये परन्तु वह मगल के सम्बन्ध मे कुछ निश्चित नही कर सका। कवल एक बात उसके मन म जग रही थी—मगल की मित्रता उसे वाछित है। वह सो गया। स्कूल म पढनेवाला विजय इस अपने उत्सवो की प्रामाणिकता की जाँच स्वप्न म करने लगा। मगल स इसके सम्बन्ध म विवाद चलता रहा। वह कहता कि—मन को एकाग्र करन के लिए हिन्दुआ के यहाँ यह एक अच्छी चाल ह। विजय तीव्र विरोध करता हुआ कह उठा—इसम अनक दाप ह, केवल एक अच्छे फल के लिए बहुत स दाप करते रहना अन्याय ह। मगल ने कहा—अच्छा फिर किसी दिन समझाऊँगा।

विजय की आँख खुली, सबेरा हो गया था। उसक घर म हलचल मची हुई थी। उसने दासी से पूछा—क्या बात है?

दासी ने कहा—आज भण्डारा है।

विजय विरक्त होकर अपनी नित्यक्रिया म लगा। साबुन पर क्रोध निकालन लगा, तौलिय की दुर्दशा हो गई। कल का पानी बेकार गिर रहा था, परन्तु वह आज नहाने की कोठरी से बाहर निकलना ही नही चाहता। तो भी समय पर वह स्कूल चला गया। किशोरी न कहा भी—आज न जा, साधुआ का भोजन है, उनकी सवा—

बीच हो म बात काटकर विजय ने कहा—आज फुटबाल है, मुझे शीघ्र जाना है।

विजय बडी उत्तेजित अवस्था म स्कूल चला गया।

मंगल के कमरे का जँगला खुला था। चमकीली धूप उसमें प्रकाश फैलाये थी। वह अभी तक चद्दर लपेट पड़ा था। नौकर ने कहा—बाबूजी, आज भी कुछ भोजन न कीजिएगा ?

बिना मुंह खोले मगल ने कहा—नही।

भीतर प्रवेश करते हुए विजय ने पूछा—क्यों ? क्या आज भी नही ?—आज तीसरा दिन है !

नौकर ने कहा—देखिये बाबूजी, तीन दिन हो गये—कोई दवा भी नही करते, न कुछ खाते ही है।

विजय ने चद्दर के भीतर हाथ डालकर बदन टटोलते हुए कहा—ज्वर तो नही है।

नौकर चला गया। मगल ने मुंह खोला, उसका विवर्ण मुख अभाव और दुर्बलता का क्रीडा-स्थल बना था। विजय उसे देखकर स्तब्ध रह गया। सहसा उसने मगल का हाथ पकडकर घबराते हुए स्वर मे पूछा—क्या सचमुच कोई बीमारी है ?

मगलदेव ने बड़े कष्ट मे आँखो मे आँसू रोककर कहा—बिना बीमारी के भी कोई यों ही पडा रहता है ?

विजय को विश्वास न हुआ। उसने कहा—मेरे सिर की सौगन्द, कोई बीमारी नही है। तुम उठो, आज मैं तुम्हे निमत्रण देने आया हूँ, मेरे यहाँ चलना होगा।

मगल ने उसके गाल पर एक चपत लगाते हुए कहा—आज तो मैं तुम्हारे यहाँ ही पथ्य लेने वाला था। यहाँ के लोग पथ्य बनाना नही जानते। तीन दिन के बाद इनके हाथ का भोजन—बिल्कुल असगत है।

मगल उठ बैठा। विजय ने नौकर को पुकारा और कहा—बाबू के लिए जल्दी चाय ले आओ। —नौकर चाय लेने गया।

विजय ने जल लाकर मुँह धुलाया। चाय पीकर, मगल चारपाई छोडकर खड़ा हो गया। तीन दिन के उपवास के बाद उसे चक्कर आ गया और वह बैठ गया। विजय उसका बिस्तर लपेटने लगा। मगल ने कहा—क्या करते हो ! —विजय ने बिस्तर बाँधते हुए कहा—अभी कई दिन तुम्हे लौटना न होगा; इसलिए सामान बाँध कर ठिकाने मे रख दूँ।

मगल चुप बैठा रहा। विजय ने एक कुचला हुआ सोने का टुकडा उठा लिया और उसे मगलदेव को दिखाकर कहा—यह क्या ! —फिर साथ ही लिपटा हुआ एक भोजपत्र भी उसके हाथ लगा। दोनो को देखकर मगल ने कहा—यह

मेरा रक्षाकवच है, बाल्यकाल से उसे मैं पहनता था। आज इसे तोड देने की इच्छा हुई।

विजय ने उसे जेब में रखते हुए कहा—अच्छा, मैं तांगा ले आने जाता हूं।

थोडी ही देर में तांगा लेकर विजय आ गया। मंगल उसके साथ तांगे पर जा बैठा। दोनों मित्र हँसना चाहते थे, पर हँसने में उन्हें दुःख होता था।

विजय अपने बाहरी कमरे में मंगलदेव को बिठाकर घर में गया। सब लोग व्यस्त थे। दो बज रहे थे। साधु-ब्राह्मण खा-पीकर चले गये थे। विजय अपने हाथ में भोजन का सामान ले आया। दोनों मित्र बैठकर खाने-पीने लगे।

दासियाँ जूठी पत्तल बाहर फेंक रही थीं। ऊपर की छत से पूरी और मिठाइयों के टुकडों से लदी हुई पत्तलें उछाल दी जाती थीं। नीचे कुछ अछूत डोम और डोमिनियाँ खडी थीं जिनके सिर पर टोकरियाँ थीं, हाथ में डंडे थे—जिनसे वे कुत्तों को हटाते थे और आपस में मार-पीट, गाली गलौज करते हुए उस उच्छिष्ट की लूट मचा रहे थे—वे पुश्त-दर-पुश्त के भूखे!

मालकिन झरोखे में अपने पुण्य का यह उत्सव देख रही थी। और देख रही थी—एक राह की थकी हुई भूखी दुर्बल युवती भी। उसी भूख की, जिससे वह स्वयं अशक्त हो रही थी, यह बीभत्स लीला थी! वह सोच रही थी—क्या संसार भर में पेट की ज्वाला मनुष्य और पशुओं को एक ही समान सताती है? ये भी मनुष्य हैं और इसी धार्मिक भारत के मनुष्य—जो कुत्तों के मुँह के टुकडे भी छीन कर खाना चाहते हैं। भीतर जो पुण्य के नाम पर—धर्म के नाम पर—गुलछर्रे उड रहे हैं, उसमें वास्तविक भूखों का कितना भाग है यह पत्तलों के लूटने का दृश्य बतला रहा है। भगवान्! तुम अन्तर्यामी हो।

युवती निर्बलता से चल न सकती थी। वह साहस करके उन पत्तल लूटने वालों के बीच में से निकल जाना चाहती थी। वह दृश्य असह्य था, परन्तु एक डोमिन ने समझा कि यह उसी का भाग छीनने आई है। उसने गन्दी गालियाँ देते हुए उस पर आक्रमण करना चाहा, युवती पीछे हटी, परन्तु ठोकर लगते ही गिर पडी।

उधर विजय और मंगल में बात हो रही थी। विजय ने मंगल से कहा—यही तो इस पुण्य धर्म का दृश्य है! क्यों मंगल! क्या और भी किसी देश में इसी प्रकार का धर्म-संचय होता है? जिन्हें आवश्यकता नहीं, उनको बिठाकर आदर से भोजन कराया जाय केवल इस आशा से कि परलोक में वे पुण्य-संचय का प्रमाण-पत्र देंगे, साक्षी देंगे, और इन्हें, जिन्हें पेट ने सता रक्खा है, जिनको भूख ने अधमरा बना दिया है, जिनकी आवश्यकता नंगी होकर बीभत्स नृत्य

कर रही है, —वे मनुष्य, कुत्ता के साथ जूठी पत्तला के लिए लडे, यही ता तुम्हारे धर्म का उदाहरण है !

मगल भीतर जाकर विछावन पर पड रहा। उस कुछ सरदी मालूम हान लगी। वह चद्दर ओढकर एकान्त का अनुभव करन लगा, परन्तु विजय वही खडा रहा। उसने सहसा देखा—एक युवती गिर पडी। नौकरो को ललकारा—उस उठाने के लिए। किशोरी का भी उस स्त्री पर दया आई। वह भूख और चोट स बेहोश भीतर उठा लाई गई। जल के छीटे दिय गय। सज्ञा लौट आई। उसन आँखे खोल दी।

किशोरी को उस पर ध्यान देते देखकर विजय अपन कमरे म चला गया। किशोरी ने पूछा—कुछ खाओगी।

युवती न कहा—हाँ, मैं भूखी अनाथ हूँ।

किशोरी को उसकी छलछलाई आँख देखकर दया आ गई। कहा—दुखी न हो, तुम यही रहा करो।

फिर मुँह छिपाकर पडे ! उठो, म अपने बनाय हुए कुछ चित्र दिखाऊँ।

बोलो मत विजय ! कई दिन के बाद भोजन करन पर आलस्य मालूम हो रहा है।

पडे रहने स तो और भी सुस्ती बढेगी।

मैं कुछ घटा तक सो लेना चाहता हूँ।

विजय चुप हो गया। मगलदेव के व्यवहार पर उसे कुतूहल हो रहा था। वह चाहता था कि बातो ही म उसके मन की अवस्था जान ले परन्तु उसे अवसर न मिला। वह भी चुपचाप सो रहा।

नीद खुली, तब लम्प जला दिय गये थे। दूज का चन्द्रमा पीला होकर अभी निस्तेज था, हल्की चाँदनी धीरे-धीरे फैलने लगी। पवन म कुछ शीतलता थी। विजय ने आँखे खोलकर देखा, मगल अभी पडा था। उसने जगाया और हाथ-मुँह धोने के लिए कहा।

दोनो मित्र आकर पाईं-बाग म पारिजात के नीचे पत्थर पर बैठ गये। विजय ने कहा—एक प्रश्न है।

मगल न कहा—प्रत्येक प्रश्नो के उत्तर भी हैं, कहो भी।

क्यो तुमने रक्षा-कवच तोड डाला ? क्या उस पर से विश्वास उठ गया ?

नही विजय, मुझे उस सोने की आवश्यकता थी।—मगल ने बडी गम्भीरता स कहा।

क्या ?

इसके लिए घण्टो का समय चाहिए, तब तुम समझ सकोगे। अपनी वह रामकहानी पीछे सुनाऊँगा, इस समय केवल इतना ही कहे देता हूँ कि मेरे पास एक भी पैसा न था, और तीन दिन इसलिए मैने भोजन भी नही किया। तुमसे यह कहने मे मुझे लज्जा नही।

यह तो बडे आश्चर्य की बात है।

आश्चर्य इसमे कौन सा ?—अभी तुमने देखा है कि इस देश की दरिद्रता कैसी विकट है—कैसी नृशस है। कितने ही अनाहार से मरते है। फिर मेरे लिए आश्चर्य क्यो ? इसीलिए कि मै तुम्हारा मित्र हूँ ?

मगलदेव! दुहाई है, घण्टो नही मैं रात भर सुनूँगा। तुम अपना रहस्यपूर्ण वृत्तात सुनाओ। चलो कमरे म चल। यहाँ ठढ लग रही है।

भीतर तो बैठे ही थे, फिर यहाँ आने की क्या आवश्यकता थी ? अच्छा चलो, परन्तु एक प्रतिज्ञा करनी होगी।

वह क्या ?

मेरा सोना वेचकर कुछ दिना के लिए मुझे निश्चिन्त बना दो।

अच्छा भीतर तो चलो।

कमरे म पहुँचकर दोना मित्र बैठे ही थे कि दरवाजे के पास से किसी ने पूछा—विजय, एक दुखिया स्त्री आई है, मुझे आवश्यकता भी है, तू कहे तो उसे रख लूँ।

अच्छी बात है माँ! वही न जा बेहोश हो गई थी।

हाँ वही, बिलकुल अनाथ है।

उस अवश्य रख लो।—एक शब्द हुआ, मालूम हुआ कि पूछने वाली चली गई थी। तब विजय ने मगलदेव से कहा—अब कहो।

मगलदेव न कहना प्रारम्भ किया—मुझे एक अनाथालय से सहायता मिलती थी, और मैं पढता था। मेरे घर कोई है कि नही, यह भी मुझे नही मालूम, पर जब मैं सेवा-समिति के काम स पढाई छोडकर हरद्वार चला गया, तब मेरी वृत्ति बन्द हो गई। मैं लौट आया। आर्यसमाज से भी मेरा कुछ सम्पर्क था, परन्तु मैने देखा कि वह खडनात्मक है, समाज म केवल इसी से काम नही चलता। मैंने भारतीय समाज का ऐतिहासिक अध्ययन करना चाहा और इसीलिए पाली, प्राकृत का पाठ्यक्रम स्थिर किया। भारतीय धर्म और समाज का इतिहास तब तक अधूरा रहेगा, जब तक पाली और प्राकृत का उससे सम्बन्ध न हो, परन्तु मैं बहुत

चेष्टा करके भी सहायता प्राप्त न कर सका, क्योंकि सुनता हूँ कि वह अनाथालय भी टूट गया।

विजय—तुमने रहस्य की बात तो कही ही नहीं।

मंगल—विजय! रहस्य यही कि मैं निर्धन हूँ, मैं अपनी सहायता नहीं कर सकता? मैं विश्वविद्यालय की डिग्री के लिए नहीं पढ़ रहा हूँ। केवल कुछ महीनों की आवश्यकता है कि मैं अपनी पाली की पढ़ाई प्रोफेसर देव से पूरा कर लूँ। इसीलिए मैं यह सोना बेचना चाहता हूँ।

विजय ने उस यन्त्र को देखा, सोना तो उसने एक ओर रख दिया, परन्तु भूजपत्र के छोटे-से—बंडल को—जो उसके भीतर था—विजय ने मंगल का मुँह देखते-देखते कुतूहल से खोलना आरम्भ किया। उसका कुछ अंश खुलने पर दिखाई दिया कि उसमें लाल रंग के अष्टगंध से कुछ स्पष्ट प्राचीन लिपि है। विजय ने उसे खोलकर फेंकते हुए कहा—लो यह किसी देवी-देवता का पूरा स्तोत्र भरा पड़ा है।

मंगल ने उसे आश्चर्य से उठा लिया। वह लिपि को पढ़ने की चेष्टा करने लगा। कुछ अक्षरों को वह पढ़ भी सका, परन्तु वह प्राकृत न थी, संस्कृत थी। मंगल ने उसे समस्कार जेब में रख लिया। विजय ने पूछा—क्या है? कुछ पढ़ सके?

कल इसे प्रोफेसर देव से पढ़ाऊँगा। यह तो कोई शासन-पत्र मालूम पड़ता है।

तो क्या इसे तुम नहीं पढ़ सकते?

मैंने तो अभी प्रारम्भ किया है यह अध्ययन मेरा गौण है प्रोफेसर को जब छुट्टी रहती है, कुछ पढ़ा देते हैं।

अच्छा मंगल! एक बात कहूँ तुम मानोगे? मेरी भी पढ़ाई सुधर जायगी। क्या?

तुम मेरे ही साथ रहा करो, अपनी चिंता का रोग मैं छुड़ाना चाहता हूँ।

तुम स्वतन्त्र नहीं हो विजय! क्षणिक उमंग में आकर हमें वह काम नहीं करना चाहिए, जिससे जीवन के कुछ ही लगातार दिनों के बिरोध जाने की सम्भावना हो, क्योंकि उमंग की उठान नीचे आया करती है।

नहीं मंगल! मैं माँ से पूछ लेता हूँ—कहकर विजय तेजी से चला गया। मंगल हाँ हाँ—कहता ही रह गया। थोड़ी देर में ही हँसता हुआ लौट आया और बोला—माँ तो कहती है कि उसे यहाँ से मैं न जाने दूँगी।

वह चुपचाप, विजय क बनाय कलापूर्ण चित्रा को जो उस कमरे म लग थ देखन लगा। इसम विजय का प्राथमिक कृतिया था—अपूर्ण मुखाकृति, रगा क छीटे स भरे हुए कागज तक चौखटा म लग थ।

आज स किशारी की गृहस्थी म दो व्यक्ति आर बढे।

(

६

आज बड़ा समारोह है। निरंजन चाँदी के पात्र निकालकर दे रहा है—आरती, फूल, चंगेर, धूपदान, विधपात्र और पंचपात्र इत्यादि माँज-धोकर साफ किये जा रहे हैं। किशोरी सेवा, फूल, धूप, बत्ती और फूलों की राशि एकत्र किये उसमें सजा रहा है। घर के सब दास-दासियाँ व्यस्त हैं। नवागत युवती घूँघट निकाले एक ओर खड़ी है।

निरंजन ने किशोरी से कहा—सिंहासन के नीचे अभी धुला नहीं है, किसी से कह दो कि उसे स्वच्छ कर दे।

किशोरी ने युवती की ओर देखकर कहा—जा तो उसे धो डाल!

युवती भीतर पहुँच गई। निरंजन ने उसे देखा और किशोरी से पूछा—यह कौन है?

किशोरी ने कहा—यही तो उस दिन रखी गई है।

निरंजन ने झिड़ककर कहा—ठहर जा, बाहर चल। फिर कुछ क्रोध से किशोरी की ओर देखकर कहा—यह कौन है, कैसी है, देवगृह में जाने योग्य है कि नहीं, समझ लिया है या यों ही जिसको हुआ कह दिया।

क्या, मैं उसे तो नहीं जानती।

यदि अछूत हो, अन्त्यज हो, अपवित्र हो?

तो क्या भगवान् उसे पवित्र नहीं कर देंगे? आप तो कहते हैं कि भगवान् पतित-पावन हैं, फिर बड़े-बड़े पापियों का जब उद्धार की आशा है, तब इसको क्यों वंचित किया जाय? कहते-कहते किशोरी ने रहस्यभरी मुसकान चलाई।

निरंजन क्षुब्ध हो गया, परन्तु उसने कहा—अच्छा शास्त्रार्थ रहने दो। इसे कहो कि बाहर चली जाय।—निरंजन की धर्म-हठ उत्तेजित हो उठी थी।

किशोरी ने कुछ कहा नहीं, पर युवती देवगृह के बाहर चली गई, और वह एक कोने में बैठकर सिसकने लगी। सब अपने काम में व्यस्त थे। दुखिया के रोने

की किसे चिन्ता थी ! वह भी जी हलका करने के लिए खुलकर रोन लगी । उस जैस ठेस लगी थी । उसका घूंघट हट गया था । आँखो से आमू की धारा वह रही थी । विजय, जो दूर स यह घटना देख रहा था इस युवती के पीछे-पीछे चला आया था—कुतूहल से इस धर्म के क्रूर दम्भ को एक बार खुलकर दखन और तीखे तिरस्कार से अपने हृदय को भर लेने के लिए परन्तु देखा तो वह दृश्य, जो उसके जीवन मे नवीन था—एक कष्ट से सताई हुई सुन्दरी का रुदन !

विजय के वे दिन थे, जिसे लोग जीवन का वसत कहते है। जब अधूरी और अशुद्ध पत्रिकाओ के टूटे फूटे शब्दा के लिए हृदय म शब्दकोश प्रस्तुत रहता है। जो अपने साथ वाढ मे बहुत-सी अच्छी वस्तु ले आता है और जो ससार का प्यारा देखन का चश्मा लगा दता है। शैशव स अभ्यस्त सौन्दय को खिलौना समझ कर तोडना ही नही, वरन्‌ उसम हृदय दखने की चाट उत्पन्न करता है। जिसे यौवन कहते हैं—शीतकाल के छोटे दिनो म घनी अमराई पर बिछलती हुई हरियाली से तर धूप क समान स्निग्ध यौवन ।

इसी समय मानव-जीवन मे जिज्ञासा जगती है। स्नेह संवेदना सहानुभूति का ज्वार आता है। विजय का विप्लवी हृदय चचल हा गया। उसने जाकर पूछा—यमुना, तुम्हे किसी ने कुछ कहा है ?

यमुना नि सकोच भाव से बोली—मेरा अपराध था।

क्या अपराध था यमुना ?

मैं देव-मन्दिर मे चली गई थी।

तब क्या हुआ ?

बाबाजी बिगड गये।

रो मत, मैं उनसे पूछूँगा।

मैं उनके बिगडने पर नही रोती हूँ, रोती हूँ अपने भाग्य पर और हिन्दू समाज की अकारण निष्ठुरता पर—जो भौतिक वस्तुआ मे ता बटा लगा ही चुका है भगवान्‌ पर भी स्वतत्र भाग का साहस रखता है !

क्षणभर के लिए विजय विस्मय विमुग्ध रहा—यह दासी—दीन दुखिया—इसके हृदय म इतने भाव ? उसकी सहानुभूति उच्छृखल हो उठी, क्योकि यह बात उसके मन की थी। विजय ने कहा—न रो यमुना ! जिसके भगवान्‌ सोने-चादी से घिरे रहते है—उनको रखवाली की आवश्यकता होती है।

यमुना की रोती हुई आखें हँस पडी—उसने कृतज्ञता की दृष्टि स विजय को देखा। विजय भूलभुलैया मे पड गया। उसने स्त्री की—एव युवती स्त्री की—सरल

सहानुभूति कभी पाई न थी। उसे भ्रम हो गया, जैसे बिजली कौंध गई हो। वह निरंजन की ओर चला, क्योंकि उसकी सब गर्मी निकालने का यही अवसर था।

निरंजन अन्नकूट के सम्भार में लगा था। प्रधान याजक बनकर उत्सव का सचालन कर रहा था। विजय ने आते ही आक्रमण आरम्भ कर दिया— बाबाजी, आज क्या है ?

निरंजन उत्तेजित तो था ही, उसने कहा—तुम हिन्दू हो कि मुसलमान ? नहीं जानते, आज अन्नकूट है।

क्यों, क्या हिन्दू होना परम सौभाग्य की बात है ? जब उस समाज का अधिकाश पददलित और दुर्दशाग्रस्त है, जब उसके अभिमान और गौरव की वस्तु धरापृष्ठ पर नहीं बची—उसकी संस्कृति विडम्बना, उसकी संस्था सारहीन, और राष्ट्र—बौद्धों के शून्य के सदृश बन गया है, जब संसार की अन्य जातियाँ सार्वजनिक भ्रातृभाव और साम्यवाद को लेकर खड़ी हैं, तब आपके इन खिलौनों में भला उसकी सन्तुष्टि होगी ?

इन खिलौनों—कहते-कहते उसका हाथ देवविग्रह की ओर उठ गया था। उसके आक्षेपों का जो उत्तर निरंजन देना चाहता था, वह क्रोध के वेग में भूल गया और सहसा उसने कह दिया—नास्तिक ! हट जा !

विजय की कनपटी लाल हो गई, बरौनियाँ तन गईं। वह कुछ बोला ही चाहता था कि मगल ने सहसा आकर हाथ पकड़ लिया, और कहा, विजय !

विद्रोही विजय वहाँ से हटते हटते भी मगल से यह कह बिना नहीं रहा—धर्म के सेनापति विभीषिका उत्पन्न करके साधारण जनता से अपनी वृत्ति कमाते हैं और उन्हीं को गालियाँ भी सुनाते हैं गुरुडम कितने दिनों तक चलेगा, मगल ?

मगल विवाद को बचाने के लिये उसे घसीटता ले चला और कहने लगा—चलो, हम तुम्हारा शास्त्रार्थ-निमत्रण स्वीकार करते हैं। —दोनों अपने कमरे की ओर चले गये।

निरंजन पल भर में आकाश से पृथ्वी पर आ गया। वास्तविक वातावरण में क्षोभ और क्रोध, लज्जा और मानसिक दुर्बलता ने उसे चैतन्य कर दिया। निरंजन को उद्विग्न होकर उठते देख, किशोरी—जो अब तक स्तब्ध हो रही थी—बोल उठी—लड़का है !

निरंजन ने वहाँ से जाते जाते कहा—लड़का है तो तुम्हारा है, साधुओं को इसकी चिन्ता क्या ? उसे अब भी अपने त्याग पर विश्वास था।

किशोरी निरंजन को जानती थी, उसने उन्हें रोकने का प्रयत्न नहीं किया। वह रोने लगी।

मगल न विजय स कहा—तुमको गुरुजना का अपमान नही करना चाहिए। मैंन बहुत स्वाधीन विचारा को काम म न जान की चेप्टा की है, उदार समाजा म घूमा-फिरा हूँ, पर समाज के शासन-प्रश्न पर और असुविधाआ म सब एक ही-स दीख पड। मैं समाज म बहुत दिना तक रहा उसस स्वतत्र होकर भी रहा, पर सभी जगह सकीर्णता है, शासन के लिए, क्योकि काम चलाना पडता है न। समाज म एक स उन्नत और एक-सी मनावृत्ति वाल मनुष्य नही सबका सतुष्ट और धमशील बनान क लिए धार्मिक सस्थाएँ कुछ न-कुछ उपाय निकाला करती है।

पर हिन्दुआ क पास निपेध क अतिरिक्त और भी कुछ है?—यह मत करा वह मत करो, पाप है। जिसका फल यह हुआ है कि हिन्दुआ को पाप का छाड-कर पुण्य कही दिखलाई ही नही पडता।—विजय न कहा।

विजय! प्रत्येक सस्थाआ का कुछ उद्देश्य है और उस सफल करन क लिए कुछ नियम बनाय जात है। नियम प्राय निपेधात्मक हात है, क्याकि मानव अपन का सब कुछ करन का अधिकारी समझता है। कुल थाड-स सुकम है और पाप अधिक है, जा निपेध क बिना नही रुक सक्त। दखा, हम किसी भी धार्मिक सस्था स अपना सम्बन्ध जाड न, ता हम उसकी कुछ परम्पराआ का अनुकरण करना ही पडगा। मूर्ति-पूजा क विराधिया न भी अपन-अपन अहिन्दू सम्प्रदाया म धम भावना क केन्द्र स्वरूप काई-न कोई धर्म-चिह्न रख छाडा है। जिन्ह व चूमत है सम्मान करत हैं, और जिनक सामन सिर झुकात है। हिन्दुआ न भी अपनी भावना क अनुसार जन-साधारण के हृदय म दवभाव भरने का मार्ग चलाया है। उन्हाने मानव जीवन म क्रम-विकास का अध्ययन किया है। व यह नही मानत कि हाथ-पैर, मुँह-आख और कान समान हान से हृदय भी एक-सा हागा। और विजय! धम ता हृदय स आचरित हाता है न, इसीलिए अधिकार भेद है।

तो फिर उसम उच्च विचारवाल लागा का स्थान नही, क्याकि समता और विपमता का द्वन्द्व उसक मूल म वर्तमान है।

उनसे ता अच्छा है, जो बाहर स साम्य की घोपणा करक भी भीतर स घोर विभिन्न मत क है और वह भी स्वार्थ क कारण! हिन्दू समाज तुमको मूर्ति-पूजा करन क लिए बाध्य नही करता, फिर तुमका व्यग करन का काई अधिकार नही। तुम अपन को उपयुक्त समझत हो, ता उसस उच्चतर उपासना प्रणाली म सम्मि-लित हा जाआ। दखा, आज तुमन घर म अपन इस काण्ड के द्वारा भयानक हलचल मचा दी है। सारा उत्सव बिगड गया है।

अब किशोरी भीतर चली गई, जो बाहर खडी हुई दोनो की बाते सुन रही थी। वह बोली—मगल न ठीक कहा। विजय, तुमने अच्छा काम नहीं किया। सब लोगो का उत्साह ठण्ढा पड गया। पूजा का आयोजन अस्त-व्यस्त हो गया। किशोरी की आखे भर आई थी। उसे बडा क्षोभ था, पर दुलार के कारण विजय को वह कुछ कहना नहीं चाहती थी।

मगल ने कहा—माँ! विजय को साथ लेकर हम इस उत्सव को सफल बनाने का प्रयत्न करेंगे, आप दु ख न कीजिए।

किशोरी प्रसन्न हो गई। उसने कहा—तुम तो अच्छे लडके हो। देख तो विजय! मगल की-सी सुबुद्धि सीख।

विजय हँस पडा। दोनो देव-मन्दिर की ओर चले।

नीचे गाडी की हरहराहट हुई, मालूम हुआ—निरजन स्टेशन चला गया।

उत्सव मे विजय ने बडे उत्साह से भाग लिया; पर यमुना सामने न आई, तो विजय के सम्पूर्ण उत्साह के भीतर यह गर्व हँस रहा था कि मैंने यमुना का अच्छा बदला निरजन से लिया।

किशोरी की गृहस्थी नये उत्साह से चलने लगी। यमुना के बिना वह पल भर भी नही रह सकती। जिसको जो कुछ माँगना होता, यमुना से कहता। घर का सब प्रवन्ध यमुना के हाथ में था। यमुना प्रवन्धकारिणी और आत्मीय दासी भी थी।

विजयचन्द्र के कमरे का झाड-पोछ और रखना-उठाना सब यमुना स्वय करती थी। कोई दिन एसा न बीतता कि विजय को उसकी नई सुरुचि का परिचय अपने कमरे मे न मिलता। विजय के पान खाने का व्यसन बढ चला था। उसका कारण था यमुना के लगाये स्वादिष्ट पान। वह उपवन से चुनकर फूलो की माला बना लेती। गुंच्छे सजाकर फूलदान मे लगा देती। विजय की आँखो मे उसका छोटे-से-छोटा काम भी कुतूहल-मिश्रित प्रसन्नता उत्पन्न करता, पर वह एक बात से अपने का सदैव बचाती रही—उसने अपना सामना मगल से न होने दिया। जब कभी परसना होता—किशोरी अपने सामने विजय और मगल दोनो को खिलाने लगती। यमुना अपना बदन समेटकर और लम्बा घूँघट काढे हुए परस जाती। मगल ने कभी उधर देखने की चेष्टा भी न की, क्योकि वह भद्र कुटुम्ब के नियमो को भली-भाँति जानता था। इसके विरुद्ध विजयचन्द्र ऊपर से न कहकर, सदैव चाहता कि यमुना से मगल परिचित हो जाय, और उसको यमुना की प्रतिदिन की कुशलता की प्रकट प्रशसा करने का अवसर मिले।

विजय को इन दोना रहस्यपूर्ण व्यक्तियो के अध्ययन का बडा कुतूहल होता। एक ओर सरल प्रसन्न, अपनी अवस्था स सन्तुष्ट मगल, दूसरी आर सबको प्रसन्न करने की चेष्टा करन वाली यमुना की रहस्यपूर्ण हँसी। विजय विस्मित था। उसके युवक हृदय का दो साथी मिले थ—एक घर के भीतर, दूसरा बाहर। दोना ही सयत भाव के आर फूक-फूककर पैर रखन वाल। वह इन दोना म मिल जान की चेष्टा करता।

एक दिन मगल और विजय बैठे हुए भारतीय इतिहास का अध्ययन कर रहे थे। कोर्स तैयार करना था। विजय न कहा—भाई मगल ! भारत के इतिहास म यह गुप्त-वश भी बडा प्रभावशाली था, पर इसक मूल पुरुष का पता नही चलता।

गुप्त-वश भारत क हिन्दू इतिहास का एक उज्ज्वल पृष्ठ ह। सचमुच इसक साथ बडी-बडी गौरव-गाथाआ का सम्बन्ध है। —बडी गम्भीरता स मगल न कहा।

परन्तु इसक अभ्युदय म लिच्छिवियो क नाश का बहुत कुछ अश है। क्या लिच्छिवियो के साथ इन लोगो न विश्वासघात तो नही किया ? —विजय न पूछा।

हा, वैसा ही उनका अन्त भी तो हुआ। दखो, थानसर के एक कोन स एक साधारण सामन्त-वश गुप्त सम्राटो से सम्बन्ध जोड लन म कैसा सफल हुआ। और, क्या इतिहास इसका साक्षी नही है कि मगध के गुप्त सम्राटो का बडा सरनवा स उनके मानवीय पद स हटाकर ही हर्षवर्धन उत्तरापथेश्वर बन गया था। यह तो ऐस ही चला करता है। —मगल ने कहा।

तो ये उनस बढकर प्रतारक थे, यह वर्धन-वश भी—विजय कुछ और कहा ही चाहता था कि मगल न रोककर कहा—ठहरो विजय ! वर्धनो क प्रति एम शब्द कहना कहाँ तक सगत है ? तुमको मालूम है कि थे अपना पाप भी छिपाना नही चाहत। देखो, यह वही यत्र है जिसे तुमने फक दिया था। जो कुछ इसका अर्थ प्रोफेसर दव न किया है, उसे देखो तो—कहते-कहते मगल न जेब स निकालकर अपना यत्र और उसके साथ एक कागज फक दिया। विजय न यत्र तो न उठाया, कागज उठाकर पढने लगा—

शकमण्डलेश्वर महाराजपुत्र राज्यवर्धन इस लख क द्वारा यह स्वीकार करत हैं कि चन्द्रलखा का हमारा विवाह-सम्बन्ध न होते हुए भी यह परिणीता वधू क समान पवित्र और हमारे स्नेह की सुन्दर कहानी है। इसलिए इसके वशधर

साम्राज्य म वही सम्मान पावेंगे, जा मेरे वशधरा को साधारणत 'मिलता है।

विजय क हाथ म वह पत्र गिर पडा। विस्मय स उसकी आख बडी हा गईं। वह मगन की ओर एकटक निहारन लगा। मगल न कहा—क्या है विजय ?

पूछत हो क्या ह ! आज एक बडा भारी आविष्कार हुआ ह तुम अभी तक नही समझ सक ! आश्चर्य है। क्या इसस यह निष्कष नही निकल सकता कि तुम्हारी नसा म वही रक्त ह, जा हर्षवर्धन की धमनियो म प्रवाहित था ?

यह अच्छी दूर की सूझी ! कही मेरे पूर्व-पुरुषो का यह मगल-सूचक यत्र समझकर बिना जान-समझे ता नही द दिया गया था ? इसम

ठहरा, इसको यदि मै इस प्रकार समझूँ, ता क्या बुरा कि यह चन्द्रलखा क वशधरा क पास वशानुक्रम स चला आया हो। साम्राज्य क अच्छे दिना म इसकी आवश्यकता रही हा और पीछे यह शुभ समझकर उस कुल के सब बच्चा का ब्याह हान तक पहनाया जाता रहा हा। तुम्हार यहाँ इसका व्यवहार भी ता इसी प्रकार रहा है।

मगल के सिर म विलक्षण भावनाओ की गर्मी स पसीना चमकन लगा। फिर उसन हँसकर कहा—वाह विजय ! तुम भी बड भारी परिहास-रसिक हा ! क्षण भर म सारी गम्भीरता चली गई, दाना हँसन लग।

७

रजनी क वाला स विखरे हुए माती वटारन के लिए प्राची के प्रागण म उषा आई और इधर यमुना उपवन म फूल चुनन क लिए पहुची। प्रभात की फीकी चाँदनी म वचे हुए एक दो नक्षत्र अपने को दक्षिण-पवन के झाका म विलीन कर देना चाहते हैं। कुन्द क फूल थाल के श्यामल अचल पर कसीदा वनाने लगे थे। गगा क मुक्त वक्षस्थल पर स घूमती हुई मन्दिरो क खुलन की घण्टा की प्रति ध्वनि प्रभात की शान्त निस्तब्धता म एक सगीत की झनकार उत्पन कर रही थी। अन्धकार और आलोक की सीमा बनी हुई युवती के रूप को अस्त होनेवाला पीला चन्द्रमा और लाली फकनवाली उषा अभी स्पष्ट न दिखला सकी थी कि वह अपनी डाली फूलो से भर चुकी और उस कडी सरदी म भी यमुना मालती कुज की पत्थर की चौकी पर बैठी हुई दूर म आत हुए शहनाई के मधुर स्वर म अपनी हृदयतन्त्री मिला रही थी।

ससार एक अगडाई लेकर आख खोल रहा था। उसके जागरण म मुसकान थी। नीड म से निकलते हुए पक्षियो क कलरव को वह आश्चय स सुन रही थी। वह समझ न सकती थी कि उन्ह क्या उल्लास है। ससार म प्रवृत्त होन की इतनी प्रसन्नता क्या? दो दाने चुनकर ले आने और जीवन को लम्बा करने क लिए इतनी उत्कठा! इतना उत्साह! जीवन इतने सुख की वस्तु है?

टप टप टप टप!—यमुना चकित होकर खडी हो गई। खिलखिलाकर हसने का शब्द हुआ। यमुना ने देखा—विजय खडा है! उसन कहा—यमुना तुमने तो समझा होगा कि यह बिना बादलो की बरसात कैसी?

आप ही थे—मालती लता स ओस की बूद गिराकर बरसात का अभिनय करने वाले! यह न जानकर मैं तो चौक उठी थी।

हा यमुना! आज तो हम लोगो का रामनगर चलने का निश्चय है। तुमने सामान तो सब बाध लिया होगा—चलोगी न?

बहूजी की जैसी आज्ञा होगी।

इस बेबसी के उत्तर पर विजय के मन में बड़ी सहानुभूति उत्पन्न हुई। उसने कहा—नहीं यमुना, तुम्हारे बिना तो मेरा.. —कहते-कहते फिर रुककर कहा—प्रबन्ध ही न हो सकेगा—जलपान, पान, स्नान, सब अपूर्ण रहेगा।

तो, मैं चलूँगी—कहकर यमुना कुंज से बाहर निकल आई। वह भीतर जाने लगी। विजय ने कहा—बजरा कबका ही घाट पर आ गया होगा, हम लोग चलते हैं। माँ को लिवाकर तुरन्त आओ।

भागीरथी के निर्मल जल पर प्रभात का शीतल पवन बालकों के समान खेल रहा था—छोटी-छोटी लहरियों के घरौंदे बनते-बिगड़ते थे। उस पार के वृक्षों की श्रेणी के ऊपर एक भारी चमकीला और पीला बिम्ब था। रेत में उसकी पीली छाया और जल में सुनहला रंग, उड़ते हुए पक्षियों के झुण्ड से आक्रान्त हो जाता था। यमुना बजरे की खिड़की में से एकटक इस दृश्य को देख रही थी और छत पर से मंगलदेव उसकी लम्बी उँगलियों से धारा का कटना देख रहा था। डाँड़ों का छप-छप शब्द बजरे की गति में ताल दे रहा था। थोड़ी देर में विजय माझी को हटाकर पतवार थामकर जा बैठा। यमुना सामने बैठी हुई डाली में फूल सँवारने लगी, विजय औरों की आँख बचाकर उसे देख लिया करता।

बजरा धारा पर बह रहा था। प्रकृति-चितेरी संसार का नया चित्र बनाने के लिए गंगा के ईषत् नील जल में सफेदा मिला रही थी। धूप कड़ी हो चली थी। मंगल ने कहा—भाई विजय! इस नाव की सैर से तो अच्छा होगा कि मुझे उस पार की रेत में उतार दो। वहा जो दो-चार वृक्ष दिखाई दे रहे हैं, उन्हीं की छाया में सिर ठंडा कर लूँगा।

हम लोगों को भी तो अभी स्नान करना है, चलो वहीं नाव लगाकर हम लोग भी निबट लें।

माझियों ने उधर की ओर नाव खेना आरम्भ किया। नाव रेत से टिक गई। बरसात उतरने पर यह द्वीप बन गया था। अच्छा एकान्त था। जल भी वहाँ स्वच्छ था। किशोरी ने कहा—यमुना, चलो हम लोग भी नहा लें।

आप लोग आ जायँ, तब मैं जाऊँगी—यमुना ने कहा। किशोरी उसकी सचेष्टता पर प्रसन्न हो गई। वह अपनी दो सहेलियों के साथ बजरे से उतर गई।

मंगलदेव पहले ही कूद पड़ा था। विजय भी कुछ इधर-उधर करके उतरा। द्वीप के विस्तृत किनारों पर वे लोग फैल गये। किशोरी और उसकी सहेलियाँ,

स्नान करके लौट आईं, अब यमुना अपनी धोती लेकर बजरे से उतरी और बालू की एक ऊँची टेकरी के कोन मे चली गई। यह कोना एकान्त था। यमुना गगा के जल म पैर डालकर कुछ देर तक चुपचाप बैठी हुई विस्तृत जल धारा के ऊपर सूय की उज्ज्वल किरणा का प्रतिबिम्ब देखन लगी। जैसे रात के तारा की फूल अजली जाह्नवी के शीतल वृक्ष पर किसी ने बिखेर दी हो।

पीछे निर्जन बालू का द्वीप और सामने दूर पर नगर की सौध श्रणी यमुना की आँखा म निश्चेष्ट कुतूहल का कारण बन गई। कुछ दर म यमुना ने स्नान किया। ज्यो ही वह सूखी धोती पहनकर गीले बाला को समेट रही थी मगलदव सामने आकर खडा हो गया। समान भाव से दोना पर आकस्मिक आन वाली विपद को दखकर दो परस्पर शत्रुआ के समान मगलदेव और यमुना एक क्षण के लिए स्तब्ध थे।

तारा! तुम्ही हो!—बडे साहस स मगल ने कहा।

युवती की आँखो मे बिजली दौड गई। वह तीखी दृष्टि स मगलदव का दखती हुई बोली—क्या मुझे अपनी विपत्ति के दिन भी किसी तरह न काटने दोगे। तारा मर गई मैं उसकी प्रेतात्मा यमुना हूँ।

मगलदेव ने आख नीची कर ली। यमुना अपनी गीली धोती लेकर चलन का उद्यत हुई। मगल ने हाथ जोडकर कहा—तारा, मुझे क्षमा करो।

उसने दृढ स्वर म कहा—हम दोना का इसी म कल्याण है कि एक-दूसरे को न पहचानें और न एक-दूसरे की राह म अडे। तुम विद्यालय क छात्र हो और मैं दासी यमुना—दोना को किसी दूसरे का अवलम्ब है। पापी प्राण की रक्षा क लिए मैं प्रार्थना करती हूँ, क्याकि इसे देकर मैं न द सकी।

तुम्हारी यही इच्छा है ता यही सही—कहकर ज्यो ही मगलदव न मुह फिराया, विजय ने टेकरी की आड स निकलकर पुकारा—मगल! क्या अभी जलपान न करोगे?

यमुना और मगल ने देखा कि विजय की आख क्षण भर म लाल हो गईं परन्तु तीनो चुपचाप बजरे की ओर लौटे। किशोरी ने खिडकी स झाककर कहा—आओ जलपान कर लो, बडा विलम्ब हुआ।

विजय कुछ न बोला जाकर चुपचाप बैठ गया। यमुना ने जलपान लाकर दोनो को दिया। मगल और विजय लडको के समान चुपचाप मन लगाकर खाने लगे। आज यमुना का घूघट कम था। किशोरी ने देखा, कुछ बढब बात है। उसने कहा—आज न चलकर किसी दूसरे दिन रामनगर चला जाय तो क्या

हानि है ? दिन बहुत बीत चुका, चलते चलते संध्या हो जायगी। विजय, कहो तो घर ही लौट चला जाय ?

विजय ने सिर हिलाकर अपनी स्वीकृति दी।

माँझियों ने उसी ओर खेना आरम्भ कर दिया।

दो दिन तक मंगलदेव से और विजयचन्द्र से भेंट ही न हुई। मंगल चुपचाप अपनी किताबों में लगा रहता, और समय पर स्कूल चला जाता। तीसरे दिन अकस्मात् यमुना पहले-पहल मंगल के कमरे में आई। मंगल सिर झुकाकर पढ़ रहा था, उसने देखा नहीं। यमुना ने कहा— आज तीसरा दिन है, विजय बाबू ने तकिये से सिर नहीं उठाया। ज्वर बड़ा भयानक होता जा रहा है। किसी अच्छे डाक्टर को क्यों नहीं लिवा लाते।

मंगल ने आश्चर्य से सिर उठाकर फिर देखा—यमुना! वह चुप रह गया। फिर सहसा अपना कोट लेते हुए उसने कहा—मैं डाक्टर दीनानाथ के यहाँ जाता हूँ—और वह कोठरी से बाहर निकल गया।

विजयचन्द्र पलँग पर पड़ा करवट बदल रहा था। बड़ी बेचैनी थी। किशोरी पास ही बैठी थी। यमुना सिर सहला रही थी। विजय कभी-कभी उसका हाथ पकड़कर माथे से चिपटा लेता था।

मंगल डाक्टर को लिये हुए भीतर चला आया। डाक्टर ने देर तक रोगी की परीक्षा की। फिर सिर उठाकर एक बार मंगल की ओर देखा और पूछा—रोगी को किसी आकस्मिक घटना से दुःख तो नहीं हुआ है ?

मंगल ने कहा—ऐसा तो कोई कारण नहीं है। हाँ, इसके दो दिन पहले हम लोगों ने गंगा में गहरा स्नान किया और तैरे थे।

डाक्टर ने कहा—कुछ चिन्ता नहीं। थोड़ा यूडीकोलान सिर पर रखना चाहिए, बेचैनी हट जायगी। और दवा लिख देता हूँ। चार-पाँच दिन में ज्वर उतरेगा। मुझे टेम्परेचर का समाचार दोनों समय मिलना चाहिए।

किशोरी ने कहा—आप स्वयं दो बार दिन में देख लिया कीजिए तो अच्छा हो।

डाक्टर बहुत ही स्पष्टवादी और चिड़चिड़े स्वभाव का था, और नगर में अपने काम में एक ही था। उसने कहा—मुझे दोनों समय देखने का अवकाश नहीं, और आवश्यकता भी नहीं है। यदि आप लोगों से स्वयं इतना भी नहीं हो सकता, तो डाक्टर की दवा करानी व्यर्थ है।

जैसा आप कहेंगे वैसा ही होगा। आपको समय पर ठीक समाचार मिलेगा। डाक्टर साहब दया कीजिये।—यमुना ने कहा।

डाक्टर ने रूमाल निकालकर सिर पोंछा और मंगल के दिए हुए कागज पर औषधि लिखी। मंगल ने किशोरी से रुपया लिया और डाक्टर के साथ ही वह औषधि लेने चला गया।

मंगल और यमुना की अविराम सेवा से आठवें दिन विजय उठ बैठा। किशोरी बहुत प्रसन्न हुई। निरंजन भी तार द्वारा समाचार पाकर चले आये थे। ठाकुरजी की सेवा-पूजा की धूम एक बार फिर मच गई।

विजय अभी दुर्बल था। पन्द्रह दिनों में ही वह छः महीने का रोगी जान पड़ता था। यमुना आज-कल दिन रात अपने अन्नदाता विजय के स्वास्थ्य की रखवाली करती थी, और अब निरंजन के ठाकुरजी की ओर जाने का उसे अवसर ही न मिलता था।

जिस दिन विजय बाहर आया, वह सीधे मंगल के कमरे में गया। उसके मुख पर संकोच, और आँखों में क्षमा थी। विजय के कुछ कहने के पहले ही मंगल ने उखड़े हुए शब्दों में कहा—विजय! मेरी परीक्षा भी समाप्त हो गई और नौकरी का प्रबन्ध भी हो गया। मैं तुम्हारा कृतज्ञ हूँ। आज ही जाऊँगा आज्ञा दो।

नहीं मंगल! यह तो नहीं हो सकता—कहते-कहते विजय की आँख भर आईं।

विजय! जब मैं पेट की ज्वाला से दग्ध हो रहा था, जब एक दाने का कहीं ठिकाना नहीं था, उस समय मुझे तुमने अवलम्ब दिया, परन्तु मैं उस योग्य न था। मैं तुम्हारा विश्वास-पात्र न रह सका, इसलिए मुझे छुट्टी दो।

अच्छी बात है, तुम पराधीन नहीं हो। पर माँ ने देवी के दर्शन की मनौती की है, इसलिए हम लोग वहाँ तक तो साथ ही चलें। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा।

मंगल चुप रहा।

किशोरी ने मनौती की सामग्री जुटानी आरम्भ की। शिशिर बीत रहा था। यह निश्चय हुआ कि नवरात्र में चला जाय। मंगल को तब तक चुपचाप ठहरना दुःसह हो उठा। उसके शान्त मन में बार-बार यमुना की सेवा और विजय की बीमारी—ये दोनों बातें लड़कर हलचल मचा देती थीं। वह न-जाने कैसी कल्पना में उन्मत्त हो उठता। हिंसक मनोवृत्ति जाग जाती। उसे दमन करने में वह असमर्थ था। दूसरे ही दिन बिना किसी से कहे सुने मंगल चला गया।

विजय को खेद हुआ, पर दुःख नहीं। वह बडी द्विविधा में पडा था। मंगल जैसे उसकी प्रगति में बाधा स्वरूप हो गया था। स्कूल के लडकों को जैसी लम्बी छुट्टी की प्रसन्नता मिलती है ठीक उसी तरह विजय के हृदय में प्रफुल्लता भरने लगी। बडे उत्साह से वह भी अपनी तैयारी में लगा। फेसक्रीम, पामड, दूध पाउडर, ब्रश आकर उसके बैग में जुटने लगे। तौलिया और सुगन्धों की भरमार से बैग ठसाठस भर गया।

किशोरी भी अपने सामान में लगी थी। यमुना कभी उसके और कभी विजय के साधनों में सहायता करती। वह घुटनों के बल बैठकर विजय की सामग्री बडे मनोयोग से हैंडबैग में सजा रही थी। विजय कहता—नहीं यमुना! तौलिया तो इस बैग में अवश्य रहनी चाहिए—यमुना कहती—इतनी सामग्री इस छोटे पात्र में समा नहीं सकती। वह ट्रंक में रख दी जायगी।

विजय ने कहा—मैं अपने अत्यन्त आवश्यक पदार्थ अपने समीप रखना चाहता हूँ।

आप अपनी आवश्यकताओं का ठीक अनुमान नहीं कर सकते। संभवत आपका चिट्ठा बढा हुआ रहता है।

नहीं यमुना। वह मेरी नितान्त आवश्यकता है।

अच्छा तो सब वस्तु आप मुझसे माँग लीजिएगा देखिए जब कुछ भी घटे।

विजय ने विचार कर देखा कि यमुना भी तो मेरी सबसे बढकर आवश्यकता की वस्तु है। वह हताश होकर सामान से हट गया। यमुना और किशोरी ने ही मिलकर सब सामान ठीक कर लिये।

निश्चित दिन आ गया। रेल का प्रबन्ध पहले ही ठीक कर लिया गया था। किशोरी की कुछ सहेलियाँ भी जुट गई थीं। निरंजन थे प्रधान सेनापति। वह छोटी-सी सेना पहाडी पर चढाई करने चली।

चैत का एक सुन्दर प्रभात था। दिन आलस से भरा अवसाद से पूर्ण फिर भी मनोरंजकता थी प्रवृत्ति थी। पलास के वृक्ष लाल हो रहे थे। नई-नई पत्तियों के आने पर भी जंगली वृक्षों में घनापन न था। बौखलाया हुआ सब से धक्कम धुक्की कर रहा था। पहाडी के नीचे एक झील सी थी जो बरसात में भर जाती है। आज कल खेती हो रही थी। पत्थरों के ढोकों से उनकी सीमा बनी हुई थी वहीं एक नाले का भी अन्त होता था। यमुना एक ढोके पर बैठ गई। पास ही हैंडबैग धरा था। वह पिछडी हुई औरतों के आने की बाट जोह रही थी और विजय पैंतपथ से ऊपर सबके आगे चढ रहा था।

किशोरी और उसकी सहेलियाँ भी आ गईं। एक सुन्दर झुरमुट था, जिसम सौंदर्य और सुरुचि का समन्वय था। शहनाई के बिना किशोरी का कोई उत्साह पूरा न होता था, बाजे-गाजे से पूजा करने की मनौती थी। वे बाजे वाले भी ऊपर पहुँच चुके थे। अब प्रधान आक्रमणकारियो का दल पहाडी पर चढन लगा। थोडी ही देर म पहाडी पर सध्या के रग-बिरगे बादलो का दृश्य दिखाई दने लगा। देवी का छोटा-सा मन्दिर है, वही सब एकत्र हुए। वपूरी, बादामी, फीरोजी, धानी, गुलेनार रग के घूंघट उलट दिय गये। यहाँ परदे की आव श्यकता न थी। भैरवी के स्वर, मुक्त होकर पहाडी से झरनो की तरह निकल रहे थ। सचमुच वसन्त खिल पडा। पूजा के साथ ही स्वतत्र रूप से ये सुन्दरियाँ भी गाने लगी। यमुना चुपचाप कुरैये की डाली के नीचे बैठी थी। बेंग का सहारा लिये वह धूप से अपना मुख बचाये थी। किशोरी ने उस हठ करक गुल-नार चादर ओढा दी। पसीने से लगकर उस रग ने यमुना के मुख पर अपने चिह्न बना दिय थे। वह बडी सुन्दर रगसाजी थी। यद्यपि उसके भाव आखो के नीचे की कालिमा मे करुण रग म छिप रहे थे, परन्तु इस समय विलक्षण आकषण उसके मुख पर था। सुन्दरता की होड लग जाने पर मानसिक गति दबाई न जा सकती थी। विजय जब सौदय स अपने को अलग न रख सका, वह पूजा छोडकर उसी के समीप एक विशालखण्ड पर जा बैठा। यमुना भी सम्भलकर बैठ गई थी।

क्यो यमुना! तुमको गाना नही आता?—बात-चीत आरम्भ करने के ढग स विजय ने कहा।

आता क्यो नही, पर गाना नही चाहती हूँ।

क्यो?

यो ही। कुछ करने का मन नही करता।

कुछ भी?

कुछ नही, ससार कुछ करते के योग्य नही।

फिर क्या?—

इसमे यदि दर्शक बनकर जी सके, तो मनुष्य के बडे सौभाग्य की बात है।

परन्तु मैं केवल इसे दूर स नही देखना चाहता।

अपनी अपनी इच्छा। आप अभिनय करना चाहते है, तो कीजिए, पर यह स्मरण रखिए कि सब अभिनय सबके मनोनुकूल नही होते।

यमुना आज तो तुमने रगीन साडी पहनी है—बडी सुन्दर लगती है!

क्या करूँ विजय बाबू! जो मिलेगा वही न पहनूगी। —विरक्त होकर यमुना ने कहा।

विजय को रुखाई जान पडी, उसने भी बात बदल दी। कहा—तुमने तो कहा था कि तुमको जिस वस्तु की आवश्यकता होगी, मैं दूँगी, यहाँ मुझे कुछ आवश्यकता है।

यमुना भयभीत होकर विजय के आतुर मुख का अध्ययन करने लगी। कुछ न बोली। विजय ने सहम कर कहा—मुझे प्यास लगी है।

यमुना ने बैग म से एक छोटी-सी चाँदी की लुटिया निकाली, जिसके साथ पतली रगीन डोरी लगी थी। यह कुरैया की झुरमुट की दूसरी ओर चली गई। विजय चुपचाप सोचन लगा, और कुछ नही, केवल यमुना क स्वच्छ कपोलो पर गुलेनार रग की छाप। उन्मत्त हृदय—किशोर हृदय, स्वप्न देखने लगा—ताम्बूल राग-रञ्जित, चुम्बन-अकित कपोलो का! वह पागल हो उठा।

यमुना पानी लेकर आई, बेग से मिठाई निकालकर विजय के सामने रख दी। सीधे लडके की तरह विजय ने जलपान किया तब पूछा—पहाडी के ऊपर ही तुम्हे जल कहाँ मिला यमुना ?

यही तो, पास ही एक कुण्ड है।

चलो मुझे दिखला दो।

दोनो कुरैये के झुरमुट की ओट म चले। वहाँ सचमुच एक चौकोर पत्थर का कुण्ड था, उसम जल लबालब भरा था। यमुना ने कहा—मुझसे यही एक टडे ने कहा है कि यह कुण्ड जाडा, गरमी, बरसात, सब दिनो मे बराबर भरा रहता है, जितने आदमी चाहे इसम जल पिय, खाली नही होता। यह देवी का चमत्कार है। इसी स विन्ध्यवासिनी देवी से कम इस पहाडी झीला की देवी का मान नही है। बहुत दूर से लाग यहाँ आते हैं।

यमुना, हे बडे आश्चर्य की बात। पहाडी के इतने ऊपर भी यह जलकुण्ड सचमुच अद्भुत है, परन्तु मैंन और भी ऐसा कुण्ड देखा है—जिसमे कितने ही जल पिएँ, वह भरा ही रहता है।

सचमुच! कहाँ पर विजय बाबू ?

सुन्दरी मे रूप का कूप—कहकर विजय यमुना के मुख को उसी भाँति देखने लगा, जैसे अनजान म ढेला फेंककर बालक चोट लगनेवाले को देखता है।

वाह विजय बाबू! आज-कल साहित्य का ज्ञान बढा हुआ दखती हूँ—!!

कहते हुए यमुना ने विजय की ओर देखा—जैसे कोई बडी-बूढी, नटखट लडके को सकेत से झिडकती हो।

विजय लज्जित हो उठा। इतने मे 'विजय बाबू' की पुकार हुई—किशोरी बुला रही थी। वे दोना दवी के सामने पहुँचे। किशोरी मन-ही-मन मुस्कराई।

पूजा समाप्त हो चुकी थी। सबको चलने के लिए कहा गया। यमुना ने बेग उठाया। सब उतरने लगे। धूप कड़ी हो गई थी, विजय न अपना छाता खोल लिया। उसकी बार-बार इच्छा होती कि वह यमुना से इसी की छाया म चलन क लिए कहे, पर साहस न होता। यमुना की दो-एक लटे पसीन स उसके सुन्दर भाल पर चिपक गइ थी। विजय उसी विचित्र लिपि का पढ़त-पढ़ते पहाड़ी स नीच उतरा।

सब लोग काशी लौट आय।

द्वितीय खण्ड

१

एक ओर तो जल बरस रहा था, पुरवाई से बूँदें तिरछी होकर गिर रही थीं, उधर पश्चिम से चौथे पहर की पीली धूप उनमें केसर घोल रही थी। मथुरा से वृन्दावन आनेवाली सड़क पर एक घर की छत पर यमुना चादर तान रही थी। दालान में बैठा हुआ विजय एक उपन्यास पढ़ रहा था। निरंजन सेवा-कुंज में दर्शन करने गया था। किशोरी बैठी हुई पान लगा रही थी। तीर्थ-यात्रा के लिए श्रावण से ही लोग टिके थे। झूले की बहार थी, घटाओं का जमघट।

उपन्यास पूरा करते हुए विश्राम की साँस लेकर विजय ने पूछा—पानी और धूप से बचने के लिए वह पतली चादर क्या काम देगी यमुना?

बाबाजी के लिए मघा का जल संचय करना है। वे कहते हैं कि इस जल से अनेक रोग नष्ट होते हैं।

रोग नष्ट चाहे न हों, पर वृन्दावन के खारे कूप-जल से तो यह अच्छा ही होगा। अच्छा एक ग्लास मुझे भी दो।

विजय बाबू, काम वही करना, पर उसकी कड़ी समालोचना के बाद, यह तो आपका स्वभाव हो गया है। लीजिए जल—कहकर यमुना ने पीने के लिए जल दिया।

उसे पीकर विजय ने कहा—यमुना, तुम जानती हो कि मैंने कालेज में एक संशोधन समाज स्थापित किया है। उसका उद्देश्य है—जिन बातों में बुद्धिवाद का उपयोग न हो सके, उसका खण्डन करना और तदनुकूल आचरण करना। देख रही हो कि मैं छूत-छात का कुछ विचार नहीं करता, प्रकट रूप से होटलों तक में खाता भी हूँ। इसी प्रकार इन प्राचीन कुसंस्कारों का नाश करना मैं अपना कर्त्तव्य समझता हूँ, क्योंकि ये ही रूढ़ियाँ आगे चलकर धर्म का रूप धारण कर लेती हैं। जो बात कभी देश, काल, पात्रानुसार प्रचलित हो गई थी, वे सब

माननीय नहीं, हिन्दू-समाज के पैरों में ये बेड़ियाँ हैं। —इतने में बाहर सड़क पर कुछ बालकों के मधुर स्वर सुनाई पड़े, विजय उधर चौंककर देखने लगा—

छोटे-छोटे ब्रह्मचारी दण्ड कमण्डलु और पीत वसन धारण किये, समस्वर में गाते जा रहे थे—

कस्यचित्किमपिनोहरणीय मर्म्मवाक्यमपिनोच्चरणीय

श्रीपते पदयुगस्मरणीय लीलयाभवजलतरणीय

उन सबों के आगे छोटी दाढ़ी और घने बालों वाला एक युवक सफेद चद्दर, धोती पहने, जा रहा था। गृहस्थ लोग उन ब्रह्मचारियों की झोली में कुछ डाल देते थे। विजय ने एक दृष्टि से देखकर, मुँह फिरा कर यमुना से कहा—देखो यह बीसवीं शताब्दी में तीन हजार बी० सी० का अभिनय! समग्र संसार अपनी स्थिति रखने के लिए चंचल है, रोटी का प्रश्न सबके सामने है, फिर भी मूर्ख हिन्दू अपनी पुरानी असभ्यताओं का प्रदर्शन कराकर पुण्य-संचय किया चाहते हैं!

आप तो पाप पुण्य कुछ मानते ही नहीं विजय बाबू!

पाप और कुछ नहीं है यमुना, जिन्हें हम छिपाकर किया चाहते हैं, उन्हीं कर्मों को पाप कह सकते हैं परन्तु समाज का एक बड़ा भाग उसे यदि व्यवहार्य बना दे, तो वही कर्म हो जाता है धर्म हो जाता है। देखती नहीं हो, इतने विरुद्ध मत रखनेवाले संसार के मनुष्य अपने-अपने विचारों में धार्मिक बने हैं। जो एक के यहाँ पाप है वही तो दूसरे के लिए पुण्य है।

किशोरी चुपचाप इन लोगों की बात सुन रही थी। वह एक स्वार्थ से भरी चतुर स्त्री थी। स्वतन्त्रता में रहा चाहती थी, इसलिए लड़के को भी स्वतन्त्र होने में सहायता देती थी। कभी-कभी यमुना की धार्मिकता उसे असह्य हो जाती है, परन्तु अपना गौरव बनाये रखने के लिए वह उसका खण्डन न करती, क्योंकि बाह्य धर्माचरण दिखलाना ही उसके दुर्बल चरित्र का आवरण था। वह बराबर चाहती थी कि यमुना और विजय में गाढ़ा परिचय बढ़े, और इसके लिए वह अवसर भी देती। उसने कहा—विजय इसी से तो तुम्हारे हाथ का भी खाने लगा है, यमुना?

यह कोई अच्छी बात तो नहीं है बहूजी।

क्या करूँ यमुना, विजय अभी लड़का है, मानता नहीं। धीरे-धीरे समझ जायगा—अप्रतिभ होकर किशोरी ने कहा।

इतने में एक सुन्दर तरुण बालिका अपना हँसता हुआ मुख लिये भीतर आते ही बोली—किशोरी बहू, शाहजी के मन्दिर में आरती देखने चलोगी न?

तू आ गई घण्टी! मैं तेरी प्रतीक्षा में ही थी।

तो फिर विलम्ब क्या ? —कहते हुए घण्टी ने अल्हड़पन से विजय की ओर देखा।

किशोरी ने कहा—विजय, तू भी चलेगा न ?

यमुना और विजय की यही झांकी मिलती है, क्या विजय बाबू ? —बात काटते हुए घण्टी ने कहा।

मैं तो जाऊंगा नहीं, क्योंकि छः बजे मुझे एक मित्र से मिलने जाना है परन्तु घण्टी, तुम तो हो बड़ी नटखट ! —विजय ने कहा।

यह ब्रज है बाबूजी ! यहां के पत्ते-पत्ते में प्रेम भरा है। बंसीवाले की बंसी अब भी सेवा-कुंज में आधी रात को बजती है। चिन्ता किस बात की ?—विजय के पास सरककर धीरे से हँसते हुए उस चंचल छोकरी ने कहा। घण्टी के कपोलों में हँसते समय गढ़े पड़ जाते थे। भोली मतवाली आंखें गोपियों के छायाचित्र उतारतीं और उभरती हुई वयस-सन्धि से उसकी चंचलता सदैव छेड़-छाड़ करती रहती। वह एक क्षण के लिए भी स्थिर न रहती—कभी अँगड़ाई लेती, तो कभी अपनी उँगलियाँ चटकाती। आंखें लज्जा का अभिनय करके जब पलकों की आड़ में छिप जातीं, तब भी भौंहें चला करतीं। तिस पर भी घण्टी एक बाल-विधवा है। विजय उसके सामने अप्रतिभ हो जाता, क्योंकि वह कभी कभी स्वाभाविक निःसंकोच परिहास कर दिया करती। यमुना को उसका व्यंग असह्य हो उठता, पर किशोरी को वह छेड़-छाड़ अच्छी लगती—बड़ी हँसमुख लड़की है !—यह कहकर बात उड़ा दिया करती।

किशोरी ने अपनी चादर ले ली थी। चलने को प्रस्तुत थी। घण्टी ने उठते-उठते कहा—अच्छा तो आज ललिता की ही विजय है, राधा लौटी जाती है ! —हँसते-हँसते वह किशोरी के साथ घर से बाहर निकल गई।

वर्षा बंद हो गई थी, पर बादल घिरे थे। सहसा विजय उठा और वह भी नौकर को सावधान रहने के लिए कहकर चला गया।

यमुना के हृदय में भी निरुद्दिष्ट पथवाले चिन्ता के बादल मंडरा रहे थे। वह अपनी अतीत चिन्ता में निमग्न हो गई। बीत जाने पर दुखदायी घटना भी सुन्दर और मूल्यवान हो जाती है। वह एक बार तारा बनकर मन-ही-मन अतीत का हिसाब लगाने लगी, स्मृतियाँ लाभ बन गईं। जल वेग से बरसने लगा। परन्तु यमुना के मानस में एक शिशु-सरोज लहराने लगा। वह रो उठी।

कई महीने बीत गये—

किशोरी निरंजन और विजय बैठे हुए कुछ बात कर रहे थे। निरंजनदास

का मत था कि कुछ दिन गोकुल म चलकर रहा जाय—कृष्णचद्र की बाललीला से अलकृत भूमि म रहकर हृदय आनन्दपूर्ण बनाया जाय। किशोरी भी सहमत थी, किन्तु विजय को इसम कुछ आपत्ति थी।

इसी समय एक ब्रह्मचारी ने भीतर आकर सबको प्रणाम किया। विजय चकित हो गया, और निरजन प्रसन्न।

क्या उन ब्रह्मचारियो के साथ तुम्ही घूमत हो मगल। —विजय न आश्चर्य भरी प्रसन्नता स पूछा।

हाँ विजय बाबू! मैंन यहाँ पर एक ऋषिकुल खोल रक्खा है। यह सुनकर कि आप लोग यहाँ आये है, मैं कुछ भिक्षा लेने आया हूँ।

मगल! मैंने तो समझा था कि तुमन कही अध्यापन का काम आरभ किया होगा, पर तुमने तो यह अच्छा ढोग निकाला।

वही तो करता हूँ विजय बाबू! पढाता ही तो हूँ। कुछ करन की प्रवृत्ति तो थी ही—वह भी समाज-सेवा और सुधार, परन्तु उन्हे क्रियात्मक रूप देने के लिए मेरे पास और कौन साधन था?

ऐसे काम तो आयसमाज करता हो था, फिर उसक जोड म अभिनय करन की क्या आवश्यकता थी। उसी म सम्मिलित हो जाते।

आयसमाज कुछ खण्डनात्मक है, और मैं प्राचीन धर्म की सीमा के भीतर ही सुधार का पक्षपाती हूँ।

यह क्यो नही कहते कि तुम समाज के स्पष्ट आदश का अनुकरण करन म असमर्थ थे, परीक्षा म ठहर न सके थे। उस विधि-मूलक व्यावहारिक धर्म को तुम्हार समझ-बूझकर चलने वाल सर्वतोभद्र हृदय ने स्वीकार न किया, और तुम स्वय प्राचीन निषेधात्मक धर्म से प्रचारक बन गये। कुछ बातो के न करने स ही यह प्राचीन धर्म सम्पादित हो जाता है—छुओ मत, खाओ मत, ब्याहो मत, इत्यादि-इत्यादि। कुछ भी दायित्व लना नही चाहत, और बात-बात म शास्त्र तुम्हारे प्रमाण-स्वरूप हैं। बुद्धिवाद का कोई उपाय नही। —कहते-कहते विजय हँस पडा।

मगल की सौम्य आकृति तन गई। वह सयत और मधुर भाषा म कहने लगा—विजय बाबू, यह और कुछ नही केवल उच्छृखलता है। आत्मशासन का अभाव—चरित्र की दुर्बलता, विद्रोह कराती है। धर्म मानवीय स्वभाव पर शासन करता है, न कर सके तो मनुष्य और पशु मे भेद क्या रह जाय? आपका मत यह है कि समाज की आवश्यकता देखकर धर्म की व्यवस्था बनाइ जाय, नही तो हम उसे न मानेगे। पर समाज तो प्रवृत्तिमूलक है। वह अधिक-से-अधिक आध्यात्मिक बनाकर, तप और त्याग के द्वारा शुद्ध करके उच्च आदर्शो

तक पहुँचाया जा सकता है। इन्द्रियपरायण पशु के दृष्टिकोण से मनुष्य की सब सुविधाओ के विचार नही किय जा सकत, क्योकि फिर तो पशु और मनुष्य म साधन-भद रह जाता है। बात व ही है। मनुष्य की असुविधाओ का अनन्त साधनो के रहते अन्त नही, वह उच्छृंखल होना ही चाहता है।

निरजन को उसकी युक्तियाँ परिमार्जित और भाषा प्राञ्जल देखकर बडा प्रसन्नता हुई, उसका पक्ष लेत हुए उसने कहा—ठीक कहत हो मगलदेव !

विजय और भी गरम होकर आक्रमण करते हुए बोला—और उन ढकोसलो म क्या तथ्य है ? —उसका सकेत मदिर के शिखरो की ओर था।

हमारे धर्म मुख्यत एकेश्वरवादी है विजय बाबू ! वह ज्ञान-प्रधान है, परन्तु अद्वैतवाद की दार्शनिक युक्तियो को स्वीकार करते हुए कोई भी वर्णमाला का विरोधी बन जाय, ऐसा तो कारण नही दीख पडता। मूर्तिपूजा इत्यादि उसी रूप म है। पाठशाला म सब के लिए एक कक्षा नही होती, इसलिए अधिकारी-भेद है। हम लोग सर्वव्यापी भगवान् की सत्ता को नदियो के जल म, वृक्षो म, पत्थरो म, सर्वत्र स्वीकार करने की परीक्षा देते है।

परन्तु हृदय म नही मानते, चाहे अन्यत्र सब जगह मान ले।—तर्क न करके विजय न व्यग किया। मगल न हताश होकर किशोरी की ओर देखा।

तुम्हारा ऋषिकुल कैसा चल रहा है मगल ? —किशोरी न पूछा।

दरिद्र हिन्दुओ के ही लडके मुझे मिलते है। मैं उनके साथ नित्य भीख मागता हूँ। जो अन्न वस्त्र मिलता है, उसी म सबका निर्वाह होता है। मैं स्वय उन्हे सस्कृत और प्राकृत पढाता हू। एक गृहस्थ न अपना उजडा हुआ उपवन दे दिया है। उसमे एक ओर लम्बा-सी दालान है और पाँच-सात वृक्ष है, उतने म सब काम चल जाता है। शीत और वर्षा म कुछ कष्ट होता है, क्योकि दरिद्र है तो क्या, है तो लडके ही न !

कितने लडके हैं मगल ? —निरजन न पूछा।

आठ लडके है, आठ बरस स लेकर सोलह बरस तक के।

मगल ! और चाहे जो हो, तुम्हारे इस परिश्रम और कष्ट की सत्य निष्ठा पर कोई अविश्वास नही कर सकता। मैं भी नही।—विजय न कहा।

मगल मित्र के मुख स यह बात सुनकर प्रसन्न हो उठा। वह कहने लगा—देखिए विजय बाबू ! मेरे पास एक यही धोती और अँगोछा है। एक चादर भी है। मेरा सब काम इतने स चल जाता है। कोई असुविधा नही होती। एक लम्बा-सा टाट है। उसी पर सब सो रहते हैं। दो तीन बरतन हैं। और पाठ्य पुस्तको

की एक-एक प्रतियाँ ! इतनी ही ता मेरे ऋषिकुल की सम्पत्ति है। —कहते-कहते वह हँस पड़ा।

यमुना भीतर पीलीभीत के चावल बीन रही थी—खीर बनाने के लिए। उसके रोएँ खड़ हो गये। मगल क्या है ? —देवता है ! उसी समय उसे अपने तिरस्कृत हृदय-पिण्ड का ध्यान आ गया। उसने मन म सोचा—पुरुष को उसकी क्या चिन्ता हो सकती है, वह तो अपना मुख विसर्जित कर देता है, जिसे अपने रक्त स उस सुख को सींचना पड़ता है, वही ता उसकी व्यथा जानेगा ! —उसने कहा—मगल ही नही, सब पुरुष राक्षस हैं, देवता कदापि नही हो सकते।—वह दूसरी ओर उठकर चली गई।

कुछ समय चुप रहने के बाद विजय ने कहा—जो हमारे दान के अधिकारी हैं, धर्म के ठेकेदार है, उन्हे इसीलिए तो समाज देता है कि वे उसका सदुपयाग करे, परन्तु वे मन्दिरो म, मठो म बैठे मौज उड़ाते है—उन्हे क्या चिन्ता कि समाज के कितने बच्चे भूखे, नंगे और अशिक्षित हैं। मगलदेव ! चाहे मेरा मत तुमसे न मिलता हो, परन्तु तुम्हारा उद्देश्य सुन्दर है।

निरजन जैसे सचेत हो गया। एक बार उसने विजय की ओर देखा, पर बोला नहीं। किशोरी ने कहा—मगलदेव ! मै परदेश म हूँ, इसलिए विशेष सहायता नही कर सकती, हाँ तुम लोगो के लिए वस्त्र और पाठ्य-पुस्तको की जितनी अत्यन्त आवश्यकता हो, मैं दूँगी।

और, शीत, वर्षा-निवारण के योग्य साधारण गृह बनवा देने का भार मैं लेता हूँ मगल ! —निरजन ने कहा।

मगल ! मैं तुम्हारी इस सफलता पर बधाई देता हूँ। —हँसते हुए विजय ने कहा—कल मैं तुम्हारे ऋषिकुल म आऊँगा।

निरजन और किशोरी ने कहा—हम लोग भी।

मगल कृतज्ञता स लद गया। प्रणाम करके चला गया।

सब का मन इस घटना से हल्का था, पर यमुना अपने भारी हृदय स बार-बार यही पूछती थी—इन लोगो ने मगल का जलपान करने तक के लिए न पूछा, इसका कारण क्या उसका प्रार्थी होकर आना है ?

यमुना कुछ अनमनी रहने लगी। किशोरी से यह बात छिपी न रही। घण्टो प्राय इन्ही लोगो के पास रहती। एक दिन किशोरी ने कहा—विजय, हम लोगो को ब्रज आये बहुत दिन हो गये, अब घर भी चलना चाहिए। हो सके तो ब्रज की परिक्रमा भी कर ले।

विजय ने कहा—मैं तो नही जाऊँगा।

तू सब बातो मे अड जाता है।

यह कोई आवश्यक बात नही कि मै भी पुण्य सचय करूँ। —विरक्त हा कर विजय न कहा—यदि इच्छा हा ता आप चली जा सकती है, मै तब तक यही बैठा रहूँगा।

तो क्या तू यहा अकेला रहेगा ?

नही, मगल के आश्रम मे जा रहूँगा। वहाँ मकान बन रहा है उसे भी देखूगा, कुछ सहायता भी करूँगा और मन भी बहलेगा।

वह आप ही दरिद्र है, तू उसके यहा जाकर उसे और भी दुख दगा।

तो मैं क्या उसके सिर पर रहँगा।

यमुना ! तू चलेगी ?

फिर विजय बाबू को खिलावेगा कौन ? बहूजी, मैं तो चलन के लिए प्रस्तुत हूँ।

किशोरी मन ही-मन हँसी भी, प्रसन्न भी हुई। और बोली—अच्छी बात है ता मैं परिक्रमा कर आऊँ क्याकि होली देखकर अवश्य घर लौट चलना है।

निरजन और किशोरी परिक्रमा करने चले। एक दासी और जमादार साथ गया।

वृन्दावन म यमुना और विजय अकेले रहे। कवल घण्टी कभी-कभी आकर हँसी की हलचल मचा देती। विजय कभी-कभी दूर यमुना के किनारे चला जाता और दिन दिन भर पर लौटता। अकेली यमुना उस हँसोड के व्यग से जर्जरित हा जाती। घण्टी परिहास करने म बडी निर्दय थी।

एक दिन दापहर की कडी धूप थी। सेठजी के मन्दिर म कोई झाकी थी। घटी आई और यमुना को दर्शन के लिए पकड ले गई। दर्शन से लौटत हुए यमुना न देखा, एक पाँच साल वृक्षो का झुरमुट और घनी छाया। उसन समझा कोई दवालय है। वह छाया के लालच से टूटी हुई दीवार लाधकर भीतर चली गई। दखा तो अवाक् रह गई—मगल कच्ची मिट्टी का गारा बना रहा है, लडके ईंट ढो रहे हैं, दो राज उस मकान की जोडाई कर रहे है। परिश्रम स मुह लाल था। पसीना बह रहा था। मगल की सुकुमार दह विवश थी। वह ठिठक कर खडी हो गई। घण्टी ने उसे धक्का देते हुए कहा—चल यमुना, यह तो ब्रह्मचारी है डर काहे का ! —फिर ठठाकर हँस पडी।

यमुना ने एक बार उसकी ओर क्राध से देखा। यह चुप भी न हा सकी थी कि फरसा रखकर सिर से पसीना पोछते हुए मगल ने घूमकर देखा—यमुना !

ढीठ घण्टी स अब कैसे रहा जाय, वह झटककर बोली—ग्वालिनी ! तुम्हे

कान्ह बुलावे री !—यमुना गड गई, मगल ने क्या समझा होगा ? वह घण्टी का घसीटती हुई बाहर निकल आई। यमुना हाँफ रही थी। पसीने-पसीने हो गई थी। अभी वे दोनो सडक पर पहुँची भी न थी कि दूर से किसी ने पुकारा—यमुना।

यमुना मन म सकल्प-विकल्प कर रही थी कि—मगल पवित्रता और आलोक स घिरा हुआ पाप है कि दुर्बलताओ म लिपटा हुआ एक दृढ सत्य ? उसने समझा कि मगल पुकार रहा है, वह और लम्बे डग बढाने लगी। सहसा घण्टी ने कहा—अरी यमुना ! वह तो विजय बाबू हैं, पीछे-ही-पीछे आ रहे हैं।

यमुना एक बार काँप उठी—न जान क्या, पर खडी हो गई। विजय घूमकर लौटा आ रहा था। पास आ जान पर विजय न एक बार यमुना का नीच से ऊपर तक देखा।

कोई कुछ बोला नही, तीना घर लौट आये।

बसत की सध्या सान की धूल उडा रही थी। वृक्षा के अन्तराल से आती हुई सूयप्रभा उडती हुई गर्द को भी रँग देती थी। एक अवसाद विजय के चारा ओर फैल रहा था, वह निर्विकार दृष्टि स बहुत-सी बाते सोचत हुए भी किसी पर मन स्थिर नही कर सकता। घण्टी और मगल क परद मे यमुना अधिक स्पष्ट हा उठी थी। उसका आकर्षण अजगर की साँस के समान उसे खींच रहा था। विजय का हृदय प्रतिहिंसा और कुतूहल से भर गया था। उसन खिडकी स झाँककर देखा, घण्टी आ रहा है। वह घर से बाहर ही उनसे जा मिला।

कहाँ विजय बाबू ? —घण्टी ने पूछा।

मगलदेव के आश्रम तक, चलोगी ?

चलिए।

दोना उसी पथ पर बढे। अँधेरा हो चला था। मगल अपन आश्रम मे बैठा हुआ सध्योपासन कर रहा था। पीपल क वृक्ष के नीचे शिला पर पद्मासन लगाये वह बोधिसत्त्व की प्रतिमूर्ति-सा दीखता था। विजय क्षण-भर तक दखता रहा, फिर मन-ही-मन कह उठा—पाखण्ड ? —आख खालत हुए सहसा आचमन लेकर मगल ने धुँधले प्रकाश मे दखा—विजय और दूर कौन है, एक स्त्री ? यमुना तो नही है। वह पलभर क लिए अस्त-व्यस्त हा उठा। उसन पुकारा—विजय बाबू !

विजय न कहा—दूर स घूमकर आ रहा हूँ, फिर आऊँगा।

विजय और घण्टी वही स लौट पड, परन्तु उस दिन मगल के पुरुषसूक्त का

पाठ न हो सका। दीपक जल जाने पर जब वह पाठशाला म बैठा, तब प्राकृत-प्रकाश के सूत्र उसे बीहड़ लगे। व्याख्या अस्पष्ट हो गई। ब्रह्मचारियो ने देखा —गुरुजी को आज क्या हो गया है !

विजय घर लौट आया। यमुना रसोई बनाकर बैठी थी। हँसती हुई घण्टी को भी उसने साथ ही आते देखा। वह डरी। और न जाने क्यो उसने पूछा—विजय बाबू विदेश म एक विधवा तरुणी को लिये इस तरह घूमना क्या ठीक है ?

यह बात आज क्यो पूछती हो यमुना ? घण्टी ! इसम तुम्हारी क्या सम्मति है ? —शान्त भाव से विजय ने कहा।

इसका विचार तो यमुना को स्वय करना चाहिए। मैं ता व्रजवासिनी हूँ हृदय की वसी को सुनने से कभी रोका नही जा सकता।

यमुना व्यग से मर्माहत होकर बोली—अच्छा भोजन कर लीजिए।

विजय भोजन करने बैठा पर अरुचि थी। शीघ्र उठ गया। वह लम्प के सामने जा बैठा। सामने ही दरी के कोने पर बैठी यमुना पान लगाने लगी। पान विजय के सामने रखकर चली गई किन्तु विजय ने उसे छुआ भी नही, यह यमुना ने लौट आने पर देखा। उसने दृढ स्वर म पूछा—विजय बाबू, पान क्या नही खाया आपने ?

अब पान न खाऊँगा आज से छोड दिया।

पान छोडन म क्या सुविधा है ?

मैं बहुत जल्द ईसाई होने वाला हूँ, उस समाज म इसका व्यवहार नही। मुझे यह दम्भपूर्ण धर्म बोझ के समान दबाय है, अपनी आत्मा क विरुद्ध रहने के लिए मैं बाध्य किया जा रहा हूँ।

आपके लिए तो कोई रोक टोक नही फिर भी

यह मैं जानता हूँ कि कोई राक टाक नही, पर मै यह भी अनुभव करता हूँ कि मैं कुछ विरुद्ध आचरण कर रहा हू। इस विरुद्धता का खटका लगा रहता है। मन उत्साहपूर्ण होकर कर्त्तव्य नही करता। यह सब मेरे हिन्दू रहने क कारण है। स्वतन्त्रता और हिन्दू धर्म—दोनो विरुद्धवाची शब्द है।

पर ऐसा बात तो अन्य धर्मानुयायी मनुष्यो के जीवन म भी आ सकती है। सब का काम सब मनुष्य नही कर सकते।

ता भी बहुत सी बात ऐसी हैं जो हिन्दू धर्म म रहकर नही की जा सकती, किन्तु मेरे लिए नितान्त आवश्यक हैं।

जैसे ?

तुमसे ब्याह कर लेना।

यमुना ने ठोकर लगने की दशा मे पडकर पूछा—क्यो विजय बाबू ! क्या दासी होकर रहना किसी भी भद्र महिला के लिए अपमान का पर्याप्त कारण हो जाता है ?

यमुना ! तुम दासी हो ? कोई मेरा हृदय खोलकर पूछ देखे, तुम मेरी आराध्य देवी हो—सर्वस्व हो ! —विजय उत्तेजित था।

मै आराध्य देवता बना चुकी हूँ—मै पतित हो चुकी हूँ, मुझे ..

यह मैंने अनुमान कर लिया था, परन्तु इन अपवित्रताओ मे भी मै तुम्हे पवित्र, उज्ज्वल और ऊर्जस्वित पाता हूँ—जैसे मलिन वसन म हृदयहारी सौंदर्य।

किसी के हृदय की शीतलता और किसी के यौवन की उष्णता—मै सब झेल चुकी हूँ ! उसमे सफल नही हुई, उसकी साध भी नही रही। विजय बाबू ! मैं दया की पात्री एक बहन होना चाहती हूँ—है किसी के पास इतनी नि स्वार्थ स्नेह-सम्पत्ति जा मुझे दे सके ? —कहते-कहते यमुना की आँखो से आँसू टपक पडे।

विजय थप्पड खाये हुए लडके के समान घूम पडा—मै अभी आता हूँ—कहता हुआ वह घर के बाहर निकल गया।

२

कई दिन हो गये विजय किसी से कुछ बोलता नही। समय पर भोजन कर लेता और सो रहता है। अधिक समय उसका मकान के पास ही करील की झाडियों की टट्टी के भीतर लगे हुए कदम्ब के नीचे बीतता है। वहा बैठकर वह कभी उपन्यास पढता और कभी हारमोनियम बजाता है।

अँधेरा हो गया था वह कदम्ब के नीचे बैठा हारमोनियम बजा रहा था। चचल घण्टी चली आई। उसने कहा—बाबूजी आप तो बड़ा अच्छा हारमोनियम बजाते है।—वह पास ही बैठ गई।

तुम कुछ गाना जानती हो ?

ब्रजबासिनी और कुछ चाहे न जाने किन्तु फाग गाना तो उसी के हिस्से का है।

अच्छा तो कुछ गाओ देखू मैं बजा सकता हूँ।

ब्रजबाला घण्टी एक गीत गाने लगी—

पिया के हिया मे परी है गाँठ
मैं कौन जतन से खोलू ?
सब सखिया मिलि फाग मनावत
मै बावरी-सी डोलू !
अब की फागुन पिया भये निरमोहिया
मै बठी बिष घोलू !
पिया के—'

दिल खोलकर उसने गाया। मादकता थी उसके लहरीले कण्ठ-स्वर मे, और व्याकुलता थी विजय की परदो पर दौडने वाली उँगलियो मे। वे दोनो तन्मय थे। उसी राह से जाता हुआ मगल—धार्मिक मगल—भी उस हृदय-द्रावक सगीत से विमुग्ध होकर खड़ा हो गया। एक बार उसे भ्रम हुआ यमुना तो नही है ! वह भीतर चला गया। देखते ही चचल घण्टी हँस पडी ! बोली—आइए ब्रह्मचारीजी !

विजय ने कहा—बैठोगे या घर के भीतर चलूं।

नही विजय। मैं तुमसे कुछ पूछना चाहता हूँ। घण्टी! तुम घर जा रही हो न!

भयभीत घण्टी उठकर धीरे से चली गई।

विजय ने सहमते हुए पूछा—क्या कहना चाहते हो!

तुम इस लड़की को साथ लेकर इस स्वतन्त्रता से क्या बदनाम हुआ चाहते हो।

यद्यपि मैं इसका उत्तर देने को बाध्य नही मंगल, एक बात मैं भी तुमसे पूछना चाहता हूँ—बताओ तो, मैं यमुना के साथ भी एकान्त में रहता हूँ, तब तुमको संदेह क्यों नहीं होता!

मुझे उसके चरित्र पर विश्वास है।

इसीलिए कि तुम भीतर से उसे प्रेम करते हो! अच्छा, यदि मैं घण्टी से ब्याह करना चाहूँ, तो तुम पुरोहित बनोगे!

विजय, तुम अतिवादी हो, उद्धत हो!

अच्छा हुआ कि मै वैसा संयतभाषी कपटाचारी नहीं हूँ, जो अपने चरित्र की दुर्बलता के कारण मित्र से भी मिलने में सकोच करता है। मेरे यहाँ प्रायः तुम्हारे न आने का यही तो कारण है कि तुम यमुना को ..

चुप रहो विजय! उच्छृङ्खलता की भी एक सीमा होती है।

अच्छा जाने दो। घंटी के चरित्र पर विश्वास नहीं, तो क्या समाज और धर्म का यह कर्त्तव्य नही कि उसे किसी प्रकार अवलम्ब दिया जाय, उसका पथ सरल कर दिया जाय? यदि मैं घंटी से ब्याह करूँ, तो तुम पुरोहित बनोगे? बोलो, मैं इसे करके पाप करूँगा या पुण्य?

यह पाप हो या पुण्य, तुम्हारे लिए हानिकर होगा।

मैं हानि उठाकर भी समाज के एक व्यक्ति का कल्याण कर सकूँ तो क्या पाप करूँगा? उत्तर दो, देखें तुम्हारा धर्म क्या व्यवस्था देता है!—विजय अपनी निश्चिन्त विजय से फूल रहा था।

वह वृन्दावन की एक कुख्यात बाल-विधवा है विजय!

सहज में पच जाने वाला और धीरे से गले से उतर जाने वाला स्निग्ध पदार्थ सभी आत्मसात् कर लेते है, किन्तु कुछ त्याग—सो भी अपनी महत्ता का त्याग —जब धर्म के आदर्श में नही है, तब तुम्हारे धर्म को मैं क्या कहूँ मंगल!

विजय! मैं तुम्हारा इतना अनिष्ट नही देख सकता। इसे त्याग तुम भले ही समझ लो, पर इसमें क्या तुम्हारी दुर्बलता का स्वार्थपूर्ण अंश नहीं है? मैं

यह मान भी लूँ कि विधवा से ब्याह करके तुम एक धर्म सम्पादित करते हो, तब भी घटी जैसी लडकी से तुमको जीवन भर के लिए परिणय-सूत्र म बाँधने के लिए मै एक मित्र के नाते प्रस्तुत नही।

अच्छा मगल। तुम मेरे शुभचिन्तक हो, यदि मै यमुना से ब्याह करूँ ? वह तो...

तुम पिशाच हो ! —कहते हुए मगल उठकर चला गया।

विजय न क्रूर हँसी-हँसकर अपने-आप कहा—पकडे गये। ठिकाने पर ! वह भीतर चला गया।

दिन बीत रहे थे। होली पास आती जाती थी। विजय का यौवन उच्छृङ्खल भाव से बढ रहा था। उस व्रज की रहस्यमयी भूमि का वातावरण और भी जटिल बना रहा था। यमुना उससे डरने लगी। वह कभी-कभी मदिरा पीकर एक बार ही चुप हो जाता। गम्भीर होकर दिन-का-दिन बिता दिया करता। घटी आकर उसमे सजीवता ले आने का प्रयत्न करती परन्तु वैसे ही, जैसे एक खँडहर की किसी भग्न प्राचीर पर बैठा हुआ पपीहा कभी बोल दे !

फाल्गुन के शुक्लपक्ष की एकादशी थी। घर के पासवाले कदम्ब के नीचे विजय बैठा था। चाँदनी खिल रही थी। हारमोनियम बोतल और ग्लास पास ही थे। विजय कभी-कभी एक-दो घूट पी लेता और कभी हारमोनियम म एक तान निकाल लेता। बहुत विलम्ब हो गया था। खिडकी म से यमुना चुपचाप यह दृश्य देख रही थी। उसे अपने हरद्वार के दिन स्मरण हो आये। निरभ्र गगन म चलती हुई चाँदनी—गगा के वक्ष पर लोटती हुई चाँदनी—कानन की हरियाली म हरी-भरी चाँदनी ! और स्मरण हो रही थी मगल के प्रणय की पीयूष-वर्षिणी चन्द्रिका ! एक ऐसी ही चाँदनी रात थी। जगत से उस छोटी कोठरी मे धवल मधुर आलोक फैल रहा था। तारा बैठी थी उसकी लटे तकिये पर बिखर गई थीं, मगल उस कुन्तल स्तवक को मुट्ठी म लेकर सूँघ रहा था। तृप्ति थी किन्तु उस तृप्ति को स्थिर रखने के लिए लालच का अन्त न था। चाँदनी खिसकती जाती थी। चन्द्रमा उस शीतल आलिगन को देखकर लज्जित होकर भाग रहा था। मकरन्द से लदा हुआ मारुत चन्द्रिका-चूर्ण के साथ सौरभ-राशि बिखेर देता था।

यमुना पागल हो उठी। उसने देखा—सामने विजय बैठा हुआ अभी पी रहा है। रात पहर-भर जा चुकी है। वृन्दावन म दूर से फगुहारा की डफ की गम्भीर ध्वनि और उन्मत्त कण्ठ से रसीले फागो की तुमुल ताने उस चाँदनी म, उस पवन म मिली थीं। एक स्त्री आई, करील की झाडियो स निकलकर विजय

के पीछे खडी हो गई । यमुना एक बार सहम उठी । फिर उसने देखा—उस स्त्री ने हाथ का लोटा उठाया और उसका तरल पदार्थ विजय के सिर पर उडेल दिया ।

विजय के उष्ण मस्तक को कुछ शीतलता भली लगी । घूमकर देखा तो घटी खिलखिलाकर हँस रही थी । वह आज इन्द्रिय जगत् के वैद्युत् प्रवाह में चक्कर खाने लगा । चारों ओर विद्युत् कण चमकने दौडते थे । युवक विजय अपने में न रह सका उसने घटी का हाथ पकडकर पूछा—व्रजबाले तुम रंग उडेलकर उसकी शीतलता दे सकती हो कि उस रंग की सी ज्वाला—लाल ज्वाला ! आह जलन हो रही है घटी ! आत्म-संयम भ्रम है । बोलो —

मैं मेरे पास दाम न था—रंग फीका होगा विजय बाबू !

हाड मांस के वास्तविक जीवन का सत्य यौवन आने पर उसका आना न जानकर बुलाने की धुन रहती है । जो चले जाने पर अनुभूत होता है—वह यौवन धीवर के लहरीले जाल में फँसे हुए स्निग्ध मत्स्य सा तडफडाने वाला यौवन आसन में दबा हुआ पंचवर्षीय चपल तुरंग के समान पृथ्वी को कुरेदने वाला त्वरापूर्ण यौवन अधिक न सम्हल सका विजय ने घटी को अपनी मांसल भुजाओं में लपेट लिया और एक दृढ तथा दीर्घ चुम्बन में रंग का प्रतिवाद किया ।

यह सजीव और उष्ण आलिंगन विजय के युवाजीवन का प्रथम उपहार था—चरम लाभ था । कंगाल को जैसे निधि मिली हो ! यमुना और न देख सकी उसने खिडकी बंद कर दी । उस शब्द ने दोनों को अलग कर दिया । उसी समय इक्का के रुकने का शब्द बाहर हुआ । यमुना नीचे उतर आई किवाड खोलने । किशोरी भीतर आई ।

अब घटी और विजय पास पास बैठ गये थे । किशोरी ने पूछा—विजय कहाँ है ? यमुना कुछ न बोली । डाटकर किशोरी ने कहा—बोलती क्यों नहीं यमुना ?

यमुना ने कुछ न कहकर खिडकी खोल दी । किशोरी ने देखा—निखरी चाँदनी में एक स्त्री और पुरुष कदम्ब के नीचे बैठे हैं । वह गरम हो उठी । उसने वहीं से पुकारा—घटी !

घटी भीतर आई । विजय का साहस न हुआ वह वहीं बैठा रहा । किशोरी ने पूछा—घटी क्या तुम इतनी निर्लज्ज हो ।

मैं क्या जानूँ कि लज्जा किसे कहते हैं । ब्रज में तो सभी होली में रंग डालती हैं मैं भी रंग डालने आई । विजय बाबू को रंग से चोट तो न लगी होगी किशोरी

बहू ! --फिर हँसने के ढग से कहा--नहीं पाप हुआ हो तो इन्हें भी व्रज-परिक्रमा करने के लिए भेज दीजिए !

किशोरी को यह बात तीर-सी लगी। उसने झिडकते हुए कहा--चली जाओ आज से मेरे घर कभी न आना !

घण्टी सिर नीचा किये चली गई।

किशोरी ने फिर पुकारा--विजय !

विजय लडखडाता हुआ भीतर आया और विवश बैठ गया। किशोरी से मदिरा की गन्ध छिप न सकी। उसने सिर पकड लिया। यमुना ने विजय को धीरे से लिटा दिया। वह सो गया।

विजय ने अपने सम्बन्ध की किम्वदन्तियों को और भी जटिल बना दिया वह उन्हें सुलझाने की चेष्टा भी न करता था। किशोरी ने बोलना छोड दिया था। किशोरी कभी-कभी सोचती--यदि श्रीचन्द्र इस समय आकर लडके को सम्हाल लेते ! परन्तु वह बडी दूर की बात थी।

एक दिन विजय और किशोरी की मुठभेड हो गई। बात यह थी कि निरंजन ने इतना ही कहा कि मद्यपों के ससर्ग में रहना हमारे लिए असम्भव है ! विजय ने हँसकर कहा--अच्छी बात है दूसरा स्थान खोज लीजिए। ढोंग से दूर रहना मुझे भी रुचिकर है। किशोरी आ गई। उसने कहा--विजय तुम इतने निर्लज्ज हो ! अपने अपराधों को समझकर लज्जित क्यों नहीं होते ? नशे की खुमारी से भरी आँखों को उठाकर विजय ने किशोरी की ओर देखा और कहा--मैं अपने कर्मों पर हँसता हूँ, लज्जित नहीं होता। जिन्हें लज्जा बडी प्रिय हो वे उसे अपने कामों में खोजें।

किशोरी मर्माहत होकर उठ गई और अपना सामान बँधवाने लगी। उसी दिन काशी लौट जाने का उसका दृढ निश्चय हो गया। यमुना चुपचाप बैठी थी। उससे किशोरी ने पूछा--यमुना, क्या तुम न चलोगी ?

बहूजी, मैं अब कहीं नहीं जाना चाहती यहीं वृन्दावन में भीख माँगकर जीवन बिता लूँगी !

यमुना खूब समझ लो !

मैंने कुछ रुपये इकट्ठे कर लिये हैं उन्हें किसी मन्दिर में चढा दूँगी और दो मुट्ठी भात खाकर निवाह कर लूँगी।

अच्छी बात है ! किशोरी रूठकर उठी।

यमुना की आँखों से आँसू बह चले। वह भी अपनी गठरी लेकर किशोरी के जाने के पहले ही उस घर से निकलने के लिए प्रस्तुत थी।

सामान इक्को पर धरा जान लगा। किशारी और निरजन तांग पर जा बैठे। विजय चुपचाप बैठा रहा, उठा नही। जब यमुना भी बाहर निकलने लगी, तब उससे न रहा गया विजय न पूछा—यमुना। तुम भी मुझे छोड कर चली जाती हो! पर यमुना कुछ न बोली। वह दूसरी ओर चली, तागे और इक्क स्टेशन की आर। विजय चुपचाप बैठा रहा। उसन देखा कि वह स्वय निवासित है। किशोरी का स्मरण करके एक बार उसका हृदय मातृस्नह स उमड आया, उसकी इच्छा हुई कि वह भी स्टेशन की राह पकड, पर आत्माभिमान न रोक दिया। उसक सामन किशारी की मातृमूर्ति विकृत हो उठी। वह साचन लगा—माँ मुझे पुत्र क नात कुछ भी नहा समझती मुझे भी अपन स्वार्थ गौरव और अधिकार-दम्भ क भीतर ही दखना चाहती है। सतान-स्नह हाता, ता यो ही मुझे छोडकर चली जाती! वह स्तब्ध बैठा रहा। फिर कुछ विचार कर अपना भी सामान बाँधन लगा। दो-तीन बैग और बण्डल हुए। उसन एक ताँगेवाले का रोककर उस पर अपना सामान रख दिया, स्वय भी चढ गया और उस मथुरा की ओर चलन क लिए कह दिया। विजय का सिर सन-सन कर रहा था। तागा अपनी राह पर चल रहा था पर विजय का मालूम होता था कि हम बैठे हैं और पटरी पर क घर आर वृक्ष सब हमस घृणा करत हुए पीछे भाग रह है। अकस्मात् उसके कान म एक गीत का अश सुनाई पडा—

मे कौन जतन से खोलू !'

उसने तागेवाले का रुकन क लिए कहा। घण्टी गाती जा रही थी। अँधेरा हो चला था। विजय न पुकारा—घण्टी!

घण्टी ताँग के पास चली आई। उसन पूछा—कहा विजय बाबू?

सब लोग बनारस लौट गये। मैं अकेला मथुरा जा रहा हूँ। अच्छा हुआ, तुमस भट हो गई!

अहा विजय बाबू! मथुरा ता मैं भी चलन का थी, पर कल आऊँगी।

तो आज ही क्यो नही चलती? बैठ जाओ, ताग पर जगह तो है—इतना कहते हुए विजय ने बैग ताँगेवाले के बगल म रख दिया घण्टी पास जाकर बैठ गई।

३

मथुरा म चर्च के पास ही एक छाटा-सा, परन्तु साफ-सुथरा बँगला है। उसके चारा ओर तारो से घिरी हुई ऊँची, जुराटी की बडी घनी टट्टी है। भीतर कुछ फलो के वृक्ष हैं। हरियाली अपनी घनी छाया म उस बँगले को शीतल करती है। पास ही पीपल का एक बडा-सा वृक्ष है। उसके नीचे बेत की कुर्सी पर बैठे हुए मिस्टर बाथम के सामने, एक टेबुल पर कुछ कागज बिखरे हैं। वह अपनी धुन म, काम मे व्यस्त है।

बाथम ने एक भारतीय रमणी से अपना ब्याह कर लिया है। वह इतना अल्पभाषी और गम्भीर है कि पडोस के लोग बाथम को साधु साहब कहते ह, उससे आज तक किसी से झगडा नही हुआ, और न उसे किसी ने क्रोध करते दखा। बाहर तो अवश्य योरोपीय ढग से रहता है, सो भी केवल वस्त्र और व्यवहार के सम्बन्ध मे, परन्तु उसके घर के भीतर पूर्ण हिन्दू-आचार हैं। उसकी स्त्री मारगरेट लतिका ईसाई होते हुए भी भारतीय ढग से रहती हैं। बाथम उससे प्रसन्न है, वह कहता है कि गृहिणीत्व की जैसी सुन्दर योजना भारतीय स्त्रिया को आती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। इतना आकर्षक, इतना मायाममतापूर्ण स्त्री-हृदय-सुलभ गार्हस्थ्य-जीवन और किसी समाज मे नही। कभी-कभी अपने इन विचारो के कारण उसे अपने योरोपीय मित्रा के सामने बहुत लज्जित होना पडता है, परन्तु उसके ये दृढ विश्वास है। उसका चर्च के पादरी पर भी अनन्य प्रभाव है। पादरी जॉन उसके धर्म-विश्वास का अन्यतम समर्थक हैं। लतिका को वह बूढा पादरी अपनी लडकी के समान प्यार करता है। बाथम चालीस और लतिका तीस की होगी। सत्तर बरस का बूढा पादरी इन दोनो को देखकर अत्यन्त प्रसन्न होता है।

अभी दीपक नही जलाये गये थे। कुबडी टेकता हुआ बूढ़ा जॉन आ पहुँचा। बाथम उठ खडा हुआ, हाथ मिलाकर बैठते हुए जॉन ने पूछा—मारगरेन कहाँ है? तुम लोगा के साथ ही प्रार्थना करन की आज बडी इच्छा है।

हाँ पिता, हम लाग भी साथ ही चलेगे—कहते हुए बाथम भीतर गया और

कुछ मिनटों में लतिका एक गाढ़ी रेशमी धोती पहने बाथम के साथ बाहर आ गई। बूढ़े पादरी ने लतिका के सिर पर हाथ रखते हुए कहा—कैसी हो मारगरेट?

बाथम और जान भी लतिका को प्रसन्न रखने के लिए भारतीय संस्कृति में अपनी पूर्ण सहानुभूति दिखाते। वे आपस में बात करने के लिए प्रायः हिन्दी में ही बोलते।

हाँ पिता! मुझे आज विलम्ब हुआ, अन्यथा मैं ही इनसे चलने के लिए पहले अनुरोध करती। मेरी रसोईदारिन आज कुछ बीमार है, मैं उसकी सहायता कर रही थी, इसी से आपको कष्ट करना पड़ा।

आहा! उस दुखिया सरला को कहती हो। लतिका! इसके बपतिस्मा न लेने पर भी मैं इस पर बड़ी श्रद्धा करता हूँ। वह एक जीता-जागता करुणा है। उसके मुख पर मसीह की जननी के अंचल की छाया है। उसे क्या हुआ है बेटी?

नमस्कार पिता! मुझे तो कुछ नहीं हुआ है। लतिका रानी को दुलार का रोग कभी-कभी मुझे बहुत सताता है।—कहती हुई एक पचास बरस की प्रौढ़ा स्त्री ने बूढ़े पादरी के सामने आकर सिर झुका दिया।

आहा मेरी सरला! तुम अच्छी हो, यह जानकर मैं बहुत सुखी हुआ। कहो तुम प्रार्थना तो करती हो न? पवित्र आत्मा तुम्हारा कल्याण करे। लतिका के हृदय में यीशु की प्यारी करुणा है, सरला! वह तुम्हें बहुत प्यार करती है।—पादरी ने कहा।

मुझ दुखिया पर दया करके इन लोगों ने मेरा बड़ा उपकार किया है साहब! भगवान् इन लोगों का मंगल करे।—प्रौढ़ा ने कहा।

तुम बपतिस्मा क्यों नहीं लेती हो सरला! उस असहाय नरक में तुम्हारे अपराधों का कौन ऊपर लेगा? तुम्हारा कौन उद्धार करेगा?—पादरी ने कहा।

आप लोगों से सुनकर मुझे यह विश्वास हो गया है कि मसीह एक दयालु महात्मा थे। मैं उनमें श्रद्धा करती हूँ। मुझे उनकी बात सुनकर ठीक भागवत के उस भक्त का स्मरण हो आता है जिसने भगवान् का वरदान पाने पर संसार-भर के दुःखों को अपने लिये माँगा था—अहा! वैसा ही हृदय महात्मा ईसा का भी था, परन्तु पिता! इसके लिए धर्म-परिवर्तन करना तो दुर्बलता है। हम हिन्दुओं का कर्मवाद में विश्वास है। अपने-अपने कर्मफल तो भोगने ही पड़ेंगे।

पादरी चौंक उठा। उसने कहा—तुमने ठीक नहीं समझा। पापों का पश्चा-

ताप द्वारा प्रायश्चित्त होने पर शीघ्र ही उन कर्मों का यीशु क्षमा कराता है और इसके लिए उसने अपना अग्रिम रक्त जमा कर दिया है।

पिता! मैं तो समझती हूँ कि यदि यह सत्य हो तो भी इसका प्रचार न होना चाहिए क्योंकि मनुष्य को पाप करने का आश्रय मिलेगा। वह अपने उत्तर-दायित्व से छुट्टी पा जायगा—सरला ने दृढ स्वर में कहा।

एक क्षण के लिए पादरी चुप रहा। उसका मुँह तमतमा उठा। उसने कहा—अभी नहीं सरला! कभी तुम इस सत्य को समझोगी। तुम मनुष्य के पश्चात्तापपूर्ण एक दीर्घ निश्वास का मूल्य नहीं जानती हो—प्रार्थना में झुकी हुई आँखों के आँसू की एक बूँद का रहस्य तुम नहीं समझती।

मैं संसार की सताई हूँ ठोकर खाकर मारी मारी फिरती हूँ। पिता! भगवान् के क्रोध को उनके न्याय को, मैं आँचल पसार कर लेती हूँ। मुझे इसमें कायरता नहीं सताती। मैं अपने कर्मफल को सहन करने के लिए वज्र के समान सबल, कठोर हूँ। अपनी दुर्बलता के लिए कृतज्ञता का बोझ लेना मेरी नियति ने मुझे नहीं सिखाया। मैं भगवान् से यही प्रार्थना करती हूँ कि यदि तेरी इच्छा पूर्ण हो गई इस हाड मांस में इस चेतना को रखने के दण्ड की अवधि पूरी हो गई तो एक बार हँस दे कि मैंने तुझे उत्पन्न करके भर पाया। कहते कहते सरला के मुख पर एक अलौकिक आत्म विश्वास, एक सतेज दीप्ति नाच उठी। उसे देखकर पादरी भी चुप हो गया। लतिका और बाथम भी स्तब्ध रहे।

सरला के मुख पर थोडे ही समय में पूर्व भाव लौट आया। उसने प्रकृतिस्थ होते हुए विनीत भाव से पूछा—पिता! एक प्याली चाय ले आऊँ।

बाथम ने भी बात बदलने के लिए सहसा कहा—पिता! जब तक आप चाय पियें तब तक पवित्र कुमारी का एक सुन्दर चित्र—जो संभवतः किसी पुर्तगाली चित्र की—किसी हिन्दुस्तानी मुसव्वर की बनाई प्रतिकृति है—लाकर दिखलाऊँ सैकडों बरस से कम का न होगा।

हाँ यह तो मैं जानता हूँ कि तुम प्राचीन कला-सम्बन्धी भारतीय वस्तुओं का व्यवसाय करते हो। और अमरीका तथा जर्मनी में तुमने इस व्यवसाय में बडी सुख्याति पाई है परन्तु आश्चर्य है कि ऐसे चित्र भी तुमको मिल जाते हैं। मैं अवश्य देखूँगा।—कहकर पादरी कुरसी से टिक गया।

सरला चाय लाने गई और बाथम चित्र। लतिका ने जैसे स्वप्न देखकर आँख खोली। सामने पादरी को देखकर वह एक बार फिर आपे में आई। बाथम ने चित्र लतिका के हाथ में देकर कहा—मैं लैम्प लेता आऊँ।

बूढे पादरी ने उत्सुकता दिखलाते हुए संध्या के मलिन आलोक में ही उस

चित्र को लतिका के हाथ से लेकर दखना आरम्भ किया था कि वाथम ने एक लम्प लाकर टेबुल पर रख दिया। वह ईसा की जननी मरियम का एक सुन्दर चित्र था। उस दखत ही जॉन की आखे भक्ति से पूर्ण हो गईं। वह बडी प्रसन्नता स वोला—वाथम! तुम बडे भाग्यवान् हो, इस चित्र को बेचना मत।

सरला न चाय लाकर टेवल पर रखखी, और वाथम कुछ वोलना ही चाहता था कि रमणी की कातर ध्वनि उन लागो का सुनाई पडी—'बचाओ! बचाओ!'

बाथम न देखा—एक स्त्री दौडती-हाॅफती हुई चली आ रही है, उसके पीछे दो मनुष्य भी। बाथम न उस स्त्री का दौडकर अपन पीछे कर लिया और घूँसा तानत हुए बडककर कहा—आग बढे, तो जान ले लूँगा। पीछा करने वालो न देखा, एक गोरा मुँह! व उल्टे पैर लौटकर भागे। सरला न तब तक उस भयभीत युवती का अपनी गोद म ले लिया था। युवती रो रही थी। सरला न पूछा—क्या हुआ है! घबराओ मत अब तुम्हारा कोई कुछ न कर सकगा।

युवती न कहा- विजय बाबू को इन सबा न मारकर गिरा दिया है।—वह फिर रोन लगी।

अबकी लतिका न बाथम की ओर दखकर कहा— रामदास को बुलाआ, लालटेन लेकर देख कि वात क्या ह!

वाथम न पुकारा—रामदास!

वह भी इधर ही दौडा हुआ आ रहा था। लालटेन उसके हाथ म थी। वाथम उसक साथ चला। बँगले स निकलते ही वायी ओर एक मोड पडता था। वहाँ सडक की नाली तीन फुट गहरी है, उसी म एक युवक गिरा हुआ दिखाई पडा। वाथम न उतरकर दखा कि युवक आखे खोल रहा है। सिर म चोट आन से वह क्षण-भर क लिए मूर्च्छित हो गया था। विजय पूर्ण स्वस्थ युवक था। पीछे की आकस्मिक चोट न उसे विवश कर दिया, अन्यथा वह दो के लिए कम न था। बाथम के सहार वह उठकर खडा हुआ। अभी उस चक्कर आ रहा था, फिर भी उसन पूछा—घण्टी कहाँ है! —बाथम न कहा—मरे बँगले म है, घबरान की आवश्यकता नही। चलो!

विजय धीरे-धीरे बँगले म आया और एक आरामकुर्सी पर बैठ गया। इतन म चर्च का घण्टा बजा। पादरी ने चलन की उत्सुकता प्रकट की। लतिका न कहा—पिता! वाथम प्रार्थना करन जायँगे, मुझे आज्ञा हो, तो इन विपन्न मनुष्यो की सहायता करूँ, यह भी तो प्रार्थना से कम नही है।

जान न कुछ न कहकर कुबडी उठाई, वाथम उसके साथ-साथ चला। अब,

लतिका और सरला, विजय और घण्टी की सेवा में लगीं। सरला ने कहा—चाय ले आऊँ, उसे पीने से स्फूर्ति आ जायगी।

विजय ने कहा—नहीं। धन्यवाद। अब हम लोग चले जा सकते हैं।

मेरी सम्मति है कि आज की रात आप लोग इसी बँगले पर बितावें संभव है कि वे दुष्ट फिर कहीं घात में लगे हों। लतिका ने कहा।

सरला लतिका के इस प्रस्ताव से प्रसन्न होकर घण्टी से बोली—क्या बेटी! तुम्हारी क्या सम्मति है! तुम लोगों का घर यहाँ से कितनी दूर है! —कहकर रामदास को कुछ संकेत किया।

विजय ने कहा—हम लोग परदेशी हैं, यहाँ घर नहीं। अभी यहाँ आये एक सप्ताह से अधिक नहीं हुआ। आज मैं इनके साथ एक ताँगे पर घूमने निकला। दो-तीन दिन से दो एक मुसलमान गुण्डे हम लोगों को प्रायः घूम-फिरकर देखते थे। मैंने उस पर कुछ ध्यान नहीं दिया था। आज एक ताँगेवाला मेरे कमरे के पास ताँगा रोककर बड़ी देर तक किसी से बातें करता रहा। मैंने देखा, ताँगा अच्छा है। पूछा—किराये पर चलोगे! उसने प्रसन्नता से स्वीकार कर लिया। संध्या हो चली थी। हम लोगों ने घूमने के विचार से चलना निश्चित किया और उस पर जा बैठे।

इतने में रामदास चाय का सामान लेकर आया। विजय ने पीकर कृतज्ञता प्रकट करते हुए फिर कहना आरम्भ किया—हम लोग बहुत दूर-दूर घूमकर इस चर्च के पास पहुँचे। इच्छा हुई कि घर लौट चलें पर उस ताँगेवाले ने कहा—बाबू साहब, यह चर्च अपने ढंग का एक ही है, इसे देख तो लीजिए। हम लोग कुतूहल से प्रेरित होकर इसे देखने के लिए चले। सहसा अँधेरी झाड़ी में से वे ही दोनों गुण्डे निकल आये और एक ने पीछे से मेरे सिर पर डण्डा मारा। मैं आकस्मिक चोट से गिर पड़ा। इसके बाद मैं नहीं जानता कि क्या हुआ। फिर, जैसा यहाँ पहुँचा, वह सब तो आप लोग जानती हैं।

घण्टी ने कहा—मैं यह देखते ही भागी। —मुझसे जैसे किसी ने कहा कि, ये सब मुझे ताँगे पर बिठाकर ले भागेंगे। आप लोगों की कृपा से हम लोगों की रक्षा हो गई।

सरला, घण्टी का हाथ पकड़कर भीतर ले गई। उसे कपड़ा बदलने को दिया। दूसरी धोती पहनकर जब वह बाहर आई तब सरला ने पूछा—घण्टी! ये तुम्हारे पति हैं? कितने दिन बीते ब्याह हुए?

घण्टी ने सिर नीचा कर लिया। सरला के मुँह का भाव क्षण-भर में परिवर्तित हो गया, पर वह आज के अतिथियों की अभ्यर्थना में कोई अन्तर नहीं पड़ने

देना चाहती थी। वह अपनी कोठरी, जो बँगले से हटकर उसी बाग में थोड़ी दूर पर थी, साफ करने लगी। घण्टी दालान में बैठी हुई थी। सरला ने आकर विजय से पूछा—भोजन तो करियेगा, मैं बनाऊँ ?

विजय ने कहा—आपकी बड़ी कृपा है। मुझे कोई संकोच नहीं। आपका स्नेह छोड़कर जाने का साहस मुझमें नहीं।

इधर सरला को बहुत दिनों पर दो अतिथि मिले।

दूसरे दिन प्रभात की किरणों ने जब विजय की कोठरी में प्रवेश किया, तब सरला भी विजय को देख रही थी। वह सोच रही थी—यह भी किसी माँ का पुत्र है—अहा ! इस स्नेह की सम्पत्ति से ! दुलार से यह डाटा नहीं गया, अब अपने मन का हो गया !

विजय की आँख खुली। अभी सिर में पीड़ा थी। उसने तकिये में सिर उठाकर देखा—सरला का वात्सल्यपूर्ण मुख। उसने नमस्कार किया। बाथम वायु-सेवन कर लौटा आ रहा था। उसने भी पूछा—विजय बाबू, अब पीड़ा तो नहीं है ?

अब वैसी तो नहीं है इस कृपा के लिए धन्यवाद।

धन्यवाद की आवश्यकता नहीं। हाथ मुँह धोकर आइए, तो कुछ दिखाऊँगा। आपकी आकृति से प्रकट है कि हृदय में कला-सम्बन्धी सुरुचि है ! —बाथम ने कहा।

मैं अभी आता हूँ—कहता हुआ विजय कोठरी के बाहर चला आया। सरला ने कहा —देखो इसी कोठरी के दूसरे भाग में सब सामान मिलेगा। झटपट चाय के समय से आ जाओ। —विजय उधर गया।

पीपल के वृक्ष के नीचे मेज पर एक फूलदान रखा है। उसमें आठ-दस गुलाब के फूल लगे हैं। बाथम लतिका, घण्टी और विजय बैठे हैं। रामदास चाय ले आया। सब लोगों ने चाय पीकर बात आरम्भ की। विजय और घण्टी के सबंध में प्रश्न हुए, और उनका चलता हुआ उत्तर मिला—विजय काशी का एक धनी युवक है और घण्टी उसकी मित्र है। यहाँ दोनों घूमने फिरने आये हैं।

बाथम एक पक्का दुकानदार था। उसने मन में विचारा कि, मुझे इससे क्या सम्भव है कि ये कुछ चित्र खरीद लें, परन्तु लतिका को घण्टी की ओर देखकर आश्चर्य हुआ, उसने पूछा—क्या आप लोग हिन्दू हैं ?

विजय ने कहा—इसमें भी कोई सन्देह है ?

सरला दूर खड़ी इन लोगों की बात सुन रही थी। उसको एक प्रकार की

प्रसन्नता हुई। बाथम के कमरे में विक्रय के चित्र और कलापूर्ण सामान सजाये हुए थे। वह कमरा एक छोटी-सी प्रदर्शनी थी। दो-चार चित्रों पर विजय ने अपनी सम्मति प्रकट की, जिसे सुनकर बाथम बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने विजय से कहा—आप तो सचमुच इस कला के मर्मज्ञ हैं, मेरा अनुमान ठीक ही था।

विजय ने हँसते हुए कहा—मैं चित्रकला में बड़ा प्रेम रखता हूँ, मैंने बहुत से चित्र बनाये भी हैं। और महाशय, यदि आप क्षमा करें, तो मैं यहाँ तक कह सकता हूँ कि इनमें से कितने सुन्दर चित्र—जिन्हें आप प्राचीन और बहुमूल्य कहते हैं—वे असली नहीं हैं।

बाथम को कुछ क्रोध और आश्चर्य हुआ। पूछा—आप इसका प्रमाण दे सकते हैं?

प्रमाण ही नहीं, मैं एक चित्र की प्रतिलिपि कर दूँगा। आप देखते नहीं, इन चित्रों के रंग ही कह रहे हैं कि वे आजकल के हैं—प्राचीन समय में वे बनते ही कहाँ थे, और सोने की नवीनता कैसी बोल रही है। देखिए न!—इतना कहकर विजय ने एक चित्र बाथम के हाथ में उठाकर दिया। बाथम ने उसे ध्यान से देखकर धीरे-धीरे टेबुल पर रख दिया और फिर हँसते हुए विजय के दोनों हाथ पकड़कर वेग से हिला दिया और कहा—आप सच कहते हैं। इस प्रकार से मैं स्वयं ठगा गया और दूसरों को भी ठगता हूँ। क्या कृपा करके आप कुछ दिन और मेरे अतिथि होंगे? आप जितने दिन मथुरा में रहें, मेरे ही यहाँ रहें—यह मेरी हार्दिक प्रार्थना है। आपके मित्र को कोई भी असुविधा न होगी। सरला हिन्दुस्तानी रीति से आपके लिए सब प्रबन्ध करेगी।

लतिका आश्चर्य में थी और घण्टी प्रसन्न हो रही थी। उसने संकेत किया। विजय मन में विचारने लगा—क्या उत्तर दूँ? फिर सहसा उसे स्मरण हुआ कि वह मथुरा में एक निस्सहाय और कंगाल मनुष्य है, जब माता ने छोड़ दिया है, तब उसे कुछ करके ही जीवन बिताना होगा। यदि यह काम कर सका, तो वह झटपट बोल उठा—आप जैसे सज्जन के साथ रहने में मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी, परन्तु मेरा थोड़ा-सा सामान है, उसे ले आना होगा।

धन्यवाद। आपके लिए तो मेरा यही छोटा-सा कमरा आफिस का होगा और आपकी मित्र मेरी स्त्री के साथ रहेगी।

बीच ही में सरला ने कहा—यदि मेरी कोठरी में कष्ट न हो, तो वहीं रह लेगी।

घण्टी मुस्कराई। विजय ने कहा।—हाँ, ठीक तो होगा।

सहसा इस आश्रय के मिल जाने से उन दोनों को विचार करने का अवसर नहीं मिला।

बाथम ने कहा—नहीं नहीं इसमें मैं अपना अपमान समझूँगा। घण्टी हँसने लगी। बाथम लज्जित हो गया परन्तु लतिका ने धीरे से बाथम को समझा दिया कि घण्टी को सरला के साथ रहने में विशेष सुविधा होगी।

विजय और घण्टी का अब वहीं रहना निश्चित हो गया।

बाथम के यहाँ रहते विजय का महीना बीत गया। उसमें काम करने की स्फूर्ति और परिश्रम की उत्कण्ठा बढ़ गई है। चित्र लिये वह दिन भर तूलिका चलाया करता है। घंटा बीतने पर वह एक बार सिर उठाकर खिड़की से मौल-सिरी के वृक्ष की हरियाली देख लेता है। वह नादिरशाह का एक चित्र अंकित कर रहा था जिसमें नादिरशाह हाथी पर बैठकर उसकी लगाम माँग रहा है। मुगल दरबार के चापलूस चित्रकार ने यद्यपि उसे मूर्ख बनाने के लिए ही यह चित्र बनाया था परन्तु इस साहसी आक्रमणकारी के मुख से भय नहीं प्रत्युत पराधीन सवारी पर चढ़ने की एक शंका ही प्रकट हो रही है। चित्रकार को उसे भयभीत चित्रित करने का साहस नहीं हुआ। सम्भवतः उस आँधी के चले जाने के बाद मुहम्मदशाह उस चित्र को देखकर बहुत प्रसन्न हुआ होगा। प्रतिलिपि ठीक-ठीक हो रही थी। बाथम उस चित्र को देखकर बहुत प्रसन्न हो रहा था। विजय की कला-कुशलता में उसका पूरा विश्वास हो चला था—वैसे ही पुराने रंग-मसाले वैसी ही अंकन शैली थी।

कोई भी उसे देखकर यह नहीं कह सकता कि यह प्राचीन दिल्ली कलम का चित्र नहीं है।

आज चित्र पूरा हुआ है। अभी वह तूलिका हाथ में रख ही रहा था कि दूर पर घण्टी दिखाई दी। उसे जैसे उत्तेजना की एक घूँट मिली थकावट मिट गई। उसने तर आँखों से घण्टी का अल्हड़ यौवन देखा। वह इतना अपने काम में लवलीन था कि उसे घण्टी का परिचय इन दिनों बहुत साधारण हो गया था। आज उसकी दृष्टि में नवीनता थी। उसने उल्लास से पुकारा—घण्टी!

घंटी की उदासी पल भर में चली गई। वह एक गुलाब का फूल तोड़ती हुई उस खिड़की के पास आ पहुँची। विजय ने कहा—मेरा चित्र पूरा हो गया।

आह! मैं तो घबरा गई थी कि चित्र कब तक बनेगा! ऐसा भी कोई काम करता है! न न न। विजय बाबू, अब आप दूसरा चित्र न बनाना—मुझे यहाँ लाकर अच्छे वन्दीगृह में रख दिया! कभी खोज तो लेते एक दो बात भी तो

पूछ लेते ! —घण्टी ने उलाहनों की झड़ी लगा दी। विजय ने अपनी भूल का अनुभव किया। यह निश्चित नहीं है कि सौन्दर्य हमें सब समय आकृष्ट कर ले। आज विजय ने एक क्षण के लिए आँख खोलकर घण्टी को देखा—उस बालिका में कुतूहल छलक रहा है ! सौन्दर्य का उन्माद है ! आकर्षण है !

विजय ने कहा—तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ घण्टी !

घण्टी ने कहा—आशा है, अब कष्ट न दोगे !

पीछे से बाथम ने प्रवेश करते हुए कहा—विजय बाबू बहुत सुन्दर 'माडल' है, देखिए यदि आप नादिरशाह का चित्र पूरा कर चुके हों तो एक मौलिक चित्र बनाइए !

विजय ने देखा, यह सत्य है। एक कुशल शिल्पी की बनाई हुई प्रतिमा—घण्टी—खड़ी रही। बाथम चित्र देखने लगा। फिर दोनों चित्रों को मिलाकर देखा। उसने सहसा कहा—आश्चर्य। इस सफलता के लिए बधाई !

विजय प्रसन्न हो रहा था। उसी समय बाथम ने फिर कहा—विजय बाबू मैं घोषणा करता हूँ कि आप भारत के एक प्रमुख चित्रकार होंगे ! क्या आप मुझे आज्ञा देंगे कि मैं इस अवसर पर आपके मित्र को कुछ उपहार दूँ ?

विजय हँसने लगा। बाथम ने अपनी उँगली से हीरे की अँगूठी निकाली और घण्टी की ओर बढ़ाना चाहा। वह हिचक रहा था। घण्टी हँस रही थी। विजय ने देखा, चंचल घण्टी की आँखों में हीरे का पानी चमकने लगा था। उसने समझा, यह बालिका प्रसन्न होगी। सचमुच दोनों हाथों में सोने की एक-एक पतली चूड़ियों के अतिरिक्त और कोई आभूषण घण्टी के पास न था। विजय ने कहा—तुम्हारी इच्छा हो, तो पहन सकती हो—घण्टी ने हाथ फैलाकर ले लिया।

व्यापारी बाथम ने फिर गला साफ करते हुए कहा—विजय बाबू स्वतन्त्र व्यवसाय और स्वावलम्बन का महत्त्व आप लोग कम समझते हैं, यही कारण है कि भारतीयों के उत्तम-से-उत्तम गुण दबे रह जाते हैं। मैं आज आपसे यह अनुरोध करता हूँ कि आपके माता-पिता चाहे जितने धनवान हों, परन्तु आप इस कला को व्यवसाय की दृष्टि से कीजिए। आप सफल होंगे, मैं इसमें आपका सहायक हूँ। क्या आप इस नये माडल पर एक मौलिक चित्र बनावेंगे ?

विजय ने कहा—आज विश्राम करूँगा, कल आपसे कहूँगा।

४

आज कितने दिनों पर विजय सरला की कोठरी में बैठा है। घण्टी लतिका के साथ बात करने के लिए चली गई थी। विजय को सरला ने अकेले पाकर कहा—बेटा! तुम्हारी भी माँ होगी, उसको तुम एकबारगी भूलकर इस छोकरी को लिए इधर-उधर मारे-मारे क्यों फिर रहे हो? आह, वह कितना दुखी होगी!

विजय सिर नीचा किये चुप रहा। सरला फिर कहने लगी—विजय! कलेजा रोने लगता है, हृदय कचोटने लगता है, आँखें छटपटाकर उसे देखने के लिए बाहर निकलने लगती हैं, उत्कण्ठा साँस बनकर दौड़ने लगती है। पुत्र का स्नेह बड़ा पागल स्नेह है विजय! स्त्रियाँ ही स्नेह की विचारक हैं। पति के प्रेम और पुत्र के स्नेह में क्या अन्तर है, यह उनको ही विदित है। अहा, तुम निष्ठुर लड़के क्या जानोगे! लौट जाओ मेरे बच्चे! अपनी माँ की सूनी गोद में लौट जाओ।—सरला का गम्भीर मुख किसी व्याकुल आकांक्षा से इस समय विकृत हो रहा था।

विजय को आश्चर्य हुआ। उसने कहा—क्या आपके भी कोई पुत्र था?

था विजय, बहुत सुन्दर था! परमात्मा के वरदान के समान शीतल, शान्तिपूर्ण था। हृदय की आकांक्षा के सदृश गर्म। मलय पवन के समान कोमल सुखद स्पर्श। वह मेरी निधि, मेरा सर्वस्व था! था नहीं, मैं कहती हूँ कि है, कहीं है! वह अमर है, वह सुन्दर है, वही मेरा सत्य है। आह विजय! पचीस बरस हो गये—उसे देखे हुए पचीस बरस!—दो युग से कुछ ऊपर! पर मैं उसे देखकर मरूँगी।—कहते-कहते सरला की आँखों से आँसू गिरने लगे।

इतने में एक अन्धा लाठी टेकते हुए सरला के द्वार पर आया। उसे देखते ही सरला गरज उठी—आ गया! विजय, यही है उसे ले भागने वाला! पूछो, इसी से पूछो!

उस अन्धे ने लकड़ी रखकर अपना मस्तक पृथ्वी पर टेक दिया, फिर सिर ऊँचा कर बोला—माता! भीख दो! तुमसे भीख लेकर जो मैं पेट भरता हूँ वही तो मेरा प्रायश्चित्त है। मैं अपने कर्म का फल भोगने के लिए भगवान् की

आज्ञा से तुम्हारी ठोकर खाता हूँ। क्या मुझे और कहीं भीख नही मिलती ? नही यही मेरा प्रायश्चित्त है। माता अब क्षमा की भीख दो। देखती नही हो नियति ने इस अन्ध को तुम्हारे पास तक पहुँचा दिया। क्या वही तुमको—आँखोवाली को—तुम्हारे पुत्र तक न पहुचा देगा ?

विजय विस्मय से देख रहा था कि अन्धे की फूटी आँखो से आँसू बह रहे है। उसने कहा—भाई मुझे अपनी राम-कहानी तो सुनाओ।

घण्टी भी वही आ गई थी। अब अन्धा सावधान होकर बैठ गया। उसने कहना आरम्भ किया—

हमारा घराना एक प्रतिष्ठित धर्मगुरुओ का था। बीसो गाव के लोग हमारे चेले थे। हमारे पूर्वजो की तपस्या और त्याग से यह मर्यादा मुझे उत्तराधिकार मे मिली थी। वशानुक्रम से हम लोग मन्त्रोपदेष्टा होते आये थे। हमारे शिष्य सम्प्रदाय मे यह विश्वास था कि सासारिक आपदाए निवारण करने की हम लोगो मे बहुत बडी रहस्यपूर्ण शक्ति है। रही होगी मेरे पूर्वजो मे परन्तु मैं उन सब गुणो से रहित था। मैं पल्ले सिरे का धूर्त्त था। मुझको मन्त्रो पर उतना विश्वास न था जितना अपने चुटकुलो पर। मे चालाकी से भूत उतार देता रोग अच्छे कर देता बन्ध्या को सन्तान देता ग्रहो की आकाश गति मे परिवर्तन कर देता व्यवसाय मे लक्ष्मी की वर्षा कर देता। चाहे सफलता दो एक को ही मिलती रही हो परन्तु धाक मे कमी न थी। मै कैसे क्या-क्या करता उन सब घृणित बातो को न कहकर केवल सरला के पुत्र की बात सुनाता हूँ।

पाली गाव मे मेरा एक शिष्य था। उसने एक महीने की एक लडकी और अपनी युवती विधवा छोडकर अकाल मे ही स्वर्ग यात्रा की। वह विधवा धनी थी। उसको पुत्र की बडी लालसा थी परन्तु पति थे नही पुनर्विवाह असम्भव था। उसके मन मे किसी तरह यह बात बैठ गई कि बाबाजी यदि चाहेगे तो यही पुत्री पुत्र बन जायगी। अपने इस प्रस्ताव को लेकर बडे प्रलोभन के साथ वह मेरे पास आई। मैने देखा सुयोग है। उससे कहा—तुम किसी से कहना मत एक महीने बाद गगासागर मकर-सक्रान्ति के योग मे यह किया जा सकता है। वही पर गगा-समुद्र हो जाती है फिर लडकी से लडका क्यो नही होगा। उसके मन मे यह बात बैठ गई। हम लोग ठीक समय पर गगासागर पहुँचे। मैंने अपना लक्ष्य ढूढना आरम्भ किया। उसे मन ही मन ठीक भी कर लिया। उस विधवा से लडकी लेकर मै सिद्धि के लिए एकान्त मे गया—बन मे किनारे पर मे पहुँच गया। पुलिस उधर लोगो को जाने नही देती। उसकी आखो से बचकर मे जगल की हरियाली मे चला गया। थोडी देर मे दौडता हुआ मेले की ओर

आया। और उस समय मैं बराबर चिल्ला रहा था —'बाघ ! बाघ !' लोग भय-भीत होकर भागने लगे। मैंने देखा कि मेरा निश्चित बालक वहीं पड़ा है। उसकी माँ अपने साथियों को उसे दिखाकर किसी आवश्यक काम में दो-चार मिनट के लिये हट गई थी। उसी समय भगदड़ का प्रारम्भ हुआ था। मैंने झट उस लड़की को वहीं रखकर लड़के को उठा लिया और फिर कहने लगा—देखो यह किसकी लड़की है ! पर उस भीड़ में कौन किसकी सुनता था। मैं एक साँस में अपनी झोपड़ी की ओर आया—और हँसते-हँसते विधवा की गोद में लड़की के बदले लड़का देकर अपने को सिद्ध प्रमाणित कर सका। यहाँ पर यह कहने की आवश्यकता नहीं कि वह स्त्री किस प्रकार उस लड़के को ले आई। बच्चा भी छोटा था, ढँककर किसी प्रकार हम लोग निर्विघ्न लौट आये। विधवा को मैंने समझा दिया था कि तीन दिन तक कोई इसका मुँह न देख सके, नहीं तो फिर लड़की बन जाने की सम्भावना है। मैं बराबर उस मेले में घूमता रहा और अब उस लड़की की खोज में लगा। पुलिस ने भी खोज की, पर उसका कोई लेनेवाला न मिला। मैंने देखा कि एक निस्सन्तान चौबे की विधवा ने उस लड़की को पुलिस वालों से पालने के लिए माँग लिया। और मैं अब उसके साथ चला। उसे दूसरे स्टीमर पर बैठा कर ही मैंने साँस ली। सन्तान-प्राप्ति में मैं उसका भी सहायक था। मैंने देखा कि यही सरला, जो आज मुझे भिक्षा दे रही है लड़के के लिए बराबर रोती रही पर मेरा हृदय पत्थर था, न पिघला। लोगों ने बहुत कहा कि तू इस लड़की को ही लेकर पाल-पास, पर उस ता गोविन्दी चौबाइन की गोद में रहना था।

घंटी अकस्मात् चौंक उठी—क्या कहा ! गोविन्दी चौबाइन ? हाँ गोविन्दी उस चौबाइन का नाम गोविन्दी था ? —जिसने उस लड़की को अपनी गोद में लिया—अंधे ने कहा।

घण्टी चुप हो गई। विजय ने पूछा—क्या है घण्टी ?

घण्टी ने कहा—गोविन्दी तो मेरी माता का नाम था। और वह यह कहा करती तुझे मैंने अपनी ही लड़की-सा पाला है !

सरला ने पूछा—क्या तुमको गोविन्दी ने कहीं से पाकर ही पाल-पास कर बड़ा किया, वह तुम्हारी माँ नहीं थी ?

घण्टी—नहीं। वह आप भी यजमानों की भीख पर जीवन व्यतीत करती रही और मुझे भी दरिद्र छोड़ गई।

विजय ने कौतुक से कहा—तब तो घण्टी, तुम्हारी माता का पता लग सकता है ? क्यों जी बुड्ढे ! तुम यदि इनको वही लड़की समझो, जिसको तुमने बदला

किया था, तो क्या इसकी माँ का पता बता सकते हो ?

ओह ! मैं उसे भलीभाँति जानता हूँ पर अब वह कहाँ है, नही कह सकता। क्योकि उस लडके को पाकर भी वह सुखी न रह सकी। उसे राह म ही सन्देह हो गया कि यह मरी लडकी से लडका नही बना, वस्तुत कोई दूसरा लडका है पर मैंने उसे डाँटकर समझा दिया कि अब अगर तू किसी से कहेगी, तो लडका चुराने के अभियोग म सजा पावेगी। वह लडका भी रोते हा दिन बिताता। कुछ दिन बाद हरद्वार का एक पडा गाँव म आया। वह उसी विधवा के घर म ठहरा। उन दोनो म गुप्त प्रेम हो गया। अकस्मात् वह एक दिन लडके को लिये मरे पास आई और बोली — इस नगर के किसी अनाथालय म रख दो, मैं अब हरद्वार जाती हूँ। मैने कुछ प्रतिवाद न किया, क्योकि उसका अपने गाव के पास से टल जाना ही अच्छा समझता था। मैं सहमत हुआ। और वह विधवा उसी पडे के साथ हरद्वार चली गई। उसका नाम था नन्दा।

अंधा इतना कहकर चुप हुआ।

विजय ने कहा—बुड्ढे ! तुम्हारी यह दशा कैसे हुई ?

वह सुनकर क्या करोगे। अपनी करनी का फल भोग रहा हूँ इसीलिए मैं अपनी पाप-कथा सबसे कहता फिरता हूँ, तभी तो इनसे भेट हुई ! भीख दो माता, अब हम जायें—अन्धे ने कहा।

सरला ने कहा—अच्छा, एक बात बताओगे ?

क्या ?

उस बालक के गले म एक सोने का बडा-सा यत्र था, उसे भी तुमने उतार लिया होगा ? —सरला ने उत्कण्ठा से पूछा।

ने न न। वह बालक तो उसे बहुत दिनो तक पहने था, और मुझे स्मरण है, वह तब तक था, जब मैंने उसे अनाथालय म सौंपा था। ठीक स्मरण है, वहा के अधिकारी से मैंने कहा था—इसे सुरक्षित रखिए, सम्भव है कि इसकी यही पहिचान हो, क्योकि उस बालक पर मुझे दया आई, परन्तु वह दया पिशाच की दया थी।

सहसा विजय ने पूछा—क्या आप बता सकती है—वह कैसा यत्र था ?

वह यत्र हम लोगो के वश का प्राचीन रक्षा-कवच था, न जाने कब से मेरे कुल के सब लडको को वह एक बरस की अवस्था तक पहनाया जाता था। वह एक त्रिकोण स्वर्ण-यत्र था। —कहते-कहते सरला के आँसू बहने लगे।

अन्धे को भीख मिली। वह चला गया। सरला उठकर एकान्त म चली गई। घण्टी कुछ काल तक विजय को अपनी ओर आकर्षित करने के चुटकुले छोडती रही, परन्तु विजय एकान्त-चिन्ता-निमग्न बना रहा।

५

विचार-सागर में डूबती-उतराती हुई, घण्टी आज मौलसिरी के नीचे एक शिला-खण्ड पर बैठी है। वह अपने मन से पूछती थी—विजय कौन है, जो मैं उस रसालवृक्ष समझकर लता के समान लिपटी हूँ ! फिर उसे आप-ही-आप उत्तर मिलता—तो और दूसरा कौन है मेरा ? लता का तो यही धर्म है कि जो समीप अवलम्बन मिले, उसे पकड़ ले और इस सृष्टि में सिर ऊँचा करके खड़ी हो जाय। अहा ! क्या मेरी माँ जीवित है ?

पर विजय तो चित्र बनाने में लगा है। वह मेरा ही तो चित्र बनाता है, तो भी मैं उसके लिए निर्जीव प्रतिमा हूँ। कभी-कभी वह सिर उठाकर मेरी भौंहों के झुकाव को, कपोलों के गहरे-रंग को देख लेता है और फिर तूलिका *की मार्जनी से उसे हृदय के बाहर निकाल देता है ! यह मेरी आराधना तो नहीं है।*

सहसा उसके विचारों में बाधा पड़ी। बाथम ने आकर घण्टी से कहा—क्या मैं कुछ पूछ सकता हूँ ?

कहिये—सिर का कपड़ा सम्हालते हुए घण्टी ने कहा।

विजय से आपकी कितने दिनों की जान-पहचान है ?

बहुत थोड़े दिनों की—यहीं वृन्दावन में।

तभी वह कहता था—

कौन क्या कहता था—

दारोगा। यद्यपि उसका साहस नहीं था कि मुझसे कुछ अधिक कहे पर उसका अनुमान है कि आपको विजय कहीं से भगा लाया है !

घण्टी किसी की कोई नहीं है, जो उसकी इच्छा होगी वही करेगी। मैं आज ही विजय बाबू से कहूँगी कि वह मुझे लेकर किसी दूसरे घर में चले। —बाथम ने देखा कि वह स्वतन्त्र युवती तनकर खड़ी हो गई। उसकी नस फूल रही थी। इसी समय लतिका ने वहाँ पहुँच कर एक काण्ड उपस्थित कर दिया। उसने बाथम की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए पूछा—तुम्हारा क्या अभिप्राय था ?

सहसा आक्रान्त होकर बाथम ने कहा—कुछ नहीं । मैं चाहता था कि यह ईसाई होकर अपनी रक्षा कर ले क्योंकि इसके

बात काटकर लतिका ने कहा—और यदि मैं हिन्दू हो जाऊँ ?

बाथम ने फँसे हुए गले से कहा—दोनों हो सकता है । पर तुम मुझे क्षमा करोगी लतिका ?

बाथम के चले जाने पर लतिका ने देखा कि अकस्मात् अन्धड़ के समान यह बातों का झोंका आया और निकल गया ।

घण्टी रो रही थी । लतिका उसके आँसू पोंछती थी । बाथम के हाथ का हार की अँगूठी सहसा घण्टी की उँगलियों में लतिका ने देखी और वह चौंक उठी । लतिका का कोमल हृदय, कठोर कल्पनाओं से भर गया । वह उसे छोड़ कर चली गई ।

चाँदनी निकलने पर घण्टी आप में आई । अब उसकी निस्सहाय अवस्था स्पष्ट हो गई । वृन्दावन की गलियों में यों ही फिरने वाली घण्टी, इन कई महीनों की निश्चिन्त जीवनचर्या से एक नागरिक महिला बन गई थी । उसके रहन सहन बदल गये थे । हाँ एक बात और उसके मन में खटकने लगी थी—वह अन्धे की कथा । क्या सचमुच उसकी माँ जीवित है ? उसका मुक्त हृदय चिन्ताओं की उमसवाली सध्या में पवन के समान निरुद्ध हो उठा । वह निरीह बालिका के समान फूट-फूटकर रोने लगी ।

सरला ने आकर उसे पुकारा—घण्टी, क्या यहीं बैठी रहोगी ?—उसने सिर नीचा किए हुए उत्तर दिया—अभी आती हूँ । सरला चली गई । कुछ काल तक वह बैठी रही, फिर उसी पत्थर पर अपने पैर समेटकर वह लेट गई । उसकी इच्छा हुई—आज ही यह घर छोड़ दे पर वह वैसा न कर सकी । विजय को एक बार अपनी मनोव्यथा सुना देने की उसे बड़ी लालसा थी । वह चिन्ता करते करते सो गई ।

विजय अपने चिन्ता को रखकर आज बहुत दिनों पर मदिरा का सेवन कर रहा था । शीशे के एक बड़े ग्लास में सोडा और बरफ से मिली हुई मदिरा सामने मेज से उठाकर वह कभी-कभी दो घूँट पी लेता है । धीरे धीरे नशा गहरा हो चला, मुँह पर लाली दौड़ गई । वह अपनी सफलताओं में उत्तेजित था । अकस्मात् उठकर बँगले से बाहर आया, बगीचे में टहलने लगा । घूमता हुआ वह घण्टी के पास जा पहुँचा । अनाथा-सी घण्टी अपने दुःखों में लिपटी हुई दोनों हाथों से अपने घुटने लपेटे हुए पड़ी थी । वह दीनता की प्रतिमा थी । काली वाली आँखों ने चाँदनी रात में यह देखा । वह उसके ऊपर झुक गया, उसे प्यार कर

लेन की उसकी इच्छा हुई, किसी वासना से नहीं, वरन् एक सहृदयता से। वह धीरे-धीरे अपने होंठ उसके कपोल के पास तक ले गया। उसकी गरम साँसों की अनुभूति घण्टी को हुई। वह पलभर के लिए पुलकित हो गई पर आँखें बन्द किये रही। विजय ने प्रमाद में एक दिन उसके रंग डालने के अवसर पर उसका आलिंगन करके, घण्टी के हृदय में नवीन भावों की सृष्टि कर दी थी। वह उसी प्रमोद का, आँख बन्द करके आवाहन करने लगी परन्तु नशे में चूर विजय न जाने क्यों जैसे सचेत हो गया। उसके मुँह से धीरे-से निकल पड़ा—यमुना!—और वह हटकर खड़ा हो गया।

विजय चिन्तित भाव से लौट पड़ा। वह घूमते-घूमते बँगले के बाहर निकल आया, और सड़क पर यों ही चलने लगा। आधे घण्टे तक वह चला गया फिर उसी सड़क से लौटने लगा। बड़े-बड़े वृक्षों की छाया ने सड़क पर पड़ती हुई चाँदनी को कहीं-कहीं छिपा लिया है। विजय उसी अन्धकार में से चलना चाहता है। यह चाँदनी से यमुना और अँधेरी से घण्टी की तुलना करता हुआ, अपने मन के विनोद का उपकरण जुटा रहा है। सहसा उसके कानों में कुछ परिचित स्वर सुनाई पड़े। उसे स्मरण हो आया—उसी इक्कवाल का शब्द। हाँ ठीक है, वही तो है। विजय ठिठककर खड़ा हो गया। साइकिल पकड़े एक सब-इंस्पेक्टर और साथ में वही ताँगेवाला दोनों बातें करते हुए आ रहे हैं।

सब०—क्यों नवाब! आजकल कोई मामला नहीं देते हो?

ताँगे०—इतने मामले दिये मेरी भी खबर आपने ली?

सब०—तो तुम रुपया ही चाहते हो न?

ताँगे०—पर यह इनाम रुपयों में न होगा!

सब०—फिर क्या?

ताँगे—रुपया आप लीजिए, मुझे तो वह बुत मिल जानी चाहिए। इतना ही करना होगा।

सब०—ओह! तुमने फिर वही बात छेड़ी। तुम नहीं जानते हो, यह बाथम एक अंग्रेज है और उसकी उन लोगों पर मेहरबानी है। हाँ इतना हो सकता है कि तुम उसको अपने हाथों में कर लो, फिर मैं तुमको फँसने न दूँगा।

ताँगे—यह तो जान-जोखम का सौदा है!

सब०—फिर मैं क्या करूँ? पीछे लगे रहो, कभी तो हाथ लग जायगी। मैं सम्हाल लूँगा। हाँ, यह तो बताओ, उस चौबाइन का क्या हुआ, जिसे तुम बिन्दरावन की बता रहे थे। मुझे नहीं दिखलाया, क्या?

ताँग०—वही तो वहाँ है । यह परदेसी न जान कह स कूद पडा । नही तो अब तक—

दोनो बात करते अब आगे बढ गय । विजय न पीछा करक बाता को सुनना अनुचित समझा । वह बँगल की ओर शीघ्रता से चल पडा ।

कुरसी पर बैठे वह सोचन लगा—सचमुच घण्टी एक निस्सहाय युवती ह उसकी रक्षा करनी ही चाहिए । उसी दिन स विजय न घण्टी स पूर्ववत् मित्रता का बताव प्रारम्भ कर दिया—वही हँसना-बोलना, वही साथ-साथ घूमना फिरना ।

विजय एक दिन हण्डबग की सफाई कर रहा था । अकस्मात् उस मगल का वह यन्त्र और साना मिल गया । उसन एकान्त म बैठकर उस फिर बनान का प्रयत्न किया और वह कृतकाय भी हुआ—सचमुच वह एक त्रिकोण स्वर्ण-यत्र बन गया । विजय क मन म लडाई खडी हो गई—उसने सोचा कि सरला स उसक पुत्र को मिला दूँ, फिर उसे शका हुई, सम्भव ह कि मगल उसका पुत्र न हो ! उसन अनवधानता स उस प्रश्न को टाल दिया । नही कहा जा सकता कि इस विचार म मगल के प्रति विद्वेष न भी कुछ सहायता की थी या नही ।

बहुत दिनो की पडी हुइ एक सुन्दर वासुरी भी उसके बेग म मिल गई । वह उस लेकर बजान लगा । विजय की दिनचया नियमित हा चली । चित्र बनाना वशी बजाना और कभी-कभी घण्टी के साथ बैठकर तागे पर घूमन चले जाना, इन्ही कामो म उसका दिन सुख स बीतन लगा ।

६

वृन्दावन से दूर एक हरा-भरा टीला है। यमुना उसी से टकराकर बहती है। बड़े-बड़े वृक्षों की इतनी बहुतायत है कि वह टीला दूर से देखने पर एक बड़ा छायादार निकुंज मालूम पड़ता है। एक ओर पत्थर की सीढ़ियाँ हैं, जिनसे चढ़कर ऊपर जाने पर एक छोटा-सा श्रीकृष्ण का मन्दिर है। और उसके चारों ओर कोठरी और दालान हैं।

गोस्वामी कृष्णशरण उस मन्दिर के अध्यक्ष, एक साठ-पैंसठ वर्ष के तपस्वी पुरुष हैं। उनका स्वच्छ वस्त्र, धवल केश, मुखमण्डल की अरुणिमा और आँखों में भरी ओज अलौकिक प्रभा का सृजन करती है। मूर्ति के सामने ही दालान में वे प्रातः बैठे रहते हैं। कोठरियों में कुछ वृद्ध साधु और वयस्क स्त्रियाँ रहती हैं। सब भगवान् का सात्त्विक प्रसाद पाकर सन्तुष्ट और प्रसन्न हैं। यमुना भी यहीं रहती है।

एक दिन कृष्णशरण बैठे हुए कुछ लिख रहे थे। उनके कुशासन पर लेखन-सामग्री पड़ी थी। एक साधु बैठा हुआ उन पत्रों को एकत्र कर रहा था। प्रभात अभी तरुण नहीं हुआ था, वसन्त का शीतल पवन कुछ वस्त्रों की आवश्यकता उत्पन्न कर रहा था। यमुना उस प्रांगण में झाड़ू दे रही थी। गोस्वामी ने लिखना बन्द करके साधु से कहा—इन्हें समेटकर रख दो। साधु ने लिपिपत्रों को बाँधते हुए पूछा—आज तो एकादशी है, भागवत का पाठ न होगा?

नहीं।

साधु चला गया। यमुना अभी झाड़ू लगा रही थी। गोस्वामी ने सस्नेह पुकारा—यमुने!

यमुना झाड़ू रखकर हाथ जोड़कर सामने आई। कृष्णशरण ने पूछा—बेटी! तुझे कोई कष्ट तो नहीं है?

नहीं महाराज!

यमुने! भगवान् दुखियों से अत्यन्त स्नेह करते हैं। दुःख भगवान् का सात्त्विक दान है—मंगलमय उपहार है। इसे पाकर एक बार अन्तःकरण के सच्चे स्वर से

पुकारने का, सुख अनुभव करने का अभ्यास करो। विश्राम का निश्वास, केवल भगवान् के नाम के साथ ही निकलता है बेटी!

यमुना गद्गद् हो रही थी। एक दिन भी ऐसा नहीं बीतता, जिस दिन गोस्वामी आश्रमवासियों को अपनी सान्त्वनामयी वाणी से सन्तुष्ट न करते। यमुना ने कहा—महाराज और कोई सेवा हो, तो आज्ञा दीजिए।

मंगल इत्यादि ने मुझसे अनुरोध किया है कि मैं सर्वसाधारण के लाभ के लिए आश्रम में कई दिनों तक सार्वजनिक प्रवचन करूँ। यद्यपि मैं इसे अस्वीकार करता रहा, किन्तु बाध्य होकर मुझे करना ही पड़ेगा। यहाँ पूरी स्वच्छता रहनी चाहिए। कुछ बाहरी लोगों के आने की सम्भावना है।

यमुना नमस्कार करके चली गई।

कृष्णशरण चुपचाप बैठे रहे। वे एकटक कृष्णचन्द्र की मूर्ति की ओर देख रहे थे। यह मूर्ति वृन्दावन की और मूर्तियों में विलक्षण थी। एक श्याम ऊर्जस्वित, वयस्क और प्रसन्न गम्भीर मूर्ति खड़ी थी। बायें हाथ से कटि से आबद्ध नन्दक खड्ग की मूठ पर बल दिये दाहिने हाथ की अभय मुद्रा में आश्वासन की घोषणा करते हुए कृष्णचन्द्र की यह मूर्ति, हृदय की हलचलों को शान्त कर देती थी। शिल्पी की कला सफल थी।

कृष्णशरण एकटक मूर्ति को देख रहे थे। गोस्वामी की आँखों से उस समय बिजली निकल रही थी, जो प्रतिमा को सजीव बना रही थी। कुछ देर के बाद उनकी आँखों से जलधारा बहने लगी। और वे आप-ही आप कहने लगे—तुम्हीं ने प्रण किया था कि जब-जब धर्म की ग्लानि होगी, हम उसका उद्धार करने के लिए आवेंगे! तो क्या अभी विलम्ब है? तुम्हारे बाद एक शान्ति का दूत आया था, वह दुःख को अधिक स्पष्ट बनाकर चला गया। विरागी होकर रहने का उपदेश दे गया, परन्तु उस शक्ति को स्थिर रखने के लिए शक्ति कहाँ रही? फिर से बर्बरता और हिंसा ताण्डव-नृत्य करने लगी है—क्या अब भी विलम्ब है?

जैसे मूर्ति विचलित हो उठी।

एक ब्रह्मचारी ने आकर नमस्कार किया। वे भी आशीर्वाद देकर उसकी ओर घूम पड़े। पूछा—*मंगलदेव! —तुम्हारे ब्रह्मचारी कहाँ है?*

आ गये हैं गुरुदेव!

उन सबों को काम बाँट दो और कर्त्तव्य समझा दो। आज प्रायः बहुत-से लोग आवेंगे।

जैसी आज्ञा हो, परन्तु गुरुदेव! मेरी एक शंका है।

मगल, इस प्रवचन म अपनी अनुभूति सुनाऊँगा, घबराओ मत। तुम्हारी सब शकाओ का उत्तर मिलेगा।

मगलदेव न सन्तोष स सिर झुका दिया। वह लौटकर अपन ब्रह्मचारियो क पास चला आया।

आश्रम म दो दिनो स कृष्ण-कथा हो रही थी। गोस्वामीजी बाल-चरित्र कहकर उसका उपसहार करत हुए बोल—

धर्म और राजनीति स पीडित यादव-जनता का उद्धार करक भी श्रीकृष्ण न दखा कि यादवो को ब्रज म शान्ति न मिलगी।

प्राचीनतत्र क पक्षपाती नृशस राजन्य-वर्ग मन्वन्तर को मानन क लिए प्रस्तुत न थ। हाँ वह मनन की विचार-धारा सामूहिक परिवर्तन करन वाली थी। क्रमागत रूढियाँ और अधिकार उसक सामन काँप रह थे। इन्द्र-पूजा बन्द हुई, धर्म का अपमान! राजा कस मारा गया, राजनीतिक उलटफेर!! ब्रज पर प्रलय क बादल उमडे। भूख भेडिया क समान, प्राचीनता क समथक यादवो पर टूट पड। बार-बार शत्रुओ को पराजित करक भी श्रीकृष्ण न निश्चय किया कि ब्रज को छोड दना चाहिए।

व यदुकुल को लेकर नवीन उपनिवश की खोज म पश्चिम की ओर चल पड।

गोपाल न ब्रज छोड दिया। यही ब्रज है। अत्याचारियो की नृशसता स यदु-कुल क अभिजात-वर्ग न ब्रज को सुना कर दिया। पिछले दिनो म ब्रज म बसी हुई पशुपालन करन वाली गोपियाँ—जिनके साथ गोपाल खले थ जिनके सुख को सुख और दु ख को दु ख समझा, जिनक साथ जिये, बडे हुए, जिनक पशुओ क साथ वे कडी धूप म घनी अमराइयो म, करील के कुजो म विश्राम करते थे—वे गोपिया, वे भोली-भाली सरल हृदय अकपट स्नेहवाली गोपियाँ, रक्त-मास क हृदयवाली गोपियाँ—जिनके हृदय म दया थी, माया-ममता थी, आशा थी, विश्वास था, प्रेम का आदान-प्रदान था, —इसी यमुना क कछारो म वृक्षो क नीचे, वसन्त की चादनी म, जेठ की धूप म छाँह लेती हुई, गोरस बचकर लौटती हुई, गोपाल की कहानियाँ कहती। निवासित गोपाल की सहानुभूति स, उस क्रीडा क स्मरण स, उन प्रकाशपूर्ण आखो की ज्योति स, गोपियो की स्मृति इन्द्र-धनुष-सी रँग जाती। वे कहानियाँ प्रेम स अतिरजित थी, स्नह स परिप्लुत थी, आदर स आर्द्र थी, सबको मिलाकर उनम एक आत्मीयता थी—हृदय की वदना थी, आखो का आँसू था! उन्ही को सुनकर, इस छोड हुए ब्रज म उसी दु ख-

ख का अतीत महानुभूति से लिपटी हुई कहानियों को सुनकर आज भी हम-तुम ासू बहा देते है। क्या? वे प्रेम करके प्रेम सिखलाकर निर्मम स्वार्थ पर हृदयों ा मानव प्रेम को विकसित करके व्रज को छोड़कर चले गये—चिरकाल के नए। बाल्यकाल की लीलाभूमि व्रज का आज भी इसीलिए गौरव है। यह वही ज है। वही यमुना का किनारा है!

कहते-कहते गोस्वामी की आंखो से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। श्रोता ी रो रहे थे।

गोस्वामी चुप होकर बैठ गये। श्रोताओ ने इधर उधर होना आरंभ किया। मंगलदेव आश्रम में ठहरे हुए लोगों के प्रबन्ध में लग गया परन्तु यमुना?—वह र एक मौलसिरी के वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठी थी। वह सोचती थी—ऐसे भगवान् भी बाल्यकाल में अपनी माता से अलग कर दिये गये थे! उसका हृदय व्याकुल हो उठा। वह विस्मृत हो गई कि उसे शान्ति की आवश्यकता है। डेढ़ साह के अपने हृदय के टुकड़े के लिए वह मचल उठी—वह अब कहाँ है? क्या जीवित है? उसका पालन कौन करता होगा? वह जियेगा अवश्य ऐसे बिना यत्न के बालक जीते है—इसका तो इतना बड़ा प्रमाण मिल गया है! हाँ और वह एक नर रत्न होगा महान् होगा! —क्षण भर में माता का हृदय मंगल कामना से भर उठा। इस समय उसकी आंखो में आँसू न थे। वह शान्त बैठी थी। चाँदनी निखर रही थी! मौलसिरी के पत्तो के अन्तराल से चन्द्रमा का आलोक उसके बदन पर पड़ रहा था! स्निग्ध मातृ भावना से उसका मन उल्लास से परिपूर्ण था। भगवान् की कथा के छल से गोस्वामी ने उसके मन के एक सन्देह एक असन्तोष को शान्त कर दिया था।

मंगलदेव को आगन्तुकों के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता थी। गोस्वामी जी ने कहा—जाओ यमुना से कहो। —मंगल यमुना का नाम सुनते ही एक बार चौंक उठा। कुतूहल हुआ फिर आवश्यकता से प्रेरित होकर किसी अज्ञात यमुना को खोजने के लिए आश्रम के विस्तृत प्रांगण में घूमने लगा।

मौलसिरी के वृक्ष के नीचे यमुना निश्चल बैठी थी। मंगलदेव ने देखा एक स्त्री है यही यमुना होगी। समीप पहुँचकर देखा तो वही यमुना थी!

पवित्र देव मन्दिर की दीपशिखा सी वह ज्योतिमयी मूर्ति थी। मंगलदेव ने उसे पुकारा—यमुना!

वात्सल्य विभूति के काल्पनिक आनन्द में पूर्व उसके हृदय में मंगल के शब्द ने तीव्र घृणा का संचार कर दिया। वह विरक्त होकर अपरिचित-सी बोल उठी—कौन है?

मगल, इस प्रवचन म अपनी अनुभूति सुनाऊँगा, घबराओ मत। तुम्हारी सब शकाओ का उत्तर मिलेगा।

मगलदव ने सन्तोप स सिर झुका दिया। वह लौटकर अपन ब्रह्मचारियो क पास चला आया।

आश्रम म दो दिना स कृष्ण-कथा हो रही थी। गोस्वामीजी बाल-चरित्र कहकर उसका उपसहार करते हुए बोले—

धर्म और राजनीति स पीडित यादव-जनता का उद्धार करके भी श्रीकृष्ण न दखा कि यादवा का व्रज म शान्ति न मिलेगी।

प्राचीनतत्र के पक्षपाती नृशस राजन्य-वर्ग मन्वन्तर को मानन क लिए प्रस्तुत न थ। हा, वह मनन की विचार-धारा सामूहिक परिवर्तन करन वाली थी। क्रमागत रूढियाँ और अधिकार उसक सामन काप रह थ। इन्द्र-पूजा बन्द हुई, धर्म का अपमान! राजा कस मारा गया, राजनीतिक उलटफेर!! व्रज पर प्रलय के बादल उमडे। भूख भेडिया क समान, प्राचीनता क समथक, यादवो पर टूट पडे। बार-बार शत्रुओ को पराजित करक भी श्रीकृष्ण न निश्चय किया कि व्रज का छाड दना चाहिए।

व यदुकुल को लेकर नवीन उपनिवश का खोज म पश्चिम की ओर चल पडे।

गोपाल न व्रज छोड दिया। यही व्रज ह। अत्याचारियो की नृशसता स यदु-कुल क अभिजात-वर्ग न व्रज का सुना कर दिया। पिछल दिनो म, व्रज म बसी हुई पशुपालन करन वाली गोपियाँ—जिनके साथ गोपाल खले थ, जिनके सुख को सुख और दु ख का दु ख समझा, जिनक साथ जिये, बड हुए, जिनके पशुआ क साथ वे कडी धूप म घनी अमराइयो म, करील के कुजो म विश्राम करते थ—वे गोपिया, वे भोली-भाली सरल हृदय अकपट स्नहवाली गोपियाँ, रक्त-मास क हृदयवाली गोपियाँ—जिनक हृदय म दया थी, माया-ममता थी, आशा थी, विश्वास था, प्रेम का आदान-प्रदान था, —इसी यमुना क कछारो म वृक्षो के नीचे, वसन्त की चाँदनी म, जेठ की धूप म छाह लेती हुई, गोरस बेचकर लौटती हुई, गोपाल की कहानियाँ कहती। निर्वासित गोपाल की सहानुभूति स, उस क्रीडा क स्मरण स, उन प्रकाशपूर्ण आखो की ज्योति स, गोपियो की स्मृति इन्द्र-धनुष-सी रँग जाती। वे कहानिया प्रेम से अतिरजित थी, स्नह स परिप्लुत थी, आदर स आर्द्र थी, सबको मिलाकर उनम एक आत्मीयता थी—हृदय की वेदना थी, आँखो का आसू था! उन्ही को सुनकर, इस छोडे हुए व्रज म उसी दु ख-

मुख को अतीत महानुभूति से लिपटी हुई कहानियों को सुनकर आज भी हम-तुम आँसू बहा देते हैं ! क्यों ? वे प्रेम करके, प्रेम सिखलाकर, निर्मम स्वार्थ पर हृदयों में मानव प्रेम को विकसित करके, व्रज को छोड़कर चले गये—चिरकाल के लिए। बाल्यकाल की लीलाभूमि व्रज का आज भी इसीलिए गौरव है। यह वही व्रज है। वही यमुना का किनारा है !

कहते-कहते गोस्वामी की आँखों से अविरल अश्रुधारा बहने लगी। श्रोता भी रो रहे थे।

गोस्वामी चुप होकर बैठ गये। श्रोताओं ने इधर-उधर होना आरंभ किया। मंगलदेव आश्रम में ठहरे हुए लोगों के प्रबन्ध में लग गया, परन्तु यमुना ?—वह दूर एक मौलसिरी के वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठी थी। वह सोचती थी—ऐसे भगवान् भी बाल्यकाल में अपनी माता से अलग कर दिये गये थे ! उसका हृदय व्याकुल हो उठा। वह विस्मृत हो गई कि उसे शान्ति की आवश्यकता है। डेढ़ सप्ताह के अपने हृदय के टुकड़े के लिए वह मचल उठी—वह अब कहाँ है ? क्या जीवित है ? उसका पालन कौन करता होगा ? वह जियेगा अवश्य, ऐसे बिना यत्न के बालक जीते हैं—इसका तो इतना बड़ा प्रमाण मिल गया है ! हाँ और वह एक नर-रत्न होगा, महान् होगा !—क्षण-भर में माता का हृदय मंगल-कामना से भर उठा। इस समय उसकी आँखों में आँसू न थे। वह शान्त बैठी थी। चाँदनी निखर रही थी ! मौलसिरी के पत्तों के अंतराल से चन्द्रमा का आलोक उसके वदन पर पड़ रहा था ! स्निग्ध मातृ-भावना से उसका मन उल्लास से परिपूर्ण था। भगवान् की कथा के छल से गोस्वामी ने उसके मन के एक सन्देह, एक असन्ताप का शान्त कर दिया था।

मंगलदेव को आगन्तुकों के लिए किसी वस्तु की आवश्यकता थी। गोस्वामी-जी ने कहा—जाओ यमुना से कहो।—मंगल यमुना का नाम सुनते ही एक बार चौंक उठा। कुतूहल हुआ, फिर आवश्यकता से प्रेरित होकर किसी अज्ञात यमुना को खोजने के लिए आश्रम के विस्तृत प्रांगण में घूमने लगा।

मौलसिरी के वृक्ष के नीचे, यमुना निश्चल बैठी थी। मंगलदेव ने देखा एक स्त्री है, यही यमुना होगी। समीप पहुँचकर देखा, तो वही यमुना थी !

पवित्र देव-मन्दिर की दीपशिखा-सी वह ज्योतिर्मयी मूर्ति थी। मंगलदेव ने उसे पुकारा—यमुना !

वात्सल्य-विभूति के काल्पनिक आनन्द से पूर्व उसके हृदय में मंगल के शब्द ने तीव्र घृणा का संचार कर दिया। वह विरक्त होकर अपरिचित-सी बोल उठी—कौन है ?

गास्वामी जी की आज्ञा है कि   आग कुछ कहन म मगल असमर्थ हा गया उसका गला भरान लगा।

जा वस्तु चाहिए उस भण्डारीजा स जाकर कहिए मैं कुछ नही जानती। —यमुना अपन काल्पनिक सुख म भी बाधा हात दखकर अधीर हा उठी।

मगल न फिर सयत स्वर म कहा तुम्ही स कहन की आज्ञा हुई ह।

अबकी यमुना न स्वर पहचान और सिर उठाकर मगल का दखा। दारुण पीडा स वह कलजा थामकर बैठ गई। विद्युद्वग स उसक मन म यह विचार नाच उठा कि मगल क ही अत्याचार क कारण म वात्सल्य-सुख स वञ्चित हूँ। इधर मगल न समझा कि मुझ पहचानकर ही वह तिरस्कार कर रही ह। आग कुछ न कह वह लौट पडा।

गास्वामीजी वहाँ पहुँच ता दखत है—मगल लौटा जा रहा ह और यमुना बैठी रा रही ह। उन्होन पूछा—क्या है बटी ?

यमुना हिचकियाँ लकर रान लगी। गोस्वामीजी बड सन्दह म पडे। कुछ काल तक खड रहन पर व इतना कहत हुए चल गय कि—चित्त सावधान करक मर पास आकर सब बात कह जाना।

यमुना गास्वामीजी की सदिग्ध आज्ञा स ममाहत हुई और अपन का सम्हालन का प्रयत्न करन लगी।

रात-भर उस नींद न आइ।

उत्सव का समारोह था। गोस्वामीजी व्यासपीठ पर बैठे थे। व्याख्यान प्रारम्भ होने ही वाला था उसी समय साहबी ठाट से घण्टी को साथ लिए विजय सभा में आया। *आज यमुना दुःखी होकर और मंगल ज्वर में, अपने अपने कक्ष में पड़े थे।* विजय सन्नद्ध था—गोस्वामीजी का विरोध करने की प्रतिज्ञा अवहेलना और परिहास उसकी आकृति से प्रकट थे।

गोस्वामीजी सरल भाव से कहने लगे—

उस समय आर्यावर्त में एकतन्त्र शासन का प्रचण्ड ताण्डव चल रहा था। सुदूर सौराष्ट्र में श्रीकृष्ण के साथ यादव अपने लोकतन्त्र की रक्षा में लगे थे। यद्यपि सम्पन्न यादवों की विलासिता और षड्यन्त्रों से गोपाल को भी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी, *फिर भी उन्होंने सुधर्मा के सम्मान की रक्षा की।* पाञ्चाल में कृष्णा का स्वयम्वर था। कृष्ण के बल पर पाण्डव उसमें अपना बल-विक्रम लेकर प्रकट हुए। पराभूत होकर कौरवों ने भी उन्हें इन्द्रप्रस्थ दिया। कृष्ण ने धर्म-राज्य-स्थापना का दृढ़ संकल्प किया था अतः आततायियों के दमन की आवश्यकता थी। मागध जरासन्ध मारा गया। सम्पूर्ण भारत में पाण्डवों की कृष्ण की संरक्षता में धाक जम गई। नृशंस यज्ञों की समाप्ति हुई। बन्दी राजवर्ग तथा बलिपशु मुक्त होते ही कृष्ण की शरण हुए। महान् हर्ष के साथ राजसूय हुआ। वह था राजसूय। राजे महाराजे काँप उठे। अत्याचारी शासकों को शीतज्वर हुआ। सब उस धर्मराज की प्रतिष्ठा में साधारण कर्मकारों के समान नतमस्तक होकर काम करते रहे। और भी एक बात हुई—आर्यावर्त ने उसी निर्वासित गोपाल को आश्चर्य से देखा, समवेत महाजनों में अग्रपूजा और अर्घ्य का अधिकारी! इतना बड़ा परिवर्तन! सब दाँतों-तले उँगली दाब हुए देखते रहे। उसी दिन भारत ने स्वीकार *किया—गोपाल पुरुषोत्तम है।* प्रमाद में युधिष्ठिर ने धर्मसाम्राज्य को अपनी व्यक्तिगत सम्पत्ति समझ ली, इससे कुचक्रियों का मनोरथ सफल हुआ—धर्मराज विशृङ्खल हुआ, परन्तु पुरुषोत्तम ने उसका जैसे उद्धार किया, वह तुम लोगों ने सुना होगा—महाभारत की युद्ध-

क्या स । भयानक जनक्षय करके भी सात्विक विचारों की रक्षा हुई । और भ सुदृढ महाभारत की स्थापना हुई, जिसम नृशंस राजन्यवर्ग नष्ट किय गय पुरुषोत्तम ने वदों के अतिवाद और उनके नाम पर होने वाले अत्याचारों क उच्छेद किया । बुद्धिवाद का प्रचार हुआ । गीता द्वारा धर्म की विश्वात्मा की विराट् की, आत्मवाद की, विमल व्याख्या हुई । स्त्री, वैश्य, शूद्र और पापयोनि कहकर जो धर्माचरण क अनधिकारी समझे जाते थे—उन्हें धर्माचरण का अधिकार मिला । साम्य की महिमा उद्घोषित हुई । धर्म म राजनीति म, समाज नीति म, सर्वत्र विकास हुआ । वह मानवजाति क इतिहास म महापर्व था । पशु और मनुष्य के भी साम्य की घोषणा हुई । वह पूर्ण संस्कृति थी । उसके पहल भी वैसा नहीं हुआ और उसके बाद भी उतनी पूर्णता ग्रहण करने क लिए मानव शिक्षित न हो सके क्योंकि सत्य को इतना समष्टि से ग्रहण करने के लिए कोई दूसरा पुरुषोत्तम नहीं हुआ । मानवता का सामञ्जस्य बने रहने की जो व्यवस्था उन्होंने की है, वह आगामी अनन्त दिवसों तक अक्षुण्ण रहेगी ।

तस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च य

जो लोक से न घबराये और जिससे लोक न उद्विग्न हो वही पुरुषोत्तम का प्रिय मानव है जो सृष्टि को सफल बनाता है ।

विजय ने प्रश्न करने की चेष्टा की, परन्तु उसका साहस नहीं हुआ ।

गोस्वामी ने व्यासपीठ स हटते हुए चारों ओर दृष्टि घुमाई, यमुना और मंगल नहीं दिखाई पडे । वे उन्हें खोजते हुए चल पडे । श्रोतागण भी चल गये थ । कृष्णशरण ने यमुना को पुकारा । वह उठकर आई । उसकी आंखें अरुण मुख विवर्ण, रसना अवाक और हृदय धडकनों से पूर्ण था । गोस्वामीजी ने उससे कुछ न पूछा । उसे साथ आने का संकेत करके वे मंगल की कोठरी की ओर बढे । मंगल अपने बिछावन पर पडा था । गोस्वामीजी को देखते ही उठ खडा हुआ । वह अभी भी ज्वर से आक्रान्त था । गोस्वामीजी ने पूछा—मंगल ! तुमने इस अबला का अपमान किया था !

मंगल चुप रहा ।

बोलो, क्या तुम्हारा हृदय पाप स भर गया था ?

मंगल फिर भी चुप । अब गोस्वामीजी से न रहा गया ।

तो तुम मौन रहकर अपना अपराध स्वीकार करते हो ?

वह बोला नहीं ।

तुम्हें चित्त-शुद्धि की आवश्यकता है । जाओ सेवा म लगो, समाज-सेवा करक अपना हृदय शुद्ध बनाओ । जहां स्त्रियां सताई जायें, मनुष्य अपमानित हो, वहां

तुमको अपना दम्भ छोडकर कत्ताव्य करना हागा। इस दण्ड न समझा प्राय श्वित्त न समझा। यही तुम्हारा क्रियमाण कर्म है। जाओ। पुरुषोत्तम ने लोक सग्रह किया था, व मानवता क हित म लगे रह अन्याय और अत्याचार क विरुद्ध सदैव युद्ध करत रह। अपन किय हुए अन्याय क विरुद्ध तुम्ह अपन स लडना होगा। उस असुर को परास्त करना होगा। गुरुकुल यहा भेज दा तुम अबलाओ की सवा म लगो। भगवान् की भूमि भारत म स्त्रिया पर तथा मनुष्या का पतित बनाकर बडा अन्याय हो रहा है। करोडो मनुष्य जगला म अभी पशु-जीवन बिता रह ह। स्त्रियां विपथ पर जान के लिए बाध्य की जाती ह तुमको उनका पक्ष लना पडगा। उठो!

मगन न गास्वामीजी क चरण छुए। वह सिर झुकाय चला गया। गास्वामी न घूमकर यमुना की ओर दखा। वह सिर नीचा किय रा रही थी। उसक सिर पर हाथ फेरत हुए कृष्णशरण न कहा—भूल जाओ यमुना उसक अपराध का भूल जाओ।

परन्तु यमुना, मगल का और उसक अपराध का कस भूल जाती?

पिछले दिनो म मैंने पुरुषोत्तम की प्रारम्भिक जीवनी सुनाई थी, आज सुनाऊँगा उनका सन्देश । उनका सन्देश था—आत्मा की स्वतन्त्रता का, साम्य का, कर्मयोग का और बुद्धिवाद का । आज हम धर्म के जिस ढांचे को—शव का—घेर कर रो रहे है, वह उनका धर्म नही था । धर्म को वे वडी दूर की पवित्र या डरने की वस्तु नही बतलाते थे । उन्होने स्वर्ग का लालच छोडकर रूढियो के धर्म को पाप कहकर घोषणा की । उन्होने जीवन्मुक्त होन का प्रचार किया । नि स्वार्थ भाव से कर्म की महत्ता बतायी और उदाहरणो से भी उसे सिद्ध किया । राजा नही थे , पर अनायास ही वे महाभारत के सम्राट् हो सकते थे, पर हुए नही । सौन्दर्य, वल, विद्या, वैभव, महत्ता, त्याग कोई भी ऐसे पदाथ नही थे, जो उन्ह अप्राप्य रहे हा । वे पूर्णकाम होने पर भी समाज क एक तटस्थ उपकारी रह । जगल के कोने मे बैठकर उन्हाने धर्म का उपदेश कापाय ओढकर नही दिया, वे जीवन-युद्ध के सारथी थे । उसकी उपासना-प्रणाली थी—किसी भी प्रकार चिन्ता का अभाव हाकर अन्त करण का निर्मल हा जाना विकल्प और सकल्प मे शुद्ध-बुद्धि की शरण जानकर कर्त्तव्य निश्चय करना । कर्म-कुशलता उसका योग है । निष्काम कर्म करना शान्ति है । जीवन-मरण म निर्भय रहना, लोक-सेवा करते रहना, उनका सन्देश है । वे आर्य सस्कृति के शुद्ध भारतीय सस्करण ह । गोपालो क सग वे पले, दीनता को गाद म दुलार गय । अत्याचारी राजाओ के सिंहासन उलटे—कराडो वन्योन्मत्त नृशसो के मरण-यज्ञ म व हँसने वाल अध्वर्यु थे । इस आर्यावर्त्त का महाभारत वनानवाले थे—वे धर्मराज के सस्थापक थ । सबकी आत्मा स्वतत्र हो इसलिए, समाज की व्यावहारिक वाता को व शरीर-कर्म कहकर व्याख्या करते थे—क्या यह पथ सरल नही, क्या हमारे वर्तमान दु खो म वह अवलम्बन न हागा ? सब प्राणियो स निर्वैर रखने वाला शान्तिपूर्ण शक्ति-सवलित मानवता का ऋजु पथ, क्या हम लोगा के चलन योग्य नही है ?

समवेत जनमण्डली ने कहा—है, अवश्य है !

हाँ, और उसमे कोई आडम्बर नही । उपासना के लिए एकान्त निश्चिन्त अवस्था, और स्वाध्याय के लिए चुने हुए श्रुतियो के सार-भाग का सग्रह, गुण-कर्मों से विशपता और पूर्ण आत्मनिष्ठा, सब की साधारण समता—इतनी ही तो चाहिए । कार्यालय मत बनाइए, मित्रा के सदृश एक-दूसरे को समझाइए, किसी गुरुडम की आवश्यकता नही । आर्य-सस्कृति अपना तामस त्याग झूठा विराग छोडकर जागेगी । भूपृष्ठ के भौतिक देहात्मवादी चौक उठगे । यान्त्रिक सभ्यता के पतनकाल म वही मानव जाति का अवलम्बन होगी ।

पुरुषोत्तम की जय ! —की ध्वनि से वह स्थान गूँज उठा। बहुत-से लाग चले गये।

विजय ने हाथ जोडकर कहा—महाराज ! मै कुछ पूछना चाहता हूँ। मैं इस समाज स उपेक्षिता—अज्ञातकुलशीला घण्टी स ब्याह करना चाहता हूँ, इसम आपकी *क्या अनुमति* है ?

मेरा ता एक ही आदर्श है। तुम्ह जानना चाहिए कि परस्पर प्रेम का विश्वास कर लेने पर यादवो के विरुद्ध रहते भी सुभद्रा और अर्जुन के परिणय को पुरुषात्तम ने सहायता दी। यदि तुम दोनो म परस्पर प्रेम है, ता भगवान् *को साक्षी देकर तुम परिणय के पवित्र बन्धन म बँध सकते हो। —कृष्णशरण* न कहा।

विजय बडे उत्साह स घण्टी का हाथ पकडे देव विग्रह क सामन आया, और वह कुछ बोलना ही चाहता था कि यमुना आकर खडी हो गई। वह कहन *लगी—विजय बाबू, यह ब्याह आप केवल अहकार स करने जा रहे है,* *आपका* प्रेम घण्टी पर नही है।

बुड्ढा पादरी हँसन लगा। उसन कहा—लौट आओ बेटी ! विजय, चना सब लोग चले।

विजय न हतबुद्धि के समान एक बार यमुना को देखा। घण्टी गडी जा रही थी। विजय का गला पकडकर जैस किसी ने धक्का दिया। वह सरला के पास लौट आया। नतिका घबराकर सबसे पहिले ही चली। सब ताँगो पर आ बैठ। गोस्वामी के मुख पर स्मित-रेखा झलक उठी।

तृतीय खण्ड

१

श्रीचन्द्र का एक मात्र अन्तरंग सखा धन था, क्योंकि उसके कौटुम्बिक जीवन में कोई आनन्द नहीं रह गया था। वह अपने व्यवसाय को लेकर मस्त रहता। लाखों का हेर-फेर करने में उसे उतना ही सुख मिलता, जितना किसी विलासी को विलास में।

काम से छुट्टी पाने पर थकावट मिटाने के लिए बोतल प्याला और व्यक्ति-विशेष के साथ थोड़े समय तक आमोद-प्रमोद कर लेना ही उसके लिए पर्याप्त था। चन्दा नाम की एक धनवती रमणी कभी-कभी प्रायः उससे मिला करती, परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि श्रीचन्द्र पूर्ण रूप से उसकी ओर आकृष्ट था। यहाँ यह हुआ कि आमोद-प्रमोद की मात्रा बढ़ चली। कपास के काम में सहसा घाटे की सम्भावना हुई। श्रीचन्द्र किसी का आश्रय-अंक खोजने लगा। चन्दा पास ही थी। धन भी था, और बात यह थी कि चन्दा उसे मानती भी थी। *उसे आशा भी थी कि पंजाब-विधवा-विवाह-सभा के नियमानुसार वह* किसी दिन श्रीचन्द्र की गृहिणी हो जायगी। चन्दा को अपनी बदनामी के कारण अपनी लड़की के लिए बड़ी चिन्ता थी। वह उसकी सामाजिकता बनाने के लिए भी प्रयत्नशील थी।

परिस्थिति ने दोनों लोहों के बीच चुम्बक का काम किया। श्रीचन्द्र और चन्दा में भेद तो पहले भी न था, पर अब सम्पत्ति पर भी दोनों का साधारण अधिकार हो चला। वह घाटे के धक्के को सम्मिलित धन से रोकने लगी। बाजार रुका, जैसे आँधी थम गई। तगादे-पुरजे की बाढ़ उतर गई।

पानी बरस गया था। धुले हुए अन्तरिक्ष से नक्षत्र अतीत-स्मृति के समान उज्ज्वल होकर चमक रहे थे। सुगन्धराज की मधुर गन्ध से मस्तक भर रहने पर भी श्रीचन्द्र अपने बँगले के चौतरे पर से आकाश के तारों का बिन्दु मानकर उनसे काल्पनिक रेखाएँ खींच रहा था। रेखागणित के असंख्य काल्पनिक त्रिभुज

उसकी आँखो म बनत और बिगडते थ, पर वह आसन्न समस्या हल करन म असमथ था। धन की कठोर आवश्यकता एसा वृत्त खीचती कि वह उसके बाहर जाने म असमर्थ था।

चन्दा थाली लिय आई। श्रीचन्द्र उसकी सौन्दय-छटा देखकर पलभर क लिए धन-चिन्ता-विस्मृत हो गया। हृदय एक बार नाच उठा। वह उठ बैठा। चन्दा ने सामने बैठकर उसकी भूख जगा दी। ब्यालू करत-करत श्रीचन्द्र न कहा—चन्दा, तुम मेरे लिए इतना कष्ट करती हो।

चन्दा—और तुमको इस कष्ट म चिन्ता क्या ह?

श्रीचन्द्र—यही कि मैं इसका क्या प्रतिकार कर सकूगा!

चन्दा—प्रतिकार मै स्वय कर लूँगी। हाँ, पहले यह तो बताओ—अब तुम्हारे ऊपर कितना ऋण है?

श्रीचन्द्र—अभी बहुत ह।

चन्दा—क्या कहा! अभी बहुत ह?

श्रीचन्द्र—हाँ, अमृतसर की सारी स्थावर सम्पत्ति अभी बन्धक ह। एक लाख रुपया चाहिए।

एक दीर्घ नि श्वास लेकर श्रीचन्द्र न थाली टाल दी। हाथ-मुँह धोकर आरामकुर्सी पर जा लेटा। चन्दा पास ही कुर्सी खीचकर बैठ गई। अभी वह पैंतीस स ऊपर की नही ह। यौवन ह। जान जान कर रहा है पर उसके सुडौल अग छोडकर उसस जाते नही बनता। भरी-भरी गोरी बाहे उसने गले म डालकर श्रीचन्द्र का एक चुम्बन लिया। श्रीचन्द्र को ऋण चिन्ता फिर सताने लगी। चन्दा ने देखा, श्रीचन्द्र क प्रत्यक श्वास म रुपया रुपया! का नाद हो रहा था। वह चौंक उठी। एक बार स्थिर दृष्टि स उसने श्रीचन्द्र क चिन्तित वदन की ओर देखा, और बोली —एक उपाय ह, करोगे?

श्रीचन्द्र न सीधे होकर बैठते हुए पूछा—वह क्या?

विधवा-विवाह-सभा म चलकर हम लोग —कहते-कहते चन्दा रुक गई, क्योकि, श्रीचन्द्र मुस्करान लगा था। उसी हँसी म एक मार्मिक व्यग्य था। चन्दा तिलमिला उठी। उसने कहा—तुम्हारा सब प्रेम झूठा था!

श्रीचन्द्र न पूरे व्यवसायी क ढग स कहा—बात क्या ह, मैने तो कुछ कहा भी नही और तुम लगी बिगडने!

चन्दा—मैं तुम्हारी हँसी का अर्थ समझती हूँ!

श्रीचन्द्र—कदापि नही। स्त्रियाँ प्राय तुनक जान का कारण सब बातो म

निकाल लती है । मै तुम्हार भालपन पर हँस रहा था । तुम जानती हा कि ब्याह क व्यवसाय म तो मैंन कभी का दिवाला निकाल दिया है, फिर भी वही प्रश्न ।

चन्दा न अपना भाव सँभालत हुए कहा—य सब तुम्हारी बनावटी बात ह । मैं जानती हूँ कि तुम्हारी पहली स्त्री और ससार तुम्हारे लिए नही क बराबर है । उसक लिए कोइ बाधा नही । हम-तुम जब एक हो जायँगे, तब सब सम्पत्ति तुम्हारी हो जायगी ।

श्रीचन्द्र—यह तो यो भी हो सकता ह, पर मरी एक सम्मति ह उस मानना-न-मानना तुम्हारे अधिकार म है । ह बात बडी अच्छी ।

चन्दा—वह क्या ?

श्रीचन्द्र न एक क्षण म हिसाव बैठा लिया । उनक लिए रुपयो का नया-नया प्रबन्ध साचना साधारण बात थी । उसन ठहरकर बडी गम्भीरता स कहा —लाली के लिए सम्बन्ध खोज लिया है पर वह तुम्हार प्रस्ताव के अनुसार चलन स न हो सकगा ।

चन्दा—क्यो ?

श्रीचन्द्र—तुम जानती हो कि विजय मर लडक क नाम स प्रसिद्ध ह आर काशी म अमृतसर की गन्ध अभी नही पहुँची ह । मैं यदि तुमस विधवा विवाह कर लता हूँ, ता इस सम्बन्धम अडचन भी होगी, और बदनामी भी । क्या तुमका वह जामाता पसन्द नही ।

चन्दा न एक बार उल्लास स बडी-बडी आँख खोलकर दखा और बोली—यह तो बडी अच्छी बात सोची ।

श्रीचन्द्र न कहा—तुमका यह जानकर आर प्रसन्नता हागी कि मन जा कुछ रुपय किशोरी को भेजे हैं, उनस उस चालाक स्त्री ने अच्छी जमीदारी बना ली है। और, काशी म अमृतसर वाली कोठी की बडी धाक ह । वही चलकर लाली का ब्याह हो जाएगा । तब, हम लोग यहाँ की सम्पत्ति और व्यवसाय स आनन्द लेंगे । किशोरी धन, बटा, बहू लकर सन्तुष्ट हो जायगी । क्या कसी रही ।

चन्दा न मन म सोचा, इस प्रकार यह काम हा जान पर, हर तरह की सुविधा रहेगी । समाज क हम लाग विद्रोही भी नही रहगे और काम भी बन जायगा । वह प्रसन्नतापूर्वक सहमत हुई ।

दूसर दिन क प्रभात म बडी स्फूर्ति थी ! श्रीचन्द्र और चन्दा बहुत प्रसन्न हा उठे । बगीच की हरियाली पर आँखें पडत ही मन हल्का हा गया ।

चन्दा न कहा—आज चाय पीकर ही जाऊँगी ।

श्रीचन्द्र ने कहा—नहीं तुम्हें अपने बगले में उजन में पहिले ही पहुँचना चाहिए। मैं तुम्हें बहुत सुरक्षित रखना चाहता हूँ।

चन्दा ने इठलाते हुए कहा—मुझे इस बगले की बनावट बहुत सुन्दर लगती है उसकी ऊँची कुरसी और चारों ओर बना हुआ उपवन बहुत ही मनभावना है।

श्रीचन्द्र ने कहा—चन्दा तुमको भूल न जाना चाहिए कि समाज में पाप में उतना डर नहीं जितना जनरव से। इसलिए तुम चलो मैं तो तुम्हारे बगले पर आकर चाय पिऊँगा। अब इस बगले में मुझे प्रेम नहीं रहा क्योंकि इसका दूसरे के हाथ में जाना निश्चित है।

चन्दा एक बार घूमकर खड़ी हो गई। उसने कहा—ऐसा कदापि नहीं होगा। अभी मेरे पास एक लाख रुपया है। मैं रेहन पर तुम्हारी सब संपत्ति अपने यहाँ रख लूँगी। बोलो फिर तो तुमको किसी दूसरे की बात न सुननी होगी?

फिर हँसते हुए उसने कहा—और मेरा तगादा तो इस जन्म में छूटने का नहीं।

श्रीचन्द्र की धड़कन बढ़ गई। उसने बड़ी प्रसन्नता से चन्दा के कई चुम्बन लिए और कहा—मेरी सम्पत्ति ही नहीं मुझे भी व धक रख लो प्यारी चन्दा! पर अपनी बदनामी बचाओ। नानी भी हम लोगों का रहस्य न जाने तो अच्छा क्योंकि हम लोग चाहे जैसे भी हों पर सन्तान तो हम लोगों की बुराइयों से अनभिज्ञ रहे। अन्यथा उनके मन में बुराइयों के प्रति अवहेलना की धारणा बन जाती है। और वे उन अपराधों को फिर अपराध नहीं समझते जिन्हें वे जानते हैं कि हमारे बड़े लोगों ने भी किया है।

नानी के जगने का तो अब समय हो रहा है। अच्छा वहीं चाय पी जाएगा और सब प्रबन्ध भी आज ही ठीक हो जायगा।

गाड़ी प्रस्तुत थी चन्दा जाकर बैठ गई। श्रीचन्द्र ने एक दीर्घ निश्वास लेकर अपने हृदय को सब तरह के बोझों से हलका किया।

२

किशारी और निरजन काशा नौट आय परन्तु उन दाना क हृदय म शान्ति न थी। क्राध म किशार न विजय का तिरस्कार किया फिर भा सहज मातृ स्नह विद्राह करन नगा। निरजन स दिन म एकाध बार इस विषय को लकर दो-दा चाच हा जाना अनिवाय हा गया। निरजन न एक दिन दृढ हाकर इसका निपटारा कर लन का विचार कर निया वह अपना सामान बँधवान नगा। किशारी न यह ढग न्खा। वह जल भुन गई। जिसक लिए उसन पुत्र का छाड दिया वह भी आज जान का प्रस्तुत है! उसन तीव्र स्वर म कहा—क्या अभी जाना चाहत हा ?

हाँ मन जब ससार छाड दिया ह तब किसी की बात क्या सून ?

क्या झूठ बानत हा तुमन कब काई वस्तु छाडी थी। तुम्हार त्याग म ता भाल भाल माया म फँस हुए गृहस्थ कहीं ऊँचे है! अपनी आर दखा हृदय पर हाथ रखकर पूछा! निरजन मर सामन तुम यह कह सकत हा ? ससार आज तुमका और मुझका क्या समझता ह—कुछ इसका भी समाचार जानत हा ?

जानता हूँ किशारी! माया क साधारण झिटक म एक सच्च साधु क फस जान ठग जान का यह नज्जित प्रसग अब किसी स छिपा नही—इसीनिए मै जाना चाहता ह।

ता राकता कान ह जाआ! परन्तु जिसक निए मन सब कुछ खा दिया ह उस तुम्हा न मुझस छीन निया—उस दकर जाआ! जाओ तपस्या करा तुम फिर महात्मा बन जाओगे! सुना ह पुरुषा क तप करन स घार-स घार कुकर्मों का भी भगवान् क्षमा करक उन्ह दशन दत हे पर मे हूँ स्त्री जाति! मरा यह भाग्य नही मन पाप करक जा पाप बटारा ह उस ही मरी गाद म फकत जाआ।

किशारी का दम घुटन लगा। वह अधीर हाकर रान लगी।

निरजन न आज अपना नग्न रूप दखा और वह इतना वीभत्स था कि उसन

अपने हाथा से आखो को ढँक लिया। कुछ काल क बाद बोला—अच्छा, ता विजय को खोजन जाता हूँ!

गाडी पर निरजन का सामान लद गया और विना एक शब्द कह वह स्टेशन चला गया। किशोरी अभिमान और क्रोध स भरी चुपचाप बैठी रही। आज वह अपनी ही दृष्टि म तुच्छ जँचने लगी। उसन बडबडाते हुए कहा—स्त्री कुछ नही ह, कवल पुरुषो की पूछ है। विलक्षणता यही है कि यह पूँछ कभी-कभी अलग भी रख दी जा सकती है!

अभी उस सोचन से अवकाश नही मिला था कि गाडियो क खडबड शब्द, और बक्स-बडला क पटकने का धमाका नीच हुआ। वह मन-ही-मन हँसी कि बाबाजी का हृदय इतना बलवान नही कि मुझे या ही छाडकर चले जायँ। इस समय स्त्रिया की विजय उसके सामन नाच उठी। वह फूल रही थी उठी नही, परन्तु जब धनिया ने आकर कहा—बहूजी पजाब स कोई आय है उनके साथ एक लडकी और उनकी स्त्री है—तब वह एक पल भर के लिये सन्नाटे म आ गई। उसने नीचे झाँककर दखा तो—श्रीचन्द्र! उसक साथ शलवार, कुरता ओढनी स सजी हुई एक रूपवती रमणी चौदह साल की सुन्दरी कन्या का हाथ पकडे खडी थी। नौकर लोग सामान भीतर रख रहे थ। वह किंकर्त्तव्य-विमूढ होकर नीचे होकर उतर आई। न जाने कहाँ की लज्जा और द्विविधा उसक अग का घेरकर हँस रही थी।

श्रीचन्द्र ने इस प्रसग को अधिक बढान का अवसर न दकर कहा—यह मरे पडासी, अमृतसर क व्यापारी लाला की विधवा है काशीयात्रा क लिए आई है।

ओहो मर भाग!—कहती हुई किशारी उनका हाथ पकडकर भीतर ल चली। श्रीचन्द्र एक बडी-सी घटना को या ही सँवरते दखकर मन ही-मन प्रसन्न हुए। गाडीवाल को भाडा देकर घर म आये। सब नौकरा म यह बात गुनगुना गई कि मालिक आ गये है।

अलग कोठरी मे नवागत रमणी का सब प्रबन्ध ठीक किया गया। श्रीचन्द्र ने नीच की बैठक म अपना आसन जमाया। नहान धोन, खान-पीन और विश्राम म समस्त दिन बीत गया।

किशोरी न अतिथि-सत्कार म पूरे मनायाग स भाग लिया। कोई भी दखकर यह नही कह सकता था कि किशारी और श्रीचन्द्र बहुत दिनो पर मिले है परन्तु अब तक श्रीचन्द्र ने विजय को नही पूछा, उसका मन नही करता था, या साहस नही होता था।

यक यात्रिया न निद्रा का अवलम्ब लिया ।

प्रभात म जब श्रीचन्द्र की आँखे खुली, तब उसन दखा, प्रौढा किशोरी क मुख पर पचीस बरस पहल का वही सलज्ज लावण्य अपराधी क सदृश छिपना चाहता ह । अतीत की स्मृति न श्रीचन्द्र क हृदय पर वृश्चिक-दशन का काम किया । नीद न खुलन का बहाना करके उन्हान एक बार फिर आखे बन्द कर ली । किशोरी मर्माहत हुई, पर आज नियति ने उस सब ओर स निरवलम्ब करक श्रीचन्द्र के सामन झुकन क लिय बाध्य किया था । वह सकोच और मनावेदना स गडी जा रही थी ।

श्रीचन्द्र साहस सकलित करक उठ बैठा । डरते-डरत किशारी न उसक पैर पकड लिय । एकात था । वह जी खोलकर रोई, पर श्रीचन्द्र को उस रोन स क्राध ही हुआ, करुणा की झलक न आइ । उसन कहा—किशारी ! रान की ता काई आवश्यकता नही ।

रोई हुई लाल आँखा का श्रीचन्द्र क मुह पर जमात हुए किशारी न कहा—आवश्यकता तो नही, पर जानत हा स्त्रिया कितनी दुर्बल है—अबला हैं । नही तो मर ही जैसा अपराध करनवाल पुरुष क परा पर पडकर मुझे न रोना पडता !

वह अपराध यदि तुम्ही स सीखा गया हा, ता मुझ उत्तर दन की व्यवस्था न खोजनी पडगी ।

तो हम लाग क्या इतनी दूर ह कि मिलना असम्भव ह ?

असम्भव ता नही है, नही तो मैं आता कस ?

जब स्त्री-सुलभ ईर्ष्या किशोरी क हृदय म जगी । उसन कहा—आय हाग किसी को घुमान-फिरान—सुख-बहार लन !

किशोरी क इस कथन म व्यग स अधिक उलाहना था । न जान क्या श्रीचन्द्र का इस व्यग स सन्ताप हुआ, जैस ईप्सित वस्तु मिल गई हा । वह हँसकर बाला—इतना ता तुम भी स्वीकार करागी कि यह कोई अपराध नही ह ।

किशारी न दखा, समझौता हो सकता है, अधिक कहा-सुनी करक इस गुरुतर न बना दना चाहिए । उसन दीनता म कहा—तो अपराध क्षमा नही हा सकता ?

श्रीचन्द्र न कहा—किशोरा ! अपराध कसा ? अपराध समझता, ता आज इस बात-चीत का अवसर ही नही आता । हम लागा का पथ जब अलग-अलग निर्धारित हा चुका ह, तब उसम काई बाधक न हा, यही नीति अच्छी रहगी । यात्रा करन तो हम लोग आय ही है, पर एक काम भी है ।

... सावधान होकर सुनने लगी। श्रीचन्द्र ने फिर कहना आरम्भ

— [illegible] व्यवसाय नष्ट हो चुका है, अमृतसर की सब सम्पत्ति इसी स्त्री के यहाँ [illegible] है। उसके उद्धार का यही उपाय है कि इसकी सुन्दरी कन्या लाली से [illegible] का ब्याह करा दिया जाय।

किशोरी ने सगर्व एक बार श्रीचन्द्र की ओर देखा, फिर सहसा कातरभाव से बोली—विजय रूठकर मथुरा चला गया है!

श्रीचन्द्र ने पक्के व्यापारी के समान कहा—कोई चिन्ता नहीं, वह आ जायगा। तब तक हम लोग यहाँ रहें, तुम्हें कोई कष्ट तो न होगा?

[illegible] अधिक चोट न पहुंचाओ। मैं अपराधिनी हूँ, मैं सन्तान के लिए अन्धी हो रही थी! क्या मैं क्षमा न की जाऊँगी?—किशोरी की आँखों से आँसू गिरने लगे।

अच्छा तो उसे बुलाने के लिए मुझे जाना होगा।

नहीं; उसे बुलाने के लिए आदमी गया है। चलो, हाथ-मुँह धोकर जलपान कर लो।

अपने ही घर में श्रीचन्द्र एक अतिथि की तरह आदर-सत्कार पाने लगा।

३

निरंजन वृन्दावन में विजय की खोज में घूमने लगा। तार देकर अपने हरिद्वार के भण्डारी को रुपये लेकर बुलाया और गली गली खोज की धूम मच गई। मथुरा में द्वारिकाधीश के मन्दिर में कई दिन टोह लगाया। विश्रामघाट पर आरती देखते हुए कितनी सन्ध्याएँ बिताईं पर विजय का कुछ पता नहीं।

एक दिन वृन्दावन वाली सड़क पर वह भण्डारी के साथ टहल रहा था। अकस्मात् एक तांगा तेजी से निकल गया। निरंजन को शंका हुई, पर वह जब तक देखे, तब तक तो तांगा लोप हो गया। हाँ, गुलाबी साड़ी की झलक आँखों में छा गई।

दूसरे दिन वह नाव पर दुर्वासा के दर्शन को गया। वैशाख पूर्णिमा थी। यमुना से हटने का मन नहीं करता था। निरंजन ने नाव वाले से कहा—किसी अच्छी जगह ले चलो। मैं आज रात भर घूमना चाहता हूँ, तुमको भरपूर इनाम दूँगा, चिन्ता न करना भला!

उन दिनों कृष्णशरण वाली टेकरी प्रसिद्धि प्राप्त कर चुकी थी। मनचले लोग बहुत उधर घूमने जाते थे। माँझी ने देखा कि अभी थोड़ी देर पहले ही एक नाव उधर जा चुकी थी, वह भी उधर खेने लगा। निरंजन को अपने ऊपर क्रोध हो रहा था, सोचने लगा—"आये थे हरिभजन को ओटन लगे कपास!"

पूर्णिमा की पिछली रात थी। रात-भर का जगा हुआ चन्द्रमा झीम रहा था। निरंजन की आँख भी कम अलसाई थी, परन्तु आज नींद उचट गई थी। सैकड़ों कविताओं में वर्णित यमुना का पुलिन, यौवन-काल की स्मृति जगा देने के लिए कम न था। किशोरी की प्रौढ़ प्रणय-लीला और अपनी साधु की स्थिति, निरंजन के सामने दो प्रतिद्वंद्वियों की भाँति लड़कर उसे अभिभूत बना रही थी। माँझी भी ऊँघ रहा था। उसके डाँड़ बहुत धीरे-धीरे पानी में गिर रहे थे। यमुना के जल में निस्तब्ध शान्ति थी। निरंजन एक स्वप्नलोक में विचर रहा था।

चाँदनी फीकी हो चली। अभी तक आगे जाने वाली नाव पर से मधुर

सगीत की स्वर-लहरी मादकता मे कम्पित हो रही थी। निरंजन ने कहा—माँझी, उधर ही ले चलो। —नाव की गति तीव्र हुई। थोडी ही देर मे आगे वाली नाव के पास हो से निरंजन की नाव बढ़ी। उसमे एक रात्रि-जागरण मे क्लान्त युवती गा रही थी और बीच-बीच मे पास ही बैठा हुआ युवक वशी बजाकर साथ देता, तब वह जैसे ऊँघती हुई प्रकृति-जागरण के आनन्द मे पुलकित हो जाती। सहसा सगीत की गति रुकी। युवक ने उच्छ्वास लेकर कहा—घण्टी! जो कहते है अविवाहित जीवन पाशव है, उच्छृङ्खल है, वे भ्रात है। हृदय का सम्मिलन ही तो ब्याह है। मैं सर्वस्व तुम्हे अर्पण करता हूँ और तुम मुझे; इसमे किसी मध्यस्थ की आवश्यकता क्यो—मत्रो का महत्त्व कितना! झगडे की, विनिमय की, यदि सभावना रही तो समर्पण ही कैसा! मै स्वतन्त्र प्रेम की सत्ता स्वीकार करता हूँ, समाज न करे तो क्या!

निरजन ने धीरे से अपने माँझी से नाँव दूर ले चलने के लिये कहा। इतने मे फिर युवक ने कहा—तुम भी इसे मानती होगी? जिसको सब कहते हुए छिपाते हैं, जिसे अपराध कहकर कान पकडकर स्वीकार करते है, वही तो—जीवन का, यौवन-काल का ठोस सत्य है। सामाजिक बन्धनो से जकडी हुई आर्थिक कठिनाइयाँ, हम लोगो के भ्रम से धर्म का चेहरा लगाकर अपना भयानक रूप दिखाती हैं! क्यो, क्या तुम इसे नही मानती? मानती हो अवश्य, तुम्हारे व्यवहारो से यह बात स्पष्ट है। फिर भी सस्कार और रूढि की राक्षसी प्रतिमा के सामने समाज क्यो अल्हड रक्तो की वलि चढाया करता है!

घटी चुप थी। वह नशे मे झूम रही थी। जागरण का भी कम प्रभाव न था। युवक फिर कहने लगा—देखो, मैं समाज के शासन मे आना चाहता था, परन्तु आह! मैं भूल करता हूँ।

तुम झूठ बोलते हो विजय! समाज तुमको आज्ञा दे चुका था, परन्तु तुमने उसकी आज्ञा ठुकराकर यमुना का शासनादेश स्वीकार किया। इसमे समाज का क्या दोष है। मैं उस दिन की घटना नही भूल सकती, वह तुम्हारा दोष है। तुम कहोगे कि फिर मैं जब जानकर भी तुम्हारे साथ क्यो घूमती हूँ; इसलिए कि मैं इसे कुछ महत्त्व नही देती। हिन्दू स्त्रियो का समाज ही कैसा है, उसमे कुछ अधिकार हो तब तो उसके लिये कुछ सोचना-विचारना चाहिए। और, जहाँ अन्ध-अनुसरण करने का आदेश है, वहाँ प्राकृतिक, स्त्री-जनोचित प्यार कर लेने का जो हमारा नैसर्गिक अधिकार है—जैसा कि घटनावश प्राय स्त्रियाँ किया करती है—उसे क्यो छोड दूँ! यह कैसे हो, क्या हो, और क्यो हो—इसका विचार पुरुष करते हैं। वे करे, उन्हे विश्वास बनाना है, कौडी-पाई लेना रहता

है और स्त्रियों को भरना पड़ता है। तब, इधर-उधर देखने से क्या! 'भरना है'—यही सत्य है, उसे दिखावे के आदर से ब्याह करके भरा लो या व्यभिचार कहकर तिरस्कार से। अधमर्ण की सान्त्वना के लिए यह उत्तमर्ण का शाब्दिक मौखिक प्रलोभन या तिरस्कार है। समझे? घंटी ने कहा।

विजय का नशा उखड़ गया। उसने समझा कि मैं मिथ्या ज्ञान को अभी तक समझता हुआ अपने मन को धोखा दे रहा हूँ। यह हँसमुख घण्टी संसार के सब प्रश्नों को सहन किये बैठी है। प्रश्नों को गम्भीरता से विचारने का मैं जितना *ढोंग करता हूँ उतना ही उपलब्ध सत्य से दूर होता जा रहा हूँ*—वह चुपचाप सोचने लगा।

घण्टी फिर कहने लगी—समझे विजय! मैं तुम्हें प्यार करती हूँ। तुम ब्याह करके यदि उसका प्रतिदान किया चाहते हो तो भी मुझे कोई चिन्ता नहीं। यह विचार तो मुझे कभी सताता ही नहीं। मुझे जो करना है, वही करती हूँ करूँगी भी। घूमोगे घूमूँगी, पिलाओगे पीऊँगी दुलार करोगे हँस लूँगी, ठुकराओगे रो दूँगी। स्त्री को इन सभी वस्तुओं की आवश्यकता है। मैं इन सबों को समभाव से ग्रहण करती हूँ और करूँगी।

विजय का सिर घूमने लगा। वह चाहता था कि घण्टी अपनी वक्तृता जहाँ तक सम्भव हो शीघ्र बन्द कर दे। उसने कहा—अब तो प्रभात होने में विलंब नहीं, चलो कहीं किनारे उतरें और हाथ-मुँह धो लें।

घण्टी चुप रही। नाव तट की ओर चली। इसके पहले ही एक दूसरी नाव भी तीर पर लग चुकी थी, परन्तु वह निरंजन की थी। निरंजन दूर था, उसने देखा—विजय ही तो है! अच्छा दूर-दूर रहकर इसे देखना चाहिए, अभी शीघ्रता से काम बिगड़ जायगा।

विजय और घण्टी नाव से उतरे। प्रकाश हो चला था। रात की उदासी-भरी बिदाई ओस के आँसू बहाने लगी। कृष्णशरण की टेकरी के पास ही वह उतार का घाट था। वहाँ केवल एक स्त्री प्रातःस्नान के लिए अभी आई थी। घण्टी वृक्षों की झुरमुट में गई थी कि उसके चिल्लाने का शब्द सुन पड़ा। विजय उधर दौड़ा, परन्तु घण्टी भागती हुई उधर ही आती दिखाई पड़ी। अब उजला हो चला था। विजय ने देखा कि वही ताँगे वाला नवाब उसे पकड़ना चाहता है। विजय ने डाँटकर कहा—खड़ा रह दुष्ट! नवाब अपने दूसरे साथी के भरोसे विजय पर टूट पड़ा। दोनों में गुत्थमगुत्था हो गया। विजय के दोनों पैर उठा-कर वह पटकना चाहता था और विजय ने दाहिने बगल में उसका गला दबा लिया था, दोनों ओर से पूर्ण बल-प्रयोग हो रहा था कि विजय का पैर उठ जाय

नही-नही, यह ठीक है—तारा ही है ?

मैंने इसे कितनी बार काशी म किशोरी के यहाँ देखा है और मैं कह सकता हूँ कि यह उसकी दासी यमुना है, तुम्हारी तारा कदापि नही ।

परन्तु आप उसको कैसे पहचानते ! तारा मरे घर उत्पन्न हुई, पली और बढी । कभी उसका और आपका सामना तो हुआ नही, आपकी आज्ञा भी ऐसी ही थी । ग्रहण म वह भूलकर लखनऊ गई । वहाँ का एक स्वयसेवक उसे हरद्वार ले जा रहा था, मुझस राह म भेट हुई, मैं रेल म उतर पडा । मै उसे न पहचानूंगा ।

तो तुम्हारा कहना ठीक हो सकता है ।—कहकर निरजन न सिर नीचा कर लिया ।

मैने इसका स्वर, मुख अवयव पहचान लिया, यह रामा की कन्या है ।—भण्डारी ने भारी स्वर स कहा ।

निरजन चुप था । वह विचार मे पड गया । थोडी देर मे बडबडाते हुए उसन सिर उठाया —दोनो को बचाना होगा दोनो ही हे भगवान् ?

इतने म गोस्वामी कृष्णशरण का शब्द उस सुनाई पडा—आप लोग चाहे जो समझे, पर मैं इस पर विश्वास नही कर सकता कि यमुना हत्या कर सकती है ! वह ससार म सताई हुई एक पवित्र आत्मा है वह निर्दोष है ! आप लोग दखेगे कि उसे फासी न होगी ।

आवेश से निरजन उसक पास जाकर बोला—मै उसकी पैरवी का सब व्यय दूँगा । यह लीजिए एक हजार क नोट हे घटन पर और भी दूगा । अच्छे-अच्छे वकील कर लिय जायँ ।

उपस्थित लोगो न एक अपरिचित की इस उदारता पर धन्यवाद दिया । गोस्वामी कृष्णशरण हँस पड । उन्होने कहा—मगलदेव को बुलाना होगा वही सब प्रबन्ध करगा ।

निरजन उसी आश्रम का अतिथि हो गया और उसी जगह रहने लगा । गोस्वामी कृष्णशरण का उसके हृदय पर प्रभाव पडा । नित्य सत्सग होने लगा, प्रतिदिन एक-दूसरे के अधिकाधिक समीप होने लगे ।

मौलसिरी के नीचे शिलाखण्ड पर गोस्वामी कृष्णशरण और देवनिरजन बैठे हुए बात कर रह थे । निरजन न कहा—

महात्मन् ! आज मैं तृप्त हुआ, मेरी जिज्ञासा न अपना अनन्य आश्रय खोज लिया । श्रीकृष्ण क इस कल्याण-मार्ग पर मेरा पूर्ण विश्वास हुआ ।

आज तक जिस रूप म मैं उन्ह देखता था, वह एकागा था, किन्तु इस प्रेम-पथ का सुधार करना चाहिए। इसके लिए प्रयत्न करन की आज्ञा दीजिए।

प्रयत्न! निरजन तुम भूल गये। भगवान् की महिमा स्वय प्रचारित होगी। मैं तो, जो सुनना चाहता है उसे सुनाऊँगा। इसस अधिक कुछ करने का मरा साहस नही।

किन्तु मेरी एक प्रार्थना है। ससार बधिर है, उसको चिल्लाकर सुनाना होगा इसलिए भारतवर्ष म हुए उस प्राचीन महापर्व को लक्ष्य म रखकर भारत-सघ नाम से एक प्रचार-सस्था बना दी जाय!

सस्थाएँ विकृत हो जाती हैं। व्यक्तियो के स्वार्थ उसे कलुपित कर देते है देवनिरजन! तुम नही देखते कि भारत-भर मे साधु-सस्थाओ की क्या

निरजन ने क्षण-भर मे अपनी जीवनी पढने का उद्योग किया। फिर खीझ-कर उसने कहा—महात्मन्। फिर आपने इतने अनाथ स्त्री, बालक और वृद्धो का परिवार क्यों बना लिया है?

निरजन की ओर देखते हुए क्षण-भर चुप रहकर गोस्वामी कृष्णशरण ने कहा—

अपनी असावधानी तो मैं इस न कहूँगा निरजन! एक दिन मगलदेव की प्रार्थना मे अपने विचारो को उद्घोषित करन क लिए मैंने इस कल्याण की व्यवस्था की थी। उसी दिन म मरी टेकरी मे भीड हान लगी। जिन्हे आवश्यकता है, दु ख है, अभाव है, वे मरे पास आने लगे। मैंन किसी का बुलाया नही। अब किसी का हटा भी नही सकता।

तब आप यह नही मानते कि ससार म मानसिक दु ख स पीडित प्राणिया का इस सदेश स परिचित करन की आवश्यकता ह?

है, किन्तु मैं आडम्बर नही चाहता। व्यक्तिगत श्रद्धा से जितना जो कर सके, उतना ही पर्याप्त है।

किन्तु अब यह एक परिवार बन गया है, इसकी कोई निश्चित व्यवस्था करनी ही होगी।

मैं इस झझट स दूर रहना चाहता हूँ। मगल को आन दो।

निरजन न *यहाँ का सब समाचार लिखते हुए किशोरी को यह भी लिखा* था—अपन और उसके पाप-चिह्न विजय का जीवन नही क बराबर है। हम दोनो का सताप करना चाहिए और मरी भी इच्छा ह कि अब भगवद्भजन करूँ। मैं भारत-सघ क सघटन म लगा हूँ। विजय को खोजकर उस और भी सकट म डालना होगा। तुम्हार लिए भी सतोष को छोडकर दूसरा कोई उपाय नही।

पत्र पाकर किशोरी खूब रोई।

श्रीचन्द्र अपनी सारी कल्पनाओं पर पानी फिरते देखकर किशोरी की ही चापलूसी करने लगा। उसकी वह पंजाबवाली चन्दा अपनी लड़की को लेकर चली गई क्योंकि ब्याह होना असंभव था।

बीतने वाला दिन बातों को भुला देता है।

एक दिन किशोरी ने कहा—

जो कुछ है हम लोगों के लिए बहुत अधिक है हाय-हाय कर के क्या होगा।

मैं भी अब व्यवसाय करने पंजाब न जाऊँगा। किशोरी! हम दोनों यदि सरलता से निभा सकें तो भविष्य जीवन हम लोगों का सुखमय होगा इसमें कोई संदेह नहीं।

किशोरी ने हँसकर सिर हिला दिया।

संसार अपने-अपने सुख की कल्पना पर खड़ा है—यह भीषण संसार अपनी स्वप्न की मधुरिमा से स्वर्ग है। आज किशोरी को विजय की अपेक्षा नहीं, निरंजन की भी नहीं। और श्रीचन्द्र को रुपयों के व्यवसाय और चन्दा की नहीं। दोनों ने देखा इन सबके बिना हमारा काम चल सकता है सुख मिल सकता है। फिर झंझट करके क्या होगा। दोनों का पुनर्मिलन प्रौढ़ आशाओं से पूर्ण था। श्रीचन्द्र ने गृहस्थी संभाली। सब प्रबन्ध ठीक करके दोनों विदेश घूमने के लिए निकल पड़े। ठाकुरजी की सेवा का भार एक मूर्ख के ऊपर था जिसे केवल दो रुपये मिलते थे—वे भी महीने भर में। आहा! स्वार्थ कितना सुन्दर है!

४

तब आपने क्या निश्चय किया ? —सरला तीव्र स्वर से बोली।

घण्टी को उस हत्याकांड से बचा लेना भी अपराध है, ऐसा मैंने कभी सोचा भी नहीं। —बाथम ने कहा—

बाथम ! तुम जितने भीतर से क्रूर और निष्ठुर हो, यदि ऊपर से भी वही व्यवहार रखते, तो तुम्हारी मनुष्यता का कल्याण होता ! तुम अपनी दुर्बलता को परोपकार के पर्दे में क्या छिपाना चाहते हो ! नृशंस ! यदि मुझमें विश्वास की तनिक भी मात्रा न होती, तो मैं अधिक सुखी रहती—कहती हुई लतिका हाँफने लगी। सब चुप थे।

कुबड़ी खटखटाते हुए पादरी जान ने उस शांति को भंग किया और आते ही बोला—मैं समझ चुका हूँ, जब दोनों एक-दूसरे पर अविश्वास करते हों, तब उन्हें अलग हो जाना चाहिए। दबा हुआ विद्वेष छाती के भीतर सर्प के समान फुफकारा करता है, कब अपने ही को वह घायल करेगा, कोई नहीं कह सकता। मेरी बच्ची लतिका ! मारगरेट !

हाँ पिता ! आप ठीक कहते हैं और अब बाथम को भी इसे स्वीकार कर लेने में कोई विरोध न होना चाहिए। —मारगरेट ने कहा।

मुझे सब स्वीकार है। अब अधिक सफाई देना मैं अपमान समझता हूँ।
—बाथम ने रूखेपन से कहा।

ठीक है बाथम ! तुम्हें सफाई देने, अपने को निरपराध सिद्ध करने की क्या आवश्यकता है। पुरुष को, स्वतन्त्र पुरुष को, इन साधारण बातों से घबराने की सम्भावना नहीं, पाखण्ड ! —गरजती हुई सरला ने कहा। फिर लतिका से बोली—चलो बेटी ! पादरी सब कुछ कर लेगा, सम्बन्ध-विच्छेद और नया सम्बन्ध जोड़ने में वह पटु है।

लतिका और सरला उठकर चली गईं। घण्टी काठ की पुतली-सी बैठी चुपचाप वह अभिनय देख रही थी। पादरी ने उसके सिर पर दुलार से हाथ फेरते

हुए कहा—चलो बेटी ! मसीह-जननी की छाया म, तुमन समझ लिया होगा कि उसके बिना तुम्ह शान्ति न मिलेगी !

बिना एक शब्द कहे पादरी क साथ बाथम और घण्टी दोना उठकर चल। जात हुए बाथम न एक बार उस बँगले को निराश दृष्टि से देखा। धीरे धीरे तीनो चले गये।

आरामकुर्सी पर पडी हुई लतिका न एक दिन जिज्ञासा भरी दृष्टि स सरना की आर देखा, तो वह निर्भीक रमणी अपनी दृढता म महिमापूर्ण थी। ललिका का धैय लौट आया। उसन कहा—अब ?

कुछ चिन्ता नही बेटी, मै हूँ ! सब वस्तु बचकर बैंक म रुपय जमा कर दा, चुपचाप भगवान् क भरोस रूखी-सूखी खाकर दिन बीत जायगा। —सरला न कहा।

मैं एक बार उस वृन्दावन वाल गास्वामी क पास चलना चाहती हूँ, तुम्हारा क्या सम्मति है ? —लतिका ने पूछा।

पहल यह प्रबन्ध कर लना हागा, फिर वहाँ भी चलूगी। चाय पिआगी ? आज दिन भर तुमन कुछ नही खाया मै ल आऊँ—बालो ? हम लोगा का जीवन क नवीन अध्याय के लिए प्रस्तुत हाना चाहिए। लतिका ! सदैव प्रस्तुत रहा का महामत्र मेरे जीवन का रहस्य है—दुख क लिए, सुख क लिए जीवन क लिए और मरण के लिए ! उसमे शिथिलता न आनी चाहिए ! विपत्तियाँ वायु की तरह निकल जाती है सुख के दिन प्रकाश के सदृश पश्चिमी समुद्र म भागते रहत है। समय काटना हागा बिताना होगा और यह ध्रुव-सत्य है कि दोनो का अन्त है।

लतिका के मुख पर स्फूर्ति की रखा फूट उठी।

कइ महीन बीत गय। लतिका और बाथम का सम्बन्ध विच्छेद हा गया था। बाथम अब पादरी के बँगल म रहता था और घण्टी भी वही रहती। बाथम किसी काम म लग जाने के लिए जी-तोड परिश्रम कर रहा था। वह अपनी जीविका स्थिर करन के लिए प्रयत्नशील था। और, पादरी घण्टी का बपतिस्मा दकर जीवन का कर्त्तव्य पूरा कर लन की प्रसन्नता स कुछ सीधा हो गया, अब वह उतना झुककर नही चलता।

परन्तु घण्टी ! —आज अँधेरा हो जान पर भी, गिरजा क समीप वाल नाल के पुल पर बैठी, अपनी उधेड-बुन म लगी है। अपन हिसाब किताब म लगी है—

मैं भीख माँगकर खाती थी, तब मेरा कोई अपना नहीं था। लोग दिल्लगी करते और मैं हँसती, हँसाकर हँसती। पहले तो पैसे के लिए, फिर, फिर चसका लग गया—हँसने का आनन्द मिल गया। मुझे विश्वास हो गया कि इस विचित्र भूतल पर हम लोग केवल हँसी की लहरों में हिलने-डोलने के लिए आ रहे हैं। आह! मैं दरिद्र थी, पर मैं उन रोनी सूरतवाले गम्भीर विद्वानों या रुपयों के बोरों पर बैठे हुए भनभनानेवाले मच्छरों को देखकर घृणा करती, या उनका अस्तित्व ही न स्वीकार करती, जो जी खोलकर हँसते न थे! मैं वृन्दावन की गली की एक हँसोड़ पागल थी, पर उस हँसी ने रंग पलट दिया, वही हँसी अपना कुछ और उद्देश्य रखने लगी। फिर विजय, धीरे-धीरे जैसे सावन की हरियाली पर प्रभात का बादल बनकर छा गया—मैं नाचने लगी मयूर-सी! और, वह यौवन का मेघ बरसने लगा। भीतर-बाहर रंग में छक गया। मेरा अपना कुछ न रहा। मेरा आहार, विचार, वेश और भूषा सब बदला, और खूब बदला। वह बरसात के बादलों की रंगीन सन्ध्या थी, परन्तु यमुना पर विजय पाना साधारण काम न था। असम्भव था। मैंने संचित शक्ति से विजय को छाती से दबा लिया था और यमुना वह तो स्वयं राह छोड़कर हट गई थी। पर मैं बनकर भी न बन सकी—नियति चारों ओर से दबा रही थी। और मैंने अपना कुछ न रखा था, जो कुछ था, सब दूसरी धातु का था, मेरे उपादान में कुछ ठोस न था। लो—मैं चली, बाथम उस पर भी नतिनी रोती होगी—यमुना सिसकती होगी दोनों मुझे गाली देती होंगी, अरे—अरे, मैं हँसने वाली सबको रुलाने लगी! मैं उसी दिन धर्म से च्युत हो गई—मर गई, घण्टी मर गई! पर, यह कौन सोच रही है! हाँ, वह मरघट की ज्वाला धधक रही है— ओ, आ मेरा शव! वह देखो—विजय लकड़ी के कुन्दे पर बैठा हुआ रो रहा है और बाथम हँस रहा है। हाय! मेरा शव कुछ नहीं करता है—न रोता है, न हँसता है, तो मैं क्या हूँ! जीवित हूँ! चारों ओर ये कौन नाच रहे हैं, आह! सिर में कौन धक्के मार रहा है! मैं भी नाचूँ—ये चुड़ैलें हैं और मैं भी! तो चलूँ वहीं, आलोक है।

घंटी अपना नया रेशमी साया नाचती हुई दौड़ पड़ी। अन्धकार में चल पड़ी। बाथम उस समय क्लब में था। मैजिस्ट्रेट् की सिफारिशी चिट्ठी की उसे अत्यन्त आवश्यकता थी। पादरी जान सोच रहा था—अपनी समाधि का पत्थर कहाँ से मँगाऊँ, उस पर क्रास कैसा हो!

उधर घण्टी— पागल घण्टी—अँधेरे में भाग रही थी।

५

फतहपुर सीकरी स अछनरा जाने वाली सडक क मून अचल म एक छोटा-सा जगल है। हरियाली दूर तक फैली हुई ह। यहाँ खारी नदी एक छोटी सी पहाडी से टकराती हुई बहती है। यह पहाडी सिलसिला अछनरा और सिंघापुर के बीच म है। जनसाधारण उस सून कानन म नहीं जाते। कहीं-कहीं बरसाती पानी बहने क सूख नाल अपना जर्जर कलवर फैलाय पडे है। बीच बीच म ऊपर के टुकडे निर्जल नालो स सहानुभूति करते हुए दिखाई द जात हे। कवल ऊँची-ऊँची टेकरियो से उसकी बस्ती वसी हे। वृक्षो के एक घने झुरमुट म लता-गुल्मा से ढँकी एक सुन्दर झोपडी है। उसम कई विभाग हैं। बडे-बडे वृक्षो क नीचे पशुओ क झुड बँधे है, उनम गाय, भैंस और घोडे भी ह। तीन-चार भयावन कुत्त अपनी सजग आखा स दूर-दूर बैठे पहरा द रह है। एक पूरा पशु-परिवार लिय गाला उस जगल म सुखी और निर्भर रहती है। वदन गूजर, उस प्रान्त क भयानक मनुष्यो का मुखिया गाला का सत्तर बरस का बूढा पिता ह। वह अब भी अपन साथियो क साथ चढाई पर जाता ह। गाला की वयस यद्यपि बीस क ऊपर ह, फिर भी कौमाय क प्रभाव स वह किशोरी ही जान पडती है।

गाला अपने पक्षिया क चारे-पानी का प्रवन्ध कर रही थी। दखा तो एक बुलबुल उस टूटे हुए पिंजडे स निकल भागना चाहता है। अभी कल ही गाला न उसे पकडा था। वह पशु-पक्षियो को पकडने और पालने म बडी चतुर थी। उसका यही खेल था। वदन गूजर जव बटेसर के मेले म सौदागर वनकर जाता, तब इसी गाला की दख-रेख म पल हुए जानवर उस मुँहमागा दाम द जात। गाला अपन टूटे हुए पिंजडे का तारो के टुकडे और मोटे सूत स वाँध रही थी। सहसा एक वलिष्ठ युवक न मुस्कराते हुए कहा—कितना को पकडकर सदैव के लिए वन्धन म जकडती रहोगी गाला।

हम लोगो को पराधीनता स बडी मित्रता ह नये! इसम बडा सुख मिलता ह। वही सुख औरो को भी दना चाहता हूँ—किसी स पिता, किसी से भाइ एसा ही काई सम्बध जोडकर उन्ह उलझाना चाहती हूँ, किन्तु पुरुष, इस जगली

बुलबुल स भी अधिक स्वतन्त्रता-प्रेमी है। वे सदैव छुटकारे का अवसर खोज लिया करते है। देखा न, बाबा जब होता ह, चले जाते है। कब तक आवेंगे तुम जानते हो ?

नही भला मैं क्या जानूं ! पर, तुम्हारे भाई को मैंन कभी नही देखा।

इसी से नो कहती हूँ नये ! मैं जिसका पकडकर रखना चाहती हूँ, वे ही लाग तो भागते ह। जाने कहाँ ससार-भर का काम उन्ही के सिर पर आ पडा है ! मरा भाई ? —आह, कितनी चौडी छाती वाला युवक था ! अकले चार-चार घोडो को बीसों कोस सवारी म ले जाता। आठ-दस सिपाही कुछ न कर सक्ते। वह शेर-सा उनमें से तडपकर निकल जाता। उसके सिखाय घाडे सीढियो पर चढ जाते। घोडे उससे बाते करते, वह उनके मरम को जानता था।

तो क्या अब नही है ?

नही है। मै रोकती थी, बाबा न न माना। एक लडाई म वह मारा गया ! अकेले बीस सिपाहियो को उसने उलझा लिया, और सब निकल आये।

तो क्या मुझे आश्रय देन वाले डाकू है ?

तुम देखते नही, मै जानवरा का पालती हूँ, और मर बाबा उन्ह मले म ले जाकर बेचते ह ! —गाला का स्वर तीव्र और सन्देहजनक था।

और तुम्हारी माँ ?

ओह ! वह बडी लम्बी कहानी है, उस न पूछो ! —कहकर गाला उठ गई। एक बार अपने कुर्ते के अचल स उसन आँख पाछी, और एक श्यामा गौ के पास जा पहुची। गौ न सिर झुका दिया, गाला उसका सिर खुजलान लगी। फिर उसके मुंह-से-मुंह सटाकर दुलार किया। उसके बछडे का गला चूमने लगी। उसे भी छोडकर एक साल-भर के बछड को जा पकडा। उसके बडे-बड अयाला को अपनी उँगलियो से सुलझान लगी। एक बार वह फिर अपन पशु-मित्रा मे प्रसन्न हो गई। युवक चुपचाप एक वृक्ष की जड पर जा बैठा। आधा घण्टा न बीता होगा कि टापो के शब्द सुनकर गाला मुस्करान लगी। उत्कण्ठा स उसका मुख प्रसन्न हो गया।

अश्वारोही आ पहुँचे। उनम सबसे आगे उमर म सत्तर बरस का वृद्ध, परन्तु दृढ पुरुष था। क्रूरता उसकी घनी दाढी और मूंछा के तिरछेपन से टपक रही थी। गाला न उसके पास पहुँचकर घोड से उतरने मे सहायता दी। वह भीषण बुड्ढा अपनी युवती कन्या को देखकर पुलकित हो गया। क्षण भर के लिए न जाने कहाँ छिपी हुई मानवीय कामलता उसके मुह पर उमड आई ! उसन पूछा—सब ठीक है न गाला !

हाँ बाबा !

बुड्ढे ने पुकारा —नय !

युवक समीप आ गया। बुड्ढे ने एक बार नीचे से ऊपर तक उसे देखा। युवक के ऊपर सन्देह का कोई कारण न मिला। उसने कहा—सब घोड़ों को मलवाकर चारे-पानी का प्रबन्ध कर दो।

बुड्ढे के तीन साथी और उस युवक ने मिलकर घोड़ों का मलना आरम्भ किया। बुड्ढा एक छोटी-सी मँचिया पर बैठकर तमाखू पीने लगा। गाला उसके पास खड़ी होकर उससे हँस-हँसकर बातें करने लगी। पिता और पुत्री दोनों प्रसन्न थे। बुड्ढे ने पूछा—गाला ! यह युवक कैसा है ?

गाला ने जाने क्या इस प्रश्न पर पहली बार लज्जित हुई। फिर सँभल कर उसने कहा—देखने में तो यह बड़ा सीधा और परिश्रमी है।

मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। प्रायः जब हम लोग बाहर चले जाते हैं तब तुम अकेली रहती हो।

बाबा ! अब बाहर न जाया करो।

तो क्या यहीं बैठा रहूँ गाला ! मैं इतना बूढ़ा नहीं हो गया !

नहीं बाबा ! मुझे अकेली छोड़कर न जाया करो।

पहले तू जब छोटी थी, तब तो नहीं डरता था। अब क्या हुआ ? और, अब तो यह 'नये' भी यहीं रहा करेगा। बेटी ! यह कुलीन युवक जान पड़ता है।

हाँ बाबा ! किन्तु यह घोड़ा का मलना नहीं जानता—देखा सामने। पशुओं में इसे तनिक भी स्नेह नहीं है। बाबा ! तुम्हारे साथी भी बड़े निर्दयी हैं। एक दिन मैंने देखा कि मुख से चरते हुए एक बकरी के बच्चे को इन लोगों ने समूचा ही भून डाला ! ये सब बड़े डरावने लगते हैं। तुम भी उन्हीं में मिल जाते हो।

चुप पगली ! अब बहुत विलम्ब नहीं—मैं इन सबसे अलग हो जाऊँगा। अच्छा तो बता, इस 'नये' को रख लूँ न ? —बदन गम्भीर दृष्टि से गाला की ओर देख रहा था।

गाला ने कहा—अच्छा तो है बाबा ! बेचारा दुख का मारा है !

एक चाँदनी रात थी। बरसात से धुला हुआ जंगल अपनी गंभीरता में डूब रहा था। नाले के तट पर बैठा हुआ 'नये' निर्निमेष दृष्टि से उस हृदय-विमोहन चित्र-पट को देख रहा था। उसके मन में कितनी बीती हुई स्मृतियाँ स्वर्गीय नृत्य करती हुई चली जा रही थीं। वह अपने फटे हुए कोट को टटोलने लगा। सहसा उसे एक बाँसुरी मिल गई— जैसे कोई खोई हुई निधि मिली। वह प्रसन्न होकर

बजाने लगा। वसी क विलम्बित मधुर स्वर से सोई हुई वनलक्ष्मी का जगाने लगा। वह अपने स्वर म आप हा मस्त हो रहा था । उसी समय गाला न जाने कैसे उसके समीप आकर खडी हा गई। नये ने वसी बजाना वन्द कर दिया। वह भयभीत होकर देखने लगा।

गाला ने कहा—तुम जानते हो कि यह कौन स्थान ह ?

जगल ह मुझस भूल हुई।

नही यह व्रज की सीमा क भीतर है। यहा चादनी रात म बासुरा बजान स गोपिया की आत्माएँ मचल उठती है।

तुम कौन हा गाला !

मैं नही जानती पर मर मन म भी ठेस पहुचती है।

तव मैं न बजाऊगा।

नही नये ! तुम बजाओ वडी सुन्दर वजती थी। हा बाबा कदाचित् क्रोध कर।

अच्छा तुम रात का यो ही निकलकर घूमती हा। इस पर तुम्हार बाबा न क्रोध करगे ?

हम लाग जगली है। अकेल ता मैं कभी कभी आठ आठ दस-दस दिन इसा जगल म रहती हूँ।

अच्छा तुम्हे गोपियो की बात कैस मालूम हुई ? क्या तुम लाग हिन्दू हो ? इन गूजरा स तो तुम्हारी भाषा भिन्न ह !

आश्चय स दखती हुइ गाला न कहा—क्या इसम भी तुमका सन्देह है ! मरी माँ मुगल होन पर भी कृष्ण स अधिक प्रेम करती थी। अहा नय ! मैं किसी दिन उसकी जीवनी सुनाऊँगी। वह

गाला ! तब तुम मुगलानी मा से उत्पन्न हुई हो !

क्रोध से देखती हुई गाला ने कहा –तुम यह क्या नही कहत कि हम लोग मनुष्य हैं।

जिस सहृदयता स तुमन मरी विपत्ति म सेवा की ह गाला ! उस दखकर ता मैं कहूगा कि तुम दव बालिका हो !—नय का हृदय सहानुभूति की स्मृति म भर उठा था।

नहा नही मै तुमका अपनी माँ की लिखी हुई जीवनी पढन को दूगी और तब तुम समझ जाओगे। चलो रात अधिक बात रही ह पुआल पर सो रहो। —गाला न नय का हाथ पकड़ लिया दोना उस चन्द्रिका धौत शुभ्र रजनी म

भीगती हुई झोपडी की ओर लौटे। उनके चले जाने के बाद वृक्षों की आड से बढा बदन गूजर भी निकला और उनके पीछे-पीछे चला।

प्रभात चमकने लगा था। जगली पक्षिया के क्लनाद से कानन-प्रदेश गुजरित था। गाला चारे-पानी के प्रबन्ध मे लगी थी। बदन न नये को बुलाया। वह आकर सामने खडा हो गया। बदन ने उसस बैठन क लिए कहा। उसके बैठ जाने पर गूजर कहन लगा—

जब तुम भूख स व्याकुल, थके हुए, भयभीत, सडक स हटकर पेड क नीचे पडे हुए आधे अचेत थ, उस समय किसन तुम्हारी रक्षा की थी ?

आपन ! —नय न कहा।

तुम जानते हो कि हम लोग डाकू है, हम लोगो का माया-ममता नही ! परन्तु हमारी निर्दयता भी अपना निर्दिष्ट पथ रखती है, वह हे केवल धन लेने के लिए। भेद यही है कि धन लेने का दूसरा उपाय हम लोग काम मे नही लात, दूसरे उपायो को हम लोग अधम समझते हैं—धोखा देना, चोरी करना, विश्वासघात करना, यह सब जो तुम्हारे नगरो के सभ्य मनुष्यो की जीविका के सुगम उपाय हैं, हम लाग उनस घृणा करते है।

और भी, तुम वृन्दावन वाले खून क एक भागे हुए असामी हा —हो न ? —कहकर बदन तीखी दृष्टि स नय को देखने लगा। वह सिर नीचा किये खडा रहा। बदन फिर कहन लगा—ला तुम छिपना चाहत हा। अच्छा सुनो, हम लोग जिस अपनी शरण म ले लेते है, उसस विश्वासघात नही करते। आज तुमसे एक बात साफ कह दना चाहता हूँ। देखो, गाला सीधी लडकी है, ससार के कतर-ब्यात वह नही जानती, तथापि यदि वह निसर्ग-नियम से किसी युवक को प्यार करन लग, तो इसम आश्चर्य नही। सभव है, वह मनुष्य तुम्ही हो जाओ, इसलिए तुम्ह सचेत करता हूँ कि सावधान ! उसे धोखा न दना। हाँ, यदि तुम कभी प्रमाणित कर सकोगे कि तुम उसके योग्य हो, तो फिर दखा जायगा ! समझा !

बदन चला गया। उसकी प्रौढ कर्कश वाणी, नय के काना म वज्र-गम्भीर स्वर स गूँजन लगी। वह बैठ गया और अपन जीवन का हिसाब लगाने लगा।

बहुत विलम्ब तक वह बैठा रहा। तब गाला न उसस कहा—आज तुम्हारी रोटी पडी रहेगी, क्या खाओगे नही ?

नये न कहा—मै तुम्हारी माता की जीवनी पढना चाहता हूँ। तुमन मुझे दिखान के लिए कहा था न !

आहो, तो तुम रूठना भी जानत हो ! अच्छा खा लो, मान जाओ, मै तुम्हे

दिखना दूगा।—कहती हुई गाला ने वैसा ही अभिनय किया, जैसे किसी बच्चे को मनाते हुए स्त्रियाँ करती हैं। यह देखकर नये हँस पड़ा। उसने पूछा—अच्छा कब दिखाओगी ?

लो तुम खाने लगो, मैं जाकर ले आती हूँ।

नये अपने रोटी-मठे की ओर चला और गाला अपने घर में।

६

शीतकाल के वृक्षों से छनकर आती हुई धूप, बड़ी प्यारी लग रही थी। नये पैरों पर पैर धरे, चुपचाप गाला की दी हुई, चमड़े से बँधी एक छोटी-सी पुस्तक को आश्चर्य से देख रहा था। यह प्राचीन नागरी में लिखी हुई थी। उसके अक्षर सुन्दर तो न थे, पर थे बहुत स्पष्ट। नये कुतूहल से उसे पढ़ने लगा—

मेरी कथा

बेटी गाला! तुझे कितना प्यार करती हूँ, इसका अनुमान तुझे छोड़ कर दूसरा नहीं कर सकता। बेटा भी मेरे ही हृदय का टुकड़ा है, पर वह अपने बाप के रंग में रँग गया—पक्का गूजर हो गया! पर मेरी प्यारी गाला! मुझे भरोसा है कि तू मुझे न भूलेगी। जंगल के कोने में बैठी हुई, एक भयानक पति की पत्नी अपने बाल्यकाल की मीठी स्मृति से यदि अपने मन को न बहलावे तो दूसरा उपाय क्या है? गाला! सुन, वर्तमान सुख के अभाव में पुरानी स्मृतियों का धन, मनुष्य को पल-भर के लिए सुखी कर सकता है, और तुझे भी अपने जीवन में आगे चलकर कदाचित् इससे सहायता मिले, इसीलिए मैंने तुझे थोड़ा-सा पढ़ाया और इसे लिखकर छोड़ जाती हूँ—

मेरी माँ मुझे बड़े गर्व से गोद में बैठाकर बड़े दुलार से मुझे अपनी बीती सुनाती, उन्हीं बिखरी हुई बातों को इकट्ठी करती हूँ। अच्छा लो, सुनो मेरी कहानी—

मेरे पिता का नाम मिरजा जमाल था। वे मुगल-वंश के एक शाहजादे थे। मथुरा और आगरा के बीच में, उनकी जागीर के कई गाँव थे, पर वे प्रायः दिल्ली में ही रहते। कभी-कभी सैर शिकार के लिए जागीर पर चले आते। उन्हें प्रेम था शिकार से और हिन्दी-कविता से। सोमदेव नामक एक चौबे उनका मुसाहिब और कवि था। वह अपनी हिन्दी-कविता सुनाकर उन्हें प्रसन्न रखता। मेरे पिता को संस्कृत और फारसी से भी प्रेम था। वे हिन्दी के मुसलमान कवि जायसी के पूरे भक्त थे। सोमदेव इसमें उनका बराबर साथ देता। मैंने भी उसी

से हिन्दी पढ़ी। क्या कहूँ, वे दिन वडे चैन के थे ! पर आपदाएँ भी पीछा कर रही थी।

एक दिन मिरजा जमाल अपनी छावनी से दूर ताम्बूल-वीथी म वैठे हुए वैसाख के पहल क कुछ-कुछ गरम पवन से सुख का अनुभव कर रहे थे। ढालुवें टीले पर पान की खेती, उन पर सुढार छाजन, देहात के निर्जन वातावरण को मचित्र वना रही थी। उसी से सटा हुआ, कमलो म भरा एक छोटा-सा ताल था, जिसम स भीनी-भीनी मुगन्ध उठकर मस्तक को शीतल कर देती। कलनाद करते हुए कभी-कभी पुरइना से उड जाने पर ही जलपक्षी अपने अस्तित्व का परिचय द दत। मोमदव न जलपान की मामग्री सामन रख कर पूछा —क्या आज यही दिन वीतेगा ?

हाँ, देखो ये लोग कितन सुखी है सोमदव ! इन दहाती गृहस्थो म भी कितनी आशा है, कितना विश्वास है। अपन परिश्रम म इन्हे कितनी तृप्ति ह !

यहाँ छावनी है अपना जागीर म सरकार ? रोब से रहना चाहिए। दूसरे स्थान पर चाहे जैस रहिए।—मोमदेव ने कहा।

मोमदेव सहचर, सवक और उनकी मभा का पण्डित भी था। वह मुहलगा भी था कभी-कभी उनस उलझ भी जाता परन्तु वह हृदय स उनका भक्त था। उनके लिए प्राण द सकता था।

चुप रहो मामदव ? यहाँ मुझे, हृदय की खोई हुई शान्ति का पता चल रहा है। तुमने दखा होगा, पिताजी कितने यत्न स सचय कर यह सम्पत्ति छाड गये है। मुझे उम धन स प्रम करन की शिक्षा वे उच्चकोटि की दार्शनिक शिक्षा की तरह गम्भीरता स आजीवन देत रह। आज उसकी पराक्षा हा रही है। मैं पूछता हूँ कि हृदय म जितनी मधुरिमा है कोमलता है, वह सव क्या कवल एक तरुणी मुन्दरता की उपासना की मामग्री है ? इसका और काई उपयाग नही ? हँसने क जा उपकरण है, वे किसी झलमले अचल म हा अपना मुँह छिपाए किसी आशीवाद की आशा म पडे रहते ह ? ससार म स्त्रियो का क्या इतना व्यापक अधिकार ह ?

सामदव ने कहा—आपक पास इतनी सम्पत्ति है कि अभाव की शका व्यर्थ है। जा चाहिए कीजिए। वर्तमान जगत् का शासक प्रत्येक प्रश्नो का समाधान करने वाला विद्वान् धन ता आपका चिर सहचर और विश्वस्त है ही ? चिन्ता क्या ?

मिरजा जमाल न जलपान करत हुए प्रसग वदल दिया। कहा—आज तुम्हारे बादाम की बरफी में कुछ कडव वादाम थे।

तमोली न टट्टर के पास ही भीतर, दरी विछा दी थी। मिरजा चुपचाप सामने पूले हुए कमलो को देखते थे। ईख की सिंचाई के पुरवट के शब्द दूर स उस निस्तब्धता को भग कर दते थे। पवन की गरमी से टट्टर वन्द र र दन पर भी उस मरपत की झँझरो स बाहर का दृश्य दिखलाई पडता था। ढालुवी भूमि म तकिये की आवश्यकता न थी। पास ही आम के नीचे कम्वल बिछाकर दो सेवको के माथ सोमदेव वैठा था। मन म सोच रहा था—यह मव रुपये की सनक है!

ताल के किनारे, पत्थर की शिला पर, महुए की छाया म, एक किशोरी और एक खसखसी दाढीवाला मनुष्य, लम्बी सारगी लिय, विश्राम कर रहे थे। बालिका की वयस चौदह से ऊपर नही, पुरुष पचास के समीप। वह देखने म मुसलमान जान पडता था। दिहाती दृढता उसके अग-अग स झलकती थी। घुटनो तक हाथ-पैर धो, मुँह पोछकर एक बार अपने म आकर उसन आँख फाड-कर देखा—उसने कहा—शवनम! देखो, यहाँ कोई अमीर टिका मालूम पडता है। ठढी हो चुकी हो, तो चलो वेटी! कुछ मिल जाय तो अचरज नही।

शबनम वस्त्र सँवारने लगी, उसकी सिकुडन छुडाकर अपनी वेशभूषा को ठीक कर लिया। आभूषणो म दो-चार काँच की चूडियाँ और नाक म नथ, जिसम मोती लटककर अपनी फाँसी छुडाने के लिए छटपटाता था। टट्टर के पास पहुँच गय। मिरजा न देखा—बालिका की वेशभूषा म कोई विशेषता नही, परन्तु परिष्कार था। उसके पास कुछ नही था—वसन, अलकार या भादो की भरी हुई नदी-सा यौवन। कुछ नही, थी केवल दो-तीन कलामयी मुख-रेखाएँ—जो आगामी सौन्दर्य की बाह्य रेखाय थी, जिनम यौवन का रग भरना कामदेव ने अभी बाकी रख छोडा था। कई दिन का पहना हुआ वसन भी मलिन हो चला था, पर कौमार्य म उज्ज्वलता थी। और यह क्या!—सूखे कपालो मे दो-दो तीन-तीन लाल मुहाँसे। तारुण्य जैसे अभिव्यक्ति का भूखा था, 'अभाव अभाव!'—कहकर जैसे कोई उसकी सुरमई आँखो म पुकार उठता था। मिरजा कुछ सिर उठाकर झँझरी से देखने लगा।

सरकार! कुछ सुनाऊँ?—दाढीवाले ने हाथ जोडकर कहा।

सोमदेव ने बिगडकर कहा—जाओ अभी सरकार विश्राम कर रहे हैं।

तो हम लोग भी बैठ जाते हैं, आज तो पेट भर जायगा—कहकर वह सारगी वाला वहाँ की भूमि झाडने लगा।

झुझलाकर सोमदेव ने कहा—तुम भी एक विलक्षण मूर्ख हो! कह दिया न, जाओ।

मेवक ने भी गर्व से कहा—तुमको मालूम नही, सरकार भीतर लेटे है। घबराकर सारगीवाले ने पूछा—कौन सरकार ?

शाहजादे मिरजा जमाल ।

कहाँ है ?

यही, इसी टट्टी मे है, धूप कम होने पर बाहर निकलेंगे ।

भाग खुल गये भय्या ! मै चुपचाप बैठना हूँ—कहकर दाढीवाला बिना परिष्कृत की हुई भूमि पर बैठकर आँखे मटकाकर शबनम को सकेत करने लगा ।

शबनम अपने एक ही वस्त्र को और भी मलिन होने से बचाना चाहती थी, उसकी आँखे स्वच्छ स्थान और आड खोज रही थी । उसके हाथ मे अभी का तोडा हुआ कमलगट्टा था। सबकी आँखे बचाकर वह उसे चख लेना चाहती थी । सहसा टट्टर खुला ।

मिरजा ने कहा—सोमदेव !

सेवक दौडा, सोमदेव उठ खडा हुआ । मिरजा ने आखो से पूछा—ये कौन लोग है ? जैसे बिलकुल अनजान ।

सारगीवाला उठ खडा हुआ था । उसने कई आदाब बजाकर और सोमदेव को कुछ बोलने का अवसर न देते हुए कहा—सरकार ! जाचक हूँ, बडे भाग मे दर्शन हुए ।

मिरजा को इतने से सन्तोष न हुआ । उन्होने मुँह बन्द किये, फिर सिर हिलाकर कुछ और जानने की इच्छा प्रकट की । सोमदेव ने दरबारी ढग से डाँटकर कहा—तुम कौन हो जी, साफ-साफ क्यो नही बताते ?

मैं ढाढी हूँ ।

और, यह कौन है ?

मेरी लडकी शबनम ।

शबनम क्या ?

शबनम ओस को कहते हैं पण्डितजी ।—मुस्कराते हुए मिरजा ने कहा और एक बार शबनम की ओर भली-भाँति देखा । तेजस्वी श्रीमान् की आँखो से मिलते ही, दरिद्र शबनम की आँखे पसीने-पसीने हो गईं । मिरजा ने देखा उन आकाश-सी नीली आँखो मे सचमुच ओस की बूँदे छा गई थी ।

अच्छा, तुम लोग क्या करते हो ?—मिरजा ने पूछा ।

यही गाते है, इसी मे हम दोनो का पापी पेट चलता है ।

मिरजा की इच्छा गाना सुनने की न थी; परन्तु शबनम अब तक कुछ बोली

नही थी, केवल इसीलिए सहसा उन्होने कहा—अच्छा सुनूं तो तुम लोगो का गाना। तुम्हारा नाम क्या है जी ?

रहमत खाँ, सरकार!—कहकर वह अपनी सारगी मिलाने लगा। शबनम बिना किसी से कुछ पूछे, आकर कम्बल पर बैठ गई। सामदेव झुंझला उठा, पर कुछ बोला नही।

शबनम गाने लगी—

पसे मर्ग मेरी मजार पर जो दिया किसी ने जला दिया।
उसे आह! दामने बाद ने सरेशाम ही से बुझा दिया!

इसके आगे जैसे शबनम को भूल गया था। वह इसी पद्य का कई बार गाती रही। उसके सगीत मे कला न थी, करुणा थी। पीछे से रहमत उसके भूले हुए अश का स्मरण दिलाने के लिए गुनगुना रहा था, पर शबनम के हृदय का रिक्त अश मूर्तिमान होकर जैसे उसकी स्मरण-शक्ति के सामने अड जाता था। झुंझलाकर रहमत ने सारगी रख दी। विस्मय से शबनम ने पिता की ओर देखा, उसकी भोली-भोली आँखो ने पूछा—क्या कुछ भूल हो गई। चतुर रहमत उस बात को पी गया। मिरजा जैसे स्वप्न से चौके, उन्होने देखा—सचमुच सन्ध्या से ही बुझा हुआ स्नेह विहीन दीपक सामने पडा है। मन मे आया, उसे भर दूं। कहा—रहमत, तुम्हारी जीविका का अवलम्ब तो बडा दुर्बल है।

सरकार, पेट नही भरता दो बीघा जमीन से क्या होता है।

मिरजा ने कौतुक से कहा—तो तुम लोगो को कोई सुखी रखना चाहे, तो रह सकते हो ?

रहमत के लिए जैसे छप्पर फाडकर किसी ने आनन्द बरसा दिया। वह भविष्य की सुखमयी कल्पनाओ से पागल हो उठा—क्या नही सरकार! आप गुनियो की परख रखते है।

सोमदेव ने धीरे से कहा—वेश्या है सरकार।

मिरजा ने कहा—दरिद्र है।

सोमदेव ने विरक्त होकर सिर झुका लिया।

कई बरस बीत गये।

शबनम मिरजा के महल मे रहने लगी थी।

सुन्दरी! सुन्दरी! ओ बँदरी! यहाँ तो आ!

आई !—कहती हुई एक चचल छोकरी हाथ बाँधे सामने आकर खडी हो गई। उसकी भवें हँस रही थी ! वह अपने होठो को बडे दवाव से रोक रही थी।

देखो तो आज इसे क्या हो गया है। वोलती ही नही, मन मारे बैठी है।

नही मलका ! चारा-पानी रख देती हूँ। मैं तो इससे डरती हूँ ! और कुछ नही करती।

फिर इसका क्या हो गया है, वतला नही तो सिर के बाल नाच डालूँगी।

सुन्दरी को विश्वास था कि मलका कदापि एसा नही कर सकती। वह ताली पीटकर हँसने लगी और बोली—मैं समझ गई !

उत्कण्ठा से मलका ने कहा—तो वताती क्या नही ?

जाऊँ सरकार को वुला लाऊँ, वे ही इसके मरम की वात जानते है।

मच कह, वे कभी इसे दुलार करते है, पुचकारते हैं ? मुझे तो विश्वास नही होता।

हाँ।

तो मैं ही चलती हूँ, तू इस उठा ले।

सुन्दरी ने महीन सोने के तारा से वना हुआ पिंजरा उठा लिया, और शव-नम आरक्त कपोला पर का श्रम-सीकर पाछ्ती हुई, उसके पीछे-पीछे चली।

उपवन की कुज गली परिमल से मस्त हो गई। फूलो ने मकरन्द-पान करने क लिए अधरा-सी पखडिया खोली। मधुप लडखडाय। मलयानिल सूचना देने के लिए आगे-आगे दौडन लगा।

लोभ ! सो भी धन का ! आह । कितना सुन्दर सर्प भीतर फुफकार रहा है। कोहनूर का सीसफूल गजमुक्ताओ की एकावली विना अधूरा है, क्यो ? वह तो कगाल थी। वह मेरी कौन है ?

कोई नही सरकार ! —कहते हुए सामदेव न विचार म बाधा उपस्थित कर दी।

हाँ, सामदव मै भूल कर रहा था।

बहुत-स लाग वदान्त की व्याख्या करते हुए ऊपर स देवता वन जाते हैं और भीतर उसके वह नोच-खसोट चला करता है। जिसकी सीमा नही।

वही तो सोमदेव ! कगाल को साने म नहला दिया, पर उसका कोई तत्काल फल न हुआ—मैं समझता हूँ वह सुखी न हो सकी।

सोने की परिभाषा कदाचित् सवके लिए भिन्न-भिन्न हा ! कवि कहते हैं—सवरे की किरणे सुनहली हैं, राजनीति-विशारद—सुन्दर राज्य को, सुनहला

शासन चहते हैं। प्रणयी यौवन म सुनहरा पानी देखते हैं, और माता अपने बच्चे के सुनहले बालो के गुच्छो पर सोना लुटा देती है। यह कठोर, निर्दय, प्राणहारी पीला सोना ही ता सोना नही है। —सोमदेव न कहा।

सोमदेव! कठोर परिश्रम से, लाखो बरस स, नये-नये उपाय से, मनुष्य पृथ्वी से सोना निकाल रहा है, पर वह भी किसी-न-किसी प्रकार फिर पृथ्वी म जा घुसता है। मैं सोचता हूँ कि इतना धन क्या होगा! लुटाकर दखूं?

सब तो लुटा दिया, अब कुछ कोष मे है भी!

क्या! —आश्चय से मिरजा ने पूछा।

सचित धन अब नही रहा।

क्या वह सब प्रभात के झरते हुए ओस की बूदो म अरुण किरणो की छाया थी! और, मैंने जीवन का कुछ सुख भी नही लिया!

सरकार! सब सुख सब के पास एक साथ नही आत, नही तो विधाता को सुख बाँटन म बडी बाधा उपस्थित हो जाती!

चिढकर मिरजा न कहा—जाओ!

सोमदेव चला गया, और मिरजा एकान्त म जीवन की गुत्थियो का सुलझान लगे। वापी के मरकत जल का निर्निमेष देखते हुए वे मगमर्मर के उसी प्रकोष्ठ के समान निश्चेष्ट थ, जिसमे बैठे थे।

नूपुर की झनकार न स्वप्न भग कर दिया—

देखो तो इस हो क्या गया है, बालता नही क्यो! तुम चाहो तो यह बाल दे।

ए! इसका पिंजडा तो तुमने सोने से लाद लिया है! मलका! बहुत हो जान पर भी सोना-सोना ही है! ऐसा दुरुपयोग!

तुम इसे देखो तो, क्यो दुखी है?

ले जाओ, जब मै अपने जीवन के प्रश्नो पर विचार कर रहा हूँ, तब तुम यह खिलवाड दिखाकर मुझे भुलवाना चाहती हो!

'मैं तुम्हे भुलवा सकती हूँ!' —मिरजा का यह रूप शबनम ने कभी नही देखा था। वह उनके गर्म आलिंगन, प्रेम-पूर्ण चुम्बन और स्निग्ध दृष्टि स सदैव ओत-प्रोत रहती थी—आज अचानक यह क्या! ससार अब तक उसके लिय एक सुनहली छाया और जीवन एक मधुर स्वप्न था। खजरीट मोती उगलने लगे।

मिरजा को चेतना हुई—इसी शबनम को प्रसन्न करन के लिए तो वह कुछ विचारता-सोचता है, फिर यह क्या! यह क्या—मरी एक बात भी यह हँसकर नही उडा सकती, झट उसका प्रतिकार! उन्होने उत्तेजित होकर कहा—

सुन्दरी ! उठा ल मरे सामन स पिजरा, नही ता तेरी भी खापडी फूटेगी और यह ता टूटेगा ही !

सुन्दरी ने वेढव रग देखा, वह पिजरा लेकर चली । मन म साचती जाती थी —आज यह क्या ! मन-वहलाव न हाकर यह काण्ड कैसा !

शवनम तिरस्कार न सह सकी, वह मर्माहत होकर श्वेत प्रस्तर के स्तम्भ स टिककर सिसकन लगी । मिरजा ने अपन मन को धिक्कारा । रान वाला मलका न उसे अकारण अकरुण हृदय को द्रवित कर दिया । उन्हान मलका का मनान की चेष्टा की, पर मानिनी का दुलार हिचकियां लन लगा । कामल उपचारा न मलका को जव बहुत समय वीतन पर स्वस्थ किया, तब आसू के सूख पद-चिह्न पर हँसी की दौड धीमी थी, वात बदलन के लिए मिरजा न कहा—मलका, आज अपना सितार सुनाओ, दख अव तुम कैसा वजाती हा ?

नही, तुम हँसी कराग और मैं फिर दु खी हाऊँगी ।

तो मैं समझ गया, जैस तुम्हारा बुलबुल एक ही आलाप जानता ह—वैस ही तुम अभी तक वही भैरवी की एक तान जानती होगी—कहत हुए मिरजा बाहर चल गये । सामन सोमदव मिला, मिरजा न कहा, सामदव ! कगाल धन का आदर करना नही जानत ।

ठीक है श्रीमान्, धनी भी ता सब का आदर करना नही जानते, क्याकि सवक आदरा क प्रकार भिन्न हैं । जो सुख-सम्मान आपन शवनम का द रक्खा है, वही यदि किसी कुलवधू को मिलता !

वह वश्या ता नही है । फिर भी सामदव, सब वश्याआ का दखा—उनम कितना के मुख सरल ह, उनकी भाली भाली आँखे रा-राकर कहती है, मुझ पीट-पीटकर चञ्चलता सिखाई गई है । मेरा विश्वास है कि उन्ह अवसर दिया जाय तो वे कितनी हा कुलवधुआ स किसा बात म कम न हाती !

मरा एसा अनुभव नही, परीक्षा करक दखिय ।

अच्छा तो तुमको पुरोहिती करनी होगी । निकाह कराआग न ?

अपनी कमर टटोलिये, मैं प्रस्तुत हूँ । —कहकर सोमदव न हँस दिया ।

मिरजा मलका क प्रकोष्ठ की आर चल ।

सब आभूषण और मूल्यवान वस्तु सामन एकत्र कर मलका बैठा है । रहमत न सहसा आकर देखा, उसकी आँखें चमक उठी । उसन कहा—बटो यह सब क्या ?

इन्ह सहज दना होगा ।

किसे ? क्या मैं इन्हे घर ले जाऊँ ?

नही, जिसका है उसे।

पागल तो नही हो गई है—मिला हुआ भी कोई यो ही लौटा देता है।

चुप रहो बाबा !

उसी समय मिरजा ने भीतर आकर यह देखा। उसकी समझ मे कुछ न आया। उत्तेजित होकर उन्होने कहा—रहमत ! क्या यह सब घर बाध ले जाने का ढग था।

रहमत आख नीची किये चला गया, पर मलका शबनम लाल हो गई। मिरजा ने सम्हलकर उससे पूछा—यह सब क्या है मलका !

तेजस्विता से शबनम ने कहा—यह सब मेरी वस्तुएँ है, मैंने रूप बेच कर पायी है, क्या इन्हे घर न भेजूं !

चोट खाकर मिरजा ने कहा—अब तुम्हारा दूसरा घर कौन है, शबनम ! मैं तुमसे निकाह करूँगा।

ओह ! तुम अपनी मूल्यवान वस्तुओ के साथ मुझे भी सन्दूक मे बन्द किया चाहते हो ! तुम अपनी सम्पत्ति सहेज लो, मैं अपने को सहजकर देखूं !

मिरजा मर्माहत होकर चले गये।

सादी धोती पहन सारगी उठाकर हाथ मे देते हुए, रहमत से शबनम ने कहा—चलो बाबा।

कहाँ बेटी ! अब तो मुझसे यह न हो सकेगा और तुमने भी कुछ न सीखा—क्या करोगी मलका ?

नही बाबा ! शबनम कहो। चलो, जो सीखा है वह गाना तो मुझे भूलेगा नही, और भी सिखा देना। अब यहाँ एक पल नही ठहर सकती !

बुड्ढे ने दीर्घ नि श्वास लेकर सारगी उठायी, वह आगे आगे चला।

उपवन मे आकर शबनम रुक गई। मधुमास था, चाँदनी रात थी। वह निर्जनता सौरभ-व्याप्त हो रही थी। शबनम ने देखा, ऋतुरानी शिरिस के फूलो की कोमल तूलिका से विराट् शून्य मे अलक्ष्य चित्र बना रही थी। वह खडी न रह सकी, जैसे किसी धक्के से खिडकी के बाहर हो गई।

इस घटना को बारह बरस बीत गये थे, रहमत अपनी कच्ची दालान मे बैठा हुआ हुक्का पी रहा था। उसने अपने इकट्ठे किये हुए रुपयो से और भी बीस बीघा खेत ले लिया था। गाँव मे अब वह एक अच्छा किसान था। मेरा

माँ शबनम चावल फटक रही थी और मै बैठी हुई अपनी गुडियाँ खेल रही थी। अभी सध्या नही हुई थी। मेरी माँ ने कहा—बानो, तू अभी खेलती ही रहेगी, आज तूने कुछ भी न पढा।—रहमतखाँ मेरे नाना ने कहा—शबनम, उसे खेल लेने दे बेटी; खेलने के दिन फिर नही आते—मै यह सुनकर प्रसन्न हो रही थी, कि एक सवार नगे सिर अपना घोडा दौडता हुआ दालान के सामने आ पहुँचा और उसने बडी दीनता से कहा—मियाँ रात-भर के लिए मुझे जगह दो, मेरे पीछे डाकू लगे है !

रहमत ने धुआँ छोडते हुए कहा—भई, थके हो तो थोडी देर ठहर सकत हो; पर डाकुओ से तो तुम्हे हम बचा नही सकते।

यही सही—कहकर सवार घोडे से कूद पडा। मै भी बाहर ही थी, कुतूहल से पथिक का मुँह देखने लगी। बाध की खाट पर वह हाफते हुए बैठा। सध्या हो रही थी। तेल का दीपक लेकर मेरी माँ उस दालान मे आई। वह मुँह फिराये हुए दीपक रखकर चली गई। सहसा मेरे बुड्ढे नाना का जैसे पागलपन हो गया, खडे होकर पथिक को घूरने लगे। पथिक ने भी देखा और चौककर पूछा—रहमत ! यह तुम्हारा ही घर है ?

हाँ मिरजा साहब !

इतने मे एक और मनुष्य हाँफता हुआ आ पहुँचा, वह कहन लगा—सब उलट-पलट हो गया। मिरजा ! आज देहली का सिहासन मुगलो के हाथ से बाहर है। फिरगी की दोहाई है, कोई आशा न रही।

मिरजा जमाल मानसिक पीडा से तिलमिलाकर उठ खडे हुए, मुट्ठी बाधे टहलने लगे और बुड्ढा रहमत हतबुद्धि होकर उन्हे देखने लगा। भीतर मेरी माँ यह सब सुन रही थी, वह बाहर झाँककर देखने लगी। मिरजा की आँखे क्रोध से लाल हो रही थी। तलवार की मूठो पर, कभी मूछो पर, हाथ चचल हो रहा था। सहसा वे बैठ गये और उनकी आँखो से आँसू की धारा बहने लगी। वे बोल उठे—मुगलो की विलासिता ने राज को खा डाला। क्या हम सब बाबर की सतान हैं ? आह !

मेरी माँ बाहर चली आई। रात की अँधेरी बढ रही थी। भयभीत होकर यह सब आश्चर्यमय व्यापार देख रही थी ! माँ धीरे-धीरे आकर मिरजा के सामने खडी हो गई और उनके आँसू पोछने लगी। उस स्पर्श से मिरजा के शोक की ज्वाला जब शान्त हुई, तब उन्होने क्षीण स्वर मे कहा—शबनम !

वह बडा करुणाजनक दृश्य था। मेरे नाना रहमतखाँ ने कहा—आओ सोमदेव ! हम लोग दूसरी कोठरी म चले। वे दोनो चले गये। मैं चुप बैठी थी।

मरी माँ न कहा—अब शाक करके क्या हागा, धीरज का आपदा म न छाडना चाहिए। यह तो मरा भाग है कि इस समय म तुम्हारी सवा क निए किसी तरह मिल गई। अब सब भूल जाना चाहिए। जो दिन बच हैं, मालिक के नाम पर काट लिए जायँगे।

मिरजा ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—शबनम ? मैं एक पागल था—मन समझा था, मर सुखा का अन्त नही, पर आज ?

कुछ नही, कुछ नही, मर मालिक ! सब अच्छा है सब अच्छा हागा। उसकी दया म सन्देह न करना चाहिए।

अब म भी पास चली आइ थी, मिरजा न मुझ दखकर सकत स पूछा। माँ न कहा—इसी दुखिया को छ महीन का पेट म लिए मैं यहा आई थी और यही धूल मिट्टी म खलती हुई यह इतनी बडी हुई। मर मालिक ! तुम्हार विरह म यही तो मेरी आँखा की ठडक थी—तुम्हारी निशानी ! मिरजा न मुझे गल स लगा लिया। मा न कहा—बटी ! यही तरे पिता है। मैं न जान क्या रोन लगी। हम सब मिलकर बहुत राय। उस रान म बडा सुख था। समय न एक साम्राज्य का हाथो म लकर चूर कर दिया बिगाड दिया पर उसन एक झोपडी क कान म एक उजडा हुआ स्वर्ग बसा दिया। हम लागा क दिन सुख स बीतन लगे।

गाँव-भर म मिरजा क आ जान से एक आतक छा गया। मरे नाना का बुढापा चैन स कटन लगा। सामनाथ मुझे हिन्दी पढाने लग और मैं माता-पिता की गाद क सुख म बढन लगी।

सुख क दिन बडी शीघ्रता स खिसकत हैं। एक बरस क सब महीन दखते दखत बीत गय। एक सन्ध्या म हम सब लोग अलाव के पास बैठे थ। किवाड बन्द थ। सरदी स काई उठना नही चाहता था। आस स भीगी रात भारा मालूम होती थी। धुआँ आस क बोझ स ऊपर नही उठ सकता था। सोमनाथ न कहा—आज बरफ पडेगा ऐसा रग है। उसी समय बुधुआ न आकर कहा—और डाका भी।

सब लोग चौकन्न हा गये। मिरजा न हँसकर कहा—ता क्या तू हा उन सबा का भेदिया है।

नही सरकार ! यह दश ही एसा ह, इसम गूजरा की

बुधुआ की बात काटते हुए सामदव न कहा—हा-हाँ यहा क गूजर बड भयानक हैं।

तो हम लोगों को भी तैयार रहना चाहिए ?—कहकर मिरजा ने अपनी सिरोही उठा ली। रहमत ने कहा—आप भी किसकी बात में आते हैं, जाइए आराम कीजिए।

सब लोग उस समय तो हँसते हुए उठे, पर अपनी कोठरी में जाते समय सबके हाथ-पैर बोझ से लदे हुए थे। मैं भी माँ के साथ कोठरी में जाकर सो रही।

रात को अचानक कोलाहल सुनकर मेरी आँख खुल गई। मैं पहले सपना समझकर फिर आँख बन्द करने लगी, पर झुठलाने से कठोर आपत्ति कहीं झूठी हो सकती है। सचमुच डाका पड़ा था, गाँव के सब लोग भय से अपने-अपने घरों में घुसे थे। मेरा हृदय धड़कने लगा। माँ भी उठकर बैठी थी। वह भयानक आक्रमण मेरे नाना के ही घर पर हुआ था। रहमतखाँ, मिरजा और सामदेव ने कुछ काल तक उन लोगों को रोका, एक भीषण काण्ड उपस्थित हुआ। हम माँ-बेटियाँ एक-दूसरे के गले से लिपटी हुई थर-थर काँप रही थीं। रोने का भी साहस न होता था। एक क्षण के लिए बाहर का कोलाहल रुका। अब उस कोठरी के किवाड़ तोड़े जाने लगे, जिसमें हम लोग थे। भयानक शब्द से किवाड़े टूटकर गिरे। मेरी माँ ने साहस किया, वह उन लोगों से बोली—तुम लोग क्या चाहते हो ?

नवाबों का माल दो बीबी ! बताओ कहाँ है ? एक ने कहा। मेरी माँ बोली—हम लोगों की नवाबी उसी दिन गई, जब मुगलों का राज्य गया। अब क्या है, किसी तरह दिन काट रहे हैं।

यह योंही भला बताएगा—कहकर दो नर पिशाचों ने उसे घसीटा। वह विपत्ति की सताई मेरी माँ मूर्च्छित हो गई, पर डाकुओं में से एक ने कहा—नकल कर रही है—और उसी अवस्था में उसे पीटने लगे। पर वह फिर न बोली। मैं अवाक् कोने में काँप रही थी। मैं भी मूर्च्छित हो रही थी कि मेरे कानों में सुनाई पड़ा—इसे न छुओ, मैं इसे देख लूँगा। मैं अचेत थी।

इसी झोपड़ी के एक कोने में मेरी आँख खुली। मैं भय से अधमरी हो रही थी। मुझे प्यास लगी थी। ओठ चाटने लगी। एक सोलह बरस के युवक ने मुझे थोड़ा दूध पिलाया और कहा—घबराओ न, तुम्हें कोई डर नहीं है।—मुझे आश्वासन मिला। मैं उठ बैठी। मैंने देखा, उस युवक की आँखों में मेरे लिए स्नेह है। हम दोनों के मन में प्रेम का षड्यन्त्र चलने लगा और उस सोलह बरस के बदन गूजर की सहानुभूति उसमें उत्तेजना उत्पन्न कर रही थी। कई दिनों तक जब मैं पिता और माता का ध्यान करके रोती, तो बदन मेरे आँसू पोंछता और मुझे समझाता। अब धीरे-धीरे मैं उसके साथ जंगल के अंचलों में घूमने लगी।

गूजरो ने नवाब का नाम सुनकर बहुत धन की आशा मे डाका डाला था, पर कुछ हाथ न लगा। वदन का पिता सरदार था। वह प्राय कहता—मैंने इस बार व्यर्थ इतनी हत्या की। अच्छा मैं इस लडकी को जगल की रानी बनाऊँगा।

वदन सचमुच मुझसे स्नेह करता। उसने कितने ही गूजर कन्याओ के ब्याह लौटा दिये, उसके पिता ने भी कुछ न कहा। हम लोगो का स्नेह देखकर वह अपने अपराधो का प्रायश्चित्त करना चाहता था, परन्तु बाधक था हम लोगो का धर्म। वदन ने कहा—हम लोगो को इससे क्या ? तुम जैसे चाहा भगवान का मानो, मैं जिसके सम्बन्ध मे स्वय कुछ समझता ही नही, तब तुम्हे क्यो समझाऊँ। सचमुच वह इन बातो के समझाने की चेष्टा भी नही करता। वह पक्का गूजर जो पुराने सस्कार और आचार चले आये थे—उन्हा कुल-परम्परा के कामो के कर लेने से कृतकृत्य हो जाता। मैं इस्लाम के अनुसार प्रार्थना करती, पर इससे हम लागो के मन म सन्देह न हुआ। हमारे प्रेम ने हम लोगो को एक बन्धन मे बाध दिया और जीवन कोमल होकर चलने लगा। वदन ने अपना पैतृक व्यवसाय न छोडा, मै उससे केवल इसी बात से असन्तुष्ट रहती।

यौवन की पहली ऋतु हम लोगो के लिए जगली उपहार ले कर आई। मन म नवाबी का नशा और माता की सरल सीख—इधर गूजर पति की कठोर दिनचर्या! एक विचित्र सम्मिलन था। फिर भी मै अपना जीवन बिताने लगी हूँ।

बेटी गाला! तू जिस अवस्था म रह, जगत्पिता को न भूल? राजा कगाल होते है और कगाल राजा हो जाते हैं, पर वह सबका मालिक अपने सिंहासन पर अटल बैठा रहता है। जिसे हृदय देना, उसी को शरीर अर्पण करना—उसम एकनिष्ठा बनाये रखना। मै बराबर जायसी की 'पद्मावत' पढ़ा करती हूँ। वह स्त्रियों के लिए तो जीवन-यात्रा म पथ प्रदर्शक है। स्त्रिया को प्रेम करने के पहले यह सोच लेना चाहिए—मैं पद्मावती हो सकती हूँ कि नही ? गाला! ससार दुख से भरा है। सुख के छीटे कही से परमपिता की दया से आ जाते है। उसकी चिन्ता न करना, उसके न पाने से दु ख भी न मानना। मैंने अपने कठोर और भीषण पति की सेवा सच्चाई से की है, और चाहती हूँ कि तू भी मेरी जैसी हो। परमपिता तेरा मगल करे। पद्मावत पढना कभी न छोडना। उसके गूढ तत्त्व जो मैं तुझे बराबर समझाती आई हूँ, तेरी जीवन-यात्रा की मधुरता और कोमलता से भर देगे। अन्त म फिर तेरे लिए मैं प्रार्थना करती हूँ—तू सुखी रहे।

नय न पुस्तक बन्द करते हुए एक दार्घ नि श्वास लिया। उसकी सचित स्नह राशि म उस राजवश की जगली लडकी के लिए हलचल मच गई। विरस जीवन म एक नवीन स्फूर्ति हुई। वह हसते हुए गाला क पास पहुचा। गाला इस समय अपन नय बुलबुल का चारा द रही थी।

पढ चुक ! कहानी अच्छी है न ? —गाला न पूछा।

बडी करुण और हृदय म टीस उत्पन्न करनवाली कहानी है गाला ! तुम्हारा सम्बन्ध दिल्ली के राज सिंहासन से है—आश्चय !

आश्चय किस बात का नये ? क्या तुम समझत हा कि यह कोई बडी भारी घटना है। कितन राजरक्तपूर्ण शरीर परिश्रम करते-करते मर पच गये—उस अनन्त अनलशिखा म—जहाँ चरम शीतलता है, परम विश्राम है वहाँ किसी तरह पहुँच जाना ही तो इस जीवन का लक्ष्य है।

नये अवाक होकर उसका मुँह देखने नगा। गाला सरल जीवन की जैसे प्राथमिक प्रतिमा थी। नये ने साहस कर पूछा—फिर गाला जीवन के प्रकारो म तुम्हारे लिए चुनाव का कोई विषय नही उसे बिताने क लिए कोई निश्चित कार्यक्रम नही।

है ता नये ! समाप के प्राणियो म सवा भाव सबस स्नह-सम्बन्ध रखना यह क्या मनुष्य के निए पयाप्त कर्त्तव्य नही।

तुम अनायास ही इस जगल म पाठशाला खोनकर यहाँ के दुदान्त प्राणियो के मन मे कामल मानव भाव भर सकती हो !

आहो। तुमन सुना नही सीकरी म एक माधु आया है हिन्दू धम का तत्त्व समझाने के लिए। जगली बालका की एक पाठशाला उसने खोन दी है। वह कभी-कभी यहा भी आता है मुझस भी कुछ ले जाता है पर मै दखती हू वि मनुष्य बडा ढोगी जीव है—वह दूसरो का वही सिखाने का उद्योग करता है जिसे स्वय कभी भी नही समझता। मुझे यह नही रुचता ! मेरे पुरखे तो बहुत पढे निखे और समझदार थे उनके मन की ज्वाला कभी शान्त हुई ?

यह एक विकट प्रश्न है गाला ! जाता हूँ अभी मुझे वास करना है। यह बात तो मै धीरे धीरे समझने लगा हूँ कि शिक्षितो और अशिक्षितो के कर्मों म अतर नहीं है। जो कुछ भेद है वह उनक काम करने के ढग का है।

तो तुमन अभी अपनी कथा मुझे नही सुनाई।

किसी अवसर पर सुनाऊगा—कहता हुआ नय चला गया।

गाला चुपचाप अस्त होते हुए दिनकर को दख रही थी। बदन दूर से टहलता हुआ आ रहा था। आज उसका मुँह सदा की भाँति प्रसन्न न था। गाला

उसे देखते ही उठ खडी हुई, वोली—वावा ! तुमने कहा था, आज मुझे वाजार लिवा चलने का, अव ता रात हुआ चाहती है ?

कल चलूँगा वेटी ? —कहते हुए बदन ने अपने मुँह पर हँसी ल आन की चेष्टा की, क्योकि यह उत्तर मुनने के लिए गाला के मान का रग गहरा हो चना था। वह बालिका के सदृश ठुनुककर बोली—तुम तो वहाना करते हा।

नही, नही, कल तुझे लिवा ले चलूँगा। तुझे क्या लेना है, सा तो वता !

मुझे दा पिजडे चाहिए, कुछ सूत और रगीन कागज।

अच्छा कल ल आना।

वेटी और बाप का यह मान निपट गया। अब दोना अपनी झोपडी म आये और रूखा-सूखा खाने-पीने म लग गये।

७

सीकरी की बस्ती से कुछ हटकर एक ऊँचे टीले पर फूस का बडा-सा छप्पर पडा है और नीचे कई चटाइयाँ पडी हैं। एक चौकी पर मगलदेव लेटा हुआ, सवेरे की—छप्पर के नीचे आती हुई—शीतकाल की प्यारी धूप से अपनी पीठ म गर्मी पहुँचा रहा है। आठ-दस मैले-कुचैले लडके भी उसी टीले के नीचे-ऊपर हैं। कोई मिट्टी बराबर कर रहा है, कोई अपनी पुस्तका को वेठन म बाँध रहा है। कोई इधर-उधर नये पौधो म पानी दे रहा है। मगलदेव ने यहाँ भी पाठशाला खोल रखी है। कुछ थोडे से जाट-गूजरो के लडके यहाँ पढने आते हैं। मगल ने बहुत चेष्टा करके उन्हे स्नान करना सिखाया, परन्तु कपडो के अभाव ने उनकी मलिनता रख छाडी है। कभी-कभी उनके क्रोधपूर्ण झगडो मे मगल का मन ऊब जाता है। वे अत्यन्त कठोर और तीव्र स्वभाव के हैं।

जिस उत्साह से वृन्दावन की पाठशाला चलती थी, वह यहाँ नही है। बडे परिश्रम से उजाड देहातो मे घूमकर उसन इतन लडके एकत्र किये हैं। मगल आज गम्भीर चिन्ता मे निमग्न है। वह सोच रहा था—क्या मरी नियति इतनी कठोर है कि मुझे कभी चैन न लेन देगी। एक निश्छल परोपकारी हृदय लेकर मैंन ससार म प्रवश किया और चला था भलाई करन। पाठशाला का सुन्दर जीवन छाडकर मैंने एक भोली भाली बालिका के उद्धार करन का सकल्प किया, यही सत्सकल्प मेर जावन की चक्करदार पगडण्डिया म घूमता-फिरता मुझे कहाँ ले आया! कलक, पश्चात्ताप और प्रवञ्चनाओ की कमी नही। उस अबला की भलाई करने के लिए जब-जब मैंने पैर बढाया, धक्के खाकर पीछे हटा और उस भी ठोकरें लगाईं। यह किसकी अज्ञात प्ररणा ह? मर दुर्भाग्य की? मेर मन म धर्म का दम्भ था। बडा उग्र प्रतिफल मिला। आयसमाज क प्रति जा मरी प्रतिकूल सम्मति थी, उसी न सब कराया। हाँ, मानना पडेगा, धर्म-सम्बन्धी उपासना क नियम उसक चाहे जैसे हा—परन्तु सामाजिक परिवर्तन उसके माननाय हैं। यदि मैं पहल ही समझता! आह! कितनी भूल हुई। मरी मानसिक दुर्बलता न मुझ यह चक्कर खिलाया।

मिथ्या-धर्म का सचय और प्रायश्चित्त, पश्चात्ताप, और आत्म-प्रतारणा—क्यो ? शान्ति तो नही मिली । मैंने साहस किया होता, तारा को न छोड देता, तो क्या समाज और धर्म मुझे इससे भी भीषण दण्ड देता ? कायर मगल ! तुझे लज्जा नही आती ? —सोचते-सोचते वह उठ खडा हुआ और धीरे-धीरे टीले से उतरा ।

शून्य पथ पर निरुद्देश चलने लगा। चिन्ता जब अधिक हो जाती है, तब उसकी शाखा-प्रशाखाएँ इतनी निकलती हैं कि मस्तिष्क उनके साथ दौडने मे थक जाता है। किसी विशेष चिन्ता की वास्तविक गुरुता लुप्त होकर विचार को यान्त्रिक और चेतना-विहीन बना देती है। तब पैरो से चलने मे, मस्तिष्क से विचार करने म, कोई विशेष भिन्नता नही रह जाती। मगलदेव की वही अवस्था थी। वह बिना सकल्प के ही बाजार पहुँच गया, तक खरीदन-बेचने वालो की बातचीत उस केवल भनाहट-सी सुनाई पडती। वह कुछ समझने मे असमर्थ था। सहसा किसी ने उसका हाथ पकड कर खीच लिया। उसने क्रोध से उस खीचने-वाले की ओर देखा—लहँगा कुरता और ओढनी म एक गूजरी युवती ! दूसरी ओर से एक बैल बडी निश्चिन्तता से सीध हिलाता, दौडता निकल गया। मगल ने अब उस युवती को धन्यवाद देने के लिए मुँह खोला, पर तब तक वह चार हाथ आगे निकल गई थी। विचारा मे बौखलाये हुए मगल ने अब पहचाना—यह तो गाला है ! वह कई बार उसके झोपडे तक जा चुका था। मगल के हृदय मे एक नवीन स्फूर्ति हुई, वह डग बढाकर गाला के पास पहुँच गया और घबराये हुए शब्दो मे उसे धन्यवाद द ही डाला। गाला भौचक्की-सी उसे देखकर हँस पडी।

अप्रतिभ हाकर मंगल ने कहा—अरे यह तुम हो गाला !

उसने कहा—हा, आज सनीचर है न ! हम लोग बाजार करने आये है। अब मगल न उसके पिता बदन को देखा। मुख पर स्वाभाविक हँसी ले आने की चेष्टा करते हुए मगल न कहा—आज बडा अच्छा दिन है कि आपका यही दर्शन हो गया।

नीरसता से बदन ने कहा—क्या, अच्छे तो हो ?

आप लोगा की कृपा से—कहकर मगल ने सिर झुका लिया।

बदन बढता चला जाता था और बाते भी करता जाता था। वह एक जगह बिसाती की दूकान पर खडा होकर गाला की आवश्यक वस्तुएँ लेने गया। मगल ने अवसर देखकर कहा—आज तो अचानक भेट हो गई है, समीप ही मेरा आश्रम

है, यदि उधर भी चलियेगा तो आपको विश्वास हो जायेगा कि आप लोगो की भिक्षा व्यर्थ नही फेकी जाती।

गाला समीप के कपडे की दूकान देख रही थी, वृन्दावनी धोती की छीट उसकी आँखो मे कुतूहल उत्पन्न कर रही थी। उसकी भोली दृष्टि उस पर से न हटती थी। सहसा बदन ने कहा—सूत और कागज ले लिये, किन्तु पिंजडे तो यहाँ नही दिखाई देते गाला!

तो न सही, दूसरे दिन आकर ले लूँगी—गाला ने कहा; पर वह देख रही थी धोती। बदन ने कहा—क्या देख रही है? दूकानदार था चतुर, उसने कहा—ठाकुर! यह धोती लेना चाहती है, बची भी इस छापे की एक ही है।

जगली बदन इस नागरिक प्रगल्भता पर लाल तो हो गया, पर बोला नही। गाला ने कहा—नही, नही, मैं भला इसे लेकर क्या करूंगी! मगल ने कहा—स्त्रियो के लिए इससे पूर्ण वस्त्र और कोई हो ही नही सकता। कुरते के ऊपर से इसे पहन लिया जाय, तो यह अकेला सब काम दे सकता है। बदन को मगल का बोलना बुरा तो लगा, पर वह गाला का मन रखने के लिए बोला—तो ले ले गाला!

गाला ने अल्हडपन से कहा—अच्छा तो!

मगल ने मोल ठीक किया। धोती लेकर गाला के सरल मुख पर एक बार कुतूहल की प्रसन्नता छा गई। तीनो बात करते-करते उस छोटे से बाजार से बाहर आ गये। धूप कडी हो चली थी। मगल ने कहा—मेरी कुटी ही पर विश्राम कीजिए न! धूप कम होने पर चले जाइएगा। गाला ने कहा—हाँ बाबा हम लोग पाठशाला भी देख लेगे। बदन ने सिर हिला दिया। मगल के पीछे दोनो चलने लगे।

बदन इस समय कुछ चिन्तित था। वह चुपचाप जब मगल की पाठशाला मे पहुँच गया, तब उसे एक आश्चर्यमय क्रोध हुआ। किन्तु वहाँ का दृश्य देखते ही उसका मन बदल गया। वह कुतूहल से काले बोर्डो और स्टूलो के सम्बन्ध म पूछने लगा। क्लास का समय हो गया था, मगल के सकेत से एक बालक ने घटा बजा दिया। पास ही खेलते हुए बालक दौड आये; अध्ययन आरम्भ हुआ। मगल को यत्न-सहित उन बालको को पढाते देखकर गाला को एक तृप्ति हुई। बदन भी अप्रसन्न न रह सका। उसने हँसकर कहा—भई, तुम पढाते हो, सो तो अच्छा करते हो; पर यह पढ़ना किस काम का होगा? मैं तुमसे कई बार सुन चुका हूँ कि पढ़ने से, शिक्षा से, मनुष्य सुधरता है; पर मैं तो समझता हूँ—ये किसी काम

के न रह जायँगे । इतना परिश्रम करके तो जीने के लिए मनुष्य कोई भी काम कर सकता है ।

बाबा ! पढाई सब कामो का सुधार कर करना सिखाती है । यह तो बडा अच्छा काम है, देखिए मगल के त्याग और परिश्रम को ! —गाला ने कहा ।

हा, तो यह अच्छी बात है । कह कर वदन चुप हो रहा ।

मगल ने कहा—ठाकुर ! मैं तो चाहता हूँ कि एक लडकियो की भी पाठशाला हो जाती, पर उनके लिए स्त्री अध्यापिका की आवश्यकता होगी, और वह दुर्लभ है ।

गाला जो यह दृश्य देखकर बहुत उत्साहित हो रही थी बोली—बाबा ! तुम कहते तो मैं ही लडकियो को पढाती । बदन ने आश्चर्य से गाला की ओर देखा पर वह कहती ही रही—जगल मे तो मेरा मन भी नही लगता । मैं बहुत विचार कर चुकी हूँ मेरा उस खारी नदी के पहाडी अचल मे जीवन भर निभने का नही !

तो क्या तू मुझे छोडकर कहते-कहते वदन का हृदय भर उठा आख डबडबा आईं । वह दुर्दान्त मनुष्य मोम के समान पिघलने लगा । गाला ने कहा—नही बाबा तुम भी मेरे ही साथ रहो न !

बदन ने कहा—ऐसा नही हो सकता गाला ! तुझे मै अधिक-से-अधिक चाहता हूँ, पर कुछ और भी ऐसी वस्तुएं है जिन्हे मै इस जीवन मे छोड नही सकता । मै समझता हूँ, उनसे पीछा छुडा लेने की तेरी भीतरी इच्छा है क्यो ?

गाला ने कहा—अच्छा तो घर चलकर इस पर फिर विचार किया जायगा । —मगल के सामने वह इस विवाद को बन्द कर देने के लिए अधीर थी ।

रूठने के स्वर मे बदन ने कहा—तेरा ऐसी ही इच्छा है तो घर ही न चल ! —यह बात कुछ कडी और अचानक वदन के मुह से निकल पडी ।

मगल जल के लिए इसी बीच से चला गया था तो भी गाला बहुत घायल हो गई । हथेलियो पर मुँह धरे हुए वह टपाटप आँसू गिराने लगी, पर न जाने क्या उस गूजर का मन अधिक कठोर हो गया था । सान्त्वना का एक शब्द भी न निकला । वह तब तक चुप रहा, जब तक मगल ने आकर कुछ मिठाई और जल सामने नही रखा । मिठाई देखते ही वदन बोल उठा—मुझे यह नही चाहिए । वह जल का लोटा उठाकर चुल्लू से पी गया और उठ खडा हुआ मगल की ओर देखता हुआ बोला—कई मील जाना है, बूढा आदमी हूँ ! तो चलता हूँ । वह सीढियाँ उतरने लगा । गाला से उसने चलने के लिए नही कहा । वह बैठी रही । क्षोभ से भरी हुई तडप रही थी, पर ज्योही उसने देखा कि, वदन टेकरी से उतर

चुका, अब भी वह लौटकर नहीं देख रहा है, तब वह आंसू बहाती उठ खडी हुई। मगल ने कहा—गाला ! तुम इस समय बाबा के साथ जाओ, मैं आकर उन्हें समझा दूँगा। इसके लिये झगडना कोई अच्छी बात नही।

गाला निरुपाय नीचे उतरी और बदन के पास पहुँचकर भी कई हाथ पीछे-ही-पीछे चलने लगी, परन्तु उस कट्टर बुड्ढे ने घूमकर देखा भी नही।

नये के मन मे गाला का एक आकर्षण जाग उठा था। वह कभी-कभी अपनी बासुरी लेकर खारी के तट पर चला जाता और बहुत धीरे-धीरे उसे फूंकता। उसके मन म भय उत्पन्न हो गया था,- अब वह नहीं चाहता था कि वह किसी की ओर अधिक आकर्षित हो, और सबकी आँखो से अपने को बचाना चाहता। इन सब कारणो से उसने एक कुत्ते को प्यार करने का अभ्यास किया। बडे दुलार से उसका नाम रक्खा था भालू। वह था भी नवरा। निःसदिग्ध आँखो स, अपने दाना को गिराकर, अगले दोनो पैर खड किये हुए, वह नये के पास बैठा है। विश्वास उसकी मुद्रा से प्रकट हो रहा है। वह बडे ध्यान से बसी की पुकार समझना चाहता है। सहसा नये न बसी बन्द करके उससे पूछा—

भालू ! तुम्हे यह गीत अच्छा लगा ?

भालू न कहा—भूँह !

ओहो, अब तो तुम बड समझदार हो गये हो ? —कहकर नये न एक चपत धार में लगा दी। वह प्रसन्नता से सिर झुकाकर पूछ हिलाने लगा। सहसा उछलकर वह सामने की ओर भागा। नये उसे पुकारता ही रहा, पर वह चला गया। नये चुपचाप बैठा उस पहाडी सनाटे को देखता रहा। कुछ ही क्षण मे भालू आगे दौडता फिर पीछे लौटता दिखाई पडा, और उसके पीछे-पीछे गाला उसके दुलार म व्यस्त दिखाई पडी। गाला की वृन्दावनी साडी जब वह पकडकर अगले दोनों पजो से पृथ्वी पर चिपक जाता और गाला उसे चिडकती, तो वह खिल-खाडी लडके के समान उछलकर दूर जा खडा होता और दुम हिलाने लगता। नये उसकी क्रीडा को देखकर मुस्किराता हुआ चुप बैठा रहा। गाला ने बनावटी क्रोध में कहा—मना करो अपने दुलार को, नहीं तो—

वह भी दुलार ही तो करता है। बेचारा जो कुछ पाता है, वही तो देता है, फिर इसमे उलाहना कैसा गाला !

जो पावे उसे बाँट दे !—गाला ने गम्भीर होकर कहा।

यही तो उदारता है ! कहो, आज तो तुमने साडी पहन ही ली, बहुत भली लगती हो !

वाबा बहुत विगडे हैं—आज तीन दिन हुए, मुझसे बोलते नही। नय ! तुमको स्मरण हागा कि मेरा पढना-लिखना जानकर तुम्ही ने एक दिन कहा था कि तुम अनायास ही जगल म शिक्षा का प्रचार कर मकती हो—भूल तो नही गय ?

नही, मैंने अवश्य कहा था।

तो फिर मेरे विचार पर बाबा इतने दु खी क्या हैं ?

उन्होंने उसे अच्छा न समझा होगा।

तव मुझे क्या करना चाहिए ?

जिसे तुम अच्छा समझो।

नये ! तुम वडे दुष्ट हा—मेर मन म एक आकाक्षा उत्पन्न करक अव उसका कोई उपाय नही बतात !

जा आकाक्षा उत्पन्न कर देता है, वह उसकी पूर्ति भी कर दता है ऐसा ता नही देखा गया ! तब भी तुम क्या चाहती हा ?

मैं इस जगली जीवन स ऊब गई हूँ, मैं कुछ और हा चाहती हूँ—वह क्या है ? तुम्ही बता सकते हा।

मैंने जिसे जो बताया, उसे वह समझ न सका गाला ! —मुझसे न पूछो, मैं आपत्ति का मारा तुम लोगो की शरण म जा रहा हूँ—कहते-कहते नये ने सिर नीचा कर लिया। वह विचारो म डूब गया। गाला चुप थी। सहसा भालू जार से भूक उठा, दोनो न घूमकर देखा कि बदन चुपचाप खडा है ! जब नये उठकर खडा होने लगा, ता वह वाला—गाला ! मैं दो वात तुम्हारे हित की कहना चाहता हूँ, और तुम भी सुनो नये।

दोनो ने सिर नीचा कर लिया।

मरा अब समय हो चला। इतने दिना तक मैंने तुम्हारी इच्छा म कोई वाधा नही दी, यो कहो कि तुम्हारा काई वास्तविक इच्छा ही नही हुई, पर अब तुम्हारा जीवन चिरपरिचित देश की सीमा पार कर रहा है। मैंने जहा तव उचित समझा, तुमको अपने शासन म रक्खा, पर अब मैं यह चाहता हूँ कि तुम्हारा पथ नियत कर दूँ और किसी उपयुक्त पात्र की सरक्षता म तुम्ह छोड जाऊँ। —इतना कहकर उसने एक भेदभरी दृष्टि नये के ऊपर डाली। गाला कनखिया स देखती हुई चुप थी। वदन फिर कहने लगा—मेरे पास इतनी सम्पत्ति है कि गाना और उसका पति जीवन भर सुख से रह सकते है—यदि उनको ससार म सरल जीवन बिता लेने स अधिक इच्छा न हो। नये ! मैं तुमको उपयुक्त समझता हूँ—गाला के जीवन की धारा सरल पथ मे बहा ले चलने की क्षमता तुम म है ! तुम्हे यदि स्वीकार हो तो—

मुझे इसकी आशका पहले स थी। आपने मुझे शरण दी है। इसलिए गाला को मैं प्रतारित नही कर सकता। क्योकि, मेरे हृदय मे दाम्पत्य जीवन की सुख-साधना की सामग्री बची न रही। तिसपर भी आप जानते है कि मैं एक सन्दिग्ध हत्यारा मनुष्य हूँ! —नये ने इन बातो को कहकर जैसे एक बोझ उतार फेकने की सास ली हो।

बदन निरुपाय और हताश हो गया। गाला जैसे इस विवाद स एक अपरिचित असमजस म पड गई। उसका दम घुटने लगा। लज्जा, क्षोभ और अपनी दयनीय दशा स उस अपन स्त्री होन का ज्ञान अधिक वेग से धक्के देने लगा। वह उसी क्षण नये से अपना सम्बन्ध हो जाना, जैसे अत्यन्त आवश्यक समझने लगी थी। फिर भी यह उपेक्षा वह सह न सकी। उसने रोकर बदन से कहा—आप मुझे अपमानित कर रहे है, मैं अपने यहा पले हुए मनुष्य से कभी ब्याह न करूँगी। यह तो क्या, मैन अभी ब्याह करने का विचार भी नही किया है! मेरा उद्देश्य है—पढना और पढाना। मै निश्चय कर चुकी हूँ कि मैं किसी बालिका-विद्यालय म पढाऊँगी।

एक क्षणभर के लिए बदन के मुँह पर भीषण भाव नाच उठा। वह दुर्दान्त मनुष्य हथकडियो स जकडे हुए बन्दी के समान किटकिटा कर बोला—तो आज स मेरा-तेरा कोई सम्बन्ध नही—और एक ओर चल पडा।

नय चुपचाप पश्चिम के आरक्तिम आकाश की ओर देखन लगा। गाला रोप और क्षोभ स फूल रही थी, अपमान न उसके हृदय को क्षत-विक्षत कर दिया था।

यौवन स भरे हृदय की महिमामयी कल्पना, गोधूली की धूप म बिखरने लगी। नय अपराधी की तरह इतना भी साहस न कर सका कि गाला को कुछ सान्त्वना दता। वह भी उठा और एक ओर चला गया।

चतुर्थ खण्ड

१

वह दरिद्रता और अभाव के गार्हस्थ्य जीवन की कटुता में दुलारा गया था। उसकी माँ चाहती थी कि वह अपने हाथ दो रोटी कमा लेने के योग्य बन जाय, इसलिए वह बार-बार झिड़की सुनता। जब क्रोध से उसके आँसू निकलते और जब उन्हें अधरों से पोंछ लेना चाहिए था तब भी वे रूखे कपोलों पर आप-ही आप सूखकर एक मलिन-चिह्न छोड़ जाते थे।

कभी वह पढ़ने के लिए पिटता, कभी काम सीखने के लिए डाँटा जाता, यही थी उसकी दिनचर्या। फिर वह चिड़चिड़े स्वभाव का क्यों न हो जाता। वह क्रोधी था, तो भी उसके मन में स्नेह था, प्रेम था और था नैसर्गिक आनन्द—शैशव का उल्लास, रो लेने पर भी जी खोलकर हँस लेना, पढ़ने पर खेलने लगना। बस्ता खुलने के लिए सदैव प्रस्तुत रहता। पुस्तकें गिरने के लिए निकल पड़ती थीं। टोपी असावधानी से टेढ़ी और कुरते का बटन खुला हुआ। आँखों में सूखते हुए आँसू और अधर पर मुस्कराहट।

उसकी गाड़ी चल रही थी। वह एक पहिया ढुलका रहा था। उसे चलाकर उल्लास से बोल उठा—हटो सामने से, गाड़ी जाती है।

सामने से आती हुई युवती पगली ने उस गाड़ी को उठा लिया। बालक के निर्दोष विनोद में बाधा पड़ी। वह सहमकर उस पगली की ओर देखने लगा। निष्फल क्रोध का परिणाम होता है रो देना। बालक रोने लगा। म्यूनिसिपल स्कूल भी पास न था, जिसकी 'अ'-कक्षा में वह पढ़ता था। कोई सहायक न पहुँच सका। पगली ने उसे रोते देखा, वह जैसे अपनी भूल समझ गई। बोली—*आँ! अमका न खलाअाग, आँ-आँ,—मैं भी रोने लगूँगी, आँ-आँ-आँ!* बालक हँस पड़ा। वह उसे गोद में लेकर झिंझोड़ने लगी। अबकी वह फिर घबराया। उसने रोने के लिए मुँह बनाया ही था कि पगली ने उसे गोद से उतार दिया और वह बड़बड़ाने लगी—राम, कृष्ण और बुद्ध सभी तो पृथ्वी पर लोटते थे।

में खोजती थी आकाश में। ईसा की जननी से पूछती थी। इतना खोजने की क्या आवश्यकता ? कहीं तो नहीं, वह देखो कितनी चिनगारी निकल रही है। सब एक-एक प्राणी है, चमकना, फिर लोप हो जाना। किसी के बुझने में रोना है और किसी के जल उठने में हँसी। हा-हा-हा-हा।

तब तो बालक और भी डरा। वह त्रस्त था, उसे भी शंका होने लगी कि यह पगली तो नहीं है। वह हतबुद्धि-सा इधर-उधर देख रहा था। दौड़ कर भाग जाने का साहस भी न था। अभी तक उसकी गाड़ी पगली लिये थी। दूर से एक स्त्री और पुरुष, यह घटना कुतूहल से देखते चले आ रहे थे। उन्होंने बालक को विपत्ति में पड़ा देखकर सहायता करने की इच्छा की। पास आकर पुरुष ने कहा —क्यों जी, तुम पागल तो नहीं हो ! क्या इस लड़के को तंग कर रही हो ?

तंग कर रही हूँ। पूजा कर रही हूँ पूजा। राम, कृष्ण, बुद्ध, ईसा की सरलता की पूजा कर रही हूँ। इन्हें रुला दने से इनकी एक कसरत हो जाती है, फिर हँसा दूंगी। और, तुम तो कभी भी जी खोलकर न हँस सकोगे और न रो सकोगे।

बालक का कुछ साहस हो चला था। वह अपना सहायक देखकर बोल उठा—मेरी गाड़ी छीन ली है। पगली ने पुचकारते हुए कहा—चित्र लोगे ?—देखो पश्चिम में संध्या कैसा अपना रंगीन चित्र फैलाये बैठी है ! —पगली के साथ ही और उन तीनों ने भी देखा। पुरुष ने कहा—मुझसे बातें करो, उस बालक को जाने दो। पगली हँस पड़ी। वह बोली—तुमसे बात ! बातों का कहाँ अवकाश ! चालबाजियों से कहाँ अवसर ! ऊँह देखो उधर काले पत्थरों की एक पहाड़ी, उसके बाद एक लहराती हुई झील, फिर नारंगी रंग की एक जलती हुई पहाड़ी—जैसे उसकी ज्वाला ठंढी नहीं होती ! फिर एक सुनहला मैदान !—वहाँ चलोगे ?

उधर देखने में सब विवाद बन्द हो गया, बालक भी चुप था। उस स्त्री और पुरुष ने भी निसर्ग-स्मरणीय दृश्य देखा। पगली संकेत करनेवाला हाथ फैलाये अभी तक वैसे ही खड़ी थी। पुरुष ने देखा, उसका सुन्दर शरीर कृश हो गया था और बड़ी-बड़ी आँखें क्षुधा से व्याकुल थीं। जाने वह कब से अनाहार का कष्ट उठा रही थी। साथवाली स्त्री से पुरुष ने कहा—किशोरी ! इसे कुछ खिलाओ ! किशोरी उस बालक को देख रही थी, अब श्रीचन्द्र का ध्यान भी उसकी ओर गया। वह बालक उस पगली की उन्मत्त क्रीड़ा से रक्षा पाने की आशा में विश्वासपूर्ण नेत्रों से, इन्हीं दोनों की ओर देख रहा था। श्रीचन्द्र ने उसे गोद में उठाते हुए कहा—चलो तुम्हें गाड़ी दिला दूँ।

किशोरी न पगली से कहा—तुम्हे भूख लगी ह, कुछ खाओगी ?

पगली और बालक दानो ही उनक प्रस्तावो से सहमत थे, पर बोल नही। इतन म श्रीचन्द्र का पण्डा आ गया, और बोला—बाबूजी आप कब स यहाँ फँसे हैं। यह ता चाची का पालित पुत्र है, क्या र मोहन ! तू अभी से स्कूल जाने लगा है ? चल, तुझे घर पहुँचा दूं ?—वह श्रीचन्द्र की गोद से उस लेने लगा परन्तु मोहन वहा से उतरना नही चाहता था।

मै तुझको कब स खाज रही हूँ, तू बडा दुष्ट है रे।—कहती हुई चाची ने आकर उस अपनी गोद मे ल लिया। सहसा पगली हँसती हुई भाग चली। वह कह रही थी—वह दखा, प्रकाश भागा जाता है अन्धकार !—कहकर पगली वेग से दौडने लगी थी। ककड, पत्थर और गड्ढो का ध्यान नही। अभी थोडी भी दूर वह न जा सकी थी कि उस ठाकर लगी, वह गिर पडी। गहरी चाट लगन से वह मूच्छित सी हो गई।

यह दल उसके पास पहुँचा। श्रीचन्द्र न पडाजी स कहा—इसकी सवा हानी चाहिए, बेचारी दुखिया है ! पडाजी अपन धनी यजमान की प्रत्यक आज्ञा पूरी करन के लिए प्रस्तुत थे। उन्हाने कहा—चाची का घर तो पास ही है वहाँ उस उठा ल चलता हूँ। चाची न मोहन और श्रीचन्द्र के व्यवहार को देखा था, उस अनेक आशा थी। उसने कहा—हाँ, हाँ, बेचारी को बडी चाट लगी है, उतर तो मोहन !—माहन को उतारकर वह पडाजी की सहायता से पगली को अपने पास के घर म ल चली। मोहन राने लगा। श्रीचन्द्र न कहा—ओहो तुम बडे रोन हो जी ? गाडी लेन न चलाग ?

चलूगा—चुप होत हुए माहन न कहा।

माहन क मन म पगली स दूर रहने की बडी इच्छा थी। श्रीचन्द्र न पडा का कुछ रुपये दिये कि पगली के आराम का कुछ उचित प्रबन्ध किया जाय, और बोले—चाची, मैं मोहन को गाडी दिलाने के लिए बाजार लिवाता जाऊँ ?

चाची न कहा—हा हा, आपका ही लडका है।

मैं फिर अभी आता हूँ, आपके पडोस म ही तो ठहरा हूँ।—कह कर श्रीचद्र, किशोरी और मोहन बाजार की ओर चले।

ऊपर लिखी हुई घटना को महीना बीत चुके थे। अभी तक श्रीचन्द्र और किशोरी अयोध्या मे ही रहे। नागेश्वरनाथ क मन्दिर क पास ही डेरा था। सरयू की तीव्र धारा सामने बह रही थी। स्वर्गद्वार क घाट पर स्नान कर क श्रीचद्र, किशोरी बैठे थे। पास ही एक बैरागी रामायण की कथा कह रहा था—

'राम एक तापस तिय तारी।
नाम कोटि खल कुमति सुधारी।।'

तापस-तिय तारा—गौतम की पत्नी अहल्या का अपनी लीला करते समय भगवान् ने तार दिया। वह यौवन के प्रमाद से, इन्द्र के दुराचार से, छली गई। उसने पति से—इस लोक के देवता से—छल किया। वह पामरी इस लोक के सर्वश्रेष्ठ रत्न सतीत्व से वंचित हुई। उसके पति ने शाप दिया, वह पत्थर हो गई। वाल्मीकि ने इस प्रसंग पर लिखा है—वातभक्षा निराहारा तप्यन्ती भस्मशायिनी। ऐसी कठिन तपस्या करते हुए पश्चात्ताप का अनुभव करते हुए वह पत्थर नहीं तो और क्या थी! पतितपावन ने उसे शाप विमुक्त किया। प्रत्येक पापों के दण्ड की सीमा होती है। सब काल में अहल्या-सी स्त्रियाँ के होने की सम्भावना है, क्योंकि कुमति तो बची है, वह जब चाहे किसी को अहल्या बना सकती है। उसके लिए उपाय है—भगवान् का नाम-स्मरण। आप लोग नामस्मरण का अभिप्राय यह न समझ लें कि राम-राम चिल्लाने से नाम-स्मरण हो गया—

'नाम निरूपन नाम जतन से।
सो प्रकटत जिमि मोल रतन ते।।

इस राम शब्दवाची उस अखिल ब्रह्माण्ड में रमण करने वाले पतितपावन की सत्ता का सदय स्वीकार करते हुए सर्वस्व समर्पण करनेवाली भक्ति के साथ उसका स्मरण करना ही यथार्थ में नाम-स्मरण है।

वैरागी ने कथा समाप्त की। तुलसी बटी। सब लोग जाने लगे। श्रीचन्द्र भी चलने के लिए उत्सुक था, परन्तु किशोरी का हृदय काँप रहा था अपनी दशा पर, और पुलकित हो रहा था भगवान् की महिमा पर। उसने विश्वासपूर्ण नेत्रों से देखा कि सरयू प्रभात के तीव्र आलोक में लहराती हुई बह रही है। उस साहस हो चला था। आज उसे पाप और उससे मुक्ति का नवीन रहस्य प्रतिभासित हो रहा था। पहली ही बार उसने अपना अपराध स्वीकार किया और यह उसके लिए अच्छा अवसर था कि उसी क्षण उसे उद्धार की भी आशा थी। वह व्यस्त हो उठी।

पगली अब स्वस्थ हो चली थी। विकार तो दूर हो गये थे किन्तु दुर्बलता बनी थी। वह हिन्दूधर्म की ओर अपरिचित कुतूहल से देखने लगा था, उसे वह मनोरंजक दिखलाई पड़ता था। वह भी चाची के साथ श्रीचन्द्र वाले घाट से दूर बैठी हुई, सरयू-तट का प्रभात और उसमें हिन्दूधर्म के आलोक को सकुतूहल देख रही थी।

— इधर श्रीचन्द्र का मोहन से हृदय मिल गया था और चाची भी उसकी रसोई बनाने का काम करती थी। वह हरद्वार से अयोध्या चली आई थी, क्योंकि वहाँ उसका मन न लगा।

चाची का वह रूप पाठक भूले न होंगे, जब वह हरद्वार में तारा के साथ रहती थी परन्तु तब में अब अन्तर था। मानव मनोवृत्तियाँ प्राय अपने लिए एक केन्द्र बना लिया करती है, जिसके चारो ओर वह आशा और उत्साह से नाचती रहती हैं। चाची तारा के उस पुत्र को—जिसे वह अस्पताल में छोडकर चली आई थी—अपना ध्रुव नक्षत्र समझने लगी थी। मोहन को पालने के लिए उसने अधिकारियो से माँग लिया था।

पगली और चाची जिस घाट पर बैठी थी, वहाँ एक अन्धा भिखारी लठिया टेकता हुआ, उन लोगो के समीप आया। उसने कहा—भीख दो बाबा! इस जन्म में कितने अपराध किये है—हे भगवान्! अभी मौत भी नही आती। चाची चमक उठी। एक बार उसे ध्यान से देखने लगी। सहसा पगली ने कहा—अरे, तुम मथुरा से यहाँ भी पहुँचे।

तीर्थों में घूमता हूँ बेटी! अपना प्रायश्चित्त करने के लिए, दूसरा जन्म बनाने के लिए! इतनी ही तो आशा है—भिखारी ने कहा।

पगली उत्तेजित हो उठी। अभी उसके मस्तिष्क की दुर्बलता गई न थी। उसने समीप जाकर उसे झकझोर कर पूछा—गोविन्दी चौबाइन की पाली हुई बेटी को तुम भूल गये! पण्डित, मैं वही हूँ, तुम बताओगे मेरी माँ को? अरे घृणित नीच अन्धे! मेरी माता से मुझे छुडानेवाले हत्यारे! तू कितना निष्ठुर है!

क्षमा कर बेटी! क्षमा में भगवान् की शक्ति है, उनकी अनुकम्पा है। मैंने अपराध किया था, उसी का तो फल भोग रहा हूँ! यदि तू सचमुच वही गोविंदी चौबाइन की पाली हुई लडकी है, तो तू प्रसन्न हो जा—अपने अभिशाप की ज्वाला में मुझे जलता हुआ देखकर प्रसन्न हो जा! बेटी, हरद्वार तक तो तेरी मा का पता था, पर मैं बहुत दिन से नही जानता कि वह अब कहाँ है! नन्दा कहाँ है?—यह बताने में अब अन्धा रामदेव असमर्थ है बेटी।

चाची ने उठकर सहसा उस अन्धे का हाथ पकडकर कहा—रामदेव!

रामदेव ने एक बार अपनी अन्धी आँखो से देखने की भरपूर चेष्टा की, फिर विफल होकर आँसू बहाते हुए बोला—नन्दा का-सा स्वर सुनाई पडता है! नन्दा, तुम्ही हो? बोलो! हरद्वार से तुम यहाँ आ गई हो? हे राम! आज तुमने मेरा अपराध क्षमा किया,—नन्दो! यही तुम्हारी लडकी है! रामदेव की फूटी आँखो से आँसू बह रहे थे।

एक बार पगली ने नन्दो चाची की ओर देखा और नन्दो ने पगली की ओर—रक्त का आकर्षण तीव्र हुआ, दोनो गले से मिलकर रोने लगी। यह घटना दूर पर हो रही थी। किशोरी और श्रीचन्द्र का उससे कुछ सम्बन्ध न था।

अकस्मात् अन्धा रामदेव उठा और चिल्लाकर कहने लगा—पतितपावन की जय हो! भगवान् मुझे शरण म ला!—जब तक उसे सब लाग देखे, तब तक वह सरयू की प्रखर धारा मे बहता हुआ—फिर डूबता हुआ, दिखाई पडा।

घाट पर हलचल मच गई। किशोरी कुछ व्यस्त हो गई। श्रीचन्द्र भी इस आकस्मिक घटना से चकित-सा हो रहा था।

अब यह एक प्रकार मे निश्चित हो गया कि श्रीचन्द्र, मोहन को पालेंगे, और वे उसे दत्तक रूप मे भी ग्रहण कर सकते है। चाची को सतोप हो गया था, वह मोहन के धनी होने की कल्पना से सुखी हो सकी। उसका और भी एक कारण था—पगली का मिल जाना। वह आकस्मिक मिलन उन लोगो के लिए अत्यन्त हर्ष का विषय था। किन्तु पगली अब तक पहचानी न जा सकी थी, क्योकि वह बीमारी की अवस्था म बराबर चाची के घर पर ही रही। श्रीचन्द्र स चाची को उसकी सेवा के लिए रुपये मिलते। वह धीरे-धीरे स्वस्थ हो चली, परन्तु वह किशारी के पास न जाती। किशोरी को केवल इतना मालूम था कि नन्दो की पगली लडकी मिल गई है। एक दिन यह निश्चय हुआ कि अब सब लोग काशी चले, पर पगली अभी जान के लिए सहमत न थी। मोहन श्रीचन्द्र के यहाँ रहता था। पगली भी किशोरी का सामना करना नही चाहती थी; पर उपाय क्या था! उस उन लोगा के साथ जाना ही पडा। उसके पास केवल एक अस्त्र बचा था, वह था घूँघट! वह उसी की आड मे काशी आई। किशोरी के सामने भी हाथो घूँघट निकाले रहती। किशोरी नन्दो के चिढने के डर से उससे कुछ न बोलती। मोहन को दत्तक लेने का समय समीप था, वह तब तक चाची को चिढाना भी न चाहती, यद्यपि पगली का घूँघट उसे बहुत खलता था।

किशोरी को विजय की स्मृति प्राय. चौंका देती है। एकान्त मे वह रोती रहती है। उसकी वही तो सारी कमाई, जीवन भर के पाप-पुण्य का सञ्चित धन विजय! आह, माता का हृदय रोने लगता।

काशी आन पर एक दिन पण्डितजी के कुछ मन्त्रा ने प्रकट रूप से श्रीचन्द्र को मोहन का पिता बना दिया। नन्दो चाची को अपनी बेटी मिल चुकी थी,

अब मोहन के लिए उसके मन म उतनी व्यथा न थी। मोहन भी श्रीचन्द्र का बाबूजी कहन लगा था। वह सुख म पलने लगा।

किशोरी परिजात के पास बैठी हुई अपनी अतीत-चिन्ता म निमग्न थी। नन्दो क साथ पगली स्नान करके लौट आई थी। चादर उतारत हुए नन्दो न पगली स कहा—बेटी!

उसन कहा—मा!

तुमको सब किस नाम स पुकारते थ, यह तो मैने आज तक न पूछा। बतलाओ बेटी वह प्यारा नाम।

माँ, मुझे चौबाइन 'घण्टी नाम स बुलाती थी।

चादी की सुरीली घण्टी-सी ही तेरी बोली है बेटी!

किशोरी सुन रही थी। उसने पास आकर एक बार आख गडा कर देखा और पूछा—क्या कहा! घण्टी?

हाँ बहूजी—वही वृन्दावनवाली घण्टा!

किशोरी आग हा गई। वह भभक उठा—निकल जा डायन! मरे विजय का खा डालन वाली चुडैल!

नन्दो तो पहले एक बार किशोरी की डाट पर स्तब्ध रही पर वह कब सहनवाली! उसने कहा—मुँह सँभालकर बाते करो बहू! मैं किसी से दबनेवाली नहीं। मरे सामन किसका साहस है, जो मरी बेटी—मरी घण्टी—को आँख दिखलाव! आख निकाल लू!

तुम—दाना अभी निकल जाओ—अभी जाओ नहीं तो नौकरा म धक्के दकर निकलवा दूगी।—हाफती हुई किशोरी न कहा।

बस इतना ही ता—गौरी रूठे अपना सुहाग ले! हम लोग जाते है मरे रुपये अभी दिलवा दो बस अब एक शब्द भी मुँह स न निकालना—समझा!—नन्दो न तीखेपन स कहा।

किशोरी क्रोध म उठी और आलमारी खालकर नाटो का बण्डल उसक सामन फेंकती हुई बाली—लो सहेजा अपना रुपया, भागा!

नन्दो ने घण्टी से कहा—चला बेटी! अपना सामान न ला।

दाना ने तुरन्त गठरी दबाकर बाहर की राह ली। किशोरी न एक बार भी उन्हे ठहरन क लिए न कहा। उस समय श्रीचन्द्र और मोहन गाडी पर चढकर हवा खान गये थ।

किशोरी का हृदय इस नवागन्तुक कल्पित सन्तान स विद्रोह तो कर हा रहा था, वह अपना सच्चा धन गँवाकर इस दत्तक पुत्र स मन भुलवान म असमथ

थी। नियति की इस आकस्मिक विडम्बना ने उसे अधीर बना दिया। जिस घण्टी के कारण विजय अपने सुखमय संसार को खो बैठा और किशोरी ने अपने पुत्र विजय को; उसी घण्टी का भाई आज उसके सर्वस्व का मालिक है, उत्तराधिकारी है। दुर्दैव का यह कैसा परिहास है! वह छटपटाने लगी, मसोसने लगी; परन्तु अब कर ही क्या सकती थी। धर्म के विधान से दत्तक पुत्र उसका अधिकारी था और विजय नियम के विधान से निर्वासित—मृतक-तुल्य!

२

मगलदव की पाठशाला मे अव दो विभाग हैं—एक लडको का, दूसरा लडकियो का। गाला लडकियो की शिक्षा का प्रबन्ध करती। वह अव एक प्रभावशाली गम्भीर युवती दिखलाई पडती जिसके चारो आर पवित्रता और ब्रह्मचय का मण्डल घिरा रहता। बहुत-से लाग जो पाठशाला म आते, वे इस जोडी को आश्चर्य से देखते। पाठशाला के वडे छप्पर के पास ही गाला की भी झापडी थी, जिसम एक चटाई तीन-चार कपडे, एक पानी का वरतन और कुछ पुस्तकें था। गाला एक पुस्तक मनोयोग से पढ रही था। कुछ पन्न उलटते हुए उसने सन्तुष्ट होकर पुस्तक धर दी। वह सामने की सडक की ओर देखने लगी। फिर भी कुछ ममझ म न आया। उसने वडवडाते हुए कहा—पाठ्यक्रम इतना असम्वद्ध है कि यह मनोविकास म सहायक होने के बदले, स्वय भार हो जायगा। वह फिर पुस्तकें पढन लगी—'रानी न उन पर कृपा दिखाते हुए छाड दिया और राजा न भी रानी की उदारता पर हँसकर प्रसनत्ता प्रकट की' राजा और रानी, इसम स्त्री और पुरुष बनाने का, संसार का सहनशील साझीदार होने का, सन्देश कही नही। केवल महत्ता का प्रदशन, मन पर अनुचित प्रभाव का वोझ। उसन झुँझलाकर पुस्तक पटककर एक नि श्वास लिया। उसे वदन का स्मरण हुआ, बावा'—वह कर एक वार चिहुँक उठा। वह अपनी ही भर्त्सना प्रारम्भ कर चुकी थी। महसा मगलदव मुस्कराता हुआ सामन दिखाई पडा। मिट्टा क दीप की लौ भक-भक करती हुई जलने लगी।

तुमन कई दिन लगा दिये, मैं ता अब सोने जा रही थी।

क्या करूँ, आश्रम की एक स्त्री पर हत्या का भयानक अभियोग था। गुरुदेव न उसकी सहायता के लिए बुलाया था।

तुम्हारा आश्रम हत्यारा की भी सहायता करता है?

नही गाला! वह हत्या उसने नही की था, वस्तुत एक दूसरे पुरुष न की, पर, वह स्त्री उस बचाना चाहती है।

क्यो?

यही तो मै समझ न सका ।

तुम न समझ सके ! स्त्री एक पुरुष को फाँसी से बचाना चाहती है और इसका कारण तुम्हारी समझ मे न आया—इतना स्पष्ट कारण !

तुम क्या समझती हो ?

स्त्री जिससे प्रेम करती है, उसी पर सरबस वार देने को प्रस्तुत हो जाती है, यदि वह भी उसका प्रेमी हो तो ! स्त्री वय के हिसाब से सदैव शिशु, कर्म मे वयस्क और अपनी असहायता मे निरीह है । विधाता का ऐसा ही विधान है।

मगल ने देखा कि अपने कथन मे गाला एक सत्य का अनुभव कर रही है। उसने कहा—तुम स्त्री-मनोवृत्ति का अच्छी तरह समझ सकती हो, परन्तु सम्भव है यहाँ भूल कर रही हो । सब स्त्रियाँ एक ही धातु की नही । देखो मैं जहाँ तक उसके सम्बन्ध मे जानता हूँ, तुम्हे सुनाता हूँ—वह एक निश्छल प्रेम पर विश्वास रखती थी और प्राकृतिक नियम से आवश्यक था कि एक युवती किसी भी युवक पर विश्वास करे, परन्तु वह अभागा युवक उस विश्वास का पात्र नही था। उसकी अत्यन्त आवश्यक और कठोर घडियो मे युवक विचलित हो उठा । कहना न होगा कि उस युवक ने उसके विश्वास को बुरी तरह ठुकराया । एकाकिनी उस आपत्ति की कटुता झेलने के लिए छोड दी गई । बेचारी को एक सहारा भी मिला परन्तु यह दूसरा युवक भी उसके साथ वही करने के लिए प्रस्तुत था, जो पहले युवक ने किया । वह फिर अपना आश्रय छोडने के लिए बाध्य हुई । उसने सघ की छाया मे दिन बिताना निश्चित किया । एक दिन उसने देखा कि यही दूसरा युवक एक हत्या करके फाँसी पाने की आशा मे हठ कर रहा है । उसने उसे हटा दिया आप शव के पास बैठी रही । पकडी गई, तो हत्या का भार अपने सिर ले लिया । यद्यपि उसने स्पष्ट स्वीकार नही किया, परन्तु शासन को तो एक हत्या के बदले दूसरी हत्या करनी ही है । न्याय को यही समीप मिली, उसी पर अभियोग चल रहा है । मैं तो समझता हूँ कि वह हताश होकर जीवन दे रही है । उसका कारण प्रेम नही है, जैसा तुम समझ रही हो ।

गाला ने एक दीर्घ नि श्वास लिया । उसने कहा—नारी जाति का निर्माण विधाता की एक झुंझलाहट है । मगल ! उससे ससार भर के पुरुष कुछ लेना चाहते हैं, एक माता ही कुछ सहानुभूति रखती है, इसका कारण है उसका भी स्त्री होना । हाँ, तो उसने न्यायालय मे अपना क्या वक्तव्य दिया ?

उसने कहा—पुरुष स्त्रियो पर सदैव अत्याचार करते है, कही नही सुना गया कि अमुक स्त्री ने अमुक पुरुष के प्रति ऐसा ही अन्याय किया, परन्तु पुरुषो का यह साधारण व्यवसाय है—स्त्रियो पर आक्रमण करना ! जो अत्याचारी है,

वह मारा गया। कहा जाता है कि न्याय के लिए न्यायालय सदैव प्रस्तुत रहता है, परन्तु अपराध हो जाने पर ही विचार करना उसका काम है। उस न्याय का अर्थ है कि किसी को दण्ड दे देना! किन्तु उसके नियम उस आपत्ति से नहीं बचा सकते। सरकारी वकील कहते हैं—न्याय को अपने हाथ मे लेकर तुम दूसरा अन्याय नही कर सकते, परन्तु उस एक क्षण की कल्पना कीजिए कि उसका सर्वस्व लुटा चाहता है और न्याय के रक्षक अपने आराम मे है। वहाँ एक पत्थर का टुकडा ही आपत्ति-ग्रस्त की रक्षा कर सकता है। तब वह क्या करे, उसका भी उपयोग न करे! यदि आपके सुव्यवस्थित शासन मे कुछ दूसरा नियम है तो आप प्रसन्नता से मुझे फासी दे सकते हैं। मुझे और कुछ नही कहना है।—वह निर्भीक युवती इतना कहकर चुप हो गई। न्यायाधीश दाता-तले ओठ दबाये चुप थे। साक्षी बुलाये गये है, पुलिस ने दूसरे दिन उन्हे ले आने की प्रतिज्ञा की है। गाला! मैं तुमसे भी कहता कि चलो, इस विचित्र अभियोग को देखो, परन्तु यहाँ पाठशाला भी तो देखनी है। अबकी बार मुझे कई दिन लगेगे!

आश्चर्य है, परन्तु मैं कहती हूँ कि वह स्त्री अवश्य उस युवक से प्रेम करती है, जिसने हत्या की है। जैसा तुमने कहा, उससे तो यही मालूम होता है कि वही दूसरा युवक उसका प्रेम-पात्र है, जिसने उसे सताना चाहा था।

गाला! पर मैं कहता हूँ कि वह उससे घृणा करती थी। ऐसा क्यो! मैं न कह सकूगा, पर है बात कुछ ऐसी ही। सहसा रुककर मगल चुपचाप सोचने लगा—हो सकता है! ओह! अवश्य विजय और यमुना!—यही तो, मानता हूँ कि हृदय मे एक आधी रहती है, एक हलचल लहराया करती है, जिसके प्रत्येक धक्के मे— बढो! बढो!—की घोषणा रहती है। वह पागलपन ससार को तुच्छ लघुकण समझकर उसकी ओर उपेक्षा से हँसने का उत्साह देता है। ससार का कर्त्तव्य, धर्म का शासन, केले के पत्ते की तरह धज्जी-धज्जी उड जाता है। यही तो प्रणय है। नीति की सत्ता ढोग मालूम पडती है और विश्वास होता है कि समस्त सदाचार उसी की साधना है हाँ वही सिद्धि है, वही सत्य है। आह, अबाध मगल! तूने उसे पाकर भी न पाया। नही-नही, वह पतन था, अवश्य माया थी। अन्यथा, विजय की ओर इतनी प्राण दे देने वाली सहानुभूति क्या? आह, पुरुष-जीवन के कठोर सत्य! क्या इस जीवन मे नारी को प्रणय मदिरा के रूप मे गलकर तू कभी न मिलेगा? परन्तु स्त्री, जल-सदृश कोमल एव अधिक-से-अधिक निरीह है। बाधा देने की सामर्थ्य नही, तब भी उसमे एक धारा है, एक गति है, पत्थरो की रुकावट की भी उपेक्षा करके कतराकर वह चली ही जाती है। अपनी सन्धि खोज ही लेती है, और सब उसके लिए पथ छोड देते है,

सब झुकते है, सब लोहा मानते हैं। किन्तु सदाचार की प्रतिज्ञा...तो अर्पण करना होगा धर्म की बलिवेदी पर मन का स्वातन्त्र्य ! कर तो दिया, मन कहाँ स्वतन्त्र रहा ! अब उसे एक राह पर लगाना होगा।—वह जोर से बोल उठा—गाला ! क्या यही ! !

गाला चिन्तित मंगल का मुँह देख रही थी। वह हँस पडी, बोली—कहाँ घूम रहे हो मंगल ?

मंगल चौंक उठा। उसने देखा, जिसे खोजता था वही मंत्र में मुझे पुकार रहा है। वह तुरन्त बोला—कहीं तो नहीं गाला !

आज पहला अवसर था, जब गाला ने मंगला को उसके नाम से पुकारा। उसमें सरलता थी, हृदय की छाया थी। मंगल ने अभिन्नता का अनुभव किया। हँस पड़ा।

तुम कुछ सोच रहे थे। यही कि स्त्रियाँ ऐसा प्रेम कर सकती हैं ? तर्क ने कहा होगा—नहीं ! व्यवहार ने समझाया होगा—यह सब स्वप्न है। यही न ? पर मैं कहती हूँ सब सत्य है स्त्री का हृदय प्रेम का रंगमंच है ! तुमने शास्त्र पढा है, फिर भी तुम स्त्रियों के हृदय को परखने में उतने कुशल नहीं हो, क्योंकि

बीच में रोककर मंगल ने पूछा—और तुम कैसे प्रेम का रहस्य जानती हो गाला ! तुम भी तो

स्त्रियों का यह जन्मसिद्ध उत्तराधिकार है मंगल ! उसे खोजना, परखना नहीं होता, कहीं से ले आना नहीं होता। वह बिखरा रहता है असावधानी से—धनकुबेर की विभूति के समान ! उसे सम्हालकर केवल एक ओर व्यय करना पडता है—इतना ही तो !—हँसकर गाला ने कहा।

और पुरुष का ?—मंगल ने पूछा।

हिसाब लगाना पडता है, उसे सीखना पडता है। संसार में जैसे उसकी महत्त्वाकांक्षा की और भी बहुत-सी विभूतियाँ हैं, वैसे ही यह भी एक है। पद्मिनी के समान जल-मरना स्त्रियाँ ही जानती हैं, और पुरुष केवल उसी जली हुई राख को उठाकर अलाउद्दीन के सदृश बिखेर देना ही तो जानते हैं !—कहते-कहते गाला तन गई थी। मंगल ने देखा—वह ऊर्जस्वित सौन्दर्य !

बात बदलने के लिए गाला ने पाठ्यक्रम-सम्बन्धी अपने उपालम्भ कह सुनाये और पाठशाला के शिक्षाक्रम का मनोरंजक विवाद छिड़ा। मंगल उस कानन-वासिनी के तर्कजालों में बार-बार जान-बूझकर अपने को फँसा देता। अन्त में मंगल ने स्वीकार किया कि वह पाठ्यक्रम बदला जायगा। सरल पाठों में बालकों

के चारित्र्य, स्वास्थ्य और साधारण ज्ञान को विशेष सहायता देने का उपकरण जुटाया जायगा ।

स्वावलम्बन का व्यावहारिक विषय निर्धारित होगा ।

गाला ने सन्तोष की साँस लेकर देखा—आकाश का सुन्दर शिशु, बैठा हुआ बादलों की क्रीडा-शैली पर हँस रहा था और रजनी शीतल हो चली थी । रोएँ अनुभूति म सगबगाने लगे थे । दक्षिण पवन जीवन का सन्देश लेकर टेकरी पर विश्राम करने लगा था । मगल की पलके भारी थी और गाला झीम रही थी । कुछ ही देर म दोनो अपने-अपने स्थान पर बिना किसी शैया के आडम्बर के सो गये ।

३

एक दिन सवेरे की गाडी से वृन्दावन के स्टेशन पर नन्दो और घण्टी उतरी। बाथम स्टेशन के समीप ही, सडक पर ईसाई-धर्म पर व्याख्यान दे रहा था—

यह देवमन्दिरो की यात्राएँ तुम्हारे मन मे क्या भाव लाती हैं—पाप की या पुण्य की ? तुम जब पापो के बोझ से लदकर, एक मन्दिर की दीवार से टिककर लम्बी साँस खीचते हुए सोचोगे कि मैं इससे छू जाने पर पवित्र हो गया, तो तुम्हारे मे फिर से पाप करने की प्रेरणा बढेगी ! यह विश्वास कि देवमन्दिर मुझे पाप से मुक्त कर देंगे, भ्रम है।

सहसा सुनने वालो म से मगल ने कहा—ईसाई ! तुम जो कह रहे हो, यदि वही ठीक है, तो इस भाव के प्रचार का सबसे बडा दायित्व तुम लोगो पर है, जो कहते हैं कि पश्चात्ताप करो, तुम पवित्र हो जाओगे। भाई, हम लोग तो इस सम्बन्ध मे ईश्वर को भी इस झझट से दूर रखना चाहते है—

'जो जस करे सो तस फल चाखा !'

सुननेवालो ने ताली पीट दी। बाथम एक घोर सैनिक की भाँति प्रत्यावर्त्तन कर गया। वह भीड मे से निकलकर अभी स्टेशन की ओर चला था कि सिर पर गठरी लिये हुए नन्दो के पीछे घण्टी जाती हुई दिखाई पडी। वह उत्तेजित होकर लपका, उसने पुकारा,—घण्टी !

घण्टी के हृदय म सनसनी दौड गई। उसने नन्दो का कन्धा पकड लिया। धर्म का व्याख्याता ईसाई, पशु के फदे म अपना गला फासकर उछलने लगा। उसने कहा—घण्टी ! चलो, हम तुमको खोज कर लाचार हो गये— आह डार्लिङ्ग !

भयभीत घण्टी सिकुडी जाती थी। नन्दो ने डपटकर कहा—तू कौन है रे ! क्या सरकारी राज नही रहा ! आगे बढा, तो ऐसा झापड लगेगा कि तेरा टोप उड जायगा !

दो-चार मनुष्य और इकट्ठे हो गये। बाथम ने कहा—माँ जी, यह मेरी विवाहिता स्त्री है यह ईसाई है, आप नही जानती।

नन्दो तो घबरा गई। और लोगा ने भी कान सगवगाय, पर सहसा फिर मगल बाथम क सामन लट गया। उसन घण्टी स पूछा—क्या तुम ईसाई-धम ग्रहण कर चुकी हा ?

मैं धर्म-कर्म कुछ नही जानती। मरा काई आश्रय न था, तो इन्होने मुझे कई दिन खान को दिया था।

ठीक है, पर तुमने इनक साथ ब्याह किया था ?

नही, यह मुझे दो-एक दिन गिरजाघर म ल गये थे ब्याह-व्याह मै नही जानती।

मिस्टर बाथम, यह क्या कहती ह ? क्या आप नागा का ब्याह चर्च म नियमानुसार हो चुका है—आप प्रमाण दे सकते है ?

नही, जिस दिन होने वाला था उसी दिन तो यह भागी। हा, यह वपतिस्मा अवश्य ले चुकी है।

क्यो, तुम ईसाई हो चुकी हा ?

मैं नही जानती।

अच्छा मिस्टर बाथम ! अब आप एक भद्र पुरुष हान के कारण इस तरह एक स्त्री को अपमानित न कर सकग। इसके लिए आप पश्चात्ताप ता करग ही, चाहे वह प्रकट न हो। छोडिए, राह छोडिए जाओ दवी !

मगल के इस कहने पर भीड हट गई। बाथम भी चला। अभी वह अपनी धुन म थोडी दूर गया था कि चर्च का बुड्ढा चपरासी मिला। बाथम चौंक पडा। चपरासी न कहा—बड साहब की चलाचली है, चर्च को सँभालन के लिए आपका बुलाया है।

बाथम किंकर्त्तव्य-विमूढ-सा चर्च के तांगे पर जा बैठा।

पर नन्दा का तो पैर ही आग न पडता था। वह एक बार घटी को देखती, फिर सडक को। घण्टी क पैर उसी पृथ्वी म गडे जा रहे थे। दुःख से दोना के आँसू छलक आय थ। दूर खडा मगल भी यह सब देख रहा था, वह फिर पास आया, बाला—आप लोग अब यहाँ क्या खडी हैं ?

नन्दो रा पडी, बोली—बाबूजी, बहुत दिन पर मेरी बटी मिली भी, तो बधरम हाकर ! हाय, अब मैं क्या करूँ ?

मगल क मस्तिष्क म सारा बात दौड गईं, वह तुरन्त बोल उठा—आप लोग गोस्वामी जी के आश्रम म चलिए, वहाँ सब प्रबन्ध हो जायगा, सडक पर खडी

रहने से फिर भीड लग जायगी। आइए, मेरे पीछे-पीछे चली आइए! —मगल ने आज्ञापूर्ण स्वर मे ये शब्द कहे। दानो उसके पीछे-पीछे आँसू पोछती हुई चली।

मगल का गम्भीर दृष्टि स देखते हुए गोस्वामीजी न पूछा—तो तुम क्या चाहते हो?

गुरुदेव! आपकी आज्ञा का पालन करना चाहता हूँ, सेवा-धम की जो दीक्षा आपने मुझे दी है, उसका प्रकाश्य रूप से व्यवहृत करने की मेरी इच्छा है। देखिए, धर्म के नाम पर हिन्दू स्त्रियो, शूद्रा, अछूतो—नही, वही प्राचीन शब्दो म कहे जाने वाली पापयानिया—की क्या दुर्दशा हा रही है! क्या इन्ही के लिए भगवान् श्रीकृष्ण न परागति पाने की व्यवस्था नही दी है? क्या वे सब उनकी दया से वचित ही रह!

मैं आयसमाज का विरोध करता था—मेरी धारणा थी कि धार्मिक समाज मे कुछ भीतरी सुधार कर देने से काम चल जायगा, किन्तु गुरुदव! यह आपका शिष्य मगल आप ही की शिक्षा स आज यह कहने का साहस करता है कि परि-वर्तन आवश्यक है, एक दिन मैने अपन मित्र विजय का इन्ही विचारो के लिए विराध किया था पर नही, अब मरी यही दृढ धारणा हो गई है कि इस जर्जर धार्मिक समाज मे जो पवित्र ह—व अलग पवित्र बन रहे, मैं उन पतितो की सेवा करूँ, जिन्हे ठोकर लग रही हैं—जो बिलबिला रहे है!

मुझे पतितपावन के पदाक का अनुसरण करने की आज्ञा दीजिए। गुरुदव, मुझसे बढकर कौन पतित हागा? कोई नही, आज मरी आख खुल गई हैं मैं अपने समाज को एकत्र करूँगा और गोपाल स तब प्रार्थना करूँगा कि भगवान तुमम यदि पावन करने की शक्ति हा, तो आओ। अहकारी समाज के दम्भ स पद दलितो पर अपनी करुणा-कादम्बिनी बरसाओ।

मगल की आखो म उत्तेजना क आँसू थे। उसका गला भर आया था। वह फिर कहने लगा—गुरुदेव! उन स्त्रिया की दशा पर विचार कीजिए, जिन्हे कल ही आश्रम मे आश्रय मिला है।

मगल! क्या तुमने भली भाँति विचार कर लिया, और विचार करने पर भा तुमन यही काय-क्रम निश्चित किया ह? —गम्भीरता स कृष्णशरण ने पूछा।

गुरुदव! जब कार्य करना ही है तब उस उचित रूप क्या न दिया जाय! दवनिरजनजी स परामर्श करन पर मैंन ता यही निष्कर्ष निकाला है कि भारत-सघ स्थापित होना चाहिए।

परन्तु तुम मेरा सहयोग उसम न प्राप्त कर सकोगे। मुझे इस आडम्बर मे विश्वास नही है, यह मै स्पष्ट कह देना चाहता हूँ। मुझे फिर काइ एकान्त कुटिया खोजनी पडेगी—मुस्कराते हुए कृष्णशरण ने कहा।

काय आरम्भ हो जाने दीजिए। गुरुदेव! तब यदि आप उसम अपना निर्वाह न दख, ता दूसरा विचार करे। इस कल्याण-धर्म के प्रचार म क्या आप ही विरोधी बनियेगा! मुझे जिस दिन आपने सवाधर्म का उपदश देकर वृन्दावन स निर्वासित किया था, उसी दिन स मैं इसके लिए उपाय खोज रहा था, किन्तु आज जब सुयोग उपस्थित हुआ, देवनिरजनजी जैसा सहयोगी मिल गया, तब आप ही मुझे पीछे हटने का कह रहे है।

पूर्ण गम्भीर हँसी के साथ गोस्वामीजी कहन लगे—जब निवासन का बदला लिये बिना तुम कैसे मानोगे? मगल, अच्छी बात है, मैं शीघ्र प्रतिफल का स्वागत करता हूँ। किन्तु, मैं एक बात फिर कह देना चाहता हूँ कि मुझे व्यक्तिगत पवित्रता के उद्योग म विश्वास है, मैन उसी का सामने रखकर उन्ह प्रेरित किया था। मैं यह न स्वीकार करूँगा कि वह भी मुझे न करना चाहिए था। किन्तु, जा कर चुका, वह लौटाया नही जा सकता। ता फिर करो, जो तुम लोगो की इच्छा।

मगल न कहा—गुरुदव, क्षमा कीजिए—आशीर्वाद दीजिए।

अधिक न कहकर वह चुप हो गया। वह इस समय किसी भी तरह गास्वामी जी के भारत सघ का आरम्भ करा लिया चाहता था।

निरजन न जब वह समाचार सुना, तो उस अपनी विजय पर प्रसन्नता हुई—दोनो उत्साह स आगे का कार्यक्रम बनान लगे।

४

कृष्णशरण की टेकरी ब्रज-भर म रहस्यमय कुतूहल और सनसनी का कन्द्र वन रही थी। निरजन के सहयोग से उसम नवजीवन का सचार हान लगा। कुछ ही दिनो से सरला और लतिका भी उस विश्राम-भवन म आ गयी थी।

लतिका बडे चाव म वहाँ उपदेश सुनती। सरला तो एक प्रधान महिला कार्यकर्त्री थी। उसके हृदय म नई स्फूर्ति थी और शरीर म नय साहस का सचार था। सघ म बडी सजीवता आ चली। इधर यमुना क अभियाग म भी सघ प्रधान भाग ल रहा था, इसलिए बडी चहल-पहल रहती।

एक दिन वृन्दावन की गलिया म सब जगह बड-बडे विज्ञापन चिपक रह थ। उन्ह लोग भय और आश्चर्य से पढन लग —

भारत-सघ

हिन्दू-धर्म का सर्वसाधारण क लिए
खुला हुआ द्वार
ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्या स
(जा किसी विशष कुल म जन्म लने के कारण ससार म सबस अलग रहकर,
निस्सार महत्ता म फँसे है)
भिन्न एक नवीन हिन्दू जाति का
सगठन करान वाला सुदृढ कन्द्र
जिसका आदर्श प्राचीन है—
राम, कृष्ण, बुद्ध की आर्य-सस्कृति का प्रचारक
वही

भारत-सघ

सबका आमन्त्रित करता है!

दूसर दिन नया विज्ञापन लगा—

भारत-सघ

वर्तमान कष्ट क दिना म
श्रेणीवाद
धार्मिक पवित्रतावाद,
अभिजात्यवाद, इत्यादि अनक रूपा म
फैल हुए सब देशो क भिन्न प्रकारो के जातिवाद
की
अत्यन्त उपेक्षा करता है!
श्रीराम ने शबरी का आतिथ्य स्वीकार किया था
श्रीकृष्ण न दासी-पुत्र विदुर का आतिथ्य ग्रहण किया था
बुद्धदव न वश्या क निमत्रण का रक्षा की थी
इन घटनाओ का स्मरण करता हुआ
भारत-सघ मानवता क नाम पर
सबको गले से लगाता ह!
राम, कृष्ण और बुद्ध महापुरुष थ
इन लोगो न सत्साहस का पुरस्कार पाया था—
कष्ट, तीव्र उपेक्षा और तिरस्कार!

भारत-सघ भी

आप लोगो की ठोकरा की धूल
सिर स लगावेगा।

वृन्दावन उत्तेजना की उँगलिया पर नाचन लगा। विरोध म और पक्ष म—देवमन्दिरो, कुजा, गलियो और घाटा पर बात होन लगी।

तीसरे दिन फिर विज्ञापन लगा—

मनुष्य अपनी सुविधा के लिए
अपन और इश्वर के सम्बन्ध का

धर्म,

अपने और अन्य मनुष्या क सम्बन्ध को

नीति,

और रोटी-बेटी के सम्बन्ध का

समाज,

कहन लगता है, कम-स-कम

इसी अर्थ में इन शब्दों का व्यवहार करता है।

धर्म और नीति में शिथिल

हिन्दुओं का समाज-शासन

कठोर हो चला है !

क्योंकि, दुर्बल स्त्रियों पर ही शक्ति का उपयोग करने की

उसके पास क्षमता बच रही है—

और यह अत्याचार प्रत्येक काल और देश के

मनुष्यों ने किया है,

स्त्रियों की

निसर्ग-कोमल प्रकृति और उनकी रचना

इसका कारण है

भारत-संघ

ऋषि-वाणी को दोहराता है

'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता

कहता है—

स्त्रियों का सम्मान करो !

वृन्दावन में एक भयानक हलचल मच गई। सब लोग आज-कल भारत-संघ और यमुना के अभियोग की चर्चा में संलग्न हैं। भोजन करके, पहले की आधी छोड़ी हुई बात फिर आरम्भ हो जाती है—वही भारत-संघ और यमुना !

मन्दिर के किसी-किसी मुखिया को शास्त्रार्थ की सूझी। भीतर-भीतर आयोजन होने लगा। पर, अभी खुलकर कोई प्रस्ताव नहीं आया था। उधर यमुना के अभियोग के लिए सहायतार्थ चन्दा भी आने लगा। वह दूसरी ओर की प्रतिक्रिया थी।

५

कइ ि्नि हा गये थ। मगल नहा था। अवल गाला का उस पाठशाला रा प्रबन्ध कर रही थी। उसका नवीन उत्साह उस नित्य बल द रहा था पर उम कभा-कभी ऐसा प्रतात हाता कि उसन वाई वस्तु खो दी है। इधर एक पन्तिजी भी उस पाठशाला म पढान लगे थे। उनका गाँव दूर था अत गाला न कहा— पण्डितजी आप भी यहाँ रहा कर ता अधिक सुविधा हो। रात को छात्रा के कष्ट इत्यादि का समुचित प्रबन्ध भी कर ल्यिा जाता और सूनापन उतना न अखरता।

पण्डितजी सात्त्विक बुद्धि के एक अधेड व्यक्ति थ। उन्होने स्वीकार कर लिया। एक दिन वे बैठ हुए रामायण की कथा गात्रा का सुना रह थ गाला ध्यान स सुन रही थी। राम वनवास का प्रसग था। रात अधिक हो गइ थी पण्डितजी न कथा बन्द कर दी। सब छात्रा न फूस का चटाइ पर पग फैलाय और पण्डितजी ने भी कम्बल साधा किया।

आज गाला की आखा म नाद न था। वह चुपचाप मैश पवन विकम्पित लता की तरह कभी-कभी विचार म झीम जाती फिर चौंक कर अपनी विचार परम्परा की विशृङ्खल कडियो का सम्हालन लगती। उसक सामन आज रह रह कर बदन का चित्र प्रस्फुटित हो उठता। वह सोचती—पिता की आज्ञा मानकर राम वनवासी हुए और मैंने पिता की क्या सवा की ? उलटा उनक वृद्ध जीवन म कठोर आघात पहुचाया ! और यह मगल ? किस माया म पडी हूँ ! बालक पढत हैं मैं पुण्य कर रही हू कर्त्तव्य कर रही हू परन्तु क्या यह ठीक है ? मैं एक दुर्दान्त दस्यु और यवनी की बालिका—हिन्दू समाज मुझे किस दृष्टि स देखगा ? ओह मुझ इसकी क्या चिन्ता ! समाज स मेरा क्या सम्बन्ध ! फिर भी मुये चिन्ता करनी ही पडगी क्या ? इसका कोइ स्पष्ट उत्तर नही दे सकती पर यह मगल भी एक विलक्षण आहा बचारा कितना परोपकारी है तिस पर उसकी खोज करने वाला कोई नही। न खान की सुध न अपन शरीर की। सुख क्या है—वह जैस भूल गया है। और मैं भी कैसी हू—पिताजी का कितनी पीडा मैंने दी वे मसा सत होगे ! मैं जानती हूँ लाहे स भी कठोर मेरे पिता अपन दु ख म भी किसा

की सेवा-सहायता न चाहेंगे। तब यदि उन्हें ज्वर आ गया हो—उस जंगल के एकान्त में पड़े कराहते होंगे?

सहसा जैसे गाला के हृदय की गति रुकने लगी। उसके कान में वदन के कराहने का स्वर सुनाई पड़ा, जैसे पानी के लिए खाट के नीचे हाथ बढ़ाकर वह टटोल रहा हो। गाला से न रहा गया, वह उठ खड़ी हुई। फिर निस्तब्ध आकाश की नीलिमा में वह बन्दी बना दी गई। उसकी इच्छा हुई कि चिल्लाकर रो उठे, परन्तु निरुपाय थी। उसने अपने रोने का मार्ग भी बन्द कर दिया था। बड़ी बेचैनी थी। वह तारों को गिन रही थी पवन की लहरों को पकड़ रही थी।

सचमुच गाला आज अपने विद्रोही हृदय पर खीज उठी। वह अथाह अन्धकार के समुद्र में उभचुभ हो रही थी—नाक में आँख में, हृदय में जैसे अन्धकार भरा जा रहा था। अब उसे निश्चय हो गया कि वह डूब गई। वास्तव में वह विचारों से थककर सो गई।

अभी पूर्व में प्रकाश नहीं फैला था। गाला की नींद उचट गई। उसने देखा, कोई बड़ी दाढ़ी और मूछोंवाला लम्बा-चौड़ा मनुष्य खड़ा है। चिन्तित रहने से गाला का मन दुर्बल हो ही रहा था उस आकृति को देखकर वह सहम गई। वह चिल्लाना ही चाहती थी कि उस व्यक्ति ने कहा—गाला मैं हूँ नये!

तुम हो! मैं तो चौंक उठी थी भला तुम इस समय क्यों आये!

तुम्हारे पिता कुछ घण्टों के लिए संसार में जीवित है, यदि चाहो तो देख सकती हो!

क्या सच! तो मैं चलती हूँ—कहकर गाला ने सलाई जलाकर आलोक किया। वह एक चिट पर कुछ लिखकर पण्डितजी के कम्बल के पास गई। वे अभी सो रहे थे गाला चिट उनके सिरहाने रखकर नये के पास गई, दोनों टेकरी से उतरकर सड़क पर चलने लगे।

नये कहने लगा—

वदन के घुटने में गोली लगी थी। रात को पुलिस ने डाके के माल के संबंध में उस जंगल की तलाशी ली, पर कोई वस्तु वहाँ न मिली। हाँ अकेले वदन ने वीरता से पुलिस-दल का विरोध किया, तब उस पर गोली चलाई गई। वह गिर पड़ा। वृद्ध वदन ने इसको अपना कर्त्तव्य-पालन समझा। पुलिस ने फिर कुछ न पाकर घायल वदन को उसके भाग्य पर छोड़ दिया। यह निश्चय था कि वह मर जायगा, तब उसे ले जाकर वह क्या करती!

सम्भवतः पुलिस ने रिपोर्ट दी—डाकू अधिक संख्या में थे। दोनों ओर से खूब गोलियाँ चलीं, पर कोई मरा नहीं। माल उन लोगों के पास न था। पुलिस

—दल कम होने के कारण लौट आई; उन्हे घेर न सकी। डाकू लोग निकल भागे —इत्यादि-इत्यादि।

गोली का शब्द सुनकर पास ही साया हुआ भालू भूंक उठा, मैं भी चौक पडा। देखा कि निस्तब्ध अँधेरी रजनी म यह कैसा शब्द! मै कल्पना से बदन का सकट मे समझने लगा।

जब से विवाह-सम्बन्ध को मैने अस्वीकार किया, तब से बदन के यहाँ नही जाता था। इधर-उधर उसी खारी के तट पर पडा रहता। कभी सन्ध्या के समय पुल के पास जाकर कुछ माँग लाता, उसे खाकर भालू और मैं दाना ही सन्तुष्ट हो जाते। क्योकि खारी मे जल की कमी ता थी नही। आज सडक पर सन्ध्या को कुछ असाधारण चहल-पहल देखी, इसलिए बदन के कष्ट की कल्पना कर सका।

सिवारपुर के गाव के लाग मुझे औघड समझते—क्योकि मै कुत्ते के साथ ही खाता हूँ। कम्बल बगल मे दवाये, भालू के साथ मै, जनता की आँखा का एक आकर्षक विषय हो गया हूँ।

हाँ, तो बदन के सकट की कल्पना ने मुझको उत्तेजित कर दिया। मै उसके झोपडे की ओर चला। वहाँ जाकर जब बदन को घायल कराहते देखा, तब तो मै जमकर उसकी सेवा करन लगा। तीन दिन बीत गये, बदन का ज्वर भीषण हो चला। उसका घाव भी असाधारण था, गोली तो निकल गई थी, पर चोट गहरी थी। बदन न एक दिन भी तुम्हारा नाम न लिया। सन्ध्या को जब मैं उस जल पिला रहा था, मैने वायु-विकार बदन की आखो म स्पष्ट देखा। उससे धीरे से पूछा—गाला को बुलाऊँ? बदन ने मुँह फेर लिया। मै अपना कर्त्तव्य सोचने लगा, फिर निश्चय किया कि आज तुम्हे बुलाना ही चाहिए।

गाला पथ चलते-चलते यह कथा सक्षेप मे सुन रही थी, पर कुछ न बोली। उस इस समय केवल चलना ही सूझता था।

नये जब गाला को लेकर पहुँचा, तब बदन की अवस्था अत्यन्त भयानक हो चली थी। गाला उसके पैर पकडकर रोने लगी। बदन ने कष्ट से दोनो हाथ उठाय, गाला न अपन शरीर को अत्यन्त हल्का करके बदन के हाथ मे दिया। मरणोन्मुख वृद्ध पिता ने अपनी कन्या का सिर चूम लिया।

नये उस समय हट गया था। बदन ने धीरे से उसके कान मे कुछ कहा, गाला ने भी समझ लिया अब अन्तिम समय ह। वह डटकर पिता के खाट के पास बैठ गई।

हाय, उस दिन की भूखी सध्या ने उसके पिता को छीन लिया।

गाला ने बदन का शव-दाह किया। वह बाहर तो खुलकर रोती न थी, पर उसके भीतर की ज्वाला का ताप उसकी आरक्त आँखों में दिखाई देता था। उसने चारों ओर सूना था। उसने नये से कहा—मैं तो यह धन का सन्दूक न ले जा सकूँगी, तुम इसे ले लो।

नये ने कहा—भला मैं क्या करूँगा गाला! मेरा जीवन संसार के भीषण कोलाहल से, उत्सव से और उत्साह से ऊब गया है। अब तो मुझे भीख मिल जाती है। तुम तो इससे पाठशाला की सहायता पहुँचा सकती हो। मैं इसे वहाँ पहुँचा दे सकता हूँ।—फिर वह सिर झुकाकर मन-ही-मन सोचने लगा—जिसे मैं अपना कह सकता था, जिसे माता-पिता समझता था, वे ही जब अपने नहीं तो दूसरों की क्या!

गाला ने देखा, नये के मन में एक तीव्र विराग और वाणी में व्यंग है! वह चुपचाप दिनभर खारी के तट पर बैठी हुई सोचती रही। सहसा उसने घूमकर देखा, नये अपने कुत्ते के साथ कम्बल पर बैठा है। उसने पूछा—तो नये! यही तुम्हारी सम्मति है न?

हाँ, इससे अच्छा इसका दूसरा उपयोग हो ही नहीं सकता। और, यहाँ तुम्हारा अकेले रहना ठीक नहीं।—नये ने कहा।

हाँ पाठशाला भी सूनी है—मंगलदेव वृन्दावन की एक हत्या में फँसी हुई यमुना नाम की एक स्त्री के अभियोग की देख-रेख करने गये है, उन्हें अभी कई दिन लगेंगे।

बीच ही में टोककर नये ने पूछा—क्या कहा! यमुना? वह हत्या में फँसी है?

हाँ, पर तुम क्या पूछते हो?

मैं भी हत्यारा हूँ गाला, इसी से पूछता हूँ। फैसला किस दिन होगा? कब तक मंगलदेव आवेंगे?

परसों न्याय का दिन नियत है।—गाला ने कहा।

तो चलो, आज ही तुम्हें पाठशाला पहुँचा दूँ। अब यहाँ रहना ठीक भी नहीं।

अच्छी बात है जाओ, वह सन्दूक लेते आओ।

नये अपना कम्बल उठाकर चला। और, गाला चुपचाप सुनहली किरणों को खारी के जल में बुझती हुई देख रही थी—दूर पर एक स्यार दौड़ा हुआ जा रहा था। उस निर्जन स्थान में पवन रुक-रुक पर बह रहा था। खारी बहुत धीरे-धीरे अपने करुण प्रवाह में बहती जाती थी, पर जैसे उसकी गति स्थिर

हो—कही से आता जाता न हो। एक स्थिरता और स्पन्दन हीन विवशता गाला को घेरकर मुस्कराने लगी। वह सोच रही थी—शैशव से परिचित इस जगली भूखड को छोडने की बात।

गाला के सामने अन्धकार ने परदा खीच दिया। तव वह घबराकर उठ खडी हुई। इतने म कम्वल और सन्दूक सिर पर धरे नये वहा आ पहुँचा। गाला ने कहा—तुम आ गये।

हा चलो वहुत दूर चलना है।

दूर चले भालू भी पीछे-पीछे था।

६

जज के साथ पाँच जूरी बैठे थ। सरकारी वकील न अपना वक्तव्य समाप्त करते हुए कहा—जूरी सज्जना से मेरी प्रार्थना है कि अपना मत देते हुए वे इस बात का ध्यान रखें कि वे लोग हत्या जैसे एक भीषण अपराध पर अपना मत दे रह हैं। स्त्री, साधारणत मनुष्य की दया को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है, फिर जब कि उसके साथ उसकी स्त्री-जाति की मर्यादा का प्रश्न भी लग जाता हो। तब यह बडे साहस का काम है कि न्याय की पूरी सहायता हो। समाज म हत्या का रोग बहुत जल्द फैल सकता है यदि अपराधी इस

जज ने वक्तव्य समाप्त करने का सकेत किया। सरकारी वकील ने केवल—अच्छा तो आप लोग शान्त हृदय स अपराध का गुरुत्व विचारकर न्यायालय का न्याय करने मे सहायता दीजिए।—कहकर वक्तव्य समाप्त किया।

जज ने जूरियो को सम्बोधन करके कहा—सज्जना, यह एक हत्या का अभियाग है, जिसम नवाब नाम का मनुष्य वृन्दावन के समीप यमुना के किनारे मारा गया। इसमे तो सदह नही कि वह मारा गया—डाक्टर का कहना है कि गला घोटने और पत्थर स सिर फोडने स उसकी मृत्यु हुई। गवाह कहते ह—जब हम लोगो न देखा तो यह यमुना उस मृत व्यक्ति पर झुकी हुई थी पर यह कोई नही कहता कि मैंने उसे मारत दखा। यमुना कहती है कि स्त्री की मर्यादा नष्ट करने जाकर नवाब मारा गया, पर सरकारी वकील का यह कहना बिलकुल निरर्थक है कि उसन मारना स्वीकार किया ह। यमुना के वाक्या से यह अर्थ कदापि नही निकाला जा सकता। इस विशेष बात को समझा दना आवश्यक था। यह दूसरी बात है कि वह स्त्री अपनी मर्यादा के लिए हत्या कर सकती है या नही यद्यपि नियम इसक लिए बहुत स्पष्ट है। विचार करने के समय आप लोग इन बातो का ध्यान रखगे। अब आप लाग एकान्त म जा सकते ह।

जूरी लोग एक कमरे म जा बैठे। यमुना निर्भीक होकर जज का मुह दख रही थी। न्यायालय म दर्शक बहुत थ। उस भीड मे मगल, निरजन इत्यादि भी

थे। सहसा द्वार पर हलचल हुई, कोई भीतर घुसना चाहता था। रक्षियों ने शान्ति की घोषणा की। जूरी लोग आये।

दो ने कहा—हम लोग यमुना को हत्या का अपराधी समझते है, पर दण्ड इसे कम दिया जाय।—जज ने मुस्कुरा दिया।

अन्य तीन सज्जनो ने कहा—प्रमाण अभियोग के लिए पर्याप्त नही है।

अभी वे पूरा कहने नही पाये थे कि एक लम्बा-चौडा, दाढ़ी-मूँछ वाला युवक, कम्बल बगल मे दबाये, कितनो ही को धक्का देता, जज की कुरसी की बगलवाली खिडकी से कब घुस आया यह किसी ने नही देखा। वह सरकारी वकील के पास आकर बोला—मैं हूँ हत्यारा! मुझको फाँसी दो? यह स्त्री निरपराध है!

जज ने चपरासियो की ओर देखा। पेशकार ने कहा—पागलो को भी तुम नही रोकते! ऊँघते रहते हो क्या?

इसी गडबडी मे बाकी तीन जूरी सज्जनो ने अपना वक्तव्य पूरा किया—हम लोग यमुना को निरपराध समझते हैं।

उधर वह पागल भीड मे से निकला जा रहा था। उसका कुत्ता भौंककर हल्ला मचा रहा था। इसी बीच मे जज ने कहा—हम इन तीन जूरियो से सहमत होते हुए यमुना को छोड देते है।

एक हलचल मच गई। मगल और निरजन—जो अब तक दुश्चिन्ता और सन्देह से कमरे के बाहर थे—यमुना के समीप आये। वह रोने लगी। उसने मगल से कहा—मैं नही चल सकती। मगल मन-ही-मन कट गया। निरजन उसे सान्त्वना देकर आश्रम तक ले आया।

एक वकील साहब कहने लगे—क्या जी, मैंने तो समझा था कि पागलपन भी एक दिल्लगी है, पर यह तो प्राणो से भी खिलवाड है।

दूसरे ने कहा—यह भी तो पागलपन है, जो पागल से भी बुद्धिमानी की आशा तुम रखते हो!

दोनो वकील मित्र हँसने लगे।

पाठको को कुतूहल होगा कि बाथम ने अदालत मे उपस्थित होकर क्यो नही इस हत्या पर प्रकाश डाला! परन्तु वह नही चाहता था कि उस हत्या के अवसर पर उसका रहना तथा उक्त घटना से उसका सम्पर्क सब लोग जान ने। उसका हृदय घण्टो के भाग जाने से और भी लज्जित हो गया था। अब वह

अपने को इस सम्बन्ध म बदनाम होन स बचाना चाहता था । वह प्रचारक बन गया था ।

इधर आश्रम म लतिका, सरला, घण्टी और नन्दा के साथ यमुना भी रहन लगी, पर यमुना अधिकतर कृष्णशरण की सवा म रहती । उनकी दिनचया बडी नियमित थी । वह चाची से भी नही बोलती और निरजन उसके पास ही आन म सकुचित होता । भडारीजी का तो साहस ही उसका सामना करन का न हुआ ।

पाठक आश्चर्य करगे कि घटना-सूत्र तथा सम्बन्ध म इतने समीप के मनुष्य एकत्र होकर भी चुपचाप कैस रहे ?

लतिका और घटी का वह मनामालिन्य न रहा, क्याकि अब आश्रम से दोना का कोई सम्बन्ध न रहा । नन्दो चाची ने यमुना क साथ उपकार भी किया था और अन्याय भी । यमुना के हृदय म मगल के व्यवहार की इतनी तीव्रता थी कि उसने सामने और किसी क अत्याचार परिस्फुटित हो नही पात । वह अपन दु ख-सुख म किसी को साझीदार बनाने की चेष्टा न करती । निरजन मन म सोचता—मैं वैरागी हूँ । मेरे शरीर स सम्बन्ध रखने वाले प्रत्येक परमाणुओ को मर दुष्कर्म के ताप से क्षुब्ध होना विधाता का अमोघ विधान है, यदि सब बात खुल जायँ, तो यह सताई हुई स्त्री और भी विरक्ति के नीचे पिसन लग जाय और फिर मैं कहाँ खडा हूँगा । यह आश्रम मुझे किस दृष्टि स देखगा ! नन्दो सोचती—यदि मैं कुछ भी कहती हूँ तो मेरा ठिकाना नही, इसलिए जो हुआ, सो हुआ, अब इसम चुप रह जाना ही अच्छा है । मगल और यमुना आप ही अपना रहस्य खोले, मुझे क्या पडी है ।

इसी तरह निरजन नन्दो और मगल का मौन भय, यमुना के अदृष्ट अन्धकार का सृजन कर रहा था । मगल का सार्वजनिक उत्साह यमुना के सामन अपराधी हो रहा था । वह अपन मन को सान्त्वना देता कि इसम मरा क्या अन्याय है—जब उपयुक्त अवसर पर मैंन अपना अपराध स्वीकार करना चाहा, तभी तो यमुना ने मुझे वर्जित किया तथा अपनी और मेरा पथ भिन्न-भिन्न कर दिया । इसके हृदय म विजय के प्रति इतनी सहानुभूति कि उनके लिए फाँसी पर चढना स्वीकार ! यमुना से अब मेरा कोई सम्बन्ध नही ! —वह उद्विग्न हो उठता । सरला दूर स उनके उद्विग्न मुख को देख रही थी । उसने पास आकर कहा—अहा, तुम इन दिनो अधिक परिश्रम करते-करते थक गये हो !

नही माता, सेवक को विश्राम कहाँ ? अभी तो आप लोगो के सघ-प्रवेश का उत्सव जब तक समाप्त नही हो जाता, हमको छुट्टी कहाँ !

सरला के हृदय म स्नेह का सचार देखकर मगल का हृदय भी स्निग्ध हो चला। उसको बहुत दिनो पर इतने सहानुभूति-सूचक शब्द पुरस्कार म मिले थे।

मगल इधर लगातार कई दिन धूप मे परिश्रम करता रहा। आज उसका आँखे लाल हो रही थी। दालान म पडी हुई चौकी पर जाकर लेट रहा। ज्वर का आतक उसके ऊपर छा गया था। वह अपन मन म सोच रहा था कि बहुत दिन हुए बीमार पडे—काम कर के रोगी हो जाना भी एक विश्राम है, चलो कुछ दिन छुट्टी ही सही। फिर वह सोचता कि मुझे बीमार होने की आवश्यकता नही, एक घूंट पानी तक का कोई न पूछेगा। न भाई, यह सुख दूर रहे! पर, उसके अस्वीकार करने स क्या दुख न आते? उस ज्वर आ ही गया वह एक कोने म पडा।

निरजन उत्सव की तैयारी म व्यस्त था। मगल क रोगी हो जान स सब का छक्का छूट गया। कृष्णशरणजी ने कहा—तब तक सघ के लोगो के उपदेश के लिए मैं राम-कथा कहूँगा और सर्वसाधारण के लिए प्रदर्शन तो जब मगल स्वस्थ होगा, किया जायगा।

बहुत-स लोग बाहर से भी आ गय थ। सघ म बडी चहल-पहल थी, पर मगल ज्वर मे अचेत रहता। केवल सरला उसे देखती थी। आज तीसरा दिन था, ज्वर मे तीव्र दाह था, अधिक वदना स सिर म पीडा थी, लतिका ने कुछ समय क लिए छुट्टी देकर सरला को स्नान करन क लिए भेज दिया था। सवेरे की धूप जँगले के भीतर जा रही थी। उसके प्रकाश म मगल की रक्तवर्ण आख भीषण लाली से चमक उठती। मगल ने कहा— गाला! लडकियो की पढाई पर

लतिका पास बैठी थी। उसन समझ लिया कि ज्वर की भीषणता म मगल प्रलाप कर रहा है। वह घबरा उठी। सरला इतन म स्नान कर के आ चुकी थी। लतिका न प्रलाप की सूचना दी। सरला उस वही रहने के लिए कहकर गोस्वामी क पास गई। उसने कहा—महाराज! मगल का ज्वर भयानक हो गया है। वह गाला का नाम लेकर चौक उठता है।

गोस्वामीजी कुछ चिन्तित हुए।—कुछ विचार कर उन्होंने कहा—सरला, घबरान की कोई बात नही, मगल शीघ्र अच्छा हो जायगा। मैं गाला को बुलवाता हूँ।

गोस्वामीजी की आज्ञा स एक छात्र उनका पत्र लेकर शीकरी गया। दूसरे दिन गाला उसके साथ आ गई। यमुना ने उसे देखा। वह मगल से दूर रहती। फिर भी न जाने क्या उसका हृदय कचोट उठता, पर वह लाचार थी।

गाला और सरला कमर कसकर मगल की सेवा करने लगी। वैद्य ने देखकर कहा--अभी पाँच दिन म यह ज्वर उतरेगा। बीच म सावधानी की आवश्यकता है। कुछ चिन्ता नही! —यमुना सुन रही थी, वह कुछ निश्चिन्त हुई।

इधर सघ म बहुत-स बाहरी मनुष्य भी आ गये थ। उन लोगो क लिए गोस्वामीजी राम-कथा कहन लगे थे।

आज मगल क ज्वर का वेग अत्यन्त भयानक था। गाला पास बैठी हुई मगल के मुख पर पसीन की बूंदो को कपडे म पोछ रही थी। बार-बार प्यास स मगल का मुँह सूखता था। वैद्यजी ने कहा था—आज की रात बीत जान पर यह निश्चय अच्छा हो जायगा। गाला की आँखो म बेबसी और निराशा नाच रही थी। सरला ने दूर मे यह सब देखा। अभी रात आरम्भ हुई थी। अन्धकार ने सघ क प्रागण मे लगे हुए विशाल वृक्षा पर अपना दुर्ग बना लिया था। सरला का मन व्यथित हो उठा। वह धीरे-धीरे एक बार कृष्ण की प्रतिमा के सम्मुख आई। उसने प्रार्थना की। वही सरला, जिसने एक दिन कहा था— भगवान् के दु ख-दान का आचल पसारकर लूंगी—आज मगल की प्राणभिक्षा के लिए आचल पसारने लगी। यह ककाल का गर्व था, जिसके पास कुछ बचा ही नही। वह किसको रक्षा चाहती! सरला के पास तब क्या था, जो वह भगवान् के दु ख-दान स हिचकती। हताश जीवन तो साहसिक बन ही जाता है, परन्तु आज उसे कथा सुनकर विश्वास हो गया था कि विपत्ति म भगवान् सहायता के लिए अवतार लेते है, आते है भयभीतो के उद्धार के लिए! अहा, मानव-हृदय की स्नेह-दुर्बलता कितना महत्त्व रखती है! यही तो उसके यान्त्रिक जीवन की ऐसी शक्ति है। प्रतिमा निश्चल रही, तब भी उसका हृदय आशापूर्ण था। वह खोजन लगी—कोई मनुष्य मिलता, कोई देवता आकर अमृत-पान मेरे हाथो म रख जाता। 'मगल! मगल!' —कहती हुई वह आश्रम क बाहर निकल पडी। उस विश्वास था कि कोई दैवी सहायता मुझे अचानक मिल जायगी अवश्य!

यदि मगल जी उठता तो गाला कितना प्रसन्न होती! —यही बडबडाती हुई वह यमुना के तट की ओर बढने लगी। अन्धकार मे पथ दिखाई न देता था, पर वह चली जा रही थी।

यमुना के पुलिन मे नैश अन्धकार बिखर रहा था। तारो की सुन्दर पक्तिया झलमलाती हुई अनन्त मे जैसे घूम रही थी। उनके आलाक म यमुना का स्थिर गम्भीर प्रवाह जैसे अपनी करुणा म डूब रहा था। सरला ने देखा—एक व्यक्ति

कम्बल ओढे, यमुना की ओर मुँह किये बैठा है जैसे किसी योगी की अचल समाधि लगी हो।

सरला कहने लगी—हे यमुना माता! मंगल का कल्याण करो और उसे जीवित करके गाला को भी प्राणदान दो। माता! आज की रात बडी भयानक है—दुहाई भगवान् की!

वह बैठा हुआ कम्बलवाला विचलित हो उठा। उसने बडे गम्भीर स्वर से पूछा—क्या मंगलदेव रुग्ण है?

प्रार्थिनी और व्याकुल सरला ने कहा—हा महाराज! यह किसी का बच्चा है, उसके स्नेह का धन है, उसी की कल्याण-कामना कर रही हूँ।

और तुम्हारा नाम सरला है? तुम ईसाई के घर पहले रहती थी न!—धीरे स्वर से प्रश्न हुआ।

हा योगिराज। आप तो अन्तर्यामी है!

उस व्यक्ति ने टटोलकर कोई वस्तु निकालकर सरला की ओर फेंक दी। सरला ने देखा, वह एक यंत्र है। उसने कहा—बडी दया हुई महाराज! तो इसे ले जाकर बांध दूंगी न!

वह फिर कुछ न बोला, जैसे समाधि लग गई हो। सरला ने अधिक छेडना उचित न समझा। मन ही-मन नमस्कार करती हुई, प्रसन्नता से आश्रम की ओर लौट पडी।

वह अपनी कोठरी में आकर उस यंत्र को धागे में पिरोकर, मंगल के प्रकोष्ठ के पास गई। उसने सुना, कोई कह रहा है—बहन गाला! तुम थक गई होगी, लाओ मैं कुछ समय सहायता कर दूँ।

उत्तर मिला—नही यमुना बहिन! मैं तो अभी बैठी हूँ, फिर आवश्यकता होगी, तो बुलाऊँगी।

एक स्त्री लौटकर निकल गई। सरला भीतर घुसी। उसने वह यंत्र मंगल के गले में बाँध दिया और मन ही-मन भगवान् से प्रार्थना की। वही बैठी रही। दोनों ने रात भर बडे यत्न से सेवा की।

प्रभात होने लगा। बडे सन्देह से सरला ने उस प्रभात के आलोक को देखा। *दीप की ज्योति मलिन हो चली। रोगी इस समय निद्रित था। जब* प्रकाश उस कोठरी में घुस आया, तब गाला, सरला और मंगल तीनो नीद में सो रहे थे।

जब कथा समाप्त करके सब लोगो के चले जाने पर गोस्वामीजी उठकर

मगलदेव के पास आय, तब गाला बैठी पखा झल रही थी। उन्हे देखकर वह सकोच से उठ खडी हुई। गोस्वामीजी ने कहा—सेवा सब से कठिन व्रत है देवि ! तुम अपना काम करो। हा मगल ! तुम अब अच्छे हो न !

कम्पित कठ स मगल न कहा— हाँ, गुरुदेव !

अब तुम्हारा अभ्युदय-काल है, घबराना मत ! कहकर गोस्वामीजी चल गये।

दीपक जल गया। आज अभी तक सरला नही आई। गाला को बैठे हुए बहुत विलम्ब हुआ। मगल न कहा—जाओ गाला, सध्या हुई, हाथ-मुँह तो धो लो, तुम्हारे इस अथक परिश्रम स मैं कैस उद्धार पाऊँगा।

गाला लज्जित हुई। इतने सम्भ्रान्त मनुष्य और स्त्रियो के बीच आकर कानन-वासिनी ने लज्जा सीख ली थी। वह अपने स्त्रीत्व का अनुभव कर रही थी। उसके मुख पर विजय की मुस्कुराहट थी। उसन कहा—अभी माँ जी नही आईं, उन्हे बुला लाऊँ ! —कहकर सरला का खोजने के लिए वह चली।

सरला मौलसिरी के नीचे बैठी सोच रही थी—जिन्हे लाग भगवान् कहते हैं, उन्ह भी माता की गोद से निर्वासित होना पडा था। दशरथ न ता अपना अपराध समझकर प्राण-त्याग दिया, परन्तु कौशल्या कठोर होकर जीती रही— जीती रही श्रीराम का मुख देखने के लिए। क्या मेरा भी दिन लौटेगा ?— क्या मैं इसी से अब तक प्राण न दे सकी !

गाला ने सहसा आकर कहा—चलिये !

दोनो मगल की कोठरी की ओर चली।

मगल के गले के नीचे वह यत्र गड रहा था। उसने तकिया स उसे खीचकर बाहर किया। मगल न देखा कि वह यत्र उसी का पुराना यत्र है ! वह आश्चय स पसीने-पसीने हा गया। दीप के आलोक म उसे वह देख ही रहा था कि सरला भीतर आई। सरला को बिना देखे ही अपने कुतूहल म उसन प्रश्न किया—यह मेरा यत्र इतन दिनो पर कौन लाकर पहना गया है, आश्चय है !

सरला ने उत्कण्ठा स पूछा—तुम्हारा यन्त्र कैसा बटा ! यह तो मैं एक साधु स लाई हूँ !

मगल न सरल आँखा स उसकी ओर देखकर कहा— माँ जो, यह मेरा ही यन्त्र है, मैं इसे बराबर बाल्यकाल म पहना करता था। जब यह खो गया, तभी से दु ख पा रहा हूँ। आश्चर्य है, इतने दिना पर यह कैसे आपको मिल गया !

सरला के धैर्य का बाँध टूट पडा। उसन यन्त्र को हाथ म लेकर देखा—

'वही त्रिकोण यत्र !' वह चिल्ला उठी—मेरे खोये हुए निधि ! मेरे लाल ! यह दिन देखना किस पुण्य का फल है मेरे भगवान् !

मगल तो आश्चर्य-चकित था। सब साहस बटोरकर उसने कहा—तो क्या सचमुच तुम्ही मेरी मा हो !

तीनो के आनन्दाश्रु बाध तोडकर बहने लगे।

सरला ने गाला के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—बेटी ! तेरे भाग्य से आज मुझे मेरा खोया हुआ धन मिल गया !

गाला गडी जा रही थी।

मगल एक आनन्दमय कुतूहल से पुलकित हो उठा। उसने सरला के पैर पकडकर कहा—मुझे तुमने छोड क्यो दिया था माँ ?

उसकी भावनाओ की सीमा न थी। कभी वह जीवन-भर के हिसाब को बराबर हुआ समझता, कभी उसे भान होता कि आज से ससार मे मेरा जीवन प्रारम्भ हुआ है।

सरला ने कहा—मैं कितनी आशा मे थी, यह तुम क्या जानोगे। तुमने तो अपनी माता के जीवित रहने की कल्पना भी न की होगी। पर भगवान् की दया पर मेरा विश्वास था और उसने मेरी लाज रख ली !

उस हर्ष से लतिका वचित न रही। उसने भी बहुत दिनो बाद अपनी हँसी को लौटाया।

भण्डार मे बैठी हुई नन्दो ने भी इस सम्वाद को सुना, वह चुपचाप रही। घटी भी स्तब्ध होकर अपनी माता के साथ उसके काम मे हाथ बँटाने लगी।

७

आलोक-प्रार्थिनी यमुना, अपने कुटीर में दीपक बुझाकर बैठी रही। उसे आशा थी कि वातायन और द्वारों से राशि-राशि प्रभात का धवल आनन्द उसके प्रकोष्ठ में भर जायगा, पर जब समय आया, किरनें फूटीं, तब उसने अपने वातायनों, झरोखों और द्वारों को रुद्ध कर दिया! आँखें भी बन्द कर लीं। आलोक कहाँ से आये! वह चुपचाप पड़ी थी। उसके जीवन की अनन्त रजनी उसके चारों ओर घिरी थी।

लतिका ने आकर द्वार खटखटाया। उद्धार की आशा में आज संघ-भर में उत्साह था। यमुना हँसने की चेष्टा करती हुई बाहर आई। लतिका ने कहा—चलोगी बहन यमुना! स्नान करने?

चलूँगी बहन, धोती ले लूँ।

दोनों आश्रम के बाहर हुईं। चलते-चलते लतिका ने कहा—बहिन सरला का दिन भगवान् ने जैसे लौटाया, वैसा सब का लौटे। अहा, पचीसों बरस पर किसका लड़का लौटकर गोद में आता है।

सरला के धैर्य का फल है बहन! परन्तु सबका दिन लौटे, ऐसी तो भगवान् की रचना नहीं देखी जाती। बहुतों का दिन कभी न लौटने के लिए चला जाता है। विशेषकर स्त्रियों का। मेरी रानी। जब मैं स्त्रियों के ऊपर दया दिखाने का उत्साह पुरुषों में देखती हूँ, तो जैसे कट जाती हूँ। ऐसा जान पड़ता है कि वह सब कोलाहल, स्त्री-जाति की लज्जा की मेघमाला है। उनकी असहाय परिस्थिति का व्यंग-उपहास है!—यमुना ने कहा।

लतिका ने आश्चर्य से आँखें बड़ी करते हुए कहा—सच कहती हो बहन! जहाँ स्वतन्त्रता नहीं है, वहाँ पराधीनता का आन्दोलन है, और जहाँ ये सब माने हुए नियम हैं, वहाँ कौन-सी अच्छी दशा है। यह झूठ है कि किसी विशेष समाज में स्त्रियों का कुछ विशेष सुविधा है। हाय, हाय, पुरुष यह नहीं जानते कि स्नेहमयी रमणी सुविधा नहीं चाहती, वह हृदय चाहती है, पर मन इतना भिन्न उपकरणों से बना हुआ है कि समझौते पर ही संसार के स्त्री-पुरुषों का व्यवहार

चलता हुआ दिखाई देता है। इसका समाधान करने के लिए कोई नियम या संस्कृति असमर्थ है।

मुझे ही देखो न मैं ईसाई-समाज की स्वतन्त्रता में अपने को सुरक्षित समझती थी पर भला मेरा धन मेरा रहा! तभी हम स्त्रियों के भाग्य में लिखा है कि उड़कर भागते हुए पक्षी के पीछे, चारा और पानी से भरा हुआ पिंजरा लिये घूमती रहें।

यमुना ने कहा—कोई समाज और धर्म स्त्रियों का नहीं बहन! सब पुरुषों के हैं। सब हृदय को कुचलनेवाले क्रूर हैं। फिर भी मैं समझती हूँ कि स्त्रियों का एक धर्म है, वह है आघात सहने की क्षमता रखना। दुर्दैव के विधान ने उनके लिए यही पूर्णता बना दी है। यह उनकी रचना है।

दूर पर नन्दो और घण्टी जाती हुई दिखाई पड़ीं। लतिका ने पुकारा दोनों ठहर गईं। लतिका यमुना के साथ दोनों के पास जा पहुँची।

नन्दो ने यमुना की ओर सकुचित दृष्टि से देखा, और घण्टी की आँखों में स्नेह की भिक्षा थी। सब चुप थीं। सबका रहस्य सबका गला घोंट रहा था। किसी के मुख से एक शब्द भी न निकला। सब यमुना-तट पर पहुँचीं।

स्नान करते हुए घण्टी और लतिका एकत्र हो गईं और उसी तरह चाची और यमुना का एक जुटाव हुआ। यह आकस्मिक था। घण्टी ने अंजली में जल लेकर लतिका से कहा—बहन! मैं अपराधिनी हूँ, मुझे क्षमा करोगी?

लतिका ने कहा—बहन! हम लोगों का अपराध स्वयं दूर चला गया है। यह तो मैं जान गई हूँ कि इसमें तुम्हारा कोई दोष नहीं है। हम दोनों एक ही स्थान पर पहुँचनेवाली थीं, पर सम्भवतः थककर दोनों ही लौट आईं। कोई पहुँच जाता, तो द्वेष की सम्भावना थी ऐसा ही तो संसार का नियम है, पर अब तो हम दोनों एक-दूसरे को समझा सकती हैं सन्तोष कर सकती हैं।

घण्टी ने कहा—दूसरा उपाय नहीं है बहन! तो मुझे क्षमा कर दो। आज से मुझे बहन कहकर बुलाओगी न?

लतिका ने देखा, नारी-हृदय गल-गलकर आँखों की राह से उसकी अंजली के यमुना जल में मिल रहा है। वह अपने को न रोक सकी, लतिका और घण्टी गले से लगकर रोने लगीं। लतिका ने कहा—आज से दुःख में, सुख में, हम लोग कभी साथ न छोड़ेंगी। बहन! संसार में गला बाँधकर जीवन बिताऊँगी, यमुना साक्षी है।

दूर यमुना और नन्दो चाची ने इस दृश्य को देखा। नन्दो का मन न जाने

किस भावों से भर गया। मानो जन्म-भर की उसकी कठोरता तीव्र पाप लगने से बरफ के समान गलने लगी हो। उसने यमुना स रोते हुए कहा—यमुना, नहीं-नहीं—बेटी तारा! मुझे भी क्षमा कर दे! मैंने जीवन-भर बहुत-सी बुरी बातें की ह, पर जो कठोरता तेरे साथ हुई है, वह नरक की आँच स भी तीव्र दाह उत्पन्न कर रही है। बेटी! मैं मगल का उसी समय पहचान गई, जब उसन अँगरेज से मेरी घण्टी को छुडाया था, पर वह न पहचान सका, उसे वे बातें भूल गई थीं, तिसपर मरे साथ मरी बेटी थी, जिसकी वह कल्पना भी नहीं कर सकता था। वह छलिया मगल आज एक दूसरी स्त्री स ब्याह करन का सुख-चिन्ता मे निमग्न ह। मैं जल उठती हूँ बेटी! मैं उसका सब भण्डाफोड कर दना चाहती थी, पर तुझे भी यही चुपचाप दखकर मैं कुछ न कर सकी। हाय रे पुरुष!

नहीं चाची! अब वह दिन चाहे लौट आयें, पर वह हृदय कहा स आवेगा! मगल का दुःख पहुँचाकर आघात द सकूँगी, अपन लिए सुख वहाँ स लाऊँगी। चाची! तुम मेरे दुःखो की साक्षी हो, मैंने केवल एक अपराध किया ह—वह यही कि प्रेम करते समय साक्षी नहीं इकट्ठा कर लिया था, और कुछ मन्त्रों स कुछ लोगो की जीभ पर उसका उल्लेख नहीं करा लिया था, पर किया था प्रेम। चाची! यदि उसका यही पुरस्कार है, तो मैं उसे स्वीकार करती हूँ।—यमुना ने कहा।

पुरुष कितना बडा ढोंगी है बेटी! वह हृदय के विरुद्ध ही तो जीभ से कहता ह। आश्चर्य है, उसे सत्य कहकर चिल्लाता है!—उत्तेजित चाची ने कहा।

पर मैं एक उत्कट अपराध की अभियुक्त हू चाची! आह मेरा पन्द्रह दिन का बच्चा! मैं कितनी निर्दय हूँ! मैं उसी का तो फल भोग रही। मुझे किसी दूसरे ने ठोकर लगाई और मैंने दूसरे को ठुकराया। हाय! ससार अपराध करके इतना अपराध नहीं करता, जितना यह दूसरों को उपदेश देकर करता है! जो मगल ने मुझसे किया, वही तो मैं हृदय के टुकडे से, अपने मे, कर चुकी हूँ। मैंने सोचा था कि फाँसी पर चढकर उसका प्रायश्चित्त कर सकूँगी, पर डूबकर बची —फाँसी से बची! हाय-रे कठोर नारी-जीवन!! न जाने मेरे लाल का क्या हुआ?

यमुना, नहीं—अब उसे तारा कहना चाहिए—रो रही थी। उसकी आँखों मे जितनी करुण कालिमा थी, उतनी कालिन्दी में कहाँ!

चाची ने उसकी अश्रुधारा पोछते हुए कहा—बेटी! तुम्हारा लाल जीवित है, सुखी है!

तारा चिल्ला पडी उसने कहा—सच कहती हो चाची ?

सच तारा ! वह काशी के एक धनी श्रीचन्द्र और किशोरी बहू का दत्तक पुत्र है मैंने उसे वहा दिया है। क्या इसके लिए तुम मुझे क्षमा करोगी बेटी ?

तुमने मुझे जिला लिया अहा ! मेरी चाची तुम मेरी उस जन्म की माता हो अब मैं सुखी हूँ ! —वह जैसे एक क्षण के लिए पागल हो गई। चाची के गले से लिपट कर रो उठी। वह रोना आनन्द का था।

चाची ने उसे सान्त्वना दी। इधर घण्टी और लतिका भी पास आ रही थी। तारा ने धीरे से कहा—मेरी विनती है अभी इस बात को किसी से न कहना—यह मेरा गुप्त धन है।

चाची ने कहा—यमुना साक्षी है !

तारा के मुख पर प्रसन्नता थी। तारा का हृदय हल्का था। सब स्नान करके दूसरी बात करती हुई आश्रम लौटीं। लतिका ने कहा—आपनी सम्पत्ति संघ को देती हूँ वह स्त्रियों की स्वयंसेविका की पाठशाला चलावे। मैं उसकी पहली छात्रा होऊंगी। और तुम घण्टी ?

घण्टी ने कहा—मैं भी ! बहन स्त्रियों को स्वयं घर पर जाकर अपनी दुखिया बहनों की सेवा करनी चाहिए। पुरुष उन्हें उतनी ही शिक्षा और ज्ञान देना चाहते हैं जितना उनके स्वार्थ में बाधक न हो। घरों के भीतर अन्धकार है धर्म के नाम पर ढोंग की पूजा है और शील तथा आचार के नाम पर रूढ़ियों की। बहनें अत्याचार के परदे में छिपाई गई हैं उनकी सेवा करूँगी। धात्री उपदेशिका धर्म प्रचारिका सहचारिणी बनकर उनकी सेवा करूँगी।

सब प्रसन्न मन से आश्रम में पहुँच गईं।

८

नियत दिन आ गया आज उत्सव का विराट् आयोजन है। सघ के प्रागण मे वितान तना है। चारो ओर प्रकाश है। बहुत से दर्शको की भीड है।

गोस्वामीजी निरजन और मगलदेव सघ की प्रतिमा के सामने बैठे हैं। एक ओर घण्टी, लतिका गाला और सरला भी बैठी हैं। गोस्वामीजी ने शान्त वाणी मे आज के उत्सव का उद्देश्य समझाया और कहा—भारत सघ के सगठन पर आप लोग देवनिरजनजी का व्याख्यान दत्तचित्त होकर सुने। निरजन का व्याख्यान आरम्भ हुआ—

प्रत्येक समय मे सम्पत्ति अधिकार और विद्या ने भिन्न भिन्न देशो मे जाति वर्ण और ऊँच-नीच की सृष्टि की। जब आप लोग इसे ईश्वरकृत विभाग समझने लगते है, तब यह भूल जाते है कि इसमे ईश्वर का उतना सम्बन्ध नही जितना उसकी विभूतियो का। कुछ दिनो तक उन विभूतियो के अधिकारी बने रहने पर मनुष्य के सस्कार भी वैसे ही बन जाते हैं वह प्रमत्त हो जाता है। प्राकृतिक ईश्वरीय नियम, विभूतियो का दुरुपयोग देखकर विकास की चेष्टा करता है यह कहलाती है उत्क्रान्ति। उस समय केन्द्रीभूत विभूतियाँ मानव-स्वार्थ के बन्धनो को तोडकर समस्त भूत हित के लिए बिखरना चाहती हैं। वह समदर्शी भगवान् की क्रीडा है।

भारतवर्ष आज वर्णों और जातियो के बन्धन मे जकडकर कष्ट पा रहा है और दूसरो को कष्ट दे रहा है। यद्यपि अन्य देशो मे भी इस प्रकार के समूह बन गये है परन्तु यहाँ इसका भीषण रूप है। यह महत्त्व का सस्कार अधिक दिनो तक प्रभुत्व भोगकर खोखला हो गया है। दूसरो की उन्नति से उसे डाह होने लगा है। समाज अपना महत्त्व धारण करने की क्षमता तो खो चुका है परन्तु व्यक्तियो को उन्नति का दल बनकर सामूहिक रूप से विरोध करने लगा है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी छोटी महत्ता पर इतराता हुआ दूसरे को नीचा—अपने से छोटा—समझता है, जिससे सामाजिक विषमता का विषमय प्रभाव फैल रहा है।

अत्यन्त प्राचीनकाल म भी इस वर्ण विद्वेष का—ब्रह्म-क्षत्र-सघप का—साक्षी रामायण है—

उस वर्ण भेद क भयानक सघर्ष का यह इतिहास जानकर भी नित्य उसका पाठ करके भी भला हमारा देश कुछ समझता है ? नही यह देश समझेगा भी नहीं। सज्जनो ! वण भद, सामाजिक जीवन का क्रियात्मक विभाग ह। यह जनता क कल्याण क लिए बना परन्तु द्वेष की सृष्टि म, दम्भ का मिथ्या गर्व उत्पन्न करन म, वह अधिक सहायक हुआ है। जिस कल्याण-बुद्धि स इसका आरम्भ हुआ, वह न रहा, गुण-कर्मानुसार वर्णों की स्थिति नष्ट हाकर आभिजात्य क अभिमान म परिणत हा गई, उसका व्यक्तिगत परीक्षात्मक निर्वाचन क लिए, *वर्णों क शुद्ध वर्गीकरण क लिए वर्तमान अतिवाद को मिटाना हागा* --बल, विद्या और विभव का एसा सम्पत्ति किस हाड मास के पुतल के भीतर ज्वालामुखी-सी धधक उठेगी काई नही जानता। इसलिए व व्यर्थ के विवाद हटाकर उस दिव्य सस्कृति—आय-मानव सस्कृति—की सवा म लगना चाहिए। भगवान् का स्मरण करक नारी जाति पर अत्याचार करन से विरत हा। किसी का शबरी के सदृश अछूत न समझा, किसी का अहल्या के सदृश पापिनी मत कहा। किसी का लघु न समझा। सर्वभूत हित रत हाकर भगवान् क लिए सर्वस्व समपण करो, निभय रहा!

भगवान् की विभूतिया का समाज न बाट लिया है, परन्तु जब मै स्वार्थिया का भगवान् पर भी अपना *अधिकार* जमाय दखता हूँ तब मुझे हसी आती ह—आर भी हँसी आती ह—जब उस अधिकार की घाषणा करक दूसरा का व छाटा, *नीच आर* पतित ठहरात है। बहु परिचारिणी जाबाला के पुत्र *सत्यकाम* का कुलपति न ब्राह्मण स्वीकार किया था, किन्तु उत्पत्ति पतन आर दुबलताआ क व्यग स मैं घबराता नही। जा दापपूर्ण आखा म पतित है जा निसर्ग-दुर्बल हैं, उन्ह अवलम्ब देना भारतसघ का उद्‌दश्य है। इसलिए, इन स्त्रिया का भारत-सघ म पुन लौटात हुए बडा सन्ताप हाता है। इन लतिका देवी न अपना सर्वस्व दान किया ह। उस धन स स्त्रिया की पाठशाला खोली जायगी, जिसम उनको पूणता की शिक्षा क साथ व इस याग्य बनाया जायँगी कि घरा म पदो म दीवारा क भीतर नारी-जाति क सुख, स्वास्थ्य और सयत स्वतन्त्रता की घोषणा कर, उन्ह सहायता पहुँचाएँ, जीवन के अनुभवा से अवगत करे। उनम उन्नति, सहानुभूति, *क्रियात्मक प्रेरणा* का प्रकाश फैलाएँ। *हमारा दश इस सन्दश स—नवयुग* क सन्देश स—स्वास्थ्यलाभ कर। इन आयललनाआ का उत्साह सफल हा, यही भगवान् स प्रार्थना है। अब आप मगलदव का व्याख्यान सुनगे, वे नारी-जाति क

सम्मान पर कुछ कहेंगे।

मगलदेव ने कहना आरम्भ किया—

ससार मे जितनी हलचल हे, आन्दोलन हैं, वे सब मानवता की पुकार है। जननी अपने झगडालू कुटुम्ब मे मेल कराने के लिए बुला रही है। उसके लिए हमे प्रस्तुत होना है। हम अलग न खडे रहेंगे। यह समारोह उसी का समारम्भ है। इसलिए, हमारे आन्दोलन व्यवच्छेदक न हो।

एक बार फिर स्मरण करना चाहिए कि लोग एक है, ठीक उसी प्रकार जैसे श्रीकृष्ण ने कहा—'अविभक्त च भूतेषु विभक्तमिव च स्थित'—यह विभक्त होना कर्म के लिए है, चक्रप्रवर्त्तन को नियमित रखने के लिए है। समाज-सेवा-यज्ञ को प्रगतिशील करने के लिए है। जीवन व्यर्थ न करने के लिए, पाप की आयु, स्वार्थ का बोझ न उठाने के लिए हमे समाज के रचनात्मक कार्य मे, भीतरी सुधार लाना चाहिए। यह ठीक है कि सुधार का काम प्रतिकूल स्थिति मे प्रारम्भ होता है। सुधार सौन्दर्य का साधन है। सभ्यता सौन्दर्य की जिज्ञासा है। शारीरिक और आलकारिक सौन्दर्य प्राथमिक है, चरम सौन्दर्य मानसिक सुधार का है। मानसिक सुधारो मे सामूहिक भाव कार्य करते हैं। इसके लिए श्रम-विभाग है। हम अपने कर्त्तव्य को देखते हुए समाज की उन्नति करे; परन्तु सघर्ष को बचाते हुए। हम उन्नति करते-करते भौतिक ऐश्वर्य के टीले न बन जायें। हाँ, हमारी उन्नति-फल-फूल वाले वृक्षो की-सी हो, जिनमे छाया मिले, विश्राम मिले, शान्ति मिले।

मैंने पहले कहा है कि समाज-सुधार भी हो और सघर्ष से बचना भी चाहिए। बहुत-से लोगों का यह विचार है कि, सुधार और उन्नति मे सघर्ष अनिवार्य है; परन्तु सघर्ष से बचने का एक उपाय है, वह है—आत्म-निरीक्षण। समाज के कामो मे अतिवाद से बचाने के लिए यह उपयोगी हो सकता है। जहाँ समाज का शासन कठोरता से चलता है, वहाँ द्वेष और द्वन्द्व भी चलता है। शासन की उपयोगिता हम भूल जाते है, फिर शासन केवल शासन के लिए चलता रहता है। कहना नही होगा कि वर्तमान हिन्दूजाति और उसकी उपजातियाँ इसके उदाहरण हैं। सामाजिक कठोर दण्डो से वह छिन्न-भिन्न हो रही है, जर्जर हो रही हैं। समाज के प्रमुख लोगों को इस भूल को सुधारना पड़ेगा। व्यवस्थापक तन्त्रों की जननी, प्राचीन पचायतें, नवीन समस्याएँ सहानुभूति के बदले द्वेष फैला रही है। उनसे कठोर दण्ड मे प्रतिहिंसा का भाव जगता है। हम लोग भूल जाते है कि मानव-स्वभाव दुर्बलताओं से सगठित है।

दुर्बलता कहाँ से आती है ?—लोकापवाद से भयभीत होकर स्वभाव को

पाप कहकर मान लेना, एक प्राचीन रूढि है। समाज को सुरक्षित रखने के लिए उससे सगठन म स्वाभाविक मनोवृत्तियो की सत्ता स्वीकार करनी होगी। सब क लिए एक पथ देना होगा। समस्त प्राकृतिक आकाक्षाओ की पूर्ति आपके आदर्श म होनी चाहिए। केवल—'रास्ता बन्द है।'—यह देने से काम न चलेगा। लोकापवाद—ससार का एक भय है एक महान् अत्याचार है। आप लोग जानते होंगे कि श्रीरामचन्द्र ने भी—लोकापवाद के सामने सिर झुका लिया। लोकापवादी बलवाल्यन त्यक्ताहि मैथिली और इसे पूर्वकाल के लोग मर्यादा कहते हैं उनका मर्यादापुरुषोत्तम नाम पडा। वह धर्म की मर्यादा न थी वस्तुत समाज-शासन की मर्यादा थी जिस सम्राट् ने स्वीकार किया और अत्याचार सहन किया परन्तु विवेक-दृष्टि से विचारने पर देश काल और समाज की सकीर्ण परिधियो म पले हुए सर्वसाधारण नियम-भग अपराध या पाप कहकर न गिने जाय क्योंकि प्रत्येक नियम अपने पूर्ववर्त्ती नियम के बाधक होते हैं। या उसकी अपूर्णता को पूर्ण करने के लिए बनते ही रहते हैं। सीता-निर्वासन एक इतिहास विश्रुत महान् सामाजिक अत्याचार है, और ऐसे अत्याचार अपनी दुर्बल सगिनी स्त्रियो पर प्रत्येक जाति के पुरुषो ने किया है। किसी किसी समाज मे तो पाप के मूल म स्त्री का ही उल्लेख है और पुरुष निष्पाप है। यह भ्रान्त मनोवृत्ति अनेक सामाजिक व्यवस्थाओ के भीतर काम कर रही है। रामायण भी केवल राक्षस-वध का इतिहास नहीं है, किन्तु नारी निर्यातन का सजीव इतिहास लिखकर वाल्मीकि ने स्त्रियो के अधिकार की घोषणा की है। रामायण म समाज के दो दृष्टिकोण हैं—निन्दक और वाल्मीकि के। दोनो निर्धन थे, एक बडा भारी अपकार कर सकता था और दूसरा एक पीडित आयललना की सेवा कर सकता था। कहना न होगा कि उस युद्ध म कौन विजयी हुआ! सच्चे तपस्वी ब्राह्मण वाल्मीकि की विभूति ससार म आज भी महान् है। आज भी उस निन्दक को गाली मिलती है परन्तु देखिए तो, आवश्यकता पडने पर हम-आप और निन्दको से ऊँचे हो सकते हैं? आज भी तो समाज वैसे ही लोगो से भरा पडा है—जो स्वय मलीन रहने पर भी दूसरो की स्वच्छता को अपनी जीविका का साधन बनाये हैं।

हम इन बुरे उपकरणो को दूर करना चाहिए। हम जितनी कठिनता से दूसरो को दबाये रखेंगे, उतनी ही हमारी कठिनता बढती जायगी। स्त्री-जाति के प्रति सम्मान करना सीखना होगा।

हम लोगो को अपना हृदय द्वार और कार्य-क्षेत्र विस्तृत करना चाहिए। मानव-संस्कृति के प्रचार के लिए हम उत्तरदायी हैं। विक्रमादित्य, समुद्रगुप्त और हर्षवर्द्धन का रक्त हमम है। ससार भारत के सन्देश की आशा म है, हम उन्हे

दन के उपयुक्त बने —यही मेरी प्रार्थना है।

आनन्द की करतलध्वनि हुई। मगलदव वैठा। गोस्वामीजी ने उठकर कहा—आज आप लोगो को एक और हर्ष-समाचार सुनाऊँगा। सुनाऊँगा ही नही, आप लोग उस आनन्द क साक्षी होंगे। मरे शिष्य मगल देव का, ब्रह्मचय की समाप्ति करके गृहस्थाश्रम मे प्रवेश करन का शुभ मुहूर्त्त भी आज ही है। यह कानन-वासिनी गूजर-वालिका गाला अपन सत्साहस और दान से सीकरी म एक बालिका-विद्यालय चला रही है। इसमे मगलदेव और गाला दोनो का हाथ है। मैं इन दोनो पवित्र हाथो को एक बधन म बाधता हूँ, जिसम सम्मिलित शक्ति स ये लोग मानव-सेवा म अग्रसर हो और यह परिणय समाज के लिए आदर्श हो!

कोलाहल मच गया, सब लोग गाला का देखने के लिए उत्सुक हुए। सलज्जा गाला, गोस्वामीजी के सकेत स उठकर सामने आई। कृष्णशरण न प्रतिमा से दो माला लेकर दोनो को पहना दी।

हर्ष कोलाहल हो रहा था। उसी म किसी का डरावना कष्ट सुनाई पडा—अच्छा तो है! चगेज और वर्धनो की सन्तानो की क्या ही सुन्दर जोडी है!!

गाला और मगलदव न चौककर देखा—पर उस भीड मे कहने वाला न दिखाई पडा।

भीड के पीछे कम्बल ओढे, एक घनी दाढी मूछ वाले युवक का कन्धा पकड-कर तारा न कहा—विजय बाबू! आप क्या प्राण देंगे! हटिए यहा स, अभी वह घटना टटकी है!

नय, नही, विजय ने घूमकर कहा—यमुना! प्राण ता बच ही गया, पर यह मनुष्य

तारा न बात काटकर कहा—बडा ढोगी ह पाखण्डी ह यही न कहना चाहते है आप! हान दीजिए, आप ससार भर क ठेकेदार नही—चलिए।

तारा उसका हाथ पकडकर अन्धकार की ओर ल चली।

९

किशोरी सन्तुष्ट न हो सकी। कुछ दिनो के लिए वह विजय को अवश्य भूल गई थी, पर मोहन को दत्तक ले लेने मे उसको एकदम भूल जाना असम्भव था। हाँ, उसकी स्मृति और भी उज्ज्वल हो चली। घर के एक-एक कोने उसकी कृतिया से अकित थे। उन सबो ने मिल कर किशोरी की हँसी उडाना आरम्भ किया।

एकान्त म विजय का नाम लेकर वह रो उठती। उस समय उसके विवर्ण मुख को देखकर मोहन भी भयभीत हो जाता। धीरे-धीरे मोहन क प्यार की माया अपना हाथ किशोरी की ओर से खीचने लगी। किशोरी कटकटा उठती, पर उपाय क्या था, नित्य मनोवेदना से पीडित होकर उसने रोग का आश्रय लिया। औषधि होती थी रोग की, पर मन तो वैसा ही अस्वस्थ था। ज्वर ने उसके जर्जर शरीर म डेरा डाल दिया। विजय को उसने भूलने की चेष्टा की थी। किसी सीमा तक वह सफल भी हुई, पर वह धोखा अधिक दिन तक नही चल सका।

मनुष्य दूसरे को धोखा दे सकता है, क्योकि उससे सम्बन्ध कुछ ही समय के लिए होता है, पर अपने से, नित्य सहचर स, जो घर का सब कोना जानता है, कब तक छिपेगा। किशोरी चिर-रोगिणी हुई। एक दिन उसे एक पत्र मिला। वह खाट पर पडी हुई अपन रूखे हाथो से उसे खोलकर पढने लगी—

"किशोरी,

ससार इतना कठोर है कि वह क्षमा करना नही जानता और उसका सबसे बडा दड है—'आत्म दर्शन।' अपनी दुर्बलता, जब अपराधो की स्मृति बनकर डक मारती है, तब वह कितना उत्पीडनमय होता है। उस तुम्हे क्या समझाऊँ मेरा अनुमान है कि तुम भी उसे भोगकर जान सकी हो।

मनुष्य के पास तर्कों के समर्थना का अस्त्र है, पर कठोर सत्य अलग खडा उसकी विद्वत्तापूर्ण मूर्खता पर मुस्कुरा देता है। यह हँसी शूल सी भयानक, ज्वाला से भी अधिक झुलसानवाली होती है।

मेरा इतिहास मैं लिखना नहीं चाहता। जीवन की कौन-सी घटना प्रधान है, और बाकी सब पीछे-पीछे चलने वाली अनुचरी हैं? बुद्धि बराबर उसे चेतना की लम्बी पंक्ति में पहचानने में असमर्थ है। कौन जानता है कि ईश्वर को खोजते-खोजते कब, किस पिशाच मिल जाता है।

जगत् की एक जटिल समस्या है—स्त्री-पुरुष का स्निग्ध मिलन। यदि तुम और श्रीचन्द्र एक-मन-प्राण होकर निभा सकते? किन्तु वह असम्भव था। इसके लिए समाज ने भिन्न-भिन्न समय और देशों में अनेक प्रकार की परीक्षाएँ कीं, किन्तु वह सफल न हो सका। रुचि मानव-प्रकृति, इतनी विभिन्न है कि वैसा युग्म-मिलन विरला होता है। मेरा विश्वास है कि वह कदापि सफल न होगा। स्वतन्त्र चुनाव स्वयंवरा, यह सब सहायता नहीं दे सकते। इसका उपाय एक-मात्र समझौता है, वही ब्याह है, परन्तु तुम लोग उसे विफल बना ही रहे थे कि मैं बीच में कूद पड़ा। मैं कहूँगा कि तुम लोग उसे व्यर्थ करना चाहते थे।

किशोरी! इतना तो निस्सन्देह है कि मैं तुमको पिशाच मिला—तुम्हारे आनन्दमय जीवन को नष्ट कर देने वाला, भारतवर्ष का एक साधु नामधारी हो। —यह कितनी लज्जा की बात है। मेरे पास शास्त्रों का तर्क था, मैंने अपने कामों का समर्थन किया, पर तुम थीं असहाय अबला—आह, मैंने क्या किया!

और सबसे भयानक बात तो यह थी कि मैं तो अपने विचारों में पवित्र था। पवित्र होने के लिए मेरे पास एक सिद्धान्त था। मैं समझता था कि, धर्म से, ईश्वर से, केवल हृदय का सम्बन्ध है, कुछ क्षणों तक उसकी मानसिक उपासना कर लेने से वह मिल जाता है। इन्द्रियों से, वासनाओं से उनका कोई सम्बन्ध नहीं, परन्तु हृदय तो उन्हीं संवेदनाओं से सुसंगठित है। किशोरी, तुम भी मेरे ही पथ पर चलती रही हो पर रोगी शरीर में स्वस्थ हृदय कहाँ से आवेगा? काला दर्पण है भगवान् का उज्ज्वल रूप कौन देख सकेगा?

तुमको स्मरण होगा कि मैंने एक दिन यमुना नाम की दासी को तुम्हारे यहाँ देवगृह में जाने के लिए रोक दिया था—उसे बिना जाने समझे अपराधिनी मान-कर! वाह रे दम्भ!

मैं सोचता हूँ कि अपराध करने में भी मैं उतना पतित नहीं था, जितना दूसरों को बिना जाने-समझे छोटा, नीच, अपराधी मान लेने में। पुण्य का सैकड़ा मन का धातु-निर्मित घण्टा बजाकर जो लोग अपनी ओर संसार का ध्यान आ-र्पित कर सकते हैं, वे, यह नहीं जानते कि बहुत समीप अपने हृदय तक वह भीषण शब्द नहीं पहुँचता।

किशोरी ! मैंने खोजकर देखा कि मैंने जिसको सबस बडा अपराधी समझा था, वही सबस अधिक पवित्र है ! वही यमुना—तुम्हारी दासी ! तुम जानती होगी कि तुम्हारे जन्म से पतन क कारण, विजय क लिए फाँसी पर चढने जा रही थी, और मैं—जिसे विजय पर ममत्व था—दूर-दूर खडा धन से सहायता करना चाहता था।

भगवान् ने यमुना को भी बचाया, यद्यपि विजय का पता नही। हाँ, एक बात और सुनागी, मैं आज इसे स्पष्ट कर देना चाहता हूँ। हरद्वार वाली विधवा रामा को तुम न भूली होगी, वह तारा (यमुना) उसी के गर्भ स उत्पन्न हुई ह। मैंने उसकी सहायता करनी चाही और लगा था कि निकट भविष्य म उसकी सासारिक स्थिति सुधार दू। इसीलिए मैं भारत-सघ म लगा, सार्वजनिक कामो म सहयोग करन लगा, परन्तु कहना न होगा कि इसम मैंने बडा ढोग पाया। गम्भीर मुद्रा का अभिनय करके अनक रूपो म उन्ही व्यक्तिगत दुराचारो को छिपाना पडता है, सामूहिक रूप स वही मनोवृत्ति काम करती हुई दिखाइ पडती है। सघो म, समाजो म, मेरी श्रद्धा न रही। मैं विश्वास करने लगा उस श्रुति-वाणी म कि देवता जो अप्रत्यक्ष ह, मानव बुद्धि स दूर ऊपर है, सत्य है और मनुष्य अनृत है। चेष्टा करके भी उस सत्य को जो प्राप्त करेगा। उस मनुष्य को मैं कई जन्मो तक केवल नमस्कार करक अपन को कृतकृत्य समझूगा। मरे सघ म लगने का मूल कारण वही यमुना थी। केवल धर्माचरण ही न था, इसे स्वीकार करने मे कोई सकोच नही, परन्तु वह विजय के समान ही तो उच्छृङ्खल है, वह अभिमानी चली गई। मैं सोचता हूँ कि मैने अपन दाना का खो दिया। 'अपन दोनो' पर—तुम हँसोगी, किन्तु ये चाहे मरे न हा, तब भी मुझे ऐसी शका हो रही है कि तारा की माता रामा से मेरा अवैध सम्बन्ध अपने को अलग नही रख सकता।

मैंने भगवान् की ओर स मुँह मोडकर मिट्टी क खिलौने म मन लगाया था। वे ही मेरी आर दखकर, मुस्कराते हुए त्याग का परिचय दकर चले गये और मैं कुछ टुकडा को—चीथडा को—सम्हालने-सुलझाने म व्यस्त बैठा रहा।

किशोरी ! सुना है कि सब छीन लेते है भगवान् मनुष्य से ठीक उसी प्रकार जैस पिता खिलवाडी लडके के हाथ से खिलौना ! जिससे वह पढने लिखने मे मन लगाये। मै अब यही समझता हूँ कि यह परमपिता का मेरी ओर सकेत है।

हो या न हो, पर मैं जानता हूँ कि उसम क्षमा की क्षमता है, मेरे हृदय की प्यास—ओफ ! कितनी भीषण है—वह अनन्त तृष्णा ! —ससार के कितने ही कीचडो पर लहरानेवाली जल की पतली तहो मे शूकरा की तरह लोट चुकी है !

पर, लोहार की तपाई हुई छुरी जैसे सान रखने के लिए बुझाई जाती हो, वैसे ही मेरी प्यास बुझकर भी तीखी होती गई।

जो लोग पुनर्जन्म मानते हैं, जो लोग भगवान् को मानते हैं, वे पाप कर सकते हैं? नहीं, पर मैं देखता हूँ कि इन पर लम्बी-चौड़ी बात करने वाले भी इससे मुक्त नहीं। मैं कितने जन्म लूँगा, इस प्यास के लिए, मैं नहीं कह सकता न भी लेना पड़े, नहीं जानता। पर मैं विश्वास करने लगा हूँ कि भगवान् में क्षमा की क्षमता है।

मर्मव्यथा से व्याकुल होकर गोस्वामी कृष्णशरण से जब मैंने अपना सब समाचार सुनाया, तो उन्होंने बहुत देर तक चुप रहकर यही कहा—निरंजन, भगवान् क्षमा करते हैं। मनुष्य भूल करता है, इसका रहस्य है मनुष्य का परिमित ज्ञानाभास। सत्य इतना विराट् है कि हम क्षुद्र जीव व्यावहारिक रूप में उसे सम्पूर्ण ग्रहण करने में प्रायः असमर्थ प्रमाणित होते हैं। जिन्हें हम परम्परागत संस्कारों के प्रकाश में कलंकमय देखते हैं, वे ही शुद्ध ज्ञान में यदि सत्य ठहरें, तो मुझे आश्चर्य न होगा। तब भी मैं क्या करूँ? यमुना के सहसा संघ से चले जाने पर नन्दो ने मुझसे कहा कि यमुना का मंगल से ब्याह होने वाला था। हरद्वार में मंगल ने उसके साथ विश्वासघात करके उसे छोड़ दिया। आज भला जब वही मंगल एक दूसरी स्त्री से ब्याह कर रहा है, तब वह क्यों न चली जाती? मैं यमुना की दुर्दशा सुनकर काँप गया। मैं ही मंगल का दूसरा ब्याह कराने वाला हूँ। आह! मंगल का समाचार तो नन्दो ने सुना ही था, अब तुम्हारी भी कथा सुनकर मैं तो स्वयं शंका करने लगा हूँ कि अनिच्छापूर्वक भी भारतसंघ की स्थापना में सहायक बनकर मैंने क्या किया है—पुण्य या पाप? प्राचीनकाल के इतने बड़े-बड़े संगठनों में जड़ता की दुर्बलता घुस गई। फिर यह प्रयास कितने बल पर है?—वाह रे मनुष्य! तेरे विचार कितने निस्सबल हैं—कितने दुर्बल हैं!—मैं भी जाता हूँ इसी को विचारने किसी एकान्त में। और, तुमसे मैं केवल यही कहूँगा कि भगवान् पर विश्वास और प्रेम की मात्रा बढ़ाती रहो।

किशोरी! न्याय और दण्ड देने का ढकोसला तो मनुष्य भी कर सकता है पर क्षमा में भगवान् की शक्ति है। उसकी सत्ता है, महत्ता है, सम्भव है कि इसीलिए, सबके क्षमा के लिए वह महाप्रलय करता हो।

तो किशोरी! उसी महाप्रलय की आशा में मैं भी किसी निर्जन कोने में जाता हूँ बस—बस!

निरञ्जन!'

पत्र पढकर किशारी ने रख दिया। उसके दुर्बल श्वास उत्तेजित हा उठे, वह फूट फूटकर रोने लगी।

गरमी के दिन थे। दस ही बजे पवन मे ताप हो चला था। श्रीचन्द्र ने आकर कहा—पखा खीचने के लिए दासी मिल गई है यही रहगी केवल खाना-कपडा लेगी।

पीछे खडी दो करुण आँखें घूघट म झाक रही थी।

श्रीचन्द्र चले गय। दासी आई, पास आकर किशोरी की खाट पकडकर बैठ गई। किशारी न आमू पाछते हुए उसकी ओर देखा—वह यमुना —तारा थी।

१०

बरसात के प्रारम्भिक दिन थे। अभी सन्ध्या होने म विलम्ब था। दशाश्वमेध घाट वाली चुगी-चौकी से सटा हुआ जो पीपल का वृक्ष है, उसके नीचे कितने ही मनुष्य कहलानेवाले प्राणिया का ठिकाना है। पुण्य-स्नान करने वाली बुढ़िया की बाँस की डाली म से निकलकर चार-चार चावल सबा के फटे अचल मे पड जाते है, उनस कितना के विकृत अग की पुष्टि होती है। काशी मे बडे-बडे अनाथालय, बडे-बड अन्नसत्र है, और उनके सचालक स्वर्ग मे जाने वाली आकाश-कुसुमा की सीढी की कल्पना छाती फुला कर करते हैं, पर इन्हे ता झुकी हुई कमर, झुर्रिया से भरे हाथा वाली रामनामी ओढे हुए, अन्नपूर्णा की प्रतिमाएँ ही दो दाने दे देती हैं।

दा मोटी ईंटो पर खपडा रख कर उन्ही दानो को भूनती हुई, कूडो की ईंधन से कितनी क्षुधा-ज्वालाएँ निवृत्त होती हैं—यह एक दर्शनीय दृश्य है ! सामन नाई अपने टाट बिछाकर बाल बनाने म लगे हैं, वे पीपल की जड स टिके हुए देवता के परम भक्त हैं, स्नान करके अपनी कमाई के फल-फूल उन्ही पर चढाते हैं। वे नग्न-भग्न देवता, भूखे-प्यास जावित दवता, क्या पूजा क अधिकारी नही ? उन्ही म फटे कम्बल पर ईंट का तकिया लगाये, विजय भी पडा है। अब उसके पहचाने जाने की तनिक भी सम्भावना नही। छाती तक हड्डिया का ढाँचा और पिंडलियो पर सूजन की चिकनाई, बाला के घनेपन म बडी बडी आँखे और उन्हे बाँधे हुए एक चीथडा इन सबो न मिलकर विजय को—'नय को—छिपा लिया था। वह ऊपर लटकती हुई पीपल की पत्तिया का हिलना दख रहा था। वह चुप था। दूसरे, अपने सायकाल के भोजन क लिए व्यग्र थे।

अँधेरा हो चला, रात्रि आई,—कितनो के विभव-विकास पर चाँदनी तानने और कितनो के अन्धकार म अपनी व्यग की हँसी छिडकन ! विजय निश्चेष्ट था। उसका भालू उसके पास घूमकर आया, उसने दुलार किया। विजय के मुँह पर हँसी आई, उसने धीरे से हाथ उठाकर उसके सिर पर रक्खा, पूछा—भालू !

तुम्हे कुछ खान को मिला ? —भालू न जँभाई लेकर जीभ स अपना मुह पोछा फिर वगल मे सो रहा। दोना मित्र निश्चेष्ट सोने का अभिनय करने लगे।

एक भारी गठरी लिये दूसरा भिखमगा आकर उसी जगह सोये हुए विजय का घूरन लगा। अन्धकार म उसकी तीव्रता देखी न गई पर वह बाल उठा—क्यो बे वदमाश ! मेरी जगह तून लम्बी तानी ह ? मारूँ डण्डे से तरी खोपडी फूट जाय !

उसने डण्डा ताना ही था कि भालू झपट पडा। विजय ने विकृत कण्ठ स कहा—भालू ! जाने दो यह मथुरा का थानेदार है घूस लेने के अपराध म जेल काटकर आया है यहा भी तुम्हारा चालान कर देगा तव ?

भालू लौट पडा और नया भिखमगा एक वार ही चौक उठा—कौन है र ? —कहता वहाँ स खिसक गया। विजय फिर निश्चिन्त हो गया। उसे नीद आन लगी थी। पैरो म सूजन थी पीडा थी, अनाहार स वह दुवल था।

एक घण्टा बीता न होगा कि एक स्त्री आई उसन कहा—भाई ! वहन ! —कहकर विजय उठ बैठा। उस स्त्री ने कुछ रोटियाँ उसके हाथ पर रख दी। विजय खाने लगा। स्त्री न कहा—मेरा नौकरी लग गई भाई ! अव तुम भूखे न रहोगे।

कहाँ बहन ? —दूसरी रोटी समाप्त करत हुए विजय न पूछा।

श्रीचन्द्र के यहा।

विजय के हाथ स रोटी गिर पडी। उसन कहा—तुमने आज मेरे साथ बडा अन्याय किया बहन !

क्षमा करो भाई ! तुम्हारी माँ मरण-सज पर ह तुम उन्हे एक वार दखोगे !

विजय चुप था। उसके सामने ब्रह्माण्ड घूमने लगा। उसने कहा—मा—मरण-सेज पर ! दखूगा यमुना ? परन्तु तुमन !

मैं दुर्बल हूँ भाई ! नारी-हृदय दुर्बल है मै अपन को न राक सकी। मुझे नौकरी दूसरी जगह मिल सकती थी, पर तुम न जानत होग कि श्रीचन्द्र का दत्तक पुत्र मोहन का मरी कोख से जन्म हुआ है !

क्या !

हाँ भाइ ! तुम्हारी बहन यमुना का वह रक्त है, उसकी कथा फिर सुनाऊँगी।

वहन ! तुमन मुझ वचा लिया। अव मैं मोहन का रोटी सुख स खा सकूगा। पर माँ मरण-सेज पर तो मैं चलू कोइ घुसन न द तव !

नही भाई ? इस समय श्रीचन्द्र वहुत-सा दान-धर्म करा रह है, हम तुम भी ता भिखमगे ठहरे—चलो न !

टीन के पात्र म जल पीकर विजय उठ खडा हुआ । दाना चले । कितनी ही गलियाँ पार कर विजय और यमुना श्रीचन्द्र के घर पर पहुँचे । खुले दालान म किशोरी लिटाई गई थी । दान क सामान बिखर थे । श्रीचन्द्र माहन को लेकर दूसरे कमरे म जाते हुए वाले—यमुना ! दखा, इस भी कुछ दिला दो । मरा चित्त घबरा रहा ह, मोहन को लेकर इधर हूँ, बुला लेना ।

और दो-तीन दासियाँ थी । यमुना न उन्ह हटन का सकत किया । उन सवन समझा—काई महात्मा आशीर्वाद दन आया है, वे हट गईं । विजय किशोरी क पैरा क पास बैठ गया । यमुना न उसके काना म कहा—भैया आय है ।

किशारी न आखे खाल दी । विजय न परा पर सिर रख दिया । किशारी क अग अब हिलत न थे । वह कुछ बोलना चाहती थी, पर आँखा स आँसू बहने लगे । विजय न अपन मलिन हाथो स उन्हे पोछा । एक बार किशारी न उस देखा, आँखो न अधिक वल दकर दखा, पर वे आँख खुली रह गईं । विजय फिर परा पर सिर रखकर उठ खडा हुआ । उसन मन-ही-मन कहा—मर इस दुखमय शरीर को जन्म देन वाली दुखिया जननी ! तुमस उऋण नही हो सकता !

वह जब बाहर जा रहा था, यमुना रो पडी, सब दौड आय ।

इस घटना का वहुत दिन बीत गय । विजय वही पडा रहता था । यमुना नित्य उसे रोटी दे जाती, वह निर्विकार भाव स उस ग्रहण करता ।

एक दिन प्रभात म जब उपा की लाली गगा क वक्ष पर खिलन लगी थी, विजय न आँखे खोली । धीर से अपन पास स एक पत्र निकालकर वह पढन लगा—वह विजय के समान ही तो उच्छृङ्खल है । .अपन दाना पर तुम हँसोगी । किन्तु व चाह मेरे न हा, तव भी मुझ ऐसी शका हो रही है कि तारा (तुम्हारी यमुना) की माता रामा स मरा अवैध सम्बन्ध अपन का अलग नही रख सकता।

पढते-पढते विजय की आँखो म आसू आ गय । उसने पत्र फाड कर टुकड-टुकड कर डाला । तव भी वह न मिटा, उज्ज्वल अक्षरो स सूर्य की किरणा म आकाश-पट पर वह भयानक सत्य चमकने लगा ।

उसकी धडकन वढ गई, वह तिलमिलाकर दखन लगा । अन्तिम साँस म कोई आँसू वहानवाला न था, यह दखकर उस प्रसन्नता हुई । उसन मन-ही-मन कहा—इस अन्तिम घडी म ह भगवान् ! मैं तुमको स्मरण करता हूँ, आज तक

कभी नही किया था, तब भी तुमन मुझे कितना बचाया—कितना रक्षा की ! ह मरे देव ! मेरा नमस्कार ग्रहण करा, इस नास्तिक का समर्पण स्वीकार करो ! अनाथो के नाथ ! तुम्हारी जय हो !

उसी क्षण उसके हृदय की गति बन्द हो गई।

आठ बजे भारत-सघ का प्रदर्शन निकलनवाला था। दशाश्वमध घाट पर उसका प्रचार होगा। सब जगह बडी भीड है। आग स्त्रिया का दल था, जा बडा ही करुण-सगीत गाता जा रहा था। पीछ कुछ स्वयसवका की श्रेणी थी। स्त्रिया के आगे-आगे घण्टी और लतिका थीं। जहाँ से दशाश्वमध क दो मार्ग अलग हुए है, वहाँ आकर वे लाग अलग-अलग हाकर प्रचार करन लग। घण्टी उस भिख-मगावाल पीपल के पास खडी होकर बोल रही थी। उसक मुख पर शान्ति थी वाणी म स्निग्धता थी। वह कह रही थी—ससार का इतनी आवश्यकता किसी अन्य वस्तु की नही, जितनी सेवा की। दखो—कितन अनाथ यहा अन्न-वस्त्र विहीन, बिना किसा औपधि-उपचार क मर रह हैं। ह पुण्यार्थियो ! इन्ह न भूलो, भगवान् अभिनय करके इसम पडे हैं, वह तुम्हारी परीक्षा ल रह हैं। इतन इश्वर के मन्दिर नष्ट हो रहे है धार्मिको ! अब भी चता !

सहसा उसकी वाणी बन्द हा गई। उसन स्थिर दृष्टि स एक पडे हुए कँगले का दखा, वह बाल उठी—दखा वह बचारा अनाहार से मर गया-सा मालूम पडता है। इनका सस्कार

हा जायगा ! हा जायगा ! आप इसकी चिन्ता न कीजिए, अपनी अमृतवाणी बरसाइए !—जनता म कोलाहल होन लगा किन्तु वह आगे बढी, भीड भी उधर ही जान लगी। पीपल क पास सन्नाटा हा चला।

माहन अपनी धाय क सग मला दखन आया था। वह मान-मन्दिरवाली गली के कान पर खडा था। उसने धाय स कहा—दाई, मुझे वहाँ ल चलकर मला दिखाओ, चना मेरी अच्छी दाई !

यमुना ने कहा—मरे लाल ! बडी भीड है, वहाँ क्या है जा दखोग ?

मोहन न कहा—फिर हम तुमका पीटग !

तब तुम पाजी लडके समझे जाओगे, जो देखगा वही कहगा कि यह लडका अपनी दाई को पीटता है !—चुम्बन लकर यमुना न हँसत हुए कहा।

अकस्मात् उसकी दृष्टि विजय क शव पर पडी। वह घबराई कि क्या करे। पास हा श्रीचन्द्र भी टहल रह थे। उसन माहन को उनक पास पहुँचात हुए हाथ जाडकर कहा—बाबूजी, मुझे दस रुपय दीजिए।

श्रीचन्द्र न कहा—पगली, क्या करेगी ?

वह दौडी हुई विजय क पास गई। उसन खड हाकर उसे दखा, फिर पास बैठकर दखा। दोनो आँखो स आँसू की धारा वह चली।

यमुना, दूर खडे श्रीचन्द्र के पास आई। बाली—बाबूजी, मर वतन म से काट लेना, इसी समय दीजिए मै जन्म-भर यह ऋण भरूँगी।

है क्या, मैं भी सुनूँ। —श्रीचन्द्र ने कहा।

मेरा एक भाई था, यही भीख माँगता था बाबू! आज मरा पडा है, उसका सस्कार तो करा दूँ।

वह रो रही थी। मोहन न कहा—दाई राती है बाबूजी, और तुम दस-ठो रुपये नही देते!

श्रीचन्द्र ने दस का नाट निकाल कर दिया। यमुना प्रसन्नता स बाली—मेरी भी आयु लेकर जिया मरे लाल!

वह शव के पास चल पडी, परन्तु उस सस्कार क लिए कुछ लाग भी चाहिए, वे कहाँ से आवे। यमुना मुँह फिराकर चुपचाप खडी थी। घण्टी चारा आर देखती हुई फिर वही आई। उसके साथ चार स्वयसवक थे।

स्वयसेवका ने पूछा—यही न देवीजी ?

हाँ—कहकर घण्टी न देखा कि एक स्त्री घूघट काढ, दस रुपय का नोट स्वयसवक क हाथ म दे रही है।

घण्टी न कहा—दान है इस पुण्यभागिनी का—ल नो, जाकर इससे सामान लाकर मृतक-सस्कार करवा दो।

स्वयसवक ने उस ले लिया। वह स्त्री वही बैठी थी। इतन म मगलदेव क साथ गाला भी आई। मगल न कहा—घण्टी! मैं तुम्हारी इस तत्परता स वडा प्रसन्न हुआ। अच्छा अब चलो, अभी बहुत-सा काम बाकी है।

मनुष्य के हिसाब-किताब म काम ही तो बाकी पडे मिलते है—कहकर घटी साचन लगी। फिर उस शव की दीन दशा मगल का सकेत स दिखलाई।

मगल ने दखा—एक स्त्री पास ही मलिन वसन म बैठी है। उसका घूँघट आँसुआ स भाग गया है। और निराश्रय पडा ह, एक —

ककाल



तितली

प्रथम खण्ड

१

क्यो वेटी ! मधुवा आज कितने पैस ले आया ?

नौ आने, वापू !

कुल नौ आन ! और कुछ नही ?

पाँच सेर आटा भी दे गया ह । कहता था एक रुपय का इतना ही मिला ।

वाह रे समय—कहकर बुडढा एक वार चित होकर सास लेने नगा ।

कुतूहल स लडकी न पूछा—कैसा समय वापू ?

वुडढा चुप रहा ।

यौवन क व्यजन दिखायी दन स क्या हुआ, अव भी उसका मन दूध का धोया है । उसे लडकी कहना ही अधिक सगत होगा ।

उसने फिर पूछा—कैसा समय बापू ?

चियड़ो स लिपटा हुआ लम्बा-चौडा, अस्थि पजर झनझना उठा खाँसकर उसने कहा—जिस भयानक अकाल का स्मरण करके आज भी रोगटे खडे हो जात है जिस पिशाच की अग्नि-क्रीडा म खलती हुई तुझको मैन पाया था, वही सवत ५५ का अकाल आज के सुकाल स भी सदय था—कामल था । तब भी आठ सर का अन्न विकता था । आज पाच सेर को बिक्री म भी वही जू नही रगती, जैस—सब धीरे-धीरे दम तोड रहे हैं ! कोई अकाल कहकर चिल्लाता नही । आह ! मैं भूल रहा हूँ । कितन ही मनुष्य तभी स एक बार भोजन करन के अभ्यासी हा गय हैं । जान द, होगा कुछ वञ्जो ! जो सामने आवे, उस झेलना चाहिए ।

वञ्जो, मटकी म डेढ़ पाव दूध, चार कडा पर गरम कर रही थी । उफनात हुए दूध को उतार कर उसन कुतूहल स पूछा—वापू ! उस अकाल म तुमन मुझे पाया था ! ला, दूध पाकर मुझे वह पूरी कथा सुनाओ ।

बुड्ढे न करवट बदलकर, दूध लेत हुए, बञ्जो का आँखा म खलत हुए आश्चय को दखा । वह कुछ सोचता हुआ दूध पीन लगा ।

थाडा-सा पीकर उसन पूछा—अरे तून दूध अपने लिए रख लिया है ?

बञ्जो चुप रही। बुड्ढा खडखडा उठा—तू वडी पाजी है, रोटी किससे खायगी रे ?

सिर झुकाय हुए, बञ्जो न कहा—नमक और तल स मुझे राटी अच्छी लगती है बापू !

बचा हुआ दूध पीकर बुड्ढा फिर कहन लगा—यही समय है, दखती ह न ! गाय डेढ पाव दूध दती है ! मुझे ता आश्चर्य होला है कि उन सूखो ठठरिया म से इतना दूध भी कैसे निकलता है !

मधुवा दबे पाव आकर उसी झापडी क एक काने म खडा हो गया। बुड्ढे न उसकी ओर दखकर पूछा—मधुवा, आज तू क्या-क्या ले गया था ?

डेढ सर घुमची, एक वोझा महुआ का पत्ता और एक खाचा क्डा बाबाजी ! —मधुवा ने हाथ जोड कर कहा।

इन सबका दाम एक रुपया नौ आना ही मिला ?

चार पैस बन्धू का मजूरी म दिये थ।

अभी दो सर घुमची और हागी बापू ! बहुत-सी फलियाँ बनबेरी के झुरमुट म हैं, झड जाने पर उन्हे बटार लूगी। —बञ्जो ने कहा। बुड्ढा मुस्कराया। फिर उसन कहा—मधुवा ! तू गाया का अच्छी तरह चराता नही बेटा ! दख ता, धवली कितनी दुबली हो गयी है !

कहा चराव कुछ ऊसर परती कही चरन क लिए बची भी है ? —मधुवा न कहा।

बञ्जो अपनी भूरी लटा को हटात हुए बोली—मधुवा गगा म घटा नहाता है बापू ! गाय अपने मन स चरा करती है ! यह जब बुलाता ह, तभी सब चली आती हैं।

बञ्जो की बात न सुनत हुए बाबाजा न कहा—तू ठीक कहता है मधुवा ! पशुओ का खात-खाते मनुष्य, पशुओ के भोजन की जगह भी खाने लगे। आह ! कितना इनका पेट बढ गया है ! वाह रे समय ! !

मधुवा बीच ही मे बोल उठा—बञ्जो, बनिया ने कहा है कि सरफाका की पत्ती दे जाना, अब मैं जाता हूँ।

कहकर वह झोपडी के बाहर चला गया।

सन्ध्या गाव की सीमा म धीरे-धीरे आन लगी। अन्धकार के साथ ही ठड बढ चली। गगा की कछार की झाडिया म सन्नाटा भरन लगा। नाला के करारा म चरवाहा क गीत गूँज रहे थ।

बञ्जो दीप जलाने लगी। उस दरिद्र कुटीर के निर्मम अन्धकार मे दीपक की ज्योति तारा-सी चमकने लगी।

बुड्ढे ने पुकारा—बञ्जो !

आयी—कहती हुई वह बुड्ढे की खाट के पास आ बैठी और उसका सिर सहलाने लगी। कुछ ठहरकर बोली—बापू ! उस अकाल का हाल न सुनाओगे ?

तू सुनेगी बञ्जो ! क्या करेगी सुनकर बेटी ? तू मेरी बेटी है और मैं तेरा बूढा बाप ! तेरे लिए इतना जान लेना बहुत है।

नही बापू ! सुना दो मुझे वह अकाल की कहानी—बञ्जो ने मचलते हुए कहा।

धाँय—धाय—धाँय···! ! !

गगा-तट वन्दूक के धडाके से मुखरित हो गया। बञ्जो कुतूहल से झोपडी के बाहर चली आयी।

वहाँ एक घिरा हुआ मैदान था। कई बीघा की समतल भूमि—जिसके चारो ओर, दस लट्ठे की चौडी, झाडियों की दीवार थी—जिसमे कितने ही सिरिस, महुआ, नीम और जामुन के वृक्ष थे—जिन पर घुमची, सतावर और करञ्ज इत्यादि की लतरे झूल रही थी। नीचे की भूमि मे भटेस के चौडे-चौडे पत्तो की हरियाली थी। बीच-बीच मे वनवेर ने भी अपनी कँटीली डालो का इन्ही सबो से उलझा लिया था।

वह एक सघन झुरमुट था—जिसे बाहर से देखकर यह अनुमान करना कठिन था कि इसके भीतर इतना लम्बा-चौडा मैदान हो सकता है।

देहात के मुक्त आकाश मे अन्धकार धीरे-धीरे फैल रहा था। अभी सूर्य की अस्तकालीन लालिमा आकाश के उच्च प्रदेश मे स्थित पतले बादलो मे गुलाबी आभा दे रही थी।

बञ्जो, वन्दूक का शब्द सुनकर, बाहर तो आयी; परन्तु वह एकटक उसी गुलाबी आकाश को देखने लगी। काली रेखाओ-सी भयभीत कराकुल पक्षियो की पक्तियाँ 'कररररर—कर्र' करती हुई सध्या की उस शान्त चित्रपटी के अनुराग पर कालिमा फेरने लगी थी।

हाय राम ! इन काँटो मे—कहाँ आ फँसा !

बञ्जो कान लगाकर सुनने लगी।

फिर किसी न कहा—नीचे करार की ओर उतरने मे तो गिर जाने का डर है, इधर ये काटेदार झाडियां ! अब किधर जाऊँ ?

बन्नो समझ गयी कि कोई शिकार खेलने वालो मे स इधर आ गया है। उसके हृदय म विरक्ति हुई—उँह, शिकारी पर दया दिखाने की क्या आवश्यकता ? भटकने दो।

वह घूम कर उसी मैदान म बैठी हुई एक श्यामा गौ को देखने लगी। बडा मधुर शब्द सुन पडा—चौबेजी! आप कहाँ हैं ?

अब बन्नो को बाध्य होकर उधर जाना पडा। पहले काटा मे फँसने वाले व्यक्ति न चिल्लाकर कहा—खडा रहिए इधर नही—ऊँहूँ-ऊँ! उसी नीम के नीचे ठहरिए मैं आता हूँ! इधर बडा ऊँचा-नीचा है।

चौबेजी यहाँ तो मिट्टी काटकर बडी अच्छी सीढियाँ बनी है, मैं तो उन्ही से ऊपर आई हूँ!—रमणी क कोमल कठ स यह सुन पडा।

बन्नो को उसकी मिठास न अपनी ओर आकृष्ट किया। जगली हिरन क समान कान उठाकर वह सुनने लगी।

झाडियो के रौंदे जान का शब्द हुआ। फिर वही पहिला व्यक्ति बोल उठा—लीजिये, मैं तो किसी तरह आ पहुँचा अब गिरा—तब गिरा राम-राम! कैसी सासत! सरकार से मैं कह रहा था कि मुझे न ले चलिए। मैं यहीं चूडा-मटर की खिचडी बनाऊँगा। पर आपने भी जब कहा तब ता मुझे आना ही पडा। भला आप क्यो चली आईं ?

इन्द्रदेव ने कहा कि सुर्खाब इधर बहुत है मैं उनक मुलायम परो के लिए आई। सच चौबेजी, लालच म मै चली आई। किन्तु छर्रों स उनका मरना देखन मे मुझे सुख ता न मिला। आह! कितना निधडक वे गगा के किनारे टहलते थे! उन पर विनचेस्टर-रिपीटर के छर्रों की चोट! बिल्कुल ठीक नही। मैं आज ही इन्द्रदेव को शिकार खेलने स रोकूगी—आज ही।

अब किधर चला जाय ?—उत्तर म किसी ने कहा।

चौबजी न डग बढाकर कहा—मेरे पीछे-पीछे चली आइए।

किन्तु मिट्टी वह जाने से मोटी जड नीम की उभड आई थी, उसन ऐसी करारी ठोकर लगाई कि चौबेजी मुँह के बल गिरे।

रमणी चिल्ला उठी। उस धमाके और चिल्लाहट ने बन्नो को विचलित कर दिया। वह कँटीली झाडी को खीचकर अँधेरे म भी ठीक-ठीक उसी सीढी के पास जाकर खडी हो गई, जिसके पास नीम का वृक्ष था।

उसने देखा कि चौबेजी बेतरह गिर है। उनके घुटने म चोट आ गई है। वह स्वय नही उठ सकते।

सुकुमारी सुन्दरी के बूते के बाहर की यह बात थी।

बञ्जो ने भी हाथ लगा दिया। चौबेजी किसी तरह कॉंखते हुए उठे।

अन्धकार के साथ-साथ सर्दी बढने लगी थी। बञ्जो की सहायता से मुन्दरी, चौबेजी को लिवा ले चली, पर कहाँ ? यह तो बञ्जो ही जानती थी।

झोपडी म बुड्ढा पुकार रहा था—बञ्जो ! बञ्जो ! ! बडी पगली है। कहाँ घूम रही है ? बञ्जा, चली आ !

झुरमुट म घुसते हुए चौबेजी तो कराहते थे, पर मुन्दरी उस वन-विहगिनी की ओर आँख गडाकर दख रही थी और अभ्यास के अनुसार धन्यवाद भी दे रही थी।

दूर से किसी की पुकार मुन पडी—शैला ! शैला ! !

ये तीनो, झाडियो की दीवार पार करके, मैदान म आ गय थ।

बञ्जा क सहारे चौबेजी को छोडकर शैला फिरहरी की तरह घूम पडी। वह नीम के नीचे खडी होकर कहन लगी—इसी सीढी स इन्द्रदेव — बहुत ठीक सीढी है। हाँ, सँभालकर चल आओ। चौबेजी का तो घुटना ही टूट गया है ! हाँ, ठीक है, चल आओ ! कहीं-कहीं जड बुरी तरह से निकल आई है—उन्ह बचाकर आना।

नीचे स इन्द्रदव ने कहा—सच कहना शैला ! क्या चौबे का घुटना टूट गया ? ओहो तो कैसे वह इतनी दूर चलेगा ! नहीं-नहीं, तुम हँसी करती हो।

ऊपर आकर दख लो नहीं भी टूट सकता है !

नहीं भी टूट सकता है ? वाह ! यह एक ही रही। अच्छा लो, मैं आ ही पहुँचा।

एक लम्बा-सा युवक, कधे पर बन्दूक रख, ऊपर चढ रहा था। शैला, नीम क नीचे खडी, गगा क करारे की ओर झाँक रही थी—यह इन्द्रदेव को सावधान करती थी—ठोकरो स और ठीक मार्ग से।

तब तक उस युवक न हाथ बढाया—दो हाथ मिले !

नीम के नीचे खड होकर इन्द्रदव ने शैला के कोमल हाथो को दबाकर कहा — करारे की मिट्टी काट कर देहातियो न कामचलाऊ सीढियाँ अच्छी बना ली है। शैला ! कितना सुन्दर दृश्य है ! नीच धीरे धीरे गगा बह रही हैं, अन्धकार म मिली हुई उस पार क वृक्षो की श्रेणी क्षितिज की कोर म गाढी कालिमा की बेल बना रही है, और ऊपर

पहले चलकर चौबेजी को दख लो, फिर दृश्य देखना। —बीच ही म रोक-कर शैला ने कहा।

अरे हाँ, यह तो मैं भूल ही गया था ? चलो किधर चलूँ ? यहाँ तो तुम्ही पथ-प्रदर्शक हो। —कहकर इन्द्रदेव हँस पडे।

दोनो, झोपडिया के भीतर घुसे। एक अपरिचित बालिका के सहारे चौबेजी का कराहते देखकर इन्द्रदेव ने कहा—ता क्या सचमुच म यह मान लूं कि तुम्हारा घुटना टूट गया ? मैं इस पर कभी विश्वास नही कर सकता। चौबे, तुम्हारे घुटने 'टूटने वाली हड्डी' के बने ही नही !

सरकार, यही तो मैं भी साचता हुआ चलने का प्रयत्न कर रहा हूँ। परन्तु आह ! बडी पीडा है, मोच आ गई हागी। ता भी इस छोकरी के सहारे थाडी दूर चल सकूँगा। चलिए—। चौबेजी ने कहा।

अभी तक बञ्जो मे किसी ने न पूछा था कि तू कौन है, कहाँ रहती है, या हम लोगो को कहाँ लिवा जा रही है।

बञ्जो ने स्वय ही कहा—पास ही झापडी है। आप लोग वही तक चलिए, फिर जैसी इच्छा।

सब बञ्जो के साथ मैदान के उस छोर पर जलने वाले दीपक के सम्मुख चले, जहाँ से "बञ्जा ! बञ्जो ! !" कहकर कोई पुकार रहा था। बञ्जो ने कहा—आती हूँ !

झोपडी के दूसरे भाग क पास पहुँचकर बञ्जो क्षण-भर के लिए रुकी। चौबेजी को छप्पर के नीचे पडी हुई एक खाट पर बैठन का सकेत करके वह घूमी ही थी कि बुड्ढे ने कहा—बञ्जो ! कहाँ है रे ? अकाल की कहानी और अपनी कथा न सुनेगी ? मुझे नीद आ रही है।

आ गई—कहती हुई बञ्जो भीतर चली गई। बगल के छप्पर के नीचे इन्द्रदेव और शैला खडे रहे ! चौबेजी खाट पर बैठे थे, किन्तु कराहने की व्याकुलता दबाकर। एक लडकी के आश्रय म आकर इन्द्रदेव भी चकित सोच रहे थे—कही यह बुड्ढा हम लागा के यहाँ आने से चिढेगा तो नही।

सब चुपचाप थे।

बुड्ढे ने कहा—कहाँ रही तू बञ्जो !

एक आदमी को चोट लगी थी, उसी ।

ता—तू क्या कर रही थी ?

वह चल नही सकता था, उसी को सहारा देकर—

मरा नही, बच गया। गोली चलने का—शिकार खेलने का—आनन्द नही मिला ! अच्छा, तो तू उनका उपकार करने गई थी। पगली ! यह मैं मानता हूँ कि मनुष्य को कभी-कभी अनिच्छा से भी कोई काम कर लेना पडता है, पर

नही जान-बूझ कर किसी उपकार-अपकार के चक्र मे न पडना ही अच्छा है। बञ्जो ! पल भर की भावुकता मनुष्य के जीवन म कहाँ-से-कहाँ खीच ले जाती है, तू अभी नही जानती। बैठ, ऐसी ही भावुकता को लेकर मुझे जो कुछ भोगना पडा है, वही सुनाने के लिए तो मैं तुझे खोज रहा था।

बापू

क्या है रे ! बैठती क्यो नही ?

वे लोग यहाँ आ गये हैं

ओहो ! तू बडी पुण्यात्मा है...तो फिर लिवा ही आई है, तो उन्हे बिठा दे छप्पर मे—और दूसरी जगह ही कौन है ? और बञ्जो ! अतिथि को बिठा देने से ही नही काम चल जाता। दो-चार टिक्कर सेंकने की भी समझी ?

नही-नहीं, इसकी आवश्यकता नही—कहते हुए इन्द्रदेव बुड्ढे के सामने आ गये। बुड्ढे ने धुँधले प्रकाश म देखा—पूरा साहबी ठाट ! उसने कहा—आप साहब यहाँ

तुम घबराओ मत, हम लोगो को छावनी तक पहुँच जाने पर किसी बात की असुविधा न रहेगी। चौबेजी को चोट आ गई है, वह सवारी न मिलने पर रात भर, यहाँ पडे रहेंगे। सवेरे देखा जायगा। छावनी की पगडडी पा जाने पर हम लोग स्वय चल जायँगे। कोई

इन्द्रदेव को रोककर बुड्ढे न कहा—आप धामपुर की छावनी पर जाना चाहते हैं ? जमीदार के मेहमान हैं न ? बञ्जो ! मधवा को बुला दे, नहीं तू ही इन लोगो को बनजरिया के बाहर उत्तर वाली पगडडी पर पहुँचा दे। मधुवा !! ओ रे मधुवा !—चौबेजी को रहने दीजिए, कोई चिन्ता नही।

बञ्जो न कहा—रहने दो बापू। मैं ही जाती हूँ।

शैला ने चौबेजी से कहा—तो आप यही रहिए, मैं जाकर सवारी भेजती हूँ।

रात को झझट बढाने की आवश्यकता नही, बटुए म जलपान का सामान है कम्बल भी है। मैं इसी जगह रात भर मे इसे सेक साँक कर ठीक कर लूगा। आप लोग जाइए।—चौबे ने कहा।

इन्द्रदेव ने पुकारा—शैला ! आओ, हम लोग चले।

शैला उसी झोपडी म आई। वही से बाहर निकलने का पथ था। बञ्जो क पीछे दोनो झोपडी से निकले।

लेटे हुए बुड्ढे ने देखा—इतनी गोरी, इतनी सुन्दर, लक्ष्मी-सा स्त्री इस जगल-उजाड मे कहाँ ! फिर सोचने लगा—चलो, दो तो गये। यदि वे भी यही रहते,

तो खाट-कम्बल और सब सामान कहाँ से जुटता। अच्छा चौबेजी हैं तो ब्राह्मण, उनको कुछ अड़चन न होगी, पर इन साहबी ठाट के लोगों के लिए मेरी झोपड़ी में कहाँ ऊँह! गये, चलो, अच्छा हुआ। बझो आ जाय, तो उसको चोट तेल लगाकर सेंक दे।

बुड्ढे को फिर खाँसी आने लगी। वह खाँसता हुआ इधर के विचारों से छुट्टी पाने की चेष्टा करने लगा।

उधर चौबेजी गोरसी में सुलगते हुए कंडों पर हाथ गरम करके घुटना सेंक रहे थे। इतने में बझो मधुवा के साथ लौट आई।

बापू! जो आये थे, जिन्हें मैं पहुँचाने गई थी, वही तो धामपुर के जमींदार हैं। लालटेन लेकर कई नौकर-चाकर उन्हें खोज रहे थे। पगडंडी पर ही उन लोगों से भेंट हुई। मधुवा के साथ मैं लौट आई।

एक साँस में बझो कहने को तो कह गई, पर बुड्ढे की समझ में कुछ न आया। उसने कहा—मधुवा! उस शीशी में जो जड़ी का तेल है, उसे लगा कर ब्राह्मण का घुटना सेंक दे, उसे चोट आ गई है।

मधुवा तेल लेकर घुटना सेंकने चला।

बझो पुआल में कम्बल लेकर घुसी। कुछ पुआल और कुछ कम्बल से गले तक शरीर ढँक कर वह सोने का अभिनय करने लगी। पलकों पर ठंढ लगने से बीच-बीच में वह आँख खोलने मूँदने का खिलवाड़ कर रही थी। जब आँखें बंद रहतीं, तब एक गोरा-गोरा मुँह—करुणा की मिठास से भरा हुआ गाल-मटोल नन्हा-सा मुँह—उसके सामने हँसने लगता। उसमें ममता का आकर्षण था। आँख खुलने पर वही पुरानी झोपड़ी की छाजन! अत्यन्त विरोधी दृश्य!। दोनों ने उसके कुतूहल-पूर्ण हृदय के साथ छेड़छाड़ की, किन्तु विजय हुई आँख बन्द करने की। शैला के संगीत के समान सुन्दर शब्द उसकी हृत्तन्त्री में झनझना उठे! शैला के समीप होने की—उसके हृदय में स्थान पाने की—बलवती वासना बझो के मन में जगी। वह सोते-सोते स्वप्न देखने लगी। स्वप्न देखते-देखते शैला के साथ खेलने लगी।

मधुवा से तेल मलवाते हुए चौबेजी ने पूछा—क्या जी! तुम यहाँ कहाँ रहते हो? क्या काम करते हो? क्या तुम इस बुड्ढे के यहाँ नौकर हो? उसके लड़के तो नहीं मालूम पड़ते?

परन्तु मधुवा चुप था।

चौबेजी ने घबराकर कहा—बस करो, अब दर्द नहीं रहा। वाह-वाह!

यह तेल है या जादू ! जाओ भाई, तुम भी सो रहो। नहीं-नहीं ठहरो तो, मुझे थोडा पानी पिला दो।

मधुवा चुपचाप उठा और पानी के लिए चला। तब चौबेजी ने धीरे से बटुआ खोलकर मिठाई निकाली, और खान लगे। मधुवा इतने म न जान कब लोटे मे जल रखकर चला गया था।

और बञ्जो सो गई थी। आज उसने नमक और तेल स अपनी रोटी भी नही खाई। आज पेट के वदले उसके हृदय मे भूख लगी थी। शैला से मित्रता—शैला स मधुर परिचय—के लिए न-जाने कहाँ की साध उमड पडी थी। सपने-पर-सपने देख रही थी। उस स्वप्न की मिठास मे उसके मुख पर प्रसन्नता की रेखा उस दरिद्र-कुटीर म नाच रही थी।

२

धामपुर एक बडा ताल्लुका है। उसमे चौदह गाँव हैं। गगा के किनारे-किनारे उसका विस्तार दूर तक चला गया है। इन्द्रदेव यही के युवक जमीदार थे। पिता को राजा की उपाधि मिली थी।

बी० ए० पास करके जब इन्द्रदेव न बैरिस्टरी के लिए विलायत-यात्रा की, तब पिता के मन म बडा उत्साह था।

किन्तु इन्द्रदेव धनी के लडके थे। उन्हे पढने-लिखने की उतनी आवश्यकता न थी, जितनी लन्दन का सामाजिक बनने की।

लन्दन-नगर मे भी उन्हे पूर्व और पश्चिम का प्रत्यक्ष परिचय मिला। पूर्वी भाग मे पश्चिमी जनता का जो साधारण समुदाय है, उतना ही विरोध पूर्ण है, जितना कि विस्तृत पूर्व और पश्चिम का। एक ओर सुगन्ध जल के फौवारे छूटते हैं, बिजली से गरम कमरो मे जाते ही कपड उतार देने की आवश्यकता होती है, दूसरी ओर बरफ और पाले मे दूकानो के चबूतरो के नीचे अर्ध-नग्न दरिद्रो का रात्रि-निवास।

इन्द्रदेव कभी-कभी उस पूर्वी भाग की सैर के लिए चले जाते थे।

एक शिशिर रजनी थी। इन्द्रदेव मित्रो के निमन्त्रण से लौटकर सडक के किनारे, मुंह पर अत्यन्त शीतल पवन का तीखा अनुभव करते हुए, बिजली के प्रकाश मे धीरे-धीरे अपने 'मेस' की ओर लौट रहे थे। पुल के नीचे पहुँच कर वह रुक गये। उन्होने देखा—कितने ही अभागे, पुल की कमानी के नीचे अपना रात्रि-निवास बनाये हुए, आपस मे लड झगड रहे हैं। एक रोटी पूरी ही खा जायगा!—इतना बडा अत्याचार न सह सकने के कारण जब तक स्त्री उसके हाथ से छीन लेने के लिए अपनी शराब की खुमारी से भरी आँखो को चढ़ाती ही रहती है, तब तक लडका उचक कर छीन लेता है। चटपट तमाचो का शब्द होना तुमुल युद्ध के आरम्भ होने की सूचना देता है। धौल-धप्पड, गाली-गलौज बीच-बीच म फूहड हँसी भी सुनाई पड जाती है।

इन्द्रदेव चुपचाप वह दृश्य देख रहे थे और सोच रहे थे—इतना अकूत धन

विदशा स ल आकर भी क्या इन साहसी उद्योगियो न अपने दश की दरिद्रत का नाश किया ? अन्य देशो की प्रकृति का रक्त इन लोगा की कितनी प्यास बुझा सका है ?

सहसा एक लम्बी-सी पतली-दुबली लडकी उनक पास आकर कुछ याचना की। इन्द्रदेव ने गहरी दृष्टि से उस विवर्ण मुख को देख कर पूछा—क्यो, तुम्हार पिता-माता नही है ?

पिता जेल म है, माता मर गई है।

और इतने अनाथानय ?

उनम जगह नही।

तुम्हारे कपडे से शराब की दुर्गन्ध आ रही है। क्या तुम

'जैक बहुत ज्यादा पी गया था, उसी ने कै कर दिया है। दूसरा कपडा नही जो बदलूं, बडी सरदी है। —कहकर लडकी ने अपनी छाती के पास का कपडा मुट्ठियो मे समेट लिया।

तुम नौकरी क्यो नही कर लेती ?

रखता कौन है ? हम लोगो का तो वे वदमाश, गिरह-कट आवारे समयते है। पास खडे होने ता

आगे उस लडकी के दाँत आपस म रगडकर बजने लगे। यह स्पष्ट कुछ न कह सकी।

इन्द्रदव ओठ काटते हुए क्षण भर विचार करने लग। एक छोकरे ने आकर लडकी को धक्का देकर कहा—जो पाती, सब शराब पी जाती है। इसका देना —न दना सब बराबर है।

लडकी ने क्रोध से कहा—जैक ! अपनी करनी मुझ पर क्यो लादता है ? तू ही माग ले, मैं जाती हूँ।

वह घूमकर जाने के लिए तैयार थी कि इन्द्रदव ने कहा—अच्छा सुनो तो, तुम पास के भोजनालय तक चलो, तुमको खाने के लिए, और मिल सका तो कोई भी दिलवा दूंगा।

छोकरा 'हो-हो-हो ! करके हँस पडा। बोला—जा न शैला। आज की रात तो गरमी से बिता ले, फिर कल देखा जायगा।

उसका अश्लील व्यग्य इन्द्रदव को व्यथित कर रहा था, किन्तु शैला ने कहा —चलिये।

दोना चल पडे। इन्द्रदव आगे थे, पीछे शला। लन्दन का विद्युत-प्रकाश निस्तब्ध होकर उन दोना का निर्विकार पद विक्षेप देख रहा था। सहसा घूमकर

इन्द्रदेव ने पूछा—तुम्हारा नाम 'शैला' है न ?

'हाँ' कहकर फिर वह चुपचाप सिर नीचा किये अनुसरण करने लगी।

इन्द्रदेव ने फिर ठहरकर पूछा—कहाँ चलोगी ? भोजनालय में या हम लोगों के मेस में ?

'जहाँ कहिए' कहकर वह चुपचाप चल रही थी। उसकी अविचल धीरता से मन-ही-मन कुढ़ते हुए इन्द्रदेव मेस की ओर ही चले।

उस मेस में तीन भारतीय छात्र थे। मकान वाली एक बुढ़िया थी। उसके किये सब काम होता न था। इन्द्रदेव ही उन छात्रों के प्रमुख थे। उनकी सम्मति से सब लोगों ने 'शैला' को परिचारिका-रूप में स्वीकार किया। और, जब शैला से पूछा गया, तो उसने अपनी स्वाभाविक उदार दृष्टि इन्द्रदेव के मुँह पर जमाकर कहा—यदि आप कहते हैं तो मुझे स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं है। भिखमंगिन होने से यह बुरा तो न होगा।

इन्द्रदेव अपने मित्रों के मुस्कराने पर भी मन-ही-मन सिहर उठे। बालिका के विश्वास पर उन्हें भय मालूम होने लगा। तब भी उन्होंने समस्त साहस बटोर कर कहा—शैला, कोई भय नहीं, तुम यहाँ स्वयं सुखी रहोगी और हम लोगों की भी सहायता करोगी।

मकान वाली बुढ़िया ने जब यह सुना, तो एक बार झल्लाई। उसने शैला के पास जाकर, उसकी ठोढ़ी पकड़कर, आँखें गड़ाकर, उसके मुँह को और फिर सारे अंग को इस तीखी चितवन से देखा, जैसे कोई सौदागर किसी जानवर को खरीदने से पहले उसे देखता हो।

किन्तु शैला के मुँह पर तो एक उदासीन धैर्य आसन जमाये था, जिसको कितनी ही कुटिल दृष्टि क्यों न हो, विचलित नहीं कर सकती।

बुढ़िया ने कहा—रह जा बेटी, ये लोग भी अच्छे आदमी हैं।

शैला उसी दिन से मेस में रहने लगी।

भारतीयों के साथ बैठकर वह प्रायः भारत के देहातों, पहाड़ी तथा प्राकृतिक दृश्यों के सम्बन्ध में इन्द्रदेव से कुतूहलपूर्ण प्रश्न किया करती।

बैरिस्टरी का डिप्लोमा मिलने के साथ ही इन्द्रदेव को पिता के मरने का शोक-समाचार मिला। उस समय शैला की सान्त्वना और स्नेहपूर्ण व्यवहार ने इन्द्रदेव के मन को बहुत-कुछ बहलाया। मकान वाली बुढ़िया उसे बहुत प्यार करती, इन्द्रदेव के सद्व्यवहार और चारित्र्य पर वह बहुत प्रसन्न थी। इन्द्रदेव ने जब शैला को भारत चलने के लिए उत्साहित किया, तो बुढ़िया ने समर्थन किया। इन्द्रदेव के साथ शैला भी भारत चली आई।

इन्द्रदेव ने शहर के महल मे न रहकर धामपुर के बँगले मे ही अभी रहने का प्रबन्ध किया ।

अभी धामपुर आये इन्द्रदेव और शैला को दो सप्ताह से अधिक न हुए थे । इगलैण्ड से ही इन्द्रदेव ने शैला को हिन्दी से खूब परिचित कराया । वह अच्छी हिन्दी बोलने लगी थी । देहाती किसानो के घर जाकर उनके साथ घरेलू बाते करने का चसका लग गया था । पुरानी खाट पर बैठकर वह बडे मजे मे उनसे बाते करती, साडी पहनने का उसने अभ्यास कर लिया था—और उसे फबती भी अच्छी ।

शैला और इन्द्रदेव दोनो इस मनोविनोद से प्रसन्न थे । वे गगा के किनारे-किनारे धीरे-धीरे बात करते चले जा रहे थे । कृपक-बालिकाएँ बरतन माँज रही थी । मल्लाहो के लडके अपने डोगी पर बैठे हुए मछली फँसाने की कटिया तोल रहे थे । दो-एक बडी-बडी नावें, माल से लदी हुई, गगा के प्रशात जल पर धीरे-धीरे सन्तरण कर रही थी । वह प्रभात था !

शैला बडे कुतूहल से भारतीय वातावरण मे नीले आकाश, उजली धूप और सहज ग्रामीण शान्ति का निरीक्षण कर रही थी ।—वह बाते भी करती जाती थी । गगा की लहर से सुन्दर कटे हुए—बालू के नीचे करारो मे पक्षियो के एक सुन्दर छोटे-से झुड का विचरते देखकर उसने उनका नाम पूछा !

इन्द्रदेव ने कहा— ये सुर्खाब हैं, इनके परो का तो तुम लोगो के यहा भी उपयोग होता है । देखो, ये कितने कोमल हैं ।

यह कहकर इन्द्रदेव ने दो-तीन गिरे हुए परा को उठाकर शैला के हाथ मे दे दिया ।

'फ़ाइन' !—नही-नही, माफ करो इन्द्रदेव ! अच्छा, इन्हे कहूँ ? कोमल । सुन्दर !—कहती हुई, शैला ने हँस दिया ।

शैला ! इनके लिए मेरे देश मे एक कहावत है । यहाँ के कवियो ने अपनी कविता मे इनका वड़ा करुण वर्णन किया है ।—गम्भीरता से इन्द्रदेव ने कहा ।

क्या ?

इन्हे चक्रवाक कहते है । इनके जोडे दिन-भर तो साथ-साथ घूमते रहते है, किन्तु संध्या जब होती है, तभी ये अलग हो जाते हैं । फिर ये रात-भर नही मिलने पाते ।

कोई रोक देता है क्या ?

प्रकृति; कहा जाता है कि इनके लिए यही विधाता का विधान है ।

ओह। बडी कठोरता है।—कहती हुई शैला एक क्षण के लिए अन्यमनस्क हो गई।

कुछ दूर चुपचाप चलन पर इन्द्रदेव ने कहा —शैला। हम लोग नीम के पास आ गये। देखो, यही सीढी है, चलो देखे, चौबे क्या कर रहा है।

पालना—नही-नही—पालकी तो पहुँच गई होगी इन्द्रदेव। यह भी कोई सवारी है ? तुम्हारे यहाँ रईस लोग इसी पर चढ़ते हैं—आदमियो पर। क्या ? बिना किसी बीमारी के। यह ता अच्छा तमाशा है।—कहकर शैला ने हँस दिया।

अब तो बीमारा से बदले डाक्टर ही यहाँ पालकी पर चढते ह शला। ला, पहले तुम्ही सीढी पर चढ़ो।

दोनो सीढी पर चढकर बाते करते हुए बनजरिया मे पहुँचे। दखते ह, ता चौबेजी अपने सामान से लैस खडे है।

शैला ने हँसकर पूछा—चौबेजी। आप ता पालकी पर जायँगे ?

मुझ हुआ क्या है। रामदीन को आज बिना मारे मैं न छाडूँगा। सरकार। उसने बडा तग किया। मुझे गोद म उठाकर पालकी पर बिठाता था। छावनी पर चलकर उस बदमाश छोकरे की खबर लूँगा।

बुरा क्या करता था ? मेरे कहने से वह बेचारा तो तुम्हारी सवा करना चाहता था और तुम चिढते थे। अच्छा, चलो तुम पालकी म बैठा।—इन्द्रदेव ने कहा।

फिर वही—पालकी म वैठा। क्या मरा ब्याह होगा ?

ठहरो भी, तुम्हारा घुटना तो टूट गया है न। तुम चलोगे कैस ?

तेल क्या था, बिल्कुल जादू। मेम साहब ने जा दवा का बक्स मेरे बटुए म रख दिया था—वही, जिसमे सागूदाना की-सी गोलियाँ रहती हे—मैने खोल डाला। एक शीशी गोली खा डाली। न गुड तीता न मीठा—सच मानिये मम साहब। आपकी दवा मेरे-जैसे उजड्डो के लिए नही। मेरा तो विश्वास है कि उस तेल ने मुझे रातभर मे चगा कर दिया। मैं अब पालकी पर न चढूँगा। गाव-भर मे मेरी दिल्लगी राम-राम।।

शैला हँस रही थी। इन्द्रदेव ने कहा—चौबे। हामियोपैथी मे बीमारी की दवा नही होती, दवा की बीमारी होती है। क्यो शैला!

इन्द्रदेव। तुमन कभी इसका अनुभव नही किया है। नही ता इसकी हँसी न उडाते। अच्छा, चलो उस लडकी को तो बुलावे। वह कहाँ है ? उसे कल कुछ इनाम नही दिया। बडी अच्छी लडकी है। झापडी म से लठिया टेकते हुए बुड्ढा

निकल आया। उसके पीछे बञ्जो थी। शैला ने दौडकर उसका हाथ पकड लिया, और कहने लगी—आह ! तुम रात को चली आईं, मैं तो खोज रही थी। तुम बडी नेक, !

बञ्जो आश्चर्य स उसका मुंह देख रही थी।

इन्द्रदेव ने कहा—बुड्ढे। तुम बहुत बीमार हो न ?

हाँ सरकार ! मुझे नही मालूम था, रात को आप

उसका सोच मत करो। तुम कौन कहानी कह रहे थ—रात का बञ्जो को क्या सुना रह थे ? मुझको सुनाओगे, चलो छावनी पर।

सरकार, मै बीमार हूँ। बुड्ढा हूँ। बीमार हूँ।

शैला ने कहा—ठीक इन्द्रदेव, अच्छा सोचा। इस बुड्ढे की कहानी बडी अच्छी होगी। लिवा चलो इस। बञ्जो ! तुम्हारी कहानी हम लोग भी सुनेंगे। चलो।

इन्द्रदेव ने कहा—अच्छा तो होगा।

चौबेजी न कहा—अच्छा तो होगा सरकार ! मै भी मधुवा का साथ लिवा चलूंगा। शायद फिर घुटना टूटे, तेल मलवाना पड और इन गायो को भी हाँक ले चलूं, दूध भी—

सब हँस पडे, परन्तु बुड्ढा बडे सकट म पडा। कुछ बोला नही, वह एक-टक शैला का मुंह देख रहा था। एक अपरिचित ! किन्तु जिससे परिचय बढान के लिए मन चचल हो उठे। माया-ममता स भरा-पूरा मुख !

बुड्ढा डरा नही, वह समीप होन की मानसिक चेष्टा करन लगा।

साहस बटोरकर उसने कहा—सरकार ! जहा कहिये, वहा चलूं।

३

चारो आर ऊँचे-ऊँचे खम्भा पर लम्बे-चौडे दालान, जिनसे सटे हुए सुन्दर कमरो मे सुखासन, उजली सज, सुन्दर लैम्प, वडे-बडे शीशे, टेबिल पर फूलदान अलमारिया मे सुनहली जिल्दो से मढी हुई पुस्तके—सभो कुछ उस छावनी म पर्याप्त है।

आस-पास, दफ्तर क लिए, नौकरो के लिए तथा और भी कितने ही आवश्यक कामा के लिए छोटे-माटे घर बने है। शहर के मकान मे न जाकर, इन्द्रदेव ने विलायत से लौटकर यही रहना जा पसन्द किया है, उसके कई कारणो म इस कोठी की सुन्दर भूमिका और आस-पास का रमणीय वातावरण भी है। शैला के लिए तो दूसरी जगह कदापि उपयुक्त न हाती।

छावनी के उत्तर नाले के किनारे ऊँचे चौतरे की हरी-हरी दूवा से भरी हुई भूमि पर कुर्सी का सिरा पकडे तन्मयता से वह नाले का गगा म मिलना देख रही थी। उसका लम्बा और ढीला गाउन मधुर पवन से आन्दोलित हा रहा था। कुशल शिल्पी के हाथो से बनी हुई संगमरमर की सौन्दर्य-प्रतिमा-सी वह बडी भली मालूम हो रही थी।

दालान म चौबेजी उसके लिये चाय बना रहे थे। सायकाल का सूर्य अब लाल बिम्ब-मात्र रह गया था, सो भी दूर की ऊँची हरियाली के नीचे जाना ही चाहता है। इन्द्रदव अभी तक नही आये थे। चाय ले आने मे चौबेजी और सुस्ती कर रहे थे। उनकी चाय शैला को बडी अच्छी लगी। वह चौबेजी क मसाले पर लट्टू थी।

रामदीन न चाय की टबिल लाकर धर दी। शला की तन्मयता भग हुई। उसने मुस्कराते हुए, इन्द्रदेव से कुछ मधुर सम्भापण करने के लिए, मुँह फिराया, किन्तु इन्द्रदेव का न देखकर वह रामदीन स बाली—क्या अभी इन्द्रदेव नही आते हैं ?

नटखट रामदीन हँसी छिपात हुए एक आँख का कोना दबाकर ओठ क कान का ऊपर चढा देता था। शैला उसे देखकर खूब हँसती, क्योकि रामदीन

का कोई उत्तर बिना इस कुटिल हँसी के मिलना असम्भव था। उसने अभ्यास के अनुसार आधा हँसकर कहा—जी, आ रहे हैं सरकार। बड़ी सरकार के आने की

बड़ी सरकार?

हाँ, बड़ी सरकार। वह भी आ रही है।

कौन है वह?

बड़ी सरकार—

देखो रामदीन, समझाकर कहा। हँसना पीछे।

बड़ी सरकार का अनुवाद करने में उसके सामने बड़ी बाधाएँ उपस्थित हुईं किन्तु उन सबको हटाकर उसने कह दिया—सरकार की माँ आई हैं। उनके लिए गंगा-किनारे वाली छोटी कोठी साफ़ कराने का प्रबन्ध देखने गये हैं। वहाँ से आते ही होंगे।

आते ही होंगे? क्या अभी देर है?

रामदीन कुछ उत्तर देना चाहता था कि बनारसी साड़ी का आँचल कंधे पर से पीठ की ओर लटकाये, हाथ में छोटा-सा बेग लिये एक सुन्दरी वहाँ आकर खड़ी हो गई। शैला ने उसको ओर गम्भीरता से देखा। उसने भी अधिक खोजने वाली आँखों से शैला को देखा।

दृष्टि-विनिमय में एक-दूसरे को पहचानने की चेष्टा होने लगी, किन्तु कोई बोलता न था।

शैला बड़ी असुविधा में पड़ी। वह अपरिचित से क्या बातचीत करे? उसने पूछा—आप क्या चाहती हैं?

आने वाली ने नम्र मुस्कान से कहा—मेरा नाम मिस अनवरी है। क्या किया जाय, जब कोई परिचय करानेवाला नहीं तो ऐसा करना ही पड़ता है। मैं कुँवर साहेब की माँ को देखने के लिए आया करती हूँ। आपको मिस शैला समझ लूँ?

जी—कहकर शैला ने कुर्सी बढ़ा दी और शीतल दृष्टि से उसे बैठने का संकेत किया।

उधर चौबेजी चाय ले आ रहे थे। शैला ने भी एक कुर्सी पर बैठते हुए कहा—आपके लिए भी

अनवरी और शैला आमने-सामने बैठी हुई एक-दूसरे को परखने लगीं। अनवरी की सारी प्रगल्भता धीरे धीरे लुप्त हो चली। जिस गर्मी से उसने अपना

परिचय अपने-आप दे दिया था, वह चाय के गर्म प्याले के सामने ठढी हो चली थी।

शैला ने चाय के छोटे-से पात्र से उठते हुए धुएँ को देखते हुए कहा—कुँवर साहब की माँ भी सुना, आ गई हैं ?

मुझे तो नही मालूम, मैं अपनी मोटर स यही उतर पडी थी। उनके साथ ही आती, पर क्या करूँ, देर हो गई। किसी को पूछ आने के लिए भेजिएगा ?

मुझे तो आपस सहायता मिलनी चाहिए मिस अनवरी—शैला ने हँसकर कहा—आपके कुँवर साहब आ जायँ, तो प्रबन्ध

अरे शला ! यह कौन

इन्द्रदेव ! तुम अब तक क्या कर रहे थ—कहकर शैला न मिस अनवरी की ओर सकेत करते हुए कहा—आप मिस अनवरी

फिर अपने हाठ को गर्म चाय म डुबो दिया, जैसे उन्हे हँसन का दण्ड मिला हो। इन्द्रदव न अभिनन्दन करते हुए कहा—माँ जब स आईं, तभी से पूछ रही है, उनकी रीढ म दर्द हो रहा है। आपसे उनसे भेट नही हुई क्या ?

जी नही, मैंन समझा, यही हागी। फिर जब यहाँ चाय मिलने का भरोसा था, ता थोडा यही ठहरना अच्छा हुआ—कहकर अनवरी मुस्कराने लगी।

इन्द्रदेव न साधारण हँसी हँसते हुए कहा—अच्छी बात है, चाय पी लीजिए। चौबेजी आपको वहाँ पहुँचा देगे।

तीना चुपचाप चाय पीने लगे। इन्द्रदव ने कहा—चौबे आज तुम्हारी गुज-राती चाय बडी अच्छी रही। एक प्याला और ले आओ, और उसके साथ और भी कुछ

चौब साहन-पापडी के टुकडे और चायदानी लेकर जब आये, तो मिस अन-वरी उठकर खडी हो गई।

इन्द्रदेव न कहा—वाह, आप तो चली जा रही है। इसे भी तो चखिए।

शैला न मुस्करात हुए कहा—वैठिए भी, आप ता यहाँ पर मेरी ही महमान होकर रह सकेगी।

हाँ, इसको तो मैं भूल गई थी—कहकर अनवरी बैठ गई।

चौबेजी ने सबको चाय दे दी, और अब वह प्रतीक्षा कर रहे थे कि कब अनवरी चलेगी। पर अनवरी ता वहाँ स उठन का नाम ही न लेती थी। वह कभी इन्द्रदेव और कभी शैला को देखती, फिर सन्ध्या की आने वाली कालिमा की प्रतीक्षा करती हुई नीले आकाश से आँख लडान लगती।

उधर इन्द्रदेव इस बनावटी सन्नाटे स ऊब चले थे। सहसा चौबेजी न कहा—

सरकार ! वह बुड्ढा आया है, उसकी कहानी कब सुनिएगा ? मैं लालटेन लेता आऊँ ?

फिर अनवरी की ओर देखते हुए कहने लगे—अभी आपको भी छोटी कोठी मे पहुँचाना होगा।

अनवरी को जैसे धक्का लगा। वह चटपट उठकर खडी हो गई। चौबेजी उसे साथ लेकर चले।

इन्द्रदेव ने गहरी साँस लेकर कहा—शैला !

क्या इन्द्रदेव ?

माँ से भेट करोगी ?

चलूँ ?

अच्छा, कल सवेरे !

इन्द्रदेव की माता श्यामदुलारी पुरान अभिजात-कुल की विधवा हैं। प्राय बीमार रहा करती हैं। किन्तु मुख-मडल पर गर्व की दीप्ति आज्ञा देने की तत्परता और छिपी हुई सरल दया भी अकित है ? वह सरकार है। उनके आस-पास अनावश्यक गृहस्थी के नाम पर जुटाई गई अगणित सामग्री का बिखरा रहना आवश्यक है। आठ से कम दासियो से उनका काम चल ही नही सकता। दो पुजारी और ठाकुरजी का सम्भार अलग। इन सबके आज्ञा-पालन के लिए कहारो का पूरा दल। बहँगी पर गगाजल और भोजन का सामान ढोते हुए कहारो का आना-जाना—श्यामदुलारी की आँख सदैव देखना चाहती थी।

बेटा विलायत से लौट आया है। एक दिन उनसे मिलकर उनकी चरण-रज लेकर वह छावनी मे चला आया और यहा रहने लगा।

लोग कहते है कि इन्द्रदेव के कानो म जब यह समाचार किसी मतलब से पहुँचा दिया गया कि चरण छूकर आपके चले आने पर माताजी ने फिर से स्नान किया, तो फिर वह मकान पर न ठहर सके।

किन्तु श्यामदुलारी की प्रकृति ही ऐसी है। उसने ऐसा किया हो, तो कोई आश्चर्य नही। तब भी श्यामदुलारी को तो यही विश्वास दिलाया गया कि—साथ म मेम नही आई है !

श्यामदुलारी अपने बेटे को सम्भालना चाहती थी। बेटी माधुरी से पूछकर यही निश्चित हुआ कि सब लोग छावनी पर ही कुछ दिन चलकर रहे। वही इन्द्रदेव को सुधार लिया जायगा।

माधुरी घर की प्रबधकर्त्री है। वह दक्ष, चिडचिडे स्वभाव की सुन्दरी युवती

है। माता श्यामदुलारी भी उसके अनुशासन को मानती हैं और भीतर ही भीतर दबती भी हैं।

माधुरी का पति उसकी खोज-खबर नहीं लेता। उसे लेने की आवश्यकता ही क्या? माधुरी धनी घर की लाडली बेटी है। इसलिए बाबू श्यामलाल को इस अवसर से लाभ उठाने की पूरी सुविधा है।

श्यामदुलारी, बेटी और दामाद दोनों को प्रसन्न रखने की चेष्टा में लगी रहती हैं। बहुत बुलाने पर कभी साल भर में बाबू श्यामलाल कलकत्ता से दो-तीन दिन के लिए चले आते हैं। उनका व्यवसाय न नष्ट हो जाय, इसलिए जल्द चले जाते हैं—अर्थात् रेस की टीप, बगीचों के जुए, स्टीमरों की पार्टियाँ—और भी कितने ही ऐसे काम हैं, जिनमें चूक जाने से बड़ी हानि उठाने की संभावना है।

माधुरी शासन करने की क्षमता रखती है। भाई इन्द्रदेव पढ़ते थे, इसलिए माता की रुग्णावस्था में घर-गृहस्थी का बोझ दूसरा कौन सम्हालता?

माधुरी की अभिभावकता में माता श्यामदुलारी सोती है—सपना देखती है। इसलिए माधुरी भी साथ ही आई हैं। चौकी पर मोटे-से गद्दे पर तकिया सहारे बैठी वह कुछ हिसाब देख रही थी। पेट्रोल-लैम्प के तीव्र प्रकाश में उसकी उठी हुई नाक की छाया दीवार पर बहुत लम्बी-सी दिखाई पड़ती है।

मलिया बड़ी नटखट छोकरी है। वह पान का डब्बा लिये हुए, उस छाया को देखकर, जोर से हँसना चाहती है, पर माधुरी के डर से अपने ओठों को दाँत से दबाये चुपचाप खड़ी है। मिस अनवरी की छाया से वह चौंक उठी। उसने चुलबुलेपन से कहा—मेम साहब, सलाम!

माधुरी ने सिर उठाकर देखा और कहा—आइए, हम लोग बड़ी देर से आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं। माँ का दर्द तो बहुत बढ़ गया है।

माधुरी के पास ही बैठते हुए अनवरी ने—बीबी, तुमको देखने के लिए जी ललचाया रहता है, माँ को तो देखूँगी ही—कहकर उसके हाथों को दबा दिया।

माधुरी ने झेंपकर कहा—आहा! तुम तो मेम और साहब दोनों ही हो न? अच्छा, यह तो बताओ, तुम्हारे ठहरने का क्या प्रबन्ध करूँ? आज रात को तो मोटर से शहर लौट जाने न दूँगी। अभी माँ पूजा कर रही है, एक घंटे में खाली होगी, फिर घंटा उनको देखने में लग जायगा। बजेगा दो और जाना है तीस मील! आज रात तो तुमको रहना ही होगा।

अनवरी ने मुस्कराते हुए कहा—सो तो बीबी, तुम्हारी भाभी ने मुझे न्योता ही दिया है—

माधुरी क्षण-भर के लिए चुप हो गई। फिर बोली—अनवरी, ऐसी दिल्लगी न करो, यह बात मुझे ही नहीं, घर भर को खटक रही है। लेकिन भाई साहब तो कहते हैं कि वह हमारी दोस्त है।

हाँ—बीबी, दोस्ती नहीं तो क्या दुश्मनी से कोई इतना बड़ा

माधुरी ने भीतर के कमरे की ओर देखते हुए उसके मुँह पर हाथ रख दिया, और धीरे धीरे कहने लगी—प्यारी अनवरी! क्या इस चुड़ैल से छुटकारा पाने का कोई उपाय नहीं? हम लोग क्या करें? कोई बस नहीं चलता।

धीरे-धीरे सब हो जायगा। लेकिन तुम्हें बुरा न लगे, तो मैं एक बात पूछ लूँ।

क्या?

कुँवर साहब इससे ब्याह कर लें, तो तुम्हारा क्या?

ऐसा न कहो अनवरी!

तुम्हारी माँ तो फिर तुमको ही

उँह, तुम क्या बक रही हो!

अच्छा तो मैं कुछ दिन यहाँ रहूँ तो

तो रहो न मेरी रानी।

४

हाथ-मुँह धोकर मुलायम तौलिये से हाथ पोछती हुई अनवरी बडे-से दर्पण के सामने खडी थी। शैला अपन साफा पर बैठी हुई रेशमी रूमाल पर कोई नाम कसीदे से काढ रही थी। अनवरी सहसा चचलता से पास जाकर उन अक्षरो को पढने लगी। शैला ने अपनी भोली आँखा को एक बार ऊपर उठाया, सामने से सूर्योदय की पीली किरणो ने उन्हे धक्का दिया, वे फिर नीचे झुक गई। अनवरी न कहा—मिस शैला! क्या कुँवर साहब का नाम है?

जी—नीचा सिर किय हुए शैला ने कहा।

क्या आप राज सवेरे एक रूमाल उनको देती है? यह तो अच्छी बाहनी है!—कहकर अनवरी खिलखिला उठी।

शैला को उसकी यह हँसी अच्छी न लगी। रात-भर उसे अच्छी नीद भी न आई थी। इन्द्रदेव न अपनी माता से उसे मिलाने की जो उत्सुकता नही दिखलाई, उल्टे एक ढिलाई का आभास दिया, वहा उसे खटक रहा था। अनवरी ने हँसी करके उसको चौकाना चाहा, किन्तु उसके हृदय म जैसे हँसने की सामग्री न थी?

इन्द्रदेव ने कमरे के भीतर प्रवेश करते हुए कहा—शैला! आज तुम टहलने नही जा सकी? मुझे ता आज किसानो की बातो स छुट्टी न मिलेगी। दिन भी चढ रहा है। क्या न मिस अनवरी को साथ लेकर घूम आओ!

अनवरी न ठाट से उठकर कहा—आदावअर्ज है कुँवर साहब! बडी खुशी स! चलिए न! आज कुँवर साहब का काम मै ही करूँगी!

शैला इस प्रगल्भता से ऊपर न उठ सकी। इन्द्रदेव और अनवरी को आत्म-समर्पण करते हुए उसन कहा—अच्छो यात है, चलिये। इन्द्रदव बाहर चले गये।

खेता म अकुरा की हरियाली फैली पडी थी। चोखूटे, तिकाने, और भी कितने आकारा के टुकडे, मिट्टी की मडा से अलगाय हुए, चारों आर समतल म फैले थे। बीच-बीच म आम, नीम और महुए के दो-एक पड जैस उनकी रख-

वाली के लिए खडे थे। मिट्टी की सँकरी पगडडी पर आगे शैला और पीछे-पीछे अनवरी चल रही थी। दोनो चुपचाप पैर रखती हुई चली जा रही थी। पगडडी से थोडी दूर पर एक झापडी थी, जिस पर लौकी और कुँभडे की लतर चढी थी। उसम से कुछ बात करने का शब्द सुनाई पड रहा था। शैला उसी आर मुडी। वह झोपडी के पास जाकर खडी हो गई। उसने देखा, मधुवा अपनी टूटी खाट पर बैठा हुआ बञ्जो स कुछ कह रहा है। बञ्जो न उत्तर में कहा—तब क्या करोग मधुबन ! अभी एक पानी चाहिए। तुम्हारा आलू साराकर ऐसा ही रह जायगा ? ढाई रुपये के विना ! महँगू महतो उधार हल नही दगे ? मटर भी सूख जायेगी !

अरे आज मैं मधुबन कहाँ मे बन गया रे बञ्जो ! पीट दूँगा जो मुझे मधुवा न कहेगी। मैं तुझे तितली कहकर न पुकारूँगा। सुना न ? हल उधार नही मिलेगा, महतो ने साफ-साफ कह दिया है। दस बिस्से मटर और दस बिस्से आलू के लिए खेत मैंने अपनी जोत मे रखकर बाकी दो बीघे जौ-गेहूँ बोने के लिए उसे साझे मे दे दिया है। यह भी खेत नही मिला, इसी की उसे चिढ है। कहता है कि अभी मेरा हल खाली नही है।

तब तुमने इस एक बीघे को भी क्या नही दे दिया !

मैंने सोचा कि शहर तो मैं जाया ही करता हूँ। नया आलू और मटर वहाँ अच्छे दामो पर बेचकर कुछ पैसे भी लूँगा, और बञ्जो ! जाडे मे इस झापडी म बैठे-बैठे रात को उन्हे भून कर खाने मे कम सुख ता नही है ! अभी एक कम्बल लेना जरूरी है।

तो बापू से कहते क्या नही ? वह तुम्हे ढाई रुपया दे देंगे।

उनसे कुछ माँगूँगा, तो यही समझेंगे कि मधुवा मेरा कुछ काम कर देता है, उसी की मजूरी चाहता है। मुझे जो पढ़ाते हैं, उसकी गुरु-दक्षिणा मैं उन्हे क्या देता हूँ ? तितली ! जो भगवान करेंगे, वही अच्छा होगा।

अच्छा तो मधुवन ! जाती हूँ। अभी बापू छावनी स लौटकर नही आय। जी घबराता है।

यह कहकर जब वह लौटने लगी, ता मधुबन ने कहा—अच्छा, फिर आज स मैं रहा मधुबन और तुम तितली। यही न ?

दोनो की आँखें एक क्षण के लिए मिली—स्नेहपूर्ण आदान-प्रदान करने क लिए। मधुबन उठ खडा हुआ, तितली बाहर चली आई। उसने देखा, शैला और अनवरी चुपचाप खडी हैं। वह सकुच गई। शैला ने सहज मुस्कुराहट से कहा—तब तुम्हारा नाम तितली है क्या ?

हाँ—कहकर तितली ने सिर झुका लिया। आज जैसे उसे अकेले मे मधुवन से बातें करते हुए समग्र ससार ने देखकर व्यग मे हँस दिया हो। वह सकोच मे गडी जा रही थी। शैला ने उसकी ठोढी उठाकर कहा—लो, यह पाँच रुपये तुम्हारे उस दिन की मजूरी के हैं।

मैं, मैं न लूँगी। बापू बिगडेंगे।

वह चचल हो उठी। किन्तु शैला कब मानने वाली थी। उसन कहा—देखा इसमे ढाई रुपये तो मधुवन को दे दो, वह अपना खत सीच ले और बाकी अपने पास रख लो। फिर कभी काम देगा।

अव मधुवन भी निकल आया था। वह विचार-विमूढ था, क्या कहे! तब तक तितली को रुपया न लेते देखकर शैला ने मधुवन के हाथ मे रुपया रख दिया, और कहा—बाकी रुपया जब तितली माँगे तो दे देना। समझा न? मैं तुम लोगो को छावनी पर बुलाऊँ, तो चले आना।

दोनो चुप थे।

अनवरी अब तक तो चुप थी, किन्तु उसके हृदय ने इस सौहार्द को अधिक सहने से अस्वीकार कर दिया। उसने कहा—हो चुका, चलिये भी। धूप निकल आई है।

शैला अनवरी के साथ घूम पडी। उसके हृदय म एक उल्लास था। जैस कोई धार्मिक मनुष्य अपना प्रात कृत्य समाप्त कर चुका हो। दोना धीरे-धीरे ग्राम-पथ पर चलने लगी।

अनवरी न धीरे मे प्रसग छेड दिया—मिस शैला! आपको इन दिहाती लोगा से बातचीत करन म बडा सुख मिलता है।

मिस अनवरी! सुख! अरे मुझे तो इनके पास जीवन का सच्चा स्वरूप मिलता है, जिसमे ठोस मेहनत, अटूट विश्वास और सन्तोष से भरी शाति हँसती खेलती है। लन्दन की भीड से दबी हुई मनुष्यता मे मैं ऊब उठी थी, और सबस बडी बात तो यह है कि मैं दुख भी उठा चुकी हूँ। दुखी के साथ दुखी की सहानुभूति होना स्वाभाविक है। आपको यदि इस जीवन मे सुख-ही-सुख मिला है तो

नही-नही, हम लोगो को सुख-दुख जीवन से अलग होकर कभी दिखाई नही पडा। रुपयो की कमी ने मुझे पढाया और मैं नर्स का काम करने लगी। जब अस्पताल का काम छोडकर अपनी डाक्टरी का धन्धा मैंने फैलाया, तो मुझे रुपयो की कमी न रही। पर मुझे तो यही समझ पडता है कि मेहनत-मजूरी करते हुए अपने दिन बिता लेना, किसी के गले पडने से अच्छा है।

अनवरी यह कहते हुए शैला की ओर गहरी दृष्टि से देखन लगी । वह उसकी बगल मे आ गई थी । सीधा व्यग्य न खुल जाय, इसलिए उसने और भी कहा—हम मुसलमानो को तो मालिक की मर्जी पर अपने को छाड देना पडता है फिर मुख-दुख की अलग-अलग परख करने की किसको पडी है ।

शैला ने जैसे चौंककर कहा—तो क्या स्त्रियाँ अपने लिए कुछ भी नही कर सकती ? उन्हे अपने लिए सोचने का अधिकार भी नही है ?

बहुत करोगी मिस शैला, तो यही कि किसी को अपने काम का बना लागी । जैसा सब जगह हम लोगो की जाति किया करती है । पर उसमे दुख होगा कि मुख, इसका निपटारा तो वही मालिक कर सकता है ।

शैला न जाने कितनी बात सोचती हुई चुप हो गई । वह केवल इस व्यग्य पर विचार करती हुई चलने लगी । उत्तर देने के लिए उसका मन बेचैन था, पर अनवरी को उत्तर देने म उस बहुत-सी बाते कहनी पडेंगी । वह क्या सब कहने लायक हैं ? और यह प्रश्न भी उसके मन मे आने लगा कि अनवरी कुछ अभि-प्राय रखकर तो बात नही कर रही है । उसको भारतीय वायुमडल का पूरा ज्ञान नही था । उसन देखा था केवल इन्द्रदेव का, जिसमे श्रद्धा और स्नेह का ही आभास मिला था । सन्देह का विकृत चित्र उसके सामने उपस्थित करके अपने मन म अनवरी क्या साच रही है, यही धीरे धीरे विचारती हुई वह छावनी की ओर लौटने लगी ।

अनवरी ने सौहार्द बढाने के लिए कुछ दूसरा प्रसग छेडना चाहा, किन्तु वह सौजन्य के अनुरोध से सक्षिप्त उत्तर मात्र देती हुई छावनी पर पहुँची ।

अभी इन्द्रदेव का दरबार लगा हुआ था । आरामकुर्सी पर लेटे हुए वह कोई कागज देख रहे थे । एक बडी-सी दरी बिछी थी । उस पर कुछ किसान बैठे थे । इन लोगो के जाते ही दा कुर्सियाँ और आ गईं । पर इन्द्रदेव न अपने तहसील-दार से कहा—इस पोखरी का झगडा बिना पहले का कागज देखे समझ म नही आवेगा । इसे दूसरे दिन के लिए रखिए ।

तहसीलदार इन्द्रदेव के बाप के साथ काम कर चुका था । वह इन्द्रदेव स काम लेना चाहता था । उसने कहा—लेकिन दो-एक कागज तो आज ही देख लीजिए उनकी बेदखली जल्दी होनी चाहिए ।

अच्छा, मैं चाय पीकर अभी आता हूँ । —कहकर इन्द्रदेव शैला और अनवरी के साथ कमरे म चले गये ।

बुड्ढे से अब न रहा गया । उसने कहा, तहसीलदार साहब, मैं कल से यहाँ बैठा हूँ । मुझे क्यो तग किया जा रहा है ।

तहसीलदार ने चश्मे के भीतर से आंख तरेरते हुए कहा—रामनाथ हो न ? तंग किया जा रहा है ! हूँ ! बैठो अभी। दस बीघे की जोत बिना लगान दिये हड़प किये बैठे हो और कहते हो, मुझे तंग किया जा रहा है।

क्या कहा ? दस बीघे ! अरे तहसीलदार साहब, क्या अब जंगल-परती में भी बैठने न दोगे ? और वह तो न जाने कब से कृष्णार्पण लगी हुई बनजरिया है ! वही तो बची है, और तो सब आप लोगों के पेट में चला गया। क्या उसे भी छीनना चाहते हो ?

तहसीलदार चुपचाप उसे घूरने लगा।

इन्द्रदेव शैला के साथ बाहर चले आये। अनवरी के लिए दूर से माधुरी की भेजी हुई लौंडी खड़ी थी। वह उसके साथ छोटी कोठी में चली गई। इन्द्रदेव ने बुड्ढे को देखकर तहसीलदार को संकेत किया। तहसीलदार अभी बुड्ढे रामनाथ की बात नहीं छेड़ना चाहता था। किन्तु इन्द्रदेव के संकेत से उसे कहना ही पड़ा—इसका नाम रामनाथ है। यह बनजरिया पर कुछ लगान नहीं देता। एकरेज जो लगा है, वह भी नहीं देना चाहता। कहता है—कृष्णार्पण माफी पर लगान कैसा ?

इन्द्रदेव ने रामनाथ को देखकर पूछा—क्यों, उस दिन हम लोग तुम्हारी ही झोपड़ी पर गये थे ?

हाँ सरकार !

तो एकरेज तो तुमको देना ही चाहिए। सरकारी मालगुजारी तो तुम्हारे लिए हम अपने आप से नहीं दे सकते।

तहसीलदार से न रहा गया, बीच ही में बोल उठा—अभी तो यह भी नहीं मालूम कि यह बनजरिया का होता कौन है। पुराने कागजों में वह थी देवनन्दन के नाम। उसके मर जाने पर बनजरिया पड़ी रही। फिर इसने आकर उसमें आसन जमा लिया।

बुड्ढा झनझना उठा। उसने कहा—हम कौन हैं, इसको बताने के लिए थोड़ा समय चाहिए सरकार ! क्या आप सुनेंगे ?

शैला ने अपने संकेत से उत्सुकता प्रकट की। किन्तु इन्द्रदेव ने कहा—चलो, अभी माताजी के पास चलना है। फिर किसी दिन सुनूंगा। रामनाथ आज तुम जाओ, फिर मैं बुलाऊँगा, तब आना।

रामनाथ ने उठकर कहा—अच्छा सरकार !

चौबेजी बटुआ लिये हुए पान मुँह में दाबे आकर खड़े हो गये। उनके मुख पर एक विचित्र कुतूहल था। वह मन-ही-मन सोच रहे थे—आज शैला बड़ी

सरकार के सामने जायगी। अनवरी भी वही है, और वही है बीबीरानी माधुरी! हे भगवान्!

शैला, इन्द्रदेव और चौबेजी छोटी कोठी की ओर चले।

मधुबन के हाथ में था रुपया और पैरों में फुरती, वह महँगू महतो के खेत पर जा रहा था। बीच में छावनी पर से लौटते हुए रामनाथ से भेंट हो गई। मधुबन के प्रणाम करने पर रामनाथ ने आशीर्वाद देकर पूछा—कहाँ जा रहे हो मधुबन?

आज पहला दिन है, बाबाजी ने उसे मधुवा न कहकर मधुबन नाम से पुकारा। वह भीतर-ही-भीतर जैसे प्रसन्न हो उठा। अभी-अभी तितली से उसकी हृदय की बातें हो चुकी थीं। उसकी तरी छाती में भरी थी। उसने कहा—बाबाजी, रुपया देने जा रहा हूँ। महँगू से पुरवट के लिए कहा था—आलू और मटर सींचने के लिए। वह बहाना करता था, और हल भी उधार देने से मुकर गया। मेरा खेत भी जोतता है और मुझी से बढ़-बढ़कर बात करता है।

रामनाथ ने कहा—भला रे, तू पुरवट के लिए तो रुपया देने जाता है—सिंचाई होगी, पर हल क्या करेगा? आज-कल कौन-सा नया खेत जोतेगा?

मधुबन ने क्षण-भर सोचकर कहा—बाबाजी, तितली ने मुझसे चार पहर के लिए कहीं से हल उधार माँगा था। सिरिस के पेड़ के पास बनजरिया में बहुत दिनों से थोड़ा खेत बनाने का वह विचार कर रही है, जहाँ बरसात में बहुत-सी खाद भी हम लोगों ने डाल रखी थी। पिछाड़ हो गी तो क्या, गोभी बोने को

दुत पागल! तो इसके लिए इतने दिनों तक कानाफूसी करने की कौन-सी बात थी? मुझसे कहती! अच्छा, तो रुपया तुझे मिला?

हाँ बाबाजी, मेम साहब ने तितली को पाँच रुपया दिया था, वही तो मेरे पास है।

मेम साहब ने रुपया दिया था! बञ्जो को? तू कहता क्या है!

हाँ, मेरे ही हाथ में तो दिया। वह तो लेती न थी। कहती थी, बापू बिगड़ेंगे! किसी दिन मेम साहब का उसने कोई काम कर दिया था, उसी की मजूरी बाबाजी! मेम साहब बड़ी अच्छी हैं।

रामनाथ चुप होकर सोचने लगा। उधर मधुबन चाहता था, बुड्ढा उसे छुट्टी दे। वह खड़ा-खड़ा ऊबने लगा। उत्साह उसे उकसाता था कि महँगू के पास पहुँचकर उसके आगे रुपये फेंक दे और अभी हल लाकर बञ्जो का छोटा-सा

गोभी का खेत बना दे। बुड्ढा न जाने कहाँ से छींक की तरह उसके मार्ग में बाँधा-सा आ पहुँचा।

रामनाथ सोच रहा था छावनी की बात! अभी-अभी तहसीलदार ने जो रूप दिखलाया था, वही उसके सामने नाचने लगा था। उसे जैसे बनजरिया की काया-पलट होने के साथ ही अपना भविष्य उत्पातपूर्ण दिखाई देने लगा। तितली उसमें नया खेत बनाने जा रही है। तब भी न जाने क्या सोच कर उसने कहा—जाओ मधुबन, हल ले आओ।

मधुबन तो उछलता हुआ चला जा रहा था। किन्तु रामनाथ धीरे-धीरे बनजरिया की ओर चला।

तितली गायों को चराकर लौटा ले जा रही थी। मधुबन तो हल ले आने गया था। वह उसको अकेली कैसे छोड़ देती। धूप कड़ी हो चली थी। रामनाथ ने उसे दूर से देखा। तितली अब दूर से पूरी स्त्री-सी दिखाई पड़ती थी।

रामनाथ एक दूसरी बात सोचने लगा। बनजरिया के पास पहुँचकर उसने पुकारा—तितली!

उसने लौट कर प्रफुल्ल बदन से उत्तर दिया—'बापू!'

५

श्यामदुलारी आज न जान कितनी बाते साचकर बैठी थी—लड़का ही तो है, उसे दो बात खरी-खोटी मुनाकर डाट डपटकर न रखने से काम नही चलेगा—पर विलायत हो आया है। बारिस्टरी पास कर चुका है। कही जवाब दे बैठा ता! अच्छा आज वह मम की छोकरी भी साथ आवगी। इस निर्लज्जता का कोई ठिकाना है! कही ऐसा न हो कि साहब की वह कोई निकल आवे! तब उसे कुछ कहना तो ठीक न होगा। अभी दा महीने पहले कलेक्टर साहब जब मिलन आये थे, तो उन्हान कहा था—'रानी साहब, आपके ताल्लुके म नमूने क गाव बसाने का बन्दोबस्त किया जायगा। इसम बडी-बडी खतियाँ, किसाना के बक और सहकार की सस्थाएँ खुलेगी। सरकार भी मदद दगा।' तब उसको कुछ कहना ठीक न होगा। माधुरी की क्या राय है? वह तो कहती है—'मा, जाने दो, भाई साहब को कुछ मत कहो?' ता क्या वह अपने मन से बिगडता चला जायगा। सो नहीं हो सकता। अच्छा, जान दा।

माधुरी के मन म अनवरी की बात रह-रहकर मरोर उठती थी। इन्द्रदव क्या यह घर सम्हाल सकेंगे? यदि नही, तो मैं क्यो बनाने की चेष्टा करूँ।

उसके मन मे तेरह बरस के कृष्णमोहन का ध्यान आ गया। थियासाफिकल स्कूल मे वह पढता है। पिता बाबू श्यामलाल उसकी ओर से निश्चिन्त थे। हाँ, उसके भविष्य की चिन्ता तो उसकी माता माधुरी को ही थी। तब भी वह जैस अपने को धोखे म डालने के लिए कह बैठती—जैसा जिसके भाग्य म होगा, वही होकर रहेगा।

अनवरी इस कुटुम्ब की मानसिक हलचल म दत्तचित्त होकर उसका अध्ययन कर रही थी। न जान क्या, तीना चुप हाकर मन-ही-मन सोच रही थी। पलँग पर श्यामदुलारी मोटी-सी तकिया क सहारे बैठी थी। चौकी पर चाँदनी बिछी थी। माधुरी और अनवरी वही बैठी हुई एक-दूसरे का मुँह दख रही थी। तीन-चार कुर्सिया पडी थी। छाटी कोठी का यह बाहरी कमरा था।

श्यामदुलारी यहीं पर सबसे बात करती, मिलता-जुलती थी, क्योंकि उनका निज का प्रकोष्ठ तो देव-मन्दिर के समान पवित्र, अस्पृश्य और दुर्गम्य था ? बिना स्नान किये—कपडा बदले, वहाँ कौन जा सकता था !

बाहर पैरों का शब्द सुनाई पडा । तीनों स्त्रियाँ सजग हो गईं, माधुरी अपनी साडी का किनारा सँवारने लगी । अनवरी एक उँगली से कान के पास के बालों को ऊपर उठाने लगी । और, श्यामदुलारी थोडा खाँसने लगी ।

इन्द्रदेव शैला और चौबेजी के साथ भीतर आये । माता को प्रणाम किया । श्यामदुलारी ने 'सुखी रहो' कहते हुए देखा कि वह गोरी मेम भी दोनों हाथों की पतली उँगलियों में बनारसी साडी का सुनहला अंचल दबाये नमस्कार कर रही है ।

अनवरी उठकर खडी हो गई । माधुरी चौकी पर ही थोडा खिसक गई । माता ने बैठने का संकेत किया । पर वह भीतर से शैला से बोलने के लिए उत्सुक थी ।

इन्द्रदेव ने कहा—मिस अनवरी ! माँ का दर्द अभी अच्छा नहीं हुआ । इसके लिए आप क्या कर रही हैं । क्यों माँ, अभी दर्द में कमी तो नहीं है ?

है क्यों नहीं बेटा ! तुमको देखकर दर्द दूर भाग जाता है । —श्यामदुलारी ने मधुरता से कहा ।

तब तो भाई साहब आप यहाँ माँ के पास रहिए । दर्द पास न आवेगा । —माधुरी ने कहा ।

लेकिन बीबीरानी ! और लोग क्या करेंगे ? कुँवर साहब यहीं घर में बैठ रहेंगे, तो जो लोग मिलने-जुलने वाले हैं वे कहाँ जायँगे !
—अनवरी ने व्यंग से कहा ।

यह बात श्यामदुलारी को अच्छी न लगी । उन्होंने कहा—मैं तो चाहती हूँ कि इन्द्र मेरी आँखों से ओझल न हो । वह करता ही क्या है मिस अनवरी ! शिकार खेलने में ज्यादा मन लगाता है । क्यों, विलायत में इसकी वडी चाल है न ! अच्छा बेटा ! यह मेम साहब कौन हैं ? इनका तो तुमने परिचय ही नहीं दिया ।

माँ, इगलैण्ड में यही मेरा सब प्रबन्ध करती थीं । मेरे खान-पीने का, पढने-लिखने का, कभी जब अस्वस्थ हो जाता तो डाक्टरों का, और रात-रात भर जागकर नियमपूर्वक दवा देने का काम यही करती थीं । इनका मैं चिर-ऋणी हूँ । इनकी इच्छा हुई कि मैं भारतवर्ष देखूँगी ।

इसी से चली आई है न ! अच्छा बेटा ! इनको कोई कष्ट तो नहीं ? हम

लाग इनक शिष्टाचार स अपरिचित ह। चाबजा! आप ही न मम साहब के लिए ओ! इनका नाम क्या है यह पूछना ता मैं भूल ही गई।

मरा नाम शैला' है मा जी! —शैला की बोली घण्टी की तरह गूँज उठी! श्यामदुलारा के मन म ममता उमड आई। उन्होंने कहा—चौबेजी! देखिए, इनका कोई कष्ट न होने पावे। इन्द्रदेव तो लडका है, वह कभी काहे को इनकी सुविधा की खाज-खबर लेता हागा।

जी सरकार! मम साहब बडी चतुर है। वह तो कुँवर साहब का प्रबन्ध स्वय आदेश देकर कराती रहती हैं। हम लोग ता अभी सीख रहे हैं। बडे सरकार के समय म जा व्यवस्था थी, उसी से तो अब काम नही चल सकता!

इन्द्रदेव घबरा गये थ। उन्हे कभी चौबे कभी अनवरी पर क्राध आता, पर वह बहाली देते रहे।

माधुरी न कहा—अच्छा ता भाई साहब! अभी शहर चलन की इच्छा नही है क्या? अब तो यहाँ कडी दिहाती सर्दी पडेगी।

नही, अभी तो यही रहूँगा। क्या मा, यहा काई कष्ट तो नही ह?—इन्द्रदेव ने पूछा।

अनवरी ने कहा—इस छाटा काठी म साफ हवा कम आती है। और ता काई हाँ, बीवीरानी, मैं यह ता कहना भूल ही गई थी कि मुझे आज शहर चला जाना चाहिए। कई रोगियो को आज ही तक क लिए दवा दे आई हूँ। मोटर ता मिल जायगी न?

ठहरिए, आप ता न जान क्या घबराई है। अभी ता माँ का दवा माधुरी की बात पूरी न हान पाई कि अनवरी ने कहा—दवा खायेंगी तो नही, यही लगाने की दवा है। लगाते रहिए, मुझे रोक कर क्या कीजिएगा। हाँ, यहाँ साफ हवा मिलनी चाहिए, इसके लिए आप सोचिए।

चौबेजी बीच म बाल उठे—तो बडी सरकार उस काठी म रह, खुल हुए कमरे और दालान उसम तो हैं ही।

बालने के लिए तो बाल गये, पर चौबेजी कई बाते साचकर दाँत से अपनी जीभ दबान लगे। उनकी इच्छा तो हुई कि अपने कान भी पकड ल, पर साहस न हुआ।

इन्द्रदव चुप रह। शैला न कहा—मा जी! बडी काठी म चलिए। यहाँ न रहिए। —वह बचारी भूल गई कि श्यामदुलारी उसक साथ कैस रहगी!

श्यामदुलारा न इन्द्रदव का चहरा दखा। वह उतरा हुआ ता नही था, किन्तु उस पर उत्साह भी न था। माधुरी न शैला को स्वय कहत हुए जब सुना,

ता वह वाली—अच्छा तो है माँ ! मम साहब और अनवरी बीबी इसम आ जायँगी। हम लाग वहीं चलकर रह।

अनवरी न कहा—मुझे एक दिन म लौट जान दीजिए।

श्यामदुलारी न दखा कि काम तो हा चला है, अब इस बात का यही रोक देना चाहिए। वह बोली—बेटा ! कलेक्टर साहब ने नमूने का गाँव बसान का जा नक्शा भेजा था, उसे तुमन देखा ?

नही माँ, अभी तो नही—शैला क पास वह है। इन्ह गाँवा से बडा प्रेम है। मैन इन्ही के ऊपर यह भार छोड दिया है। इसके लिए यही एक योजना तैयार करने मे लगी हैं।

श्यामदुलारी सावधान हा गई। शैला न कहा—माँ जी, अभी तो मैं गाँवो म जाकर यहाँ की बाते समझन लगी हूँ। फिर भी बहुत-सी बात अभी नही समझ सकी हूँ। किसी दिन आपको अवकाश रहे, तो मैं नक्शा ले आऊँ ?

चौबे जी न एक बार माधुरी की ओर दखा और माधुरी ने अनवरी का। तीना का भीतर-ही-भीतर एक दल-सा बँध गया। इधर माँ, बेटे की ओर होन लगी—और शला, जो व्यवधान था, उसकी खाई म पुल बनाने लगी।

श्यामदुलारी का हृदय, बटे को काम की बाता म मन लगाते दख कर, मिठास स भरन लगा। उन्होन कहा—अच्छा, तो मैं अब पूजा करने जाता हूँ। बीबी ! मिस अनवरी को जान दो, कल आ जायँगी। हाँ, एक बात तो मैं भूल हा गई थी—मिस अनवरी, आप आने लगिए, तो कृष्णमोहन को छुट्टी दिलाकर साथ लिवाते आइएगा।

श्यामदुलारी न माधुरी को भी प्रसन्न करने का उपाय निकाल ही लिया। अनवरी ने कहा—बहुत अच्छा।

शैला ने कहा—मै आपके पास आकर कभी-कभी बैठा करूँ, इसके लिए क्या आप मुझे आज्ञा दगी माँ जी !

क्यो नही, आपका घर है, चाहे जब चली आया कर। मुझे तो अपन दश की कहाना आपने सुनाई ही नही !

नही, मैं इसलिए आज्ञा माँगती थी कि मेरे आन स आपका कष्ट न हा। मुझे अलग कुर्सी पर बैठाया कीजिए। मै आपका छुऊँगी नही !—शैला न बडी सरलता से कहा।

श्यामदुलारी न हँसकर कहा—वाह ! यह तो मरे सिर पर अच्छा कलक है। क्या मैं किसी का छूती नही ? आप आइए, मुझे आपकी बाते बडी मीठी लगती है।

इन्द्रदेव ने देखा कि उनके हृदय का बोझ टल गया—शैला ने मा के समीप पहुँचन का अपना पथ बना लिया। उन्होंने इसे अपनी विजय समझी। वह मन-ही मन प्रसन हो रह थे वि शैला ने उठते हुए नमस्कार करके कहा—माँ जी, मुझस भूल हा सकती है, अपराध नही। तब भी, आप लागा की स्नेह-छाया म मुझे सुख की अधिक आशा है।

श्यामदुलारी का स्नेह-सिक्त हृदय भर उठा। एक दूर देश की बालिका कितना मधुर हृदय लिये उनके द्वार पर खडी है।

श्यामदुलारी स्नान करने चली गईं।

इन्द्रदेव के साथ शैला धीरे धीरे बडी काठी की ओर चली जा रही थी। माटर के लिए चौबेजी गय थे, तब तक दालान म अनवरी से माधुरी कहने लगी—तुमन ठीक कहा था मिस अनवरी!

उसने माधुरी को अधिक खुलने का अवसर देत हुए कहा—मैने क्या ठीक कहा था?

यही, शैला क सम्बन्ध म

अनवरी गम्भीर बन गई। उसन कहा—बीबी रानी! तुम लोगो को इनसे कभी काम नही पडा है। ये सब जादूगर है। देखा न माजी को कैसा अपनी ओर ढुलका लिया—माम बन गई। क्या यो ही सात समुद्र तरह नदी पार करके यह आई है! और

पर तुमने भी मिस अनवरी! शैला को अच्छा एक उखाड दिया! थाडा-सा तो वह सोचेगी, बँगले से हटना उसे अखरेगा। क्यो?—बीच ही म माधुरी न कहा।

वह भी घुटी हुई है, कैसा पी गई! बीबी का कसक तो होगी ही! बीबी रानी, मैं तुमसे फिर कहती हूँ, तुम अपनी देखो। आपके भाई साहब तो नदी की बाढ म बह रहे हैं। मैं कल तो न आ सकूगी। हाँ, जल्दी आने की

नही-नही अनवरी! कल, कल तुमको अवश्य आना होगा। इस समय तुम्हारी सहायता की बडी आवश्यकता है। उस चुडैल को, जिस तरह हो, नीचा

माधुरी आगे कुछ न कह सकी, उसका क्रोध कपाला पर लाल हा रहा था।

मानव-स्वभाव है, वह अपन सुख का विस्तृत करना चाहता है। और भी, केवल अपन सुख स ही सुखी नही हाता, कभी-कभी दूसरा को दुखी करक, अप-मानित करके, अपने मान को, सुख को प्रतिष्ठित करता है।

माधुरी के मन म अनवरी के द्वारा जो आग जलाई गई ह, वह कई रूप

बदलकर उसक कोने-काने को झुलसान लगी है। उसके मन म लाभ ता जाग ही उठा था। अधिकारच्युत होने की आशका ने उस और भी सन्दिग्ध और प्रयत्नशील बना दिया। उसके गौरव की चादनी शैला की उषा म फीकी पडेगी ही, इसकी दृढ़ सम्भावना थी, और अब वह युद्ध क लिए तत्पर थी। चौबेजी को खीचन के लिए उसने मन-ही-मन सोच लिया! एक सम्मिलित कुटुम्ब म राष्ट्र-नीति न अधिकार जमा लिया। स्व-पक्ष और पर-पक्ष का सृजन होने लगा।

चौबेजी कम चतुर न थे। माधुरी को उन्हान अधिक समीप समझा। ढुल भी उसी ओर। मोटर लेकर जब वह आये, तो उन्होने कहा—बीबी रानी। हम लोगो न बडे सरकार का समय और दरबार देखा है। अब यह सब नही देखा जाता। तुम्ही बचाओगी ता यह राज बचगा, नही तो गया। मैं अब उसके लिए चाय बनाना नही चाहता! मुझे जवाब मिल जाय, यही अच्छा है।

मोटर पर बैठते हुए अनवरी न कहा—घबराइए मत चौबेजी, बीबी रानी आपके लिए कोई बात उठा न रखगी।

६

गगा की लहरियो पर मध्याह्न के सूय की किरणे नाच रही थी। उन्हे अपने चचल हाथो स अस्त-व्यस्त करती हुई, कमर-भर जल म खडी, मलिया छीटे उडा रही थी। करारे के ऊपर मल्लाहो की छोटी-सी बस्ती थी। सात घर मल्लाहो और तीन घर कहारो के थे। मलिया और रामदीन का घर भी वही था। दोपहर को छावनी मे छुट्टी लेकर, दोनो ही अपने घर आये थे। रामदीन करारे से उतरता हुआ कहने लगा—मलिया, मैं भी आया।

मलिया हँसकर बोली—मैं तो जाती हूँ।

जाओगी क्या ? वाह ?—कहते हुए रामदीन 'धम' से गगा मे कूद पडा।

थोडी दूर पर एक बुड्ढा मल्लाह वसी डाले बैठा था, उसने क्रोध से कहा—देखो रामदीन, तुम छावनी के नौकर हो, इसस मैं डर न जाऊँगा। मछली न फँसी, तो तुम्हारी बुरी गत कर दूँगा।

तैरते हुए रामदीन ने कहा—अरे क्यो बिगड रहे हो दादा ! आज कितने दिनो पर छुट्टी मिली है। ऊधम मचाने अब कहाँ आता हूँ।

तैरते हुए तीर की ओर लौटकर उसने मलिया के पास पहुँचने का ज्यो ही उपक्रम किया, वह गगा से निकलने लगी। रामदीन ने कहा—अरे क्या मैं काट लूगा ? मलिया, ठहर न !

वह रुक गई।

रामदीन न धीरे स पास आकर पूछा—क्यो रे, तेरी सगाई पक्की हो गई ?

उसने कहा—धत !

रामदीन न कहा—तो आज मैं तेरे चाचा स कहूँ कि

मलिया न बीच ही म बात काट कर कहा—देखो, मुझे गाली दोगे तो हाँ, कह देता हूँ।

क्या कह देती है ? क्या मुझे डराती है ? अब तो मुझे तेरा बीबी रानी का डर नही। मलिया, तू जानती है छोटी कोठी म मेम साहब जब से आई है, तब

मे मैं ही उनका खाना बनाता हूँ, चौबेजी का काम भी मैं ही करता हूँ ? अब तो

मम साहब के भरोसे कूद रहे हो न ! देखा तो तुम्हारी मेम साहब की दुर्दशा चार दिन म होती है । बीवी रानी

क्या बकती है ! चल, अपना काम देख ! वह तो कहती थी कि रामदीन, तुझको मैं सरकार से कहकर खेत दिलवा दूँगी । वही

चल, अपना मुँह देख, मुझस चला है सगाई करने ! तीन ही दिन म छोटी कोठी से भी तेरी मेम साहब भागती हैं । तब लेना खेत !

अरे तो क्या

आगे रामदीन कुछ न बोल सका, क्योकि एक गौर वर्ण की प्रौढा स्त्री धोती लिये हुए उत्तर की ओर से धीरे-धीरे गगा म उतर रही थी ।

उसे देखते ही दोनो की सिट्टी भूल गई । दोनो ही गगा जल मे से निकलकर उस अभिवादन करके भलेमानसो की तरह अपनी-अपनी धोती पहनने लगे ।

उस स्त्री के अग पर कोई आभूषण न था, और न तो कोई सधवा का चिह्न ! था केवल उज्ज्वलता का पवित्र तेज, जो उसकी मोटी-सी धोती के बाहर भी प्रकट था ।

एक पत्थर पर अपनी धोती रखते हुए उसने घूमकर पूछा—क्यो रे रामदीन, तुझे कभी घटे भर की भी छुट्टी नही मिलती ? आज अठवारो हो गया, कोई सौदा ले आना है । तेरी नानी कहती थी, आज रामदीन आने वाला है । सो तू आज आने पर भी यही धमाचौकडी मचा रहा है ?

मालकिन ! मै नहाकर कोट मे आ ही रहा था । यही मलिया बडी पाजी है, इसने धोती पर पानी के छीटे सरकार

रामदीन अपनी बनावटी बात को आगे न बढा सका । बीच ही म मलिया अपनी सफाई देती हुई बोल उठी—इसकी छाती फट जाय, झूठा कही का ! मालकिन, यह मुझको गाली दे रहा है । इसका घमड बढ गया है । मेम साहब का खानसामा बन गया है, तो चला है मुझसे सगाई करने !

मालकिन अपनी आती हुई हँसी को रोककर बोली—वह देख, इसकी नानी आ रही है, उसी स कह दे । मलिया, सचमुच रामदीन पाजी हो गया है ।

दोनो ने देखा, बुढिया—रामदीन की नानी—तावे का एक घडा लिये धीरे-धीरे आ रही है ।

मालकिन स्नान करन लगी । कभी-कभी स्नान करने के लिए वह इधर आ जाती, तो कई काम करती हुई जाती । भाई मधुबन के लिए मछली लेना और

मल्लाही-टोली की किसी प्रजा का सहेजकर गृहस्थी का और कोई काम करा लेना भी उनके नहाने का उद्देश्य होता।

उनको देखते ही बूढ़े मल्लाह ने अपनी बंसी खींची। मछली फँस चुकी थी।

वह स्नान करके सूर्य को प्रणाम करती हुई जब ऊपर आकर खड़ी हुईं तो मल्लाह ने मछली सामने लाकर रख दी। उन्होंने रामदीन से कहा— इसे लेता चल।

मलिया ने बुढ़िया के स्नान कर लेने पर उसके लाये हुए घड़े को भर लिया। मालकिन की गीली धोती लेकर बुढ़िया उनके साथ हो गई।

मल्लाह ने कहा—मालकिन, आज इस पाजी रामदीन को बिना मारे मैं न छोड़ता। आज कई दिन पर मैं मधुबन बाबू के लिए मछली फँसाने बैठा था, यह आकर ऊधम मचाने लगा। इसी की चाल से बड़ा-सा रोहू आकर निकल गया। आज लगा है छावनी की नौकरी करने, तो घमंड का ठिकाना ही नहीं। हम लोग आपकी प्रजा हैं मालकिन! यह बूढ़ा इस बात को नहीं भूल सकता। अभी कल का लड़का—यह क्या जाने कि धामपुर के असली मालिक—चार आने के पुराने हिस्सेदार—कौन हैं। मालकिन बेईमानी से वह सब चला गया तो क्या हुआ? हम लोग अपने मालिक को न पहचानेंगे?

मालकिन को उसका यह व्याख्यान अच्छा न लगा। उनके अच्छे दिनों का स्मरण करा देने की उस समय कोई आवश्यकता न थी। किन्तु सीधा और बूढ़ा मल्लाह उस बिगड़े घर की बड़ाई में और कहता ही क्या?

शेरकोट के कुलीन जमींदार मधुबन के पास अब तीन बीघे खेत और वही खँडहर-सा शेरकोट है इसके अतिरिक्त और कुछ चाहे न बचा हो किन्तु पुरानी गौरव-गाथाएँ तो आज भी सजीव हैं। किसी समय शेरकोट के नाम से लोग सम्मान से सिर झुकाते थे।

मधुबन के लिए वंश-गौरव का अभिमान छोड़कर मुकदमे में सब कुछ हार कर जब उसके पिता मर गये तो उसकी बड़ी विधवा बहन ने आकर भाई को सम्हाला था। उसकी ससुराल सम्पन्न थी किन्तु विधवा राजकुमारी के दरिद्र भाई को कौन देखता! उसी ने शेरकोट के खँडहर में दीपक जलाने का काम अपने हाथों में लिया।

शेरकोट मल्लाही टोले के समीप उत्तर की ओर बड़े-से ऊँचे टीले पर था। मल्लाही टोला और शेरकोट के बीच एक बड़ा सा वट-वृक्ष था। वहीं दो चार बड़े बड़े पत्थर थे। उसी के नीचे स्नान करने का घाट था। मल्लाही टोले में

अब तो केवल दस घरों की बस्ती है। परन्तु जब शेरकोट के अच्छे दिन थे, तो उसकी प्रजा से—काम करने वालों से—यह गाँव भरा था।

शेरकोट के विभव के साथ वहाँ की प्रजा धीरे-धीरे इधर-उधर जीविका की खोज में खिसकने लगी। मल्लाहों की जीविका तो गंगातट से ही थी, वे कहाँ जाते ? उन्हीं के साथ दो-तीन कहारों के भी घर बच रहे—उस छोटी-सी बस्ती में।

रही-सही पुराने घरों की गिरी हुई भीतों ने ढूह अपने दारिद्र्य-मंडित सिर को ऊँचा करने की चेष्टा में सलग्न थे, जिनके किसी सिरे पर टूटी हुई धरन उन घरों का सिर फोड़नेवाली लाठी की तरह अड़ी पड़ी थी।

उधर शेरकोट का छोटा-सा मिट्टी का ध्वस्त दुर्ग था। अब उसका नाम मात्र है, और है उसके दो ओर नाले की खाई—एक ओर गंगा। एक पथ गाँव में जाने के लिए था। घर सब गिर चुके थे। दो-तीन कोठरियों के साथ एक आँगन बच रहा था।

भारत का वह मध्यकाल था, जब प्रतिदिन आक्रमणों के भय से एक छोटे-से भूमिपति को भी दुर्ग की आवश्यकता होती थी। ऊँची-नीची होने के कारण शेरकोट में अधिक भूमि होने पर भी, खेती के काम में नहीं आ सकती थी। तो भी राजकुमारी ने उसमें फल-फूल और साग-भाजी का आयोजन कर लिया था।

शेरकोट के खँडहर में घुसते हुए राजकुमारी ने बूढ़े मल्लाह को बिदा किया। वह बूढ़ा मनुष्य कोट का कोई भी काम करने के लिए प्रस्तुत रहता। उसने जाते जाते कहा—मालकिन जब कोई काम हो कहला देना हम लोग आपकी पुरानी प्रजा हैं नमक खाया है।

उसकी इस सहानुभूति से राजकुमारी को रोमांच हो आया। उसने कहा—तुमसे न कहलाऊँगी, तो काम कैसे चलेगा और कब नहीं कहलाया है ?

बूढ़ा दोनों हाथों को अपने सिर से लगाकर लौट गया।

रामदीन ने एक बार जैसे साँस ली। उसने कहा—तो मालकिन कहिए नौकरी छोड़ दूँ ?

जो प्रेरणा उस बूढ़े मल्लाह से मिली थी, वही उत्तेजित हो रही थी। राजकुमारी ने कहा—पागल ! नौकरी छोड़ देगा, तो खेत छिन जायगा। गाँव में रहने पावेगा फिर ? अब हम लोगों के वह दिन नहीं रहे कि तुमको नौकर रख लूँगी। मैंने तो इसलिए कहा था कि मधुवन ने कहीं पर खेत बनाया है, वहीं बाबाजी की बनजरिया में। कहता था कि 'बहिन, एक भी मजूर नहीं मिला।

फिर बाबाजी और उसने मिलकर हल चलाया। सुनता है रे रामदीन, अब बडे घर क लोग हल चलाने लगे, मजूर नही मिलते, बाबाजी तो यह सब बात मानते ही नही। उन्होंने मधुबन स भी हल चलवाया। वह कहते हैं कि हल चलाने से बडे लोगा की जात नहीं चली जाती। अपना काम हम नही करग, तो दूसरा कौन करेगा। आज-कल इस दश मे जो न हो जाय। कहाँ मधुबन का वश कहाँ हल चलाना! बाबाजी ने उसको पढ़ाया-लिखाया और भी न जान क्या-क्या सिखाया। वह जाता है शहर यहाँ से बोझ लिवाकर सौदा बचा! जब म कुछ कहती हूँ तो कहता ह— बहन! वह सब रामकहानी के दिन बीत गय। काम करके खाने मे लाज कैसी। किसी की चोरी करता हूँ या भीख माँगता हूँ? धीरे-धीरे मजूर होता जा रहा है। मधुबन हल चलावे यह कैसे सह सकती हूँ। इसी से तो कहती हूँ कि क्या दो घटे जाकर तू उसका काम नही कर सकता था!

दोपहर को खाने-नहाने की छुट्टी तो किसी तरह मिलती है। कैसे क्या कहूँ, अभी न जाऊँ तो रोटी भी रसोईदार इधर-उधर फक देगा। फिर दिन भर टापता रह जाऊँगा। मालकिन पहले से कह दिया जाय तो कोई उपाय भी निकाल लू।

अच्छा, जा कल आना तो मुझस भट करके जाना भूलना मत! समझा न? मधुबन मिले तो भेज दो।

रामदीन ने मछली रखते हुए सिर झुकाकर अभिवादन किया। फिर मलिया की ओर देखता हुआ वह चला गया।

रामदीन की नानी धूप मे धोती फैलाकर रसोई घर की ओर मछली लेकर गई। वह चौके मे आग-पानी जुटाने लगी।

मलिया मालकिन क पास बैठ गई थी। राजकुमारी ने उनसे पूछा— मलिया! तेरी ससुराल के लोग कभी पूछते हैं?

उसने कहा—नही मालकिन, अब क्यो पूछने लगे।

राजकुमारी न कहा—तो रामदीन से तेरी सगाई कर दू न?

जाओ मालकिन, इसीलिए मुझको

राजकुमारी उसकी इस लज्जित मूर्ति को देखकर रुक गईं। उन्होंने बात बदलने के लिए कहा—तो आज-कल तू वहाँ रात दिन रहती है?

क्या न रहूँगी। बीबीरानी माधुरी की तरेर भरी आँख देखकर ही छठी का दूध याद आता है। अरे बाप रे! मालकिन, वहाँ से जब घर आती हूँ, तो जैसे बाघ के मुँह से निकल आती हूँ। इधर तो उनकी आँख और भी चढी रहती है।

चौबे, जो पहले कुँवर साहब की रसोई बनाता था, आकर न मालूम क्या धीरे-धीरे फुसफुसा जाता है। बस फिर क्या पूछना ! जिसकी दुर्दशा होनी हो वही सामने पड जाय।

क्यो रे, चौबे तो पहले तेरे कुँवर साहब के वडे पक्षपाती थे। अब क्या हुआ जो •

छावनी की बातें अच्छी तरह सुनने के लिए राजकुमारी ने पूछा। कोई भी स्वार्थ न हो, किन्तु अन्य लोगो के कलह से थोडी देर मनोविनोद कर लेने की मात्रा मनुष्य की साधारण मनोवृत्तियों मे प्राय मिलती है। राजकुमारी य कुतूहल की तृप्ति भी उससे क्यो न होती ?

मलिया कहने लगी—मालकिन ! यह सब मैं क्या जानूँ, पहले तो चौबेजी वडे हँसमुख वने रहते थे। पर जब से वडी सरकार आई हैं, तब से चौबेजी इसी दरबार की ओर झुके रहते हैं। कुँवर साहब से तो नही पर मेम साहब से वह चिढते हैं। कहत है, उसकी रसोई बनाना हमारा काम नही है। बीबीरानी से और भी न जाने क्या-क्या उसकी निन्दा करते हैं। सुना था, एक दिन वह रसोई बना रहे थे, भूल से मेम साहब जूते पहन रसोई-घर मे चली आईं, तभी से वह चिढ गये, पर कुछ कह नही सकते थे। जब वडी सरकार आ गईं, तो उन्हान इधर ही अपना डेरा जमाया। अब तो वह छोटी कोठी जाकर, वहा क्या-क्या चाहिए—यही देख आते हैं—

क्यो रे ! क्या तेरे कुँवर साहब इस मेम से ब्याह करेंगे ?

मैं क्या जानूँ मालकिन ! अब छुट्टी मिले। जाऊँ, नही तो रसोईदार महाराज ही दो-चार बात सुनावगे।

अच्छा, जा, अभी तो चाचा के पास जायगी न ?

हाँ, उधर से होती हुई चली जाऊँगी—कहकर मलिया अपने घर चली।

राजकुमारी से आकर रामदीन की नानी ने कहा—चलिए, अपनी रसोई देखिए। अभी मधुबन बाबू तो नही आये।

राजकुमारी ने एक बार शेरकोट के उजडे खँडहर की आर देखा और धीरे-धीरे रसोई घर की ओर चली।

रोटी सेकते हुए राजकुमारी ने पूछा—बुढिया, तू ने मलिया के चाचा से कभी कहा था।

क्या मालकिन ?

रामदीन से मलिया की सगाई के लिए। अब कब तक तू अकेली रहेगी ?

अपने पेट के लिए तो वह पाजी जुटा ले, सगाई करके क्या करेगा माल-

किन ! ब्याह होता मधुवन बाबू का, हम लोगो को वह दिन आखा से देखने का मिलता

किसका रे बुढिया ! —कहते हुए मधुबन ने आते ही उसकी पीठ थपथपा दी ।

राजकुमारी ने कहा—रोटी खाने का अब समय हुआ है न ? मधु ! तुम कितना जलाते हो ।

बहन ! मैं अपने आलू और मटर का पानी वरा रहा था, आज मेरा खेत सिंच गया । —कहकर वह हँस पडा । वह प्रसन्न था, किन्तु राजकुमारी अपने पिता के वश का वह विगत वैभव सोच रही थी, उनका हँसी न आई ।

७

इन्द्रदेव की कचहरी मे आज कुछ असाधारण उत्तेजना थी। चिकों के भीतर स्त्रियों का समूह, बाहर पास-पडोस के देहातियों का जमाव था। शैला भी अपनी कुर्सी पर अलग बैठी थी।

बनजरिया वाले बाबाजी अपनी कहानी सुनाने वाले थे, क्योंकि गोभी के लिए उसमे खेत बन गया था। उसी को लेकर तहसीलदार ने इन्द्रदेव को समझाया कि बनजरिया मे बोने-जोतने का खेत है। उस पर एकरेज—या और भी जो कुछ कानून के वैध उपायो से देन लगाया जा सकता हो—लगाना ही चाहिए। और, इस बाबा को तो यहाँ से हटाना ही होगा, क्योंकि गाँव के लोग इससे तंग आ गये है। यह समाजी है, लडको को न जाने क्या-क्या सिखाता है—ऊँची जाति के लडके हल चलाने लगे है। नीचो को बराबर कलकत्ता-बम्बई कमाने जाने के लिए उकसाया करता है। इसके कारण लोगो को हलवाहा और मजूरो का मिलना असम्भव हो गया है। तिस पर भी यह बनजरिया देवनन्दन के नाम की है। वह मर गया, अब लावारिस कानून के अनुसार यह जमीदार की है।— इत्यादि

इन्द्रदेव ने सब सुनकर कहा कि बुड्ढे की बात भी सुन लेनी चाहिए। उससे कह भी दिया गया है। उसको बुलवाया जाय।

आज इसीलिए रामनाथ आये हैं, और साथ मे लिवाते आये है तितली को। तितली इस जन-समूह मे सकुचित-सी एक खम्भे की आड मे आधी छिपी हुई बैठी है।

इन्द्रदेव का संकेत पाकर रामनाथ ने कहना आरम्भ किया—

बार्टली साहब की नील-कोठी टूट चुकी थी। नील का काम बन्द हो चला था। जैसा आज भी दिखायी देता है, तब भी उस गुदाम के हौज और पक्की नालियाँ अपना खाली मुँह खोले पडी रहती थी, जिसमे नीम की छाया मे गायें बैठकर विश्राम लेती थी। पर बार्टली साहब को वह ऊँचे टीले का बँगला, जिसके नीचे बडा-सा ताल था, बहुत ही पसन्द था। नील गुदाम बन्द हो जाने पर भी उनका बहुत-सा रुपया दादनी मे फँसा था।

किसानो को नील बोना तो बन्द कर देना पडा, पर रुपया देना ही पडता। अन्न की खेती से उतना रुपया कहाँ निकलता, इसलिए आस पास के किसानो मे बडी हलचल मची थी। वार्टली के किसान-आसामियो मे एक देवनन्दन भी थे। मै उनका आश्रित ब्राह्मण था। मुझे अन्न मिलता था और मै काशी मे जाकर पढता था। काशी की उन दिनो की पडित-मडली मे स्वामी दयानन्द के आ जाने से *हलचल मची हुई थी। दुर्गाकुड के उस शास्त्रार्थ मे मै भी अपने गुरुजी के साथ* दर्शक-रूप से था, जिसमे स्वामीजी के साथ बनारसी चाल चली गयी थी। ताली तो मैने भी पीट दी थी। मैं क्वीन्स कालेज के एग्लो-सस्कृत-विभाग मे पढता था मुझे वह नाटक अच्छा न लगा। उस निर्भीक सन्यासी की ओर मेरा मन आकर्षित हो गया। वहाँ से लौटकर गुरुजी से मुझसे कहा-सुनी हो गयी, और जब मैं स्वामीजी का पक्ष समर्थन करने लगा, तो गुरुजी ने मुझे नास्तिक कहकर फटकारा।

देवनन्दन का पत्र भी मुझे मिल चुका था कि कई कारणो से अन्न देना वह बन्द करते है। मैं अपने गठरी पीठ पर लादे हुए झुंझलाहट से भरा नील-गुदाम के नीचे से अपने गाव मे लौटा जा रहा था। देखा कि देवनन्दन को नील कोठी का पियादा काले खाँ पकडे हुए ले जा रहा है। देवनन्दन सिंहपुर के प्रमुख किसान और आप ही लोगो के जाति-बान्धव थे। उनकी यह दशा! रोम-रोम उनके अन्न से पला था। मैं भी उनके साथ वार्टली के सामने जा पहुँचा।

उस समय कुर्सियो पर बैठे हुए वार्टली और उनकी बहन जेन आपस मे कुछ बाते कर रहे थे।

जेन ने कहा—भाई! इधर जब से वह चले गये है मेरी चिन्ता बढ रही है। न जाने क्यो, मुझे उन पर सन्देह होने लगा है। मैं भी घर जाना चाहती हूँ।

तुम जानती हो कि मैंने स्मिथ का कभी अपमान नही किया, और सच तो यह है कि मैं उसको प्यार करता हूँ। किन्तु क्या करूँ, उसका जैसा उग्र स्वभाव है, वह तो तुम जानती हो। मै भला अभी काम छोड कर कैसे चलूगा!—वार्टली ने कहा।

जब यह काम ही बद हो गया, तब यहाँ रहने का क्या काम है। देखती हूँ कि जो रुपया तुम्हारा निकल भी आता है, उसे यहाँ जमीदारी मे फँसाते जा रहे हो। क्या तुम यही बसना चाहते हो?—जेन ने कहा।

तब तुम क्या चाहती हो।—वार्टली ने अन्यमनस्क भाव से पूर्व की धीरे-धीरे सूखने वाली झील को देखते हुए कहा।

नील का काम बन्द हो गया, पर अब हम लोगो को रुपये की कमी नही।

जो कुछ हो, यहाँ से बेच कर इगलैंड लौट चले। मरा प्रसव-काल समीप है। मैं गाँव के घर म ही जाकर रहना चाहती हूँ। समझा न ?—जेन ने सरलता से कहा।

इतनी जल्दी ! असम्भव, अभी बहुत रुपया बाकी पडा है। ठहरो, मैं पहले इन लोगो स बात कर लूँ।—बार्टली ने रूख स्वर स कहा।

देवनन्दन ने सलाम करते हुए कुछ कहना चाहा कि बीच ही म बात काटकर काले खाँ ने कहा—सरकार, बहुत कहने पर यह आया है।

देवनन्दन ने रोष-भरे नेत्रो से काले को देखा।

बार्टली ने कहा—रुपया देते हो कि तुम्हारा दूसरा

जेन उठकर जाने लगी थी। बीच ही म देवनन्दन ने उसे हाथ जोडते हुए कहा। मेरी स्त्री को लडका होने वाला है, और लडकी

जेन आगे न सुन सकी। उसने कहा—बार्टली, जान दो उसे, उसकी स्त्री का

तुम चला चाय के कमरे म, मैं अभी आता हूँ।—कहते हुए बार्टली ने जेन को तीखी आँखो से देखा। दुखी होकर जेन चली गयी।

देवनन्दन की कोई बिनती नही सुनी गयी। बार्टली ने कहा—काल खाँ, इसको यही कोठरी मे बन्द करो और तीन घटे मे रुपय न मिलें, तो बीस हटर लगाकर तब मुझसे कहना।

बार्टली की ठोकर स जब दवनन्दन पृथ्वी चूमन लगा, तब वह चाय पीन चला गया।

मरे हृदय मे वह देवनन्दन का अपमान घाव कर गया।

मैं अब तक तो कवल वह दृश्य देख रहा था। किन्तु क्षण-भर मे मैने अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर लिया। मैंने कहा—काले खाँ, भूलना मत, मेरा नाम है रामनाथ। आज तुमन यदि देवनन्दन को मारा-पीटा, तो मै तुम्हे जीता न छोड़ूँगा। मैं रुपये ले आता हूँ।

क्रोध और आवेश मे कहने को तो मैं यह कहकर गाँव म चला आया, पर रुपये कहाँ से आते ! मैं उन्ही के पट्टीदार के पास पहुँचा, पर सूद का मोल-भाव होने लगा। उनकी स्थावर सम्पत्ति पर्याप्त न थी। हिन्दुओ मे परस्पर तनिक भी सहानुभूति नही ! मैं जल उठा। मनुष्य, मनुष्य के दुख-सुख से सौदा करने लगता है और उसका मापदड बन जाता है रुपया। मैंने कहा—अच्छा, अच्छा, धामपुर म मरी कृष्णार्पण माफी है, उसे भी मैं रेहन कर दूँगा।

तहसीलदार साहब न कहा कि इस बनजरिया के नम्बर पर पहले देवनन्द
का नाम था, सो ठीक है। मैने ही उसी सम्बन्ध म रेहन करके फिर इसी माप
को देवनन्दन के नाम बेच दिया। अब मेरे मन म गाव से घोर घृणा हो गय
थी। मैं भ्रमण के लिए निकला। गाव पर मेरे लिए कोई बन्धन नही रह गया
तीर्थों, नगरो और पहाडो मे मै घूमता था और गली, चौमुहानी, कुआ प
तालाबो और घाटो के किनारे, मैं व्याख्यान देने लगा। मेरा विषय था हिन्
जाति का उद्बोधन। मैं प्राय उनकी धनलिप्सा, गृह-प्रेम और छोटे-से-छोटे हि
गृहस्थ की राजमनोवृत्ति की निन्दा किया करता। आप देखते नहीं कि हिन्दू
छोटी-सी गृहस्थी मे कूडा-करकट तक जुटा रखने की चाल है, और उन पर प्रा
से बढकर मोह! दस-पाच गहन, दो-चार बर्तन, उनको बीसो बार बन्धक कर
और घर मे कलह करना, यही हिन्दू-घरो म आये दिन के दृश्य हैं। जीवन
जैसे कोई लक्ष्य नही! पद-दलित रहते-रहते उनकी सामूहिक चेतना जैसे न
हो गयी है। अन्य जाति के लोग मिट्टी या चीनी के बरतन म उत्तम स्निग्ध भोज
करते है। हिन्दू चाँदी की थाली मे भी सत्तू घोलकर पीता है। मरी कटुता उ
जित हो जाती, तो और भी इसी तरह की बात बकता। कभी तो पैसे मिल
और कही-कही धक्के भी। पर मेरे लिए दूसरा काम नही। इसी धुन म मै कित
बरसो तक घूमता रहा। नर्मदा के तट से घूमकर मैं उज्जैन जा रहा था। अकस्म
बिना किसी स्टेशन के गाडी खडी हो गयी।

मैंने पूछा—क्या है?

साथ के यात्री लोग भी चकित थे।

इतने म रेल के गार्ड ने कहा—भुखमरा की भीड रलवे-लाइन पर खडी है

मै गाडी स उतरकर वह भीषण दृश्य देखने लगा।

ससार का नग्न चित्र, जिसमे पीडा का, दु ख का, ताडव नृत्य था। वि
वस्त्र के सैकडो नर-ककाल, इजिन के सामन लाइन पर खडे-खडे और गिरे हु
मृत्यु की आशा मे टक लगाये थे। मैं रो उठा। मेरे हृदय मे अभाव की भीषणत
जो चिनगारी के रूप म थी, अब ज्वाला-सी धधकने लगी।

चतुर गार्ड ने झोली मे चन्दा के पैसे एकत्र करके कँगला म बाँट दिया अ
वे समीप के बाजार की ओर दौड पडे। हा, दौडे। उन अभागो को अन्न
आशा ने बल दिया। वे गिरत-पडते चले। मै भी चला। उनके पीछे-पीछे
देखता जाता था कि पेडो म पत्तियाँ नही बची हैं। टिड्डियाँ भी इस तरह उ
नही खा सकती, वे तो नस छोड देती हैं।

मैंने देखा कि वे मरभुखे।बाजार मे घुस, किन्तु मैं नही जा सका। बाज

के बाहर ही एक वृक्ष के बिना पत्तावाली डाला के नीचे एक व्यक्ति पडा हुआ अपना हाथ मुँह तक ले जाता है और उसे चाटकर हटा लेता है पास ही एक छोटा-सा जीव और भी निस्तब्ध पडा है। मैं दौड़कर अपने लोटे में दूध मोल ले आया। उसके गले में धीरे-धीरे टपकाने लगा। वह आँख खोलकर पास ही पड़े हुए शिशु को देखने लगा। शिशु की ओर मेरा ध्यान नहीं गया था। मैं उसे दूध पिलाने लगा।

कहकर बुड्ढा रामनाथ एक बार ठहर गया। उसने चारों ओर देखकर अपनी आँखों को उस खंभे की आड़ में ठहरा दिया, जहाँ तितली बैठी थी।

शैला रूमाल से अपनी आँखें पोंछ रही थी, और सुनने वाली जनता चुपचाप स्तब्ध थी।

बुड्ढे ने फिर कहना आरम्भ किया—आप लोगों को कष्ट होता है। दुख और दर्द की कहानी सुनाकर मैंने अवश्य आप लोगों का समय नष्ट किया। किन्तु करता क्या ! अच्छा, जाने दीजिए, मैं अब बहुत संक्षेप में कहता हूँ—

हाँ, तो वह व्यक्ति थे देवनन्दन जिनकी समस्त भू-सम्पत्ति नीलाम हो गयी। धूर-धूर बिक गयी। दो सन्तानों का शरीरान्त हो गया। तब उस बची हुई कन्या को लेकर स्त्री के साथ वह परदेश में भीख माँगने चले थे।

उस अभागे को नहीं मालूम था कि वह किधर जा रहा था। उस समय अकाल था। कौन भीख देता ? जिनके पास रुपया था, उन्हें अपनी चिन्ता थी।

अस्तु, कुलीन वंश की सुकुमारी कुलवधू अधिक कष्ट न सह सकी, वह मर गयी। तब देवनन्दन इस शिशु को लेकर घूमने लगे। वह भी मुमूर्ष हो रहा था।

उन्होंने बड़े कष्ट से मुझे पहचानकर केवल इतना कहा—रामनाथ, मैंने सब कुछ बेच दिया, पर तुम्हारा धामपुर का खेत नहीं बचा है, और यह तितली तुम्हारी शरण है। मैं तो चला।

हो वह चल बसे। मैंने तितली को गोद में उठा लिया।

आगे बुड्ढा कुछ न कह सका, क्योंकि तितली सचमुच चीत्कार करती हुई मूर्च्छित हो गयी थी और शैला उसके पास पहुँच कर उसे प्रफुल्लित करने में लग गयी थी।

इन्द्रदेव आराम कुर्सी पर लेट गये थे, और सुनने वाले धीरे-धीरे खिसकने लगे।

द्वितीय खण्ड

1

पूस की चादनी गाव क निर्जन प्रान्त म हल्क कुहास क रूप म साकार हो रही थी। शीतल पवन जब घना अमराइया म हरहराहट उत्पन करता, तब स्पर्श न होन पर भी गाढे क कुरते पहननवाले किसान अलावो की ओर खिसकन लगत। शैला खडी हाकर एक एस ही अनाव का दृश्य दख रही थी, जिसके चारा आर छ-सात किसान वठे हुए तमाखू पी रहे थ। गाढे की दोहर और कम्बल उनम स दो ही के पास थ। और सब कुरते और इकहरी चद्दरो म हू-हा कर रह थे।

शैला जब महुए का छाया स हटकर उन लागा क सामने आई तो, व लाग अपनी वात-चीत बन्द कर असमजस म पडे कि मेम साहब से क्या कह। शैला को सभी पहचानते थ। उसन पूछा—यह अलाव किसका है?

महँगू महता का सरकार—एक सोलह बरस के लडके न कहा।

दूर से आते हुए मधुवन ने पूछा—क्या ह रामजस?

मधु भइया, यही मम साहब पूछ रही थी।—रामजस न कहा।

मधुबन न शैला को नमस्कार करते हुए कहा—क्या कोइ काम है? कही जाना हो तो मैं पहुँचा दूँ।

नही नही मधुवन! मैं भी आग के पास बैठना चाहती हूँ।

मधुबन पुआल का छाटा-सा बडल ले आया। शैला बैठ गई। मधुबन का वहाँ पाकर उसके मन म जो हिचक थी, वह निकल गई।

महँगू के घर के सामन हा वह अलाव लगा था, महँगू वहाँ पर तमाखू-चिलम का प्रबन्ध रखता। दा-चार किसान, लडके-बच्च उस जगह प्राय एकत्र रहत। महँगू की चिलम कभा ठडी न होती। वुड्ढा पुराना किसान था। उस गाँव क सब अच्छे टुकड उसकी जोत म थ। लडक और पोते गृहस्थी करते थे, वह बैठा तमाखू पिया करता। उसन भी मम साहब का नाम सुना था, शैला

की दयालुता से परिचित था। उसकी सेवा और सत्कार के लिए मन-ही-मन कोई बात सोच रहा था।

सहसा शैला ने मधुबन से पूछा—मधुबन ! तुम जानते हो, बार्टली साहब की नील-कोठी यहाँ से कितनी दूर है ?

वह कल के लड़के हैं मेम साहब ! उन्हें क्या मालूम कि बार्टली साहब कौन थे, मुझसे पूछिए। मेरा रोआँ-रोआँ उन्हीं लोगों के अन्न के पला हुआ है—महँगू ने कहा।

अहा ! तब तुम उन्हें जानते हो ?

बार्टली को जानता हूँ। बड़े कठोर थे। दया तो उनके पास फटकती न थी—कहते-कहते अलाव के प्रकाश मे बुड्ढे के मुख पर घृणा की दो-तीन रेखाएँ गहरी हो गईं। फिर वह सँभल कर कहने लगा—पर उनकी बहन जेन माया-ममता की मूर्ति थी। कितने ही बार्टली के सताये हुए लोग उन्ही के रुपये से छुटकारा पाते, जिसे वह छिपाकर देती थी। और, मुझ पर तो उनकी बड़ी दया रहती थी। मैं उनकी नौकरी कर चुका हूँ। मैं लड़कपन से ही उन्ही की सेवा मे रहता था। यह सब खेती-बारी गृहस्थी उन्ही की दी हुई है। उनके जाने के समय मैं कितना रोया था ! —कहते-कहते बुड्ढे की आँखो से पुराने आँसू बहने लगे।

शैला ने बात सुनने के लिए फिर कहा—तो तुम उनके पास नौकरी कर चुके हो ? अच्छा तो वह नील-कोठी—

अरे मेम साहब, वह नील-कोठी अब काहे को है, वह तो है भुतही कोठी ! अब उधर कोई जाता भी नही, गिर रही है। जेन के कई बच्चे वहीं मर गये हैं। वह अपने भाई से बार-बार कहती कि मैं देश जाऊँगी, पर बार्टली ने जाने न दिया। जब वह मरे, तभी जेन को यहाँ से जाने का अवसर मिला। मुझसे कहा था कि—महँगू, जब बाबा होगा, तो तुमको बुलाऊँगी उसे खेलाने के लिए, आ जाना, मैं दूसरे पर भरोसा नही करूँगी। —मुझे ऐसा ही मानती थी। चली गईं, तब से उनका कोई पक्का समाचार नही मिला। पीछे एक साहब से,—जब वह यहाँ का बन्दोबस्त करने आया था, सुना—कि जेन का पति स्मिथ साहब बड़ा पाजी है, उसने जेन का सब रुपया उड़ा डाला। वह बेचारी बड़ी दुःखी है। मैं यहाँ से क्या करता मेम साहब !

शैला चुपचाप सुन रही थी। उसके मन में आँधी उठ रही थी, किन्तु मुख पर धैर्य की शीतलता थी। उसने कहा—महँगू, मैं तुम्हारी मालकिन को जानती हूँ।

क्या अभी जीती हैं मेम साहब ? —बुड्ढे ने बड़े उल्लास से पूछा। उसके हाथ का हुक्का छूटते-छूटते बचा।

नहीं, वह तो मर गईं। उनकी एक लड़की है।

अहा ! कितनी बड़ी होगी वह ! मैं एक बार देख तो पाता ?

अच्छा, जब समय आवेगा तो तुम देख लोगे। पहले यह तो बताओ कि मैं नील-कोठी देखना चाहती हूँ, इस समय कोई वहाँ मेरे साथ चल सकता है ?

सब किसान एक-दूसरे का मुँह देखने लगे। भुतही कोठी में इस रात को कौन जायगा। महँगू ने कहा—मैं बूढ़ा हूँ, रात को सूझता कम है।

मधुबन ने कहा—मेम साहब, मैं चल सकता हूँ।

साहस पाकर लड़के रामजस ने कहा—मैं भी चलूँगा भइया।

मधुबन ने कहा—तुम्हारी इच्छा।

कंधे पर अपनी लाठी रख, मधुबन आगे, उसके पीछे शैला और तब रामजस, तीनों उस चाँदनी में पगडंडी से चलने लगे। चुपचाप कुछ दूर निकल जाने पर शैला ने पूछा—मधुबन, खेती से तुम्हारा काम चल जाता है ? तुम्हारे घर पर और कौन है ?

मेम साहब ! काम तो किसी तरह चलता ही है। दो-तीन बीघे की खेती ही क्या ? बहन है बेचारी, न जाने कैसे सब जुटा लेती है। आज-कल तो नहीं, हाँ जब मटर हो जायगी, गाँवों में कोल्हू चलने ही लगे हैं तब फिर कोई चिन्ता नहीं।

तुम शिकार नहीं करते ?

कभी-कभी मछली पर बंसी डाल देता हूँ। और कौन शिकार करूँ ?

बहन तुम्हारी यहीं रहती हैं ?

हाँ मेम साहब, उसी ने मुझे पाला है—कहते हुए मधुबन ने कहा—देखिए, यह गड्ढा है। सम्भल कर आइए। अब हम लोग कच्ची सड़क पर आ गये हैं।

अच्छा मधुबन। तुमने यह तो कहा ही नहीं कि तितली कहाँ है, दिखाई नहीं पड़ी। उस दिन जब रामनाथ उसको लिवा ले गया, तब से तो उसका पता न लगा। उसका क्या हाल है ?

सब कठोर हैं, निर्दय हैं—मन-ही-मन कहते हुए अन्यमनस्क भाव से मधुबन ने अपना कन्धा हिला दिया ?

क्या है मधुबन ! कहते क्यों नहीं।

उसी दिन से वह बेचारी पड़ी है। उधर सुना है कि तहसीलदार ने बेदखली

कराने का पूरा प्रबन्ध कर लिया है ! मेम साहब, गरीब की कोई सुनता है ? आप ही कहिए न ! किसी ब्याह में रमुआ ने दस रुपये लिये । वह हल चलाता मर गया । जिसका ब्याह हुआ उसे दस रुपये से, वह भी उन्हीं रुपयों में हल चलाने लगा । उसके भी लड़के यदि हल चलाने के डर से घबराकर कलकत्ता भाग जायँ, तो इसमें बाबाजी का क्या दोष है ?

कुछ नहीं—शैला ने कहा ।

फिर आप तो जानती नहीं । यह तहसीलदार पहले मेरे यहाँ काम करता था । गुदाम वाले साहब से एक बात पर उभाड़ कर, मेरे पिताजी को लड़ा दिया । मुकदमे में जब मेरा सब साफ हो गया, तो जाकर यह धामपुर की छावनी में नौकरी करने लगा । इसका दानव की तरह लड़ने का चसका है, सो भी अदालत का ही । नहीं तो किसी एक दिन इसकी लड़ने की साध मिटा देता । मैं किसी दिन इसकी नस तोड़ दूँ, तो मुझे चैन मिले । इसके कलेजे में कतरनी-से कीड़े दिन-रात कलबलाया करते हैं ।

यह तहसीलदार तुम्हारे यहाँ

अरे यह बात मैं क्रोध में कह गया मेम साहब, जो समय बीत गया, उसे सोच कर क्या करूँगा । अब तो मैं एक साधारण किसान हूँ । शेरकोट का

चलते-चलते शैला ने कहा—क्या कहा, शेरकोट न ! हाँ—तहसीलदार ने कहा था कि शेरकोट ही बैंक बनाने के लिए अच्छा स्थान है ! कहाँ है वह ?

मधुबन गुर्रा उठा भूखे भेड़िये की तरह । उस ठंडी रात में उसे अपना क्रोध दमन करने में पसीना हो आया । बोला नहीं ।

शैला भी सामने एक ऊँचा-सा टीला देखकर अन्यमनस्क हो गयी जो चाँदनी रात में रहस्य के स्तूप-सा उदास बैठा था ।

रामजस सहसा पीछे से चिल्ला उठा—अब तो पहुँच गये मधुबन भइया !

मधुबन ने गम्भीरता से कहा—हूँ ।

शैला चुपचाप टूटी हुई सीढ़ियों से चढ़ने लगी । उस नीरस रजनी में पुरानी काठी, बहुत दिनों के बाद तीन नये आगन्तुकों को देखकर, जैसे व्यंग की हँसी हँसने लगी । अभी ये लोग दालान में पहुँचने भी न पाये थे कि एक सियार उसमें से निकल कर भागा । हाँ, भयभीत मनुष्य पहले ही आक्रमण करता है । रामजस ने डरकर उस पर डंडा चलाया । किन्तु वह निकल गया ।

शैला ने कहा—मैं भीतर चलूँगी ।

चलिए, पर अँधेरे में कोई जानवर

मधुबन चुप रहा । आगे उसके मन में शेरकोट में बैंक बनाने की बात आ

गई। वह चुपचाप एक पत्थर पर बैठ गया। शैला भी भीतर न जाकर झील की ओर चली गई। पत्थरों की पुरानी चौकियाँ अभी वहाँ पड़ी थीं। उन्हीं में से एक पर बैठकर वह सूखती हुई झील को देखने लगी। देखते-देखते उसके मन में विषाद और करुणा का भाव जागृत होकर उसे उदास बनाने लगा। शैला को दृढ़ विश्वास हो गया कि जिस पत्थर पर वह बैठी है, उसी पर उसकी माता जेन आकर बैठती थी। अज्ञात अतीत को जानने की भावना उसे अन्धकार में पूर्व-परिचिता के समीप ले जाने का प्रयत्न करने लगी। जीवन में यह विचित्र शृंखला है। जिस दिन से उस बार्टली और जेन का सम्बन्ध इस भूमि से विदित हुआ, उसी दिन से उसकी मानस-लहरियों में हलचल हुई। पहले उसके हृदय ने तर्क-वितर्क किया। फिर बाल्यकाल की सुनी हुई बातों ने उसे विश्वास दिलाया कि उसकी माता जेन ने अपने जीवन के सुखी दिनों को यहीं बिताया है। अवश्य उसकी माता भारत के एक नील-व्यवसायी की कन्या थी। फिर जब उसके सम्बन्ध में यहाँ प्रमाण भी मिलता है, तब उसे सन्देह करने का कोई कारण नहीं। अज्ञात नियति की प्रेरणा उसे किस सूत्र से यहाँ खींच लाई है यही उसके हृदय का प्रश्न था। वह सोचने लगी, यहाँ पर उसकी माता की कितनी सुखद स्मृतियाँ शून्य में विलीन हो गईं। आह! उसके दुःख से भरे वे अन्तिम दिन कितने प्यार से इन स्थलों का स्मरण करते रहे होंगे। इसी झील में छोटी-सी नाव पर उस अतीतकाल में वह कितनी बार घूमकर इसी कोठी में लौटकर चली आई होगी। उस कल्पना की एकाग्रता ने माता के पैरों की चाप तक सुनवा दी। उसे मालूम हुआ कि उस खँडहर की सीढ़ियों पर सचमुच कोई चढ़ रहा है। वह घूमकर खड़ी हो गई किन्तु रामजस और मधुवन के अतिरिक्त कोई नहीं दिखाई दिया। वह फिर बैठ गई और दोनों हाथों से अपना मुँह ढँककर सिसकने लगी।

माता का प्यार उसकी स्मृति मात्र से ही उसे सहलाने लगा। उस भयावन खँडहर में माता का स्नेह जैसे बिखर रहा था। वह जीवन में पहिली बार इस अनुभूति से परिचित हुई। उसे विश्वास हो गया कि यही उसका जन्म-जन्म का आवास है। आज तक वह जो कुछ देख सकी थी, वह सब विदेश की यात्रा थी। आँखों के सामने दो घड़ी के मनोरंजन करने वाले दृश्य, सो भी उसमें कटुता की मात्रा ही अधिक थी, जो कष्ट झेलने वाली सहनशील मनोवृत्ति के निदर्शन थे। आज उसे वास्तविक विश्राम मिला। वह और भी बैठती किन्तु मधुवन ने कहा—रामजस, तुमको जाड़ा लग रहा है क्या?

नहीं भइया, यही सोचता हूँ कि कहीं से एक चिलम

पागल, यहाँ से गाँव में जाकर लौटने में घंटा लग जायगे।

तो न सही—कहकर वह अपनी कमली मुट्ठियो मे दबाने लगा। शैला की एकाग्रता भग हो गई। उसने पूछा—मधुबन, क्या हम लोगो को चलना चाहिए ?

रात बहुत हो चली, वह देखिए, सातो तारे इतने ऊपर चढ आये हैं। छावनी पहुँचते-पहुँचते हम लोगो को आधी रात हो जायगी।

तब चलो—कहकर शैला निस्तब्ध टीले से नीचे उतरने लगी। मधुबन और रामजस उसके आगे और पीछे थे। वह यन्त्र-चालित पुतली की तरह पथ अतिक्रम कर रही थी, और मन मे सोच रही थी, अपने अतीत जीवन की घटनाएँ। दुर्वृत्त पिता की अत्याचार-लीलाएँ फिर माता जेन का छटपटाते हुए कष्टमय जीवन से छुट्टी पाना, उस प्रभाव की भीषणता म अनाथिनी होकर भिखमगा और आवारो के दल म जाकर पेट भरने की आरम्भिक शिक्षा, धीरे-धीरे उसका अभ्यास, फिर सहसा इन्द्रदेव से भेट—सन्ध्या के क्रमश प्रकाशित होने वाले नक्षत्रो की तरह उसके शून्य, मलिन और उदास अन्तस्तल के आकाश मे प्रज्वलित होने लगे। वह सोचने लगी—

नियति दुस्तर समुद्र को पार कराती है, चिरकाल के अतीत को वर्तमान से क्षण-भर म जोड देती है, और अपरिचित मानवता-सिन्धु मे से उसी एक से परिचय करा देती है, जिससे जीवन की अग्रगामिनी धारा अपना पथ निर्दिष्ट करती है। कहाँ भारत, कहाँ मैं और कहाँ इन्द्रदेव ! और फिर तितली !—जिसके कारण मुझे अपनी माता की उदारता के स्वर्गीय सगीत सुनने को मिले, यह पावन प्रदेश देखने को मिला !

उसके मन म अनेक दुराशाएँ जाग उठी। आज तक वह सन्तुष्ट थी। अभावपूर्ण जीवन इन्द्रदेव की कृतज्ञता म आबद्ध और सन्तुष्ट था। किन्तु इस दृश्य ने उसे कर्मक्षेत्र मे उतरने के लिए एक स्पर्द्धामय आमन्त्रण दिया। उसका सरल जीवन जैसे चतुर और सजग होने के लिए व्यस्त हो उठा।

वह कच्ची सडक से धीरे धीरे चली जा रही थी। पीछे से मोटर की आवाज सुन पडी। वह हटकर चलन लगी। किन्तु मोटर उसके पास आकर रुक गई। भीतर से अनवरी ने पुकारा—मिस शैला है क्या ?

हाँ।

छावनी पर ही चल रही हैं न ? आइए न।

धन्यवाद। आप चलिए, मैं आती हूँ।—अन्यमनस्क भाव से शैला ने कह दिया। पर अनवरी सहज म छोडने वाली नही। उसने अपने पास बैठे हुए कृष्णमोहन स धीरे स कहा—यह तुम्हारी मामी है, उन्ह जाकर बुला लो।

शैला उस फुसफुसाहट को सुनने के लिए वहाँ ठहरी न थी। आगे बढ़कर कृष्णमोहन ने नमस्कार करके कहा—आइए न।

शैला कृष्णमोहन का अनुरोध न टाल सकी। मोटर के प्रकाश मे उसका प्यारा मुख अधिक आग्रहपूर्ण और विनीत दिखाई पड़ा।

शैला ने मधुबन से कहा—मधुबन, कल छावनी पर अवश्य आना। कृष्ण-मोहन के साथ शैला मोटर पर बैठ गई।

२

तहसीलदार ने कागजों पर बड़ी सरकार से हस्ताक्षर करा ही लिया, क्योंकि शैला की योजना के अनुसार किसानों का एक बैंक और एक होमियोपैथी का निःशुल्क औषधालय सबसे पहले खुलना चाहिए। गाँव का जो स्कूल है उसे ही अधिक उन्नत बनाया जा सकता है। तीसरे दिन जहाँ बाजार लगता है, वहीं एक अच्छा-सा देहाती बाजार बसाना होगा, जिसमें कच्चे के कपड़े, अन्न, गिरस्ती खाना और आवश्यक चीजें बिक सकें। गृहशिल्प को प्रोत्साहन देने के लिए वहीं से प्रयत्न किया जा सकता है। किसानों में खेतों के छोटे-छोटे टुकड़े बदलकर उनका एक जगह चक बनाना होगा, जिसमें खेती की सुविधा हो। इसके लिए जमींदार को अनेक तरह की सुविधाएँ देनी होंगी।

यह सबसे पीछे होगा। बैंक पहले खुलना चाहिए। इन्स्पेक्टर ने इसके लिए विशेष आग्रह किया है।

तहसीलदार के सुझाने पर शैला ने शेरकोट का ही बैंक के लिए अधिक उपयुक्त लिख दिया था, किन्तु मधुबन के पिता की जमींदारी नीलाम खरीद हुई थी श्यामदुलारी के नाम। वह हिस्सा अभी तक उन्हीं के नाम से खेवट में था। इसलिए श्यामदुलारी ने थोड़ी-सी गर्व की हँसी हँसते हुए हस्ताक्षर करने पर कहा—तहसीलदार। अब तो मुझे इससे छुट्टी दो। इन्द्र से ही जो कुछ हो, लिखाया-पढ़ाया करो।

तहसीलदार ने चश्मे में से माधुरी की ओर देखकर कहा—सरकार, यह मैं कैसे कह सकता हूँ कि आप अपना अधिकार छोड़ दें। न मालूम क्या समझ कर आपके नाम से बड़े सरकार ने यह हिस्सा खरीदा था। आप इसे जो चाहें कर सकती हैं। यदि आप किसी के नाम इसकी स्पष्ट लिखा-पढ़ी न करें, तो यह कानून के अनुसार बीबी रानी का हो सकता है। छोटे सरकार से तो इसका कोई सम्बन्ध

श्यामदुलारी ने कड़ी निगाह से तहसीलदार को देखा। उसमें संकेत था उसे चुप करने के लिए, किन्तु कूटनीति-चतुर व्यक्ति ने थोड़ी-सी संधि पाते ही जो कुछ कहना था, कह डाला।

माधुरी इस आकस्मिक उद्घाटन से घबराकर दूसरी ओर देखने लगी थी ? वह मन में सोच रही थी मुझे क्या करना चाहिए ?

माधुरी के जीवन म प्रेम नही, सरलता नही, स्निग्धता भी उतनी न थी। स्त्री के लिए जिस कोमल स्पर्श की अत्यन्त आवश्यकता होती है, वह श्यामलाल स कभी मिला नही। तो भी मन का किसी तरह सतोप चाहिये। पिता के घर का अधिकार ही उसके लिए मन बहलान का खिलौना था। वह भी जानती थी कि यह वास्तविक नही, तो भी जब कुछ नही मिलता तो मानव हृदय कृत्रिम को ही वास्तविक बनाने की चेष्टा करता है। माधुरी भी अब तक यही कर रही थी।

चौबेजी कब चूकने वाले थे ! उन्होंने खाँसकर कहना आरम्भ किया—बडे सरकार सब समझते थ। विलायत भेजकर जा कुछ होन वाला था, वह सब अपनी दूर-दृष्टि से देख रहे थे। इसी स उन्होंने यह प्रबन्ध कर दिया था तहसीलदार साहब ने इस समय उसको प्रकट कर दिया। यह अच्छा ही किया। आगे आपकी इच्छा।

श्यामदुलारी ऊब रही थो, क्योकि सब कुछ जानते हुए भी वह नही चाहती थी कि उनकी दोनो सन्तानो मे भेद का बाजारोपण हा। इन स्वयसवक सम्मति दाताओ से वह घबरा गई।

माधुरी न इस क्षाभ का ताड लिया। उसन कहा—इस समय तो आपका काम हो ही गया अब आप लोग जाइए।

तहसीलदार ने सिर झुकाकर विनयपूर्वक विदा ली। चौबेजी भी बाहर चले गये।

श्यामदुलारी के मौन हो जाने से वहाँ का वातावरण कुठित-सा हा गया। माधुरी जैस कुछ कहन म सकुचित थी। कुछ दर तक यही अवस्था बनी रही।

फिर सहसा माधुरी ने कहा—क्या माँ ! क्या सोच रही हो ? यह भला कौन सी बात है इतनी सोचने विचारने की ! य लोग तो ऐसी व्यर्थ की बातें निकालने म बडे चतुर ह ही। तुमको तो यह काम पहले ही कर डालना चाहिए।

किन्तु क्या कर डालना चाहिए उसे साफ-साफ माधुरी ने भी अभी नही सोचा था। वह केवल मन बहलान वाली कुछ बातें करना चाहती थी। किन्तु श्यामदुलारी के सामने यह एक विचारणीय प्रश्न था। उन्होंने सिर उठाकर गहरी दृष्टि से देखते हुए पूछा—क्या ?

माधुरी क्षण भर चुप रही, तो भी उसने साहस बटोरकर कहा—भाई साहब का नाम उस पर भी चढवा दो, झगडा मिटे।

श्यामदुलारी ने सिर झुका लिया। वह सोचने लगी। उनके सामने एक समस्या खडी हो गई थी।

समस्याएँ तो जीवन मे बहुत-सी रहती है, किन्तु वे दूसरो के स्वार्थों और रुचि तथा कुरुचि के द्वारा कभी-कभी जैसे सजीव होकर जीवन के साथ लडने के लिए कमर कसे हुए दिखाई पडती हैं।

श्यामदुलारी के सामने उनका जीवन इन चतुर लोगो की कुशल कल्पना के द्वारा निस्सहाय वैधव्य के रूप मे खडा हो गया।

दूसरी ओर थी वास्तविकता से वचित माधुरी के कृत्रिम भावी जीवन की दीर्घकालव्यापिनी दु ख रेखा। एक क्षण मे ही नारी-हृदय ने अपनी जाति की सहानुभूति से अपने को आपाद-मस्तक ढँक लिया।

माधुरी की ओर देखते हुए श्यामदुलारी की आँखे छलछला उठी। उन्हे मालूम हुआ कि माधुरी उस सम्पत्ति को इन्द्रदेव के नाम करने का घोर विरोध कर रही है। उसकी निस्सहाय अवस्था, उसके पति की हृदय-हीनता और कृष्ण-मोहन का भविष्य—सब उसकी ओर से श्यामदुलारी की बुद्धि को सहायता देन लगे।

माधुरी ने कहने को ता कह दिया ! परन्तु फिर उसने आँख नही उठाई। सिर झुकाकर नीचे की ओर देखने लगी।

श्यामदुलारी ने कहा—माधुरी, अभी इसकी आवश्यकता नही है। तू सब बातो मे टाँग मत अडाया कर। मैं जैसा समझूँगी, करूँगी।

माधुरी इस मीठी झिडकी से मन-ही-मन प्रसन्न हुई। वह नहाने चली गई, सा भी रूठने का-सा अभिनय करते हुए। श्यामदुलारी मन-ही-मन हँसी।

३

सहसा एक दिन इन्द्रदेव को यह चेतना हुई कि वह जो कुछ पहले थे, अब नही रहे ! उन्हें पहले भी कुछ-कुछ ऐसा भान होता था कि परदे पर एक दूसरा चित्र तैयारी से आने वाला है; पर उसके इतना शीघ्र आने की सम्भावना न थी। शैला के लिए वह बार-बार सोचने लगे थे। उसकी क्या स्थिति होगी, यही वह अभी नही समझ पाते थे। कभी-कभी वह शैला के संसर्ग से अपने को मुक्त करने की भी चेष्टा करने लगते—यह भी विरक्ति के कारण नही, केवल उसका गौरव बनाने के लिए। उनके कुटुम्ब वालो के मन मे शैला को वेश्या से अधिक समझने की कल्पना भी नही हो सकती थी। यह प्रच्छन्न व्यग उन्हे व्यथित कर देता था।

उधर शैला भी इससे अपरिचित थी—ऐसी बात नही। तब भी इन्द्रदेव से अलग होने की कल्पना उसके मन मे नही उठती थी। इसी बीच मे उसने शहर मे जाकर मिशनरी सोसाइटी से भी बातचीत की थी। उन लोगों ने स्कूल खोल कर शिक्षा देने के लिए उसे उकसाया।

किन्तु उसने मिशनरी होना स्वीकार नही किया। इधर वह बाबा रामनाथ के यहाँ हितोपदेश पढ़ने भी जाती थी अर्थात् इन्द्रदेव और शैला दोनो ही अपने को बहलाने की चिन्ता मे थे। वे इस उलझन को स्पष्ट करने के लिए क्या-क्या करने की बाते सोचते थे, पर एक-दूसरे से कहने मे संकुचित ही नही, किन्तु भयभीत भी थे, क्योकि इन्द्रदेव के परिवार मे घटनाएँ बड़े वेग से विकसित हो रही थी। किसी भी क्षण मे विस्फोट होकर कलह प्रकट हो सकता था।

इमली के पेड के नीचे आरामकुर्सियो पर शैला और इन्द्रदेव बैठकर एक-दूसरे को चुपचाप देख रहे थे। प्रभात की उजली धूप टेबुल पर बिछे हुए रेशमी कपडो पर, रह-रहकर तडप उठती थी, जिस पर धरे हुए फूलदान के गुलाबो मे से एक भीनी महँक उठकर उनके वातावरण को सुगन्धपूर्ण कर रही थी।

इन्द्रदेव ने जैसे घबराकर कहा—शैला।

क्या ?

तुम कुछ देख रही हो ?

सब कुछ। किन्तु इतने विचारमूढ़ क्यों हो रहे हो ? यही समझ में नहीं आता।

तुम्हारी वह कल्पना सफल होती नहीं दिखाई देती। इसी का मुझे दुःख है।

किन्तु अभी हम लोगों ने उसके लिए कुछ किया भी तो नहीं।

कर नहीं सकते।

यह मैं नहीं मानती।

तुमको कुछ मालूम है कि तुम्हारे सम्बन्ध में यहाँ कैसी बातें फैलाई जा रही हैं ?

हाँ! मैं रात-रात को घूमा करती हूँ, जो भारतीय स्त्रियों के लिए ठीक नहीं। मैं रामनाथ के यहाँ संस्कृत पढ़ने जाती हूँ। यह भी बुरा करती हूँ। और, तुमको भी बिगाड़ रही हूँ। यही बात न ? अच्छा, इन बातों के किसी-किसी अंश पर देखती हूँ कि तुम भी अधिक ध्यान देने लगे हो। नहीं तो इतना सोचने-विचारने की क्या आवश्यकता थी ? मैं—

इतना ही नहीं। मैं अब इसलिए चिन्तित हूँ कि अपना और तुम्हारा सम्बन्ध स्पष्ट कर दूँ। यह ओछा अपवाद अधिक सहन नहीं किया जा सकता।

किन्तु मैं अभी उस प्रश्न पर विचारने की आवश्यकता ही नहीं समझती।—शैला ने ईषत् हँसी से कहा।

क्यों ?

तुम्हारे संसर्ग से जो मैंने सीखा है, उसका पहला पाठ यही है कि दूसरे मुझको क्या कहते हैं, इस पर इतना ध्यान देने की आवश्यकता नहीं। पहले मुझे ही अपने विषय में सच्ची जानकारी होनी चाहिए। मैं चाहती हूँ कि तुम्हारी जमींदारी के दातव्य विभाग से जो खर्च स्वीकृत हुआ है, उसी में मैं अपना और औषधालय का काम चलाऊँ। बैंक में भी कुछ काम कर सकूँ, तो उससे भी कुछ मिल जाया करेगा। और मेरी स्वतन्त्र स्थिति इन प्रवादों को स्वयं ही स्पष्ट कर देगी।

बात तो ठीक है—इन्द्रदेव ने कुछ सोचकर धीरे से कहा।

पर इसके लिए तुमको एक प्रबन्ध कर देना पड़ेगा। पहले मैंने सोचा था कि गाँव में कई जगह कर्म-केन्द्र की सृष्टि हो सकती है। भिन्न-भिन्न शक्ति वाले अपने-अपने काम में जुट जायेंगे। किन्तु अब मैं देखती हूँ कि इसमें बड़ी बाधा है,

और मैं उन पर इस तरह नियन्त्रण न कर सकूंगी। इसलिए बैंक और औषधालय, ग्रामसुधार और प्रचार विभाग, सब एक ही स्थान पर हो।

तो ठीक है। शेरकोट मे ही सब विभागो के लिए कमरे बनवाने की व्यवस्था कर दो न।

किन्तु इसम मैं एक भूल कर गई हूँ। क्या उसके सुधारन का कोई उपाय नही है?

भूल कैसी?

कुछ लोग ऐसे होते है, जो जान-बूझकर एक रहस्यपूर्ण घटना को जन्म देते हैं। स्वय उसमे पडते हैं और दूसरा को भी फँसाते हैं। मैं भी शेरकोट को बैंक क लिए चुनने म कुछ इस तरह मूर्ख बनाई गई हूँ।

इन्द्रदेव ने हँसते हुए कहा—मैं देख रहा हूँ कि तुम अधिक भावनामयी होती जा रही हो। यह सन्देह अच्छा नहो। शेरकोट के लिए तो मा ने सब प्रबन्ध कर भी दिया है। अब फिर क्या हुआ?

शरकोट एक पुरान वश की स्मृति है। उस मिटा दना ठीक नही। अभी मधुवन नाम का एक युवक उसका मालिक है। तहसीलदार स उसकी कुछ अनबन है इसलिए यह

मधुवन! अच्छा तो मै क्या कर सकता हूँ। तुम बैंक न भी बनवाओ तो होता क्या है। अब तो वह बेचारा उस शरकोट से निकाला ही जायगा।

तुम एक बार माँ स कहो न! और नीलवाली कोठी की मरम्मत करा दो इसम रुपये भी कम लगेंगे, और

नीलवाली कोठी! —आश्चय स इन्द्रदव न उसकी आर देखा।

हा, क्या?

अरे वह तो भुतही कोठी कही जाती है।

जहा मनुष्य नही रहते वही तो भूत रह सकगे? इन्द्रदेव! मैं उस कोठी का बहुत प्यार करती हूँ।

कब से शैला? —हँसते हुए इन्द्र ने उसका हाथ पकड लिया।

इन्द्र। तुम नहीं जानते। मेरी माँ यही कुछ दिनो तक रह चुकी है।

इन्द्रदेव की आँखें जैसे बडी हो गईं। उन्होन कुर्सी स उठ खडे होकर कहा —*तुम क्या कह रही हो?*

बैठो और सुनो। मै वही कह रही हूँ, जिसक मुझे सच हान का विश्वास हो रहा ह। तुम इसके लिए कुछ करो। मुझे तुमसे दान लेन म तो काई सकोच नहीं। आज तक तुम्हारे ही दान पर मैं जी रही हूँ किन्तु वहा रहने दकर मुझे

सबसे बड़ी प्रसन्नता तुम दे सकते हो। और, मेरी जीविका का उपाय भी कर सकते हो।

शैला की इस दीनता से घबराकर इन्द्रदेव ने कुर्सी खींचकर बैठते हुए कहा—

शैला! तुम काम-काज की इतनी बात करने लगी हो कि मुझे आश्चर्य हो रहा है। जीवन में यह परिवर्तन सहसा होता है, किन्तु यह क्या! तुम मुझको एक बार ही कोई अन्य व्यक्ति क्या समझ बैठी हो? मैं तुमको दान दूँगा? कितने आश्चर्य की बात है!

यह सत्य है इन्द्रदेव! इसे छिपाने से कोई लाभ नहीं। अवस्था ऐसी है कि अब मैं तुमसे अलग होने की कल्पना करके दुखी होती हूँ, किन्तु थोड़ी दूर हटे बिना काम भी नहीं चलता। तुमको और अपने को समान अन्तर पर रखकर कुछ दिन परीक्षा लेकर, तब मन से पूछूँगी।

क्या पूछोगी शैला!

कि वह क्या चाहता है। तब तक के लिए यही प्रबन्ध रहना ठीक होगा। मुझे काम करना पड़ेगा, और काम किये बिना यहाँ रहना मेरे लिए असम्भव है। अपनी रियासत में मुझे एक नौकरी और रहने की जगह देकर मेरे बोझ से तुम इस समय के लिए छुट्टी पा जाओ, और स्वतंत्र होकर कुछ अपने विषय में भी सोच लो।

शैला बड़ी गंभीरता से उनकी ओर देखते हुए फिर कहने लगी—हम लोगों के पश्चिमी जीवन का यह संस्कार है कि व्यक्ति को स्वावलम्ब पर खड़ा होना चाहिए। तुम्हारे भारतीय हृदय में, जो कौटुम्बिक कोमलता में पला है, परस्पर सहानुभूति की—सहायता की बड़ी आशाएँ, परम्परागत संस्कृति के कारण बलवती रहती हैं। किन्तु मेरा जीवन कैसा रहा है, उसे तुमसे अधिक कौन जान सकता है! मुझसे काम लो और बदले में कुछ दो।

अच्छा, यह सब मैं कर लूँगा, पर मधुबन के शेरकोट का क्या होगा? मैं नहीं कहना चाहता। मैं न जाने क्या मन में सोचेंगी। जबकि उन्होंने एक बार कह दिया, तब उसके प्रतिकूल जाना उनकी प्रकृति के विरुद्ध है। तो भी तुम स्वयं कहकर देख लो।

यह मैं नहीं पसन्द करती इन्द्रदेव! मैं चाहती हूँ कि जो कुछ कहना हो, अपनी माताजी से तुम्हीं कहो। दूसरों से वही बात सुनने पर, जिसे कि अपनों से सुनने की आशा रहती है—मनुष्य के मन में एक ठेस लगती है। यह बात अपने घर में तुम आरम्भ न करो।

देखा शैला। वह आरम्भ हो चुकी है, अब उसे रोकने में असमर्थ हूँ। तब भी तुम कहती हो, तो मैं ही कहकर देखूँगा कि क्या होता है। अच्छा तो जाओ, तुम्हारे हितोपदेश के पाठ का यही समय है न! वाह! क्या अच्छा तुमने यह स्वाँग बनाया है।

शैला ने स्निग्ध दृष्टि से इन्द्रदेव को देखकर कहा—यह स्वाँग नहीं, है, मैं तुम्हारे समीप आने का प्रयत्न कर रही हूँ—तुम्हारी संस्कृति का अध्ययन करके।

अनवरी को आते देखकर उल्लास से इन्द्रदेव ने कहा—शैला! शेरकोट वाली बात अनवरी से ही माँ तक पहुँचाई जा सकती है।

शैला प्रतिवाद करना ही चाहती थी कि अनवरी सामने आकर खड़ी हो गई। उसने कहा—आज कई दिन से आप उधर नहीं आई हैं। सरकार पूछ रही थी कि

अरे पहले बैठ तो जाइए।—कुर्सी खिसकाते हुए शैला ने कहा मैं तो स्वयं अभी चलने के लिए तैयार हो रही थी।

अच्छा—

हाँ शेरकोट के बारे में रानी साहबा से मुझे कुछ कहना था। मेरे भ्रम से एक बड़ी बुरी बात हो रही है उसे रोकने के लिए

क्या?

मधुबन बेचारा अपनी झोपड़ी से भी निकाल दिया जायगा। उसके बाप-दादों की डीह है। मैंने बिना समझे-बूझे बैंक के लिए वही जगह पसन्द की। उस भूल को सुधारने के लिए मैं अभी ही आने वाली थी।

मधुबन! हाँ, वही न, जो उस दिन रात को आपके साथ था, जब आप नील-कोठी से आ रही थी? उस पर तो आपको दया करनी ही चाहिए—कहकर अनवरी ने भेद भरी दृष्टि से इन्द्रदेव की ओर देखा।

इन्द्रदेव कुर्सी छोड़ उठ खड़े हुए।

शैला ने निराश दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए कहा—तो इस मेरी दया में आपकी सहायता की भी आवश्यकता हो सकती है। चलिए।

४

क्या बटी ! तुमन साच विचार लिया ? —काठरी क बाहर बैठ हुए रामनाथ न पूछा।

भीतर स राजकुमारी न कहा—बाबाजी हम लोग इस समय ब्याह करन क लिए रुपय कहाँ स लावे ?

रुपया से ब्याह नही हागा बटी ! ब्याह हागा मधुबन स तितली का। तुम इस स्वीकार कर लो, और जा कुछ हागा मैं देख लूगा। मै अब बूढा हुआ, तितली को तुम लोगा की स्नेह-छाया म दिये बिना मैं कैस सुख स मरूँगा ?

अच्छा, पर एक बात और भी आपन समझ ली है ? क्या मधुबन, तितली क साथ गृहस्थी चलाने के लिए, दु ख-सुख भागन के लिए तैयार है ? वह अपनी सुध-बुध तो रखता ही नही। भला उसके गले एक बछिया बाँध कर क्या आप ठीक करगे ?

सुनो बेटी, दस बीघा तितली क, और तुम लागा क जा खत है—सब मिला कर एक छोटी-सी गृहस्थी अच्छी तरह चल सकगी। फिर तुमको ता यही सब देखना है, करना है, सब सम्हाल लागी। मधुबन भी पढा-लिखा परिश्रमी लडका है। लग-लपटकर अपना घर चला ही लगा।

मधुवन से भी आप पूछ लीजिए। वह मरी बात सुनता कब ह। कई बार मैन कहा कि अपना घर देख, वह हँस दता है, जैस उस इसकी चिन्ता ही नही। हम लोग न जाने कैस अपना पेट भर लेते हैं। फिर पराई लडकी घर म ल आकर तो उसी तरह नही चल सकता ?

तुम भूलती हो बटी ! पराई लडकी समझता तो मै उसक ब्याह की यहा चर्चा न चलाता। मधुबन और तितली दोना एक-दूसरे का अच्छी तरह पहचान गय है। और तितली पर तुमको दया ही नही करनी हागी, तुम उसे प्यार भी करोगी। उसे तुमन इधर दखा है ?

नही, अब ता वह बहुत दिन से इधर आती ही नही।

आज मेम साहब के साथ वह भी नहाने गई है। शैला का नाम तो तुमन

सुना होगा ? वही जो यहा के जमीदार इन्द्रदेव के साथ विलायत से आई है। बडी अच्छी सुशील लडकी है। वह भी मेरे यहाँ संस्कृत पढती है। तुम चल कर उन दोनो से बात भी कर लो और देख भी लो।

अच्छा, मैं अभी आती हूँ।

मैं भी चलता हूँ बेटी ! मधुवन उनके संग नही है। मल्लाह को तो सहेज दिया है। तो चलू !

रामनाथ नहाने के घाट की ओर चले। राजकुमारी भी रामदीन की नानी के साथ गगा की ओर चली।

अभी वह शेरकोट से बाहर निकल कर पथ पर आई थी कि सामने से चौबे-जी दिखाई पडे। राजकुमारी ने एक बार घूघट खीचकर मुडते हुए निकल जाना चाहा। किन्तु चौबे ने सामने आकर टोक ही दिया—भाभी है क्या ? अरे मैं तो पहचान ही न सका !

दुख मे सब लोग पहचान ले ऐसा तो नही होता। —राजकुमारी ने अन खाते हुए कहा।

अरे नही-नही ! मै भला भूल जाऊँगा ? नौकरी ठहरी। बराबर सोचता हू कि एक दिन शेरकोट चलूँ, पर छुट्टी मिल तब तो। आज मैने भी निश्चय कर लिया था कि भेट करूँगा ही।

चौबेजी के मुँह पर एक स्निग्धता छा गई थी, वह मुस्कराने की चेष्टा करने लगे।

किन्तु मैं नहाने जा रही हूँ।

अच्छी बात है, मैं थोडी देर मे आऊँगा। —कहकर चौबेजी दूसरी ओर चल गये, और राजकुमारी को पथ चलना दूभर हो गया !

कितने बरस पहले की बात है ! जब वह ससुराल मे थी, विधवा होने पर भी बहुत-सा दुख, मान-अपमान भरा समय वह बिता चुकी थी। वह ससुराल की गृहस्थी मे बोझ-सी हो उठी थी। चचेरी सास के व्यग से नित्य ही घडी दो-घडी कोने मे मुँह डाल कर रोना पडता। सब कुछ सहकर भी वही खटना पडता।

ससुराल के पुरोहितो मे चौबेजी का घराना था। चौबे प्राय आते-जाते—वैसे ही, जैसे घर के प्राणी, और गाव के सहज नाते से राजकुमारी के वह देवर होते—हँसने-बोलने की बाधा नही थी।

राजकुमारी के पति के सामने से ही यह व्यवहार था। विधवा होने पर भी वह छूटा नही। उस निराशा और कष्ट के जीवन मे भी कभी-कभी चौबे आकर हँसी की रेखा खीच देते। दोनो के हृदय मे एक सहज स्निग्धता और सहानुभूति

थी। दिन-दिन वही बढ़ने लगी। स्त्री का हृदय था, एक दुलार का प्रत्याशी, उसमे कोई मलिनता न थी।

चौबे भी अज्ञात भाव से उसी का अनुकरण कर रहे थे। पर वह कुछ जैसे अधकार म चल रहे थे। राजकुमारी फिर भी सावधान थी।

एक दिन सहसा नियमित गालियाँ सुनने के समय जब चौबे का नाम भी उसमे मिलकर भीषण अट्टहास कर उठा, तब राजकुमारी अपने मन म न जाने क्यो वास्तविकता को खोजने लगी। वह जैसे अपमान की ठोकर से अभिभूत होकर उसी ओर पूर्ण वेग से दौडने के लिए प्रस्तुत हुई, बदला लेने के लिए और अपनी असहाय अवस्था का अवलम्ब खोजने के लिए। किन्तु वह पागलपन क्षणिक हो रहा। उसकी खीझ फल नही पा सकी। सहसा मधुबन को सम्हालने के लिए उसे शेरकोट चले आना पडा। वह भयानक आँधी क्षितिज मे ही दिखलाई देकर रुक गई। चौबे नौकरी करने लगे राजा साहब के यहाँ, और राजकुमारी शेरकोट के झाडू और दीये म लगी—यह घटना वह सभवत भूल गई थी, किन्तु आज सहसा विस्मृत चित्र सामने आ गया।

राजकुमारी का मन अस्थिर हो गया। वह गगाजी के नहाने के घाट तक बडी दर से पहुँची।

शैला और तितली नहाकर ऊपर खडी थी। बाबा रामनाथ अभी सध्या कर रहे थे। राजकुमारी को देखते ही तितली ने नमस्कार किया और शैला से कहा —आप ही हैं, जिनकी बात बाबाजी कर रहे थे?

शैला ने कहा—अच्छा! आप ही मधुबन की बहिन है?

जी।

मैं मधुबन के साथ पढ़ती हूँ। आप मेरी भी बहन हुईं न!—शैला ने सरल प्रसन्नता से कहा।

राजकुमारी ने मेम के इस व्यवहार से चकित होकर कहा—मै आपकी बहन होने योग्य हूँ? यह आपकी बडाई है।

क्यो नही बहन! तुम ऐसा क्यो सोचती हो? आओ, इस जगह बैठ जायँ। अच्छा होगा कि तुम भी स्नान कर लो, तब हम लोग साथ ही चले।

नहीं, आपको विलम्ब होगा।—कहकर राजकुमारी विशाल वृक्ष के नीचे पडे हुए पत्थर की ओर बढी।

शैला और तितली भी उसी पर जाकर बैठी।

राजकुमारी का हृदय स्निग्ध हो रहा था। उसने देखा, तितली अब वह चचल लडकी न रही, जो पहले मधुबन के साथ खेलने आया करती थी। उसकी

काली रजनी-सी उनीदी आखे जैसे सदैव कोई गम्भीर स्वप्न देखती रहती है। लम्बा छरहरा अग, गोरी-पतली उँगलियां, सहज उन्नत ललाट, कुछ खिंची हुई भौहे और छोटा-सा पतले-पतले अधरावाला मुख—साधारण कृपक-बालिका से कुछ अलग अपनी सत्ता वता रहे थे। कानो के ऊपर से ही घूंघट था, जिससे लट निकली पडती थी। उसकी चौडी किनारे की धोती का चम्पई रग उसके शरीर म घुला जा रहा था। वह सन्ध्या के निरभ्र गगन म विकसित हाने वाली—अपने ही मधुर आलोक से तुष्ट—एक छोटी-सी तारिका थी।

राजकुमारी, स्त्री की दृष्टि से, उसे परखन लगी, और रामनाथ का प्रस्ताव मन-ही-मन दुहराने लगी।

शैला ने कहा—अच्छा, तुम कही आती-जाती नही हा बहन !

कहाँ जाऊँ ?

तो मैं ही तुम्हारे यहाँ कभी-कभी आया करूँगा। अकेले घर मे बैठे-बैठे कैसे तुम्हारा मन लगता है ?

बैठना ही तो नही है! घर का काम कौन करता है ? इसी म दिन बीतता जा रहा है। देखिए, यह तितली पहले मधुबन के साथ कभी-कभी आ जाती थी, खेलती थी। अब तो सयानी हो गई है। क्या री, अभी ता ब्याह भा नही हुआ, तू इतनी लजाती क्यो है ?—घूमकर जब उसन तितली की ओर देखकर यह बात कही, तो उसके मुख पर एक सहज गम्भीर मुस्कान—लज्जा क बादल म बिजली-सी—चमक उठी।

शैला न उसकी ठोढी पकडकर कहा—यह तो अब यही आकर रहना चाहती है न, तुम इसको बुलाती नही हो, इसीलिए रूठी हुई है।

तितली को अपनी लज्जा प्रकट करने के लिए उठ जाना पडा। उसने कहा—क्यो नही आऊँगी।

बाबा रामनाथ ऊपर आ गये थे। उन्हाने कहा—अच्छा, तो अब चलना चाहिए।

फिर राजकुमारी की ओर देखकर कहा—तो बेटी, फिर किसी दिन आऊँगा।

राजकुमारी ने नमस्कार किया। वह नहाने के लिए नीचे उतरने लगी, और शैला तितली के साथ रामनाथ का अनुसरण करने लगी।

गगा के शीतल जल म राजकुमारी देर तक नहाती रही, और साचती थी अपन जीवन की अतीत घटनाएँ। तितली के ब्याह के प्रसग स और चौबे के आने-जाने स नई होकर वे उसकी आँखा क सामन अपना चित्र उन लहरों म खींच रही थी। मधुबन की गृहस्थी का नशा उस अब तक विस्मृति के अन्धकार

म डाले हुए था। वह सोच रही थी—क्या वही सत्य था ? इतना दिन जो मैंन किया, वह भ्रम था ! मधुवत जब ब्याह कर लगा, तब यहाँ मेरा क्या काम रह जायगा ? गृहस्थी ! उसे चलान के लिए तो तितली आ ही जायगी। अहा ! तितली कितनी सुन्दर है ! मधुवन प्रसन्न होगा। और मैं ? अच्छा, तब तीर्थ करन चली जाऊँगी। उँह ! रुपया चाहिए उसके लिए—कहाँ से आवेगा ? अरे जब घूमना ही है, तो क्या रुपये की कमी रह जायगी ? रुपया लेकर करूँगी ही क्या ? भीख माँग कर या परदश म मजूरी करके पेट पालूंगी। परन्तु आज इतने दिना पर चौबे !

उसके हृदय मे एक अनुभूति हुई जिस स्वय स्पष्ट न समझ सकी। एक विकट हलचल हाने लगी। वह जैसे उन चपल लहरा म झूमन लगी।

रामदीन की नानी ने कहा—चलो मालकिन, अभी रसाई का सारा काम पडा है, मधुबन बाबू आते होगे।

राजकुमारी जल के बाहर खीझ से भरी निकली। आज उसके प्रौढ वय म भी व्यय-विहीन पवित्र यौवन चचल हो उठा था। चौबे ने उससे फिर मिलने क लिए कहा था। वह आकर लौट न जाय।

वह जल स निकलते ही घर पहुँचने क लिए व्यग्र हा उठी।

५

शेरकोट मे पहुँचकर उसने अपनी चचल मनोवृत्ति को भरपूर दबाने की चेष्टा की, और कुछ अश तक वह सफल भी हुई, पर अब भी चौबे की राह देख रही थी। बहुत दिनो तक राजकुमारी के मन मे यह कुतूहल उत्पन्न हुआ था कि चौबे के मन म वह बात अभी बनी हुई है या भूल गई। उसे जान लेने पर वह सन्तुष्ट हो जायगी। बस, और कुछ नही। मधुबन ! नही, आज वह सन्ध्या को घर लौटने के लिए कह गया है। तो फिर, रसोई बनाने की भी आवश्यकता नही। वह स्थिर होकर प्रतीक्षा करने लगी।

किन्तु बहुत दिनो पर चौबेजी आवेंगे, उनके लिए जलपान का कुछ प्रबन्ध होना चाहिए। राजकुमारी ने अपनी गृहस्थी के भडार-घर म जितनी हाँडियाँ टटोली, सब सूनी मिली। उसकी खीझ बढ गई। फिर इस खोखली गृहस्थी का तो उसे कभी अनुभव भी न हुआ था।

आज मानो वह शेरकोट अपनी अन्तिम परीक्षा म असफल हुआ।

राजकुमारी का क्रोध उबल पडा। अपनी अग्निमयी आँखो को घुमाकर वह जिधर ही ले जाती थी, अभाव का खोखला मुँह विकृत रूप से परिचय दकर जैसे उसकी हँसी उडान क लिए मौन हो जाता। वह पागल होकर बोली—यह भी कोई जीवन है।

क्या है भाभी ! मैं आ गया !—कहते हुए चौबे ने घर म प्रवश किया। राजकुमारी अपना घूघट खीचत हुए काठ की चौकी दिखाकर बोली—बैठिए।

क्या कहूँ, तहसीलदार के यहाँ ठहर जाना पडा। उन्हान बिना कुछ खिलाए आने ही नही दिया। सा भाभी ! आज ता क्षमा करो, फिर किसी दिन आकर खा जाऊँगा। कुछ मेरे लिए बनाया ता नही ?

राजकुमारी रुद्ध कठ स बाली—नही तो, आये बिना मैं कैस क्या करती ! ता फिर कुछ तो.

नहीं आज कुछ नही ! हाँ, और क्या समाचार है। कुछ सुनाओ।—कहकर चौब ने एक बार सतृष्ण नेत्रा म उस दरिद्र विधवा की ओर देखा।

सुखदेव ! कितने दिनों पर मेरा समाचार पूछ रहे हो, मुझे भी स्मरण नहीं, सब भूल गई हूँ। कहने की कोई बात हो भी। क्या कहूँ।

भाभी ! मैं बड़ा अभागा हूँ। मैं तो घर से निकाला जाकर कष्टमय जीवन ही बिता रहा हूँ। तुम्हारे चले आने के बाद मैं कुछ ही दिनों तक घर पर रह सका। जो थोड़ा खेत बचा था उसे बन्धक रखकर बड़े भाई के लिए एक स्त्री खरीद कर जब आई, तो मेरे लिए रोटी का प्रश्न सामने खड़ा होकर हँसने लगा। मैं नौकरी के बहाने परदेश चला। मेरा मन भी वहाँ लगता न था। गाँव काटने दौड़ता था। कलकत्ता में किसी तरह एक थेटर की दरबानी मिली। मैं उसके साथ बराबर परदेस घूमने लगा। रसोई भी बनाता रहा। हाँ बीच में मैं संग होने से हारमोनियम सीखता रहा। फिर एक दिन बनारस में जब हमारी कम्पनी खेल कर रही थी, राजा साहब से भेंट हो गई। जब उन्हें सब हाल मालूम हुआ, तो उन्होंने कहा—तुम चलो, मेरे यहाँ सुख से रहो। क्यों परदेस में मारे-मारे फिर रहे हो ? तब मैं राजा साहब का दरबारी बना। उन्हें कभी कोई अच्छी चीज बनाकर खिलाता, ठंढाई बनाता और कभी-कभी बाजा भी सुनाता। मेरे जीवन का कोई लक्ष्य न था। रुपया कमाने की इच्छा नहीं। दिन बीतने लगे। कभी-कभी, न जाने क्यों, तुमको स्मरण कर लेता। जैसे इस संसार में

राजकुमारी के नस नस में बिजली दौड़ने लगी थी। एक अभागे युवक का—जो सब ओर से ठुकराये जाने पर भी उसको स्मरण करता था—रूप उसकी आँखों के सामने विराट होकर ममता के आलोक में झलक उठा। वह तन्मय होकर सुन रही थी, जैसे उसकी चेतना सहसा लौट आई। अपनी प्यास बढ़ाकर उसने पूछा—क्या सुखदेव ! मुझे क्यों ?

न पूछो भाभी ! अपने दुख से जब ऊबकर मैं परदेस की किसी कोठरी में गाँव की बातें सोचकर आह कर बैठता था, तब मुझे तुम्हारा ध्यान बराबर हो आता। तुम्हारा दुख क्या मुझसे कम है ? और वाह रे निष्ठुर संसार ! मैं कुछ कर नहीं सकता था ? वह क्यों ?

सुखदेव ! बस करो। वह भूख समय पर कुछ न पाकर मर मिटी है। उसे जानने से कुछ लाभ नहीं। मुझे भी इस संसार में कोई पूछने वाला है, यह मैं नहीं जानती थी, और न जानना मेरे लिए अच्छा था। तुम सुखी हो। भगवान सबका भला करे।

भाभी ? ऐसा न कहो। दो दिन के जीवन में मनुष्य मनुष्य को यदि नहीं पूछता—स्नेह नहीं करता, तो फिर वह किसलिए उत्पन्न हुआ है। यह सत्य है कि सब ऐसे भाग्यशाली नहीं होते कि उन्हें कोई प्यार करे, पर यह तो हो सकता

है कि वह स्वय किसी को प्यार करे, किसी के दुख-सुख मे हाथ बँटाकर अपना जन्म सार्थक कर ले।

सुखदेव नाटक म जैसे अभिनय कर रहा था।

राजकुमारी ने एक दीर्घ निश्वास लिया। वह निश्वास उस प्राचीन खँडहर म निराश होकर घूम आया था। वह सिर झुकाकर बैठी रही। सुखदेव की आँखो मे आँसू झलकने लगे थे। वह दरबारी था आया था कुछ काम साधने, परन्तु प्रसग ऐसा चल पडा कि उसे कुछ साफ-साफ होकर सामने आना पडा।

उसकी चतुरता का भाव परास्त हो गया था। अपने को सम्हालकर कहने लगा—तो फिर मैं अपनी बात न कहूँ? अच्छा, जैसी तुम्हारी आज्ञा। एक विशेष काम से तुम्हारे पास आया हूँ। उसे तो सुन लोगी?

तुम जो कहोगे, सब सुनूँगी, सुखदेव!

तितली को तो जानती हो न!

जानती हूँ क्या नही, अभी आज ही तो उससे भेंट हुई थी।

और हमारे मालिक कुँवर इन्द्रदेव को भी?

क्या नही!

यह भी जानती हो कि तुम लोगो के शेरकोट को छीनने का प्रबन्ध तहसीलदार ने कर लिया है?

राजकुमारी अब अपना धैर्य न सम्हाल सकी, उसने चिढकर कहा—सब सुनती हूँ, जानती हूँ, तुम साफ-साफ अपनी बात कहो।

मैंने तहसीलदार को रोक दिया है। वहाँ रहकर अपनी आँखो के सामने तुम्हारा अनिष्ट होते मैं नही देख सकता था। किन्तु एक काम तुम कर सकोगी?

अपने को बहुत रोकते हुए राजकुमारी ने कहा—क्या?

किसी तरह तितली से इन्द्रदेव का ब्याह करा दो और यह तुम्हारे किये होगा! और तुम लोगो से जो जमीदार के घर से बुराई है, वह भलाई म परिणत हो जायगी। सब तरह का रीति-व्यवहार हो जायगा। भाभी! हम सब सुख से जीवन बिता सकेगे।

राजकुमारी निश्चेष्ट होकर सुखदेव का मुह देखने लगी, और वह बहुत-सी *बात सोच रही थी। थोडी देर पर वह बोली—क्यो, मेम साहब क्या करेंगी?*

उसी को हटाने के लिए तो। तितली को छोडकर और कोई ऐसी बालिका जाति की नही दिखाई पडती, जो इन्द्रदेव से ब्याही जाय, क्योकि विलायत से मेम ले आने का प्रवाद सब जगह फैल गया है।

कुछ देर तक राजकुमारी सिर नीचा कर सोचती रही। फिर उसने कहा—अच्छा, किसी दूसरे दिन इसका उत्तर दूंगी।

उस दिन चौबे बिदा हुए। किन्तु राजकुमारी के मन म भयानक हलचल हुई। सयम के प्रौढ भाव की प्राचीर के भीतर जिस चारित्र्य की रक्षा हुई थी, आज वह सन्धि खोजने लगा था। मानव-हृदय की वह दुर्बलता कही जाती है। किन्तु जिस प्रकार चिररोगी स्वास्थ्य की सम्भावना स प्रेरित होकर पलँग के नीचे पैर रखकर अपनी शक्ति की परीक्षा लेता है, ठीक उसी तरह तो राजकुमारी के मन म कुतूहल हुआ था—अपनी शक्ति को जाचने का। वह किसी अश तक सफल भी हुई, और उसी सफलता न और भी चाट बढा दी। राजकुमारी परखने लगी थी अपना—स्त्री का अवलम्ब, जिसके सबसे बडे उपकरण हैं यौवन और सौन्दर्य। आत्मगौरव, चारित्र्य और पवित्रता तक सबकी दृष्टि लो नही पहुँचती। अपनी सासारिक विभूति और सम्पत्ति को सम्हालने की आवश्यकता रखने वा‌ि किस प्राणी का, चिन्ता नही होती?

शस्त्र कुठित हो जाते है, तब उन पर शान चढ़ाना पडता है। किन्तु राजकुमारी के सब अस्त्र निकम्मे नही थे। उनकी और परीक्षा लेने की लालसा उसके मन मे बढ़ी।

उधर हृदय म एक सन्तोप भी उत्पन्न हो गया था। वह सोचन लगी थी कि मधुबन की गृहस्थी का बोझ उसी पर है। उस मधुबन की कल्याण-कामना के साथ उसकी व्यावहारिकता भी देखनी चाहिए। शेरकोट कैसे बचेगा, और तितली से ब्याह करके दरिद्र मधुबन कैसे सुखी हो सकेगा? यदि तितली इन्द्रदेव की रानी हो जाती और राजकुमारी के प्रयत्न से, तो वह कितना

वह भविष्य की कल्पना से क्षण-भर व लिए पागल हा उठी। सब बातो म सुखदेव की सुखद स्मृति उसकी कल्पनाओ को और भी सुन्दर बनाने लगी।

बुढिया ने बहुत देर तक प्रतीक्षा की, पर जब राजकुमारी के उठने के, या रसोई-घर मे आने के, उसने कोई लक्षण नही देखे तो उसे भी लाचार होकर वहाँ से टल जाना पडा। राजकुमारी ने अनुभूति भरी आँखो स अपनी अभाव की गृहस्थी को देखा और विरक्ति से वही चटाई बिछाकर लेट गई।

धीरे-धीरे दिन ढलने लगा। पश्चिम म लाली दौडी, किन्तु राजकुमारी आलस भरी भावना म डुबकी ले रही थी। उसने एक बार अँगडाई लेकर करारो म गगा की अधखुली धारा को देखा। वह धीरे धीरे बह रही थी। स्वप्न दखने की इच्छा से उसने आँखे बन्द की।

मधुबन आया। उसने आज राजकुमारी को इस नई अवस्था म देखा। वह

कई बरसो से बराबर, बिना किसी दिन की बीमारी के, सदा प्रस्तुत रहने के रूप मे ही राजकुमारी कोदेखता आता था। किन्तु आज ? वह चौक उठा। उसने पूछा—

राजो ! पडी क्यो हो ?

वह बोली नही। सुनकर भी जैसे न सुन सकी। मन-ही-मन सोच रही थी। ओह, इतने दिन बीत गये ! इतने बरस ! कभी दो घडी की भी छुट्टी नही। मै क्यो जगाई जा रही हूँ। इसीलिए न कि रसोई नही बनी है। तो मैं क्या रसोई-दारिन हूँ। आज नही बनी—न सही।

मधुबन दौड कर बाहर आया। बुढ़िया को खोजने लगा। वह भी नही दिखाई पडी। उसने फिर भीतर जाकर रसोई-घर देखा। कही धुएँ या चूल्हा जलने का चिह्न नही। बरतनो को उलट-पलट कर देखा। भूख लग रही थी। उसे थोडा-सा चबेना मिला। उसे बैठकर मनोयोग से खाने लगा। मन-ही-मन सोचता था—आज बात क्या है ? डरता भी था कि राजकुमारी चिढ न जाय। उसने भी मन मे स्थिर किया—आज यहाँ रहूँगा नही।

मधुबन का रूठने का मन हुआ। वह चुपचाप जल पीकर चला गया।

राजकुमारी ने सब जान-बूझकर—कहा—हूँ। अभी यह हाल है तो तितली से ब्याह हो जाने पर तो धरती पर पैर ही न पडे गे।

विरोध कभी-कभी बडे मनोरजक रूप मे मनुष्य के पास धीरे से आता है और अपनी काल्पनिक सृष्टि मे मनुष्य को अपना समर्थन करने के लिए बाध्य करता है—अवसर देता है—प्रमाण ढूँढ लाता है। और फिर, आँखो मे लाली, मन मे घृणा, लडने का उन्माद और उसका सुख—सब अपने-अपने कोनो से निकलकर उसके हाँ-मे-हाँ मिलाने लगते है।

गोधूली आई। अन्धकार आया। दूर-दूर झोपडिया म दीये जल उठे। शेर-कोट का खँडहर भी सायँ-सायँ करने लगा। किन्तु राजकुमारी आज उठती ही नही। वह अपने चारो ओर और भी अन्धकार चाहती थी।

६

उजली धूप वनजरिया के चारो ओर, उसके छोटे-बडे पौधो पर, फिसल रही थी। अभी सवेरा था, शरीर म उस कोमल धूप की तीव्र अनुभूति करती हुई तितली, अपन गोभी के छोटे-से खत के पास, सिरिस के नीचे बैठी थी। झाडियो पर से ओस की बूदें गिरने-गिरन को हा रही थी। समीर म शीतलता थी।

उसकी आँखो म विश्वास कुतूहल बना हुआ संसार का सुन्दर चित्र देख रहा था। किसी ने पुकारा—तितली ! उसने घूमकर देखा, शैला अपनी रेशमी साडी का अचल हाथ मे लिए खडी है।

तितली की प्रसन्नता चचल हो उठी। वही खडी होकर उसने कहा—आओ बहन ! देखो न ! मेरी गोभी म फूल बैठने लगे हैं।

शैला हँसती हुई पास आकर देखने लगी। श्याम-हरित पत्रो म नन्हे-नन्हे उजले-उजले फूल ! उसने कहा—वाह ! लो, तुम भी इसी तरह फूलो-फलो।

आशीर्वाद की कृतज्ञता म सिर झुकाकर तितली ने कहा—कितना प्यार करती हो मुझे !

तुमको जो देखेगा, वही प्यार करेगा।

अच्छा !—उसने अप्रतिभ होकर कहा।

चलो, आज पाठ कब होगा ? अभी तो मधुबन भी नही दिखाई पडा।

मैं आज न पढ़ूँगी।

क्यो ?

यो ही। और भी कई काम करना है।

शैला ने कहा—अच्छा, मैं भी आज न पढ़ूँगी—बाबाजी स मिल कर चली जाऊँगी।

रामनाथ अभी उपासना करके अपने आसन पर बैठे थे। शैला उनके पास चटाई पर जाकर बैठ गई। रामनाथ ने पूछा—आज पाठ न होगा क्या ? मधुवन भी नही दिखाई पड रहा है, और तितली भी नही !

आज यो ही मुझे कुछ बताइए ।

पूछो ।

हम लोगो के यहाँ जीवन को युद्ध मानते हैं, इसमे कितनी सचाई है । इसके विरुद्ध भारत म उदासीनता और त्याग का महत्त्व है ?

यह ठीक है कि तुम्हारे देश के लोगों ने जीवन को नही, किन्तु स्थल और आकाश को भी लडने का क्षेत्र बना दिया है । जीवन को युद्ध मान लेने का यह अनिवार्य फल है । जहाँ स्वार्थ के अस्तित्व के लिए युद्ध होगा, वहाँ तो यह होना ही चाहिए ।

किन्तु युद्ध का जीवन मे कुछ भाग तो अवश्य ही है । भारतीय जनता म भी उसका अभाव नही ।

पर यह दूसरे प्रकार का है । उसमे अपनी आत्मा के शत्रु आसुर भावो से युद्ध की शिक्षा है । प्राचीन ऋषियो ने बतलाया है कि भीतर जो काम का और जीवन का युद्ध चलता ह, उसम जीवन को विजयी बनाओ ।

किन्तु, मैं तो ऐसा समझतो हूँ कि आपक वेदान्त मे जो जगत् का मिथ्या और भ्रम मान लेने का सिद्धान्त है, वही यहाँ के मनुष्या को उदासीन बनाता है ? ससार को असत समझने वाला मनुष्य कैसे किसी काम को विश्वासपूर्वक कर सकता है ।

मैं कहना हूँ कि वह वेदान्त पिछले काल का साम्प्रदायिक वेदान्त है, जा तर्कों के आधार पर अन्य दार्शनिक को परास्त करने के लिए बना । सच्चा वेदान्त व्यावहारिक है । वह जीवन-समुद्र आत्मा को उसकी सम्पूर्ण विभूतियो के साथ समझता है । भारतीय आत्मवाद के मूल म व्यक्तिवाद है, किन्तु उसका रहस्य है समाजवाद की रूढियो से व्यक्ति की स्वतन्त्रता की रक्षा करना । और, व्यक्ति की स्वतन्त्रता का अर्थ है व्यक्ति समता की प्रतिष्ठा, जिसम समझौता अनिवार्य है । युद्ध का परिणाम मृत्यु है । जीवन से युद्ध का क्या सम्बन्ध, युद्ध तो विच्छेद है और जीवन म शुद्ध सहयोग है ।

अच्छा, तो मैं मान लेती हूँ, परन्तु

सुनो, तुम्हारे ईसा के जीवन म और उनकी मृत्यु मे इसी भारतीय सन्देश की क्षीण प्रतिध्वनि है ।

आपन ईसा की जीवनी भी पढ़ी है ?

क्या नहो ! किन्तु तुम लोगो के इतिहास मे तो उसका कोई सूक्ष्म निदर्शन नही मिलता, जिसक लिए ईसा ने प्राण दिये थे । आज सब लोग यही कहते हैं कि ईसाई धर्म सेमिटिक है, किन्तु तुम जानती हो कि यह सेमेटिक धर्म क्यो

सेमेटिक जाति के द्वारा अस्वीकृत हुआ ? नहीं। वास्तव में वह विदेशी था, उनके लिए, वह आर्य-सन्देश था। और कभी इस पर भी विचार किया है तुमने कि वह क्यों आर्य-जाति की शाखा में फूला-फला ? वह धर्म उसी जाति के आर्य-संस्कारों के साथ विकसित हुआ, क्योंकि तुम लोगों के जीवन में ग्रीस और रोम की आर्य-संस्कृति का प्रभाव सोलहों आने था ही, उसी का यह परिवर्तित रूप संसार की आँखों में चकाचौंध उत्पन्न कर रहा है। किन्तु व्यक्तिगत पवित्रता को अधिक महत्त्व देने वाला वेदांत, आत्मशुद्धि का प्रचारक है। इसीलिए इसमें संघबद्ध प्रार्थनाओं की प्रधानता नहीं।

तो जीवन की अतृप्ति पर विजय पाना ही भारतीय जीवन का उद्देश्य है न ? फिर अपने लिए

अपने लिए ? अपने लिए क्यों नहीं। सब कुछ आत्मलाभ के लिए ही तो धर्म का आचरण है। उदास होकर इस भाव को ग्रहण करने से तो सारा जीवन भार हो जायगा। इसके साथ प्रसन्नता और आनन्दपूर्ण उत्साह चाहिए। और तब जीवन युद्ध न होकर समझौता, सन्धि या मेल बन जाता है। जहाँ परस्पर सहायता और सेवा की कल्पना होती है—झगड़ा-लड़ाई नोच-खसोट नहीं।

शैला ने मन-ही-मन कहा—यही तो। उसका मुँह प्रसन्नता से चमकने लगा। फिर उसने कहा—आज मैं बहुत ही कृतज्ञ हुई, मेरी इच्छा है कि आप मुझे अपने धर्म के अनुसार दीक्षा दीजिए।

क्षण-भर सोच लेने के बाद रामनाथ ने पूछा—क्या अभी और विचार करने के लिए तुमको अवसर नहीं चाहिए ? दीक्षा तो मैं

नहीं, अब मुझे कुछ सोचना-विचारना नहीं। मकर-संक्रान्ति किस दिन है। उसी दिन से मेरा अस्पताल खुलेगा। मैं समझती हूँ कि उसके पहले ही मुझे ।

अब कितने दिन हैं ? यही कोई एक सप्ताह तो और होगा। अच्छा उसी दिन प्रभात में तुम्हारी दीक्षा होगी। जब तक और इस पर विचार कर लो।

बाबा रामनाथ धार्मिक जनता के उस विभाग के प्रतिनिधि थे जो संसार के महत्त्वपूर्ण कर्मों पर अपनी ही सत्ता, अपना ही दायित्वपूर्ण अधिकार मानती है, और संसार को अपना आभारी समझती है। उनका दृढ़ विश्वास था कि विश्व के अन्धकार में आर्यों ने अपनी ज्ञान-ज्वाला प्रज्वलित की थी। वह अपनी सफलता पर मन-ही-मन बहुत प्रसन्न थे।

मेरा निश्चय हो चुका। अच्छा तो आज मुझे छुट्टी दीजिये। अभी नील-वाली कोठी पर जाना होगा। मधुबन तो कई दिन से रात को भी वहीं रहता है। वह घर क्यों नहीं जाता। आप पूछिएगा।—शैला ने कहा।

आज पूछ लूगा—कहकर आसन स उठत हुए रामनाथ न पुकारा—तितली !

आई

तितली ने आकर देखा कि रामनाथ आसन स उठ गये है और शैला बनजरिया से वाहर जाने के लिए हरियाली की पगडडी पर चली आई है। उसन कहा—वहन तुम जाती हा क्या ?

हाँ, तुमसे तो कहा ही नही। शेरकाट को वेदखल कराने का विचार माता जी ने मेरे कहने से छोड दिया है। मरा सामान आ गया, मैं नील कोठी म रहन लगी हूँ। वही मेरा अस्पताल खुल जाएगा। क्यो, इधर मधुबन स तुमसे भेंट नही हुई क्या ?

तितली लज्जित सी सिर नीचा किए बोली—नही, आज कई दिना स भट नहा हुई। —उसके हृदय म धडकन होने लगी।

ठीक है, कोठी म काम को बडी जल्दी है। इसी स आजकल छुट्टी न मिलती होगी—अच्छा तो तितली, आज मैं मधुबन को तुम्हारे पास भेज दूगी। —कहकर शैला मुस्कुराई।

नही-नही, आप क्या कह रही है। मैन सुना है कि वह घर भी नही जाते। उन्ह

क्यो ? यह तो मैं भी जानती हूँ। —फिर चिन्तित हाकर शैला न कहा—क्या राजकुमारी का कोई सन्देश आया था ?

नही। —अभी तितली और कुछ कहना ही चाहती थी कि सामन से मधुवन आता दिखाई पडा। उसकी भवे तनी थी। मुँह रूखा हो रहा था।

शैला ने पूछा—*क्यो मधुबन, आज-कल तुम घर क्या नही जात ?*

जाऊँगा ! —विरक्त होकर उसने कहा।

कव ?

कई दिन का पाठ पिछड गया है। रोटी खाने के समय से जाऊँगा।

अच्छी वात है ! देखो, भूलना मत ! —कहती हुई शैला चली गई, और अब सामने खडी रही तितली। उसके मन म कितनी वातें उठ रही थी, किन्तु जब से उसके व्याह की बात चल पडी थी, वह लज्जा का अधिक अनुभव करन लगी थी। पहले तो वह मधुबन को झिडक भी देती थी, रामनाथ स मधुवन क संबध म कुछ उलटी-सीधी भी कहती पर न जाने अब वैसा साहस उसम क्या नही आता। वह जार करके बिगडना चाहती थी, पर जैसे अधरा के कोना म हँसी फूट उठती ! बडे धैय से उसने कहा—आजकल तुमको रूठना कब स आ गया है।

मधुबन की इच्छा हुई कि वह हँसकर कह दे कि—जब से तुमसे ब्याह होने की बात चल पडी है, —पर वैसा न कहकर उसने कहा—हम लोग भला रूठना क्या जाने, यह तो तुम्ही लोगो की विद्या है।

तो क्या मैं तुमसे रूठ रही हूँ ? —चिढे हुए स्वर म तितली ने कहा।

आज न सही, दो दिन म रूठोगी। उस दिन रक्षा पाने के लिए आज स हो परिश्रम कर रहा हूँ! नही तो सुख की रोटी किसे नही अच्छी लगती ?

तितली इस सहज हँसी से भी झल्ला उठी। उसने कहा—नही-नही, मर लिए किसी को कुछ करने की आवश्यकता नही।

तब तो प्राण बचे। अच्छा, पहले बताओ कि शेरकोट से काई आया था ? रामदीन की नानी, वही आकर कह गई होगी। उसकी टाग तोडनी ही पडे गी।

अरे राम! उस बेचारी ने क्या किया है !

मधुबन और कुछ कहन जा रहा था कि रामनाथ न उस दूर स ही पुकारा—मधुबन!

दोनो ने घूमकर दखा कि बनजरिया के भीतर इन्द्रदेव अपन घाडे का पकड हुए धीरे-धीरे आ रहे हैं। तितली सकुचित होती हुई झोपडी की आर जाने लगी और मधुबन ने नमस्कार किया।

किन्तु एक दृष्टि म इन्द्रदेव न उस सरल ग्रामीण सौन्दय का देखा। उन्ह कुतूहल हुआ। उस दिन बनजरिया के साथ तितली का नाम उनकी कचहरी म प्रतिध्वनित हो गया था। वही यह है ? उन्हाने मधुबन क नमस्कार का उत्तर दते हुए तितली से पूछा—मिस शैला अभी-अभी यहां आई थी ?

हाँ, अभी ही नील-कोठी की ओर गई है!—तितली ने घूमकर मधुर स्वर स कहा। वह खडी हो गई।

इन्द्रदेव ने समीप आते हुए रामनाथ को दखकर नमस्कार किया। रामनाथ इसक पहले से ही आशीर्वाद देने के लिए हाथ उठा चुके थे ? इन्द्रदेव ने हँसकर पूछा—आपकी पाठशाला तो चल रही है न ?

श्रीमानो की कृपा पर उसका जीवन है। मैं दरिद्र ब्राह्मण भला क्या कर सकता हूँ। छोटे-छोटे लडके सध्या मे पढ़ने आते हैं।

अच्छा, म इस पर फिर कभी विचार करूँगा। अभी ता नील-कोठी जा रहा हूँ। प्रणाम!

इन्द्रदेव अपने घाडे पर सवार होकर चल गय।

रामनाथ, मधुबन और तितली वही खडे रहे।

रामनाथ न पूछा—मधुबन, तुम आजकल कैसे हो रहे हो ?

मधुबन न सिर झुका लिया।

रामनाथ ने कहा—मधुबन ! कुछ ही दिनो म एक नई घटना होने वाली है। वह अच्छी होगी या बुरी, नही कह सकता। किन्तु उसके लिए हम सबको प्रस्तुत रहना चाहिए।

क्या ? —मधुबन ने सशक होकर पूछा।

शैला को मैं हिन्दू-धर्म की दीक्षा दूँगा।—स्थिर भाव स रामनाथ न कहा।

मधुबन ने उद्विग्न होकर कहा—तो इसम क्या कुछ अनिष्ट की सभावना है ?

विधाता का जैसा विधान होगा, वही होगा। किन्तु ब्राह्मण का जो कर्त्तव्य है, वह करूँगा।

तो मेरे लिए क्या आज्ञा है ? मैं तो सब तरह प्रस्तुत हूँ।

हूँ, और उसी दिन तुम्हारा ब्याह भी होगा !

उसी दिन ! —वह लज्जित होकर कह उठा। तितली चली गई।

क्यो, इसमे तुम्हे आश्चय किस बात का है ? राजकुमारी की स्वीकृति मुझे मिल ही जायगी, इसकी मुझे पक्की आशा है।

जैसा आप कहिए। —उसने विनम्र होकर उत्तर दिया। किंतु मन-ही मन बहुत-सी बातें सोचने लगा—तितली को लेकर घर-बार करना होगा। और भी क्या-क्या

रामनाथ न बाधा देकर कहा—आज पाठ न होगा। तुम कई दिन से घर *नही गये हो, जाओ !*

वह भी छुट्टी चाहता ही था। मन म नई-नई आशाएँ, उमग और लडक-पन के-स प्रसन्न विचार खेलने लगे। वह शेरकोट की ओर चल पडा।

रामनाथ स्थिर दृष्टि से आकाश की ओर देखने लगा। उसके मुँह पर स्फूर्ति थी, पर साथ म चिंता भी थी अपने शुभ सकल्पो की—और उसमे बाधा पडने की संभावना की। फिर वह क्षण भर के लिए अपनी विजय निश्चित समझते हुए मुस्कुरा उठे। बनजरिया की हरियाली म वह टहलन लगे।

उनके मन मे इस समय हलचल हो रही थी कि ब्याह किस रीति स किया जाय। बारात तो आवेगी नही। मधुबन यह चाहेगा ला ? पर मैं व्यर्थ का उप-द्रव बढ़ाना नही चाहता। तो भी उसके और तितली क लिए कपड ता चाहिए ही, और मगल-सूचक कोई आभरण तितली के लिए ! अरे, मैंने अभी तक किया क्या ?

वह अपनी असावधानी पर झल्लाते हुए झापडी के भीतर कुछ ढूढ़न चल।

किन्तु पीछे फिर कर देखते है, तो राजकुमारी रामदीन की नानी के साथ खडी है। उन्होने कहा—आओ, तुम्हारी प्रतीक्षा म था। वैठो।

राजकुमारी ने बैठते हुए कहा—मैं आज एक काम से आई हूँ।

मै अभी-अभी तुम्हारे आने की वात सोच रहा था; क्योकि अब कितने दिन रही गये है ?

नही बावाजी ! ब्याह ता नही हागा।—उसन साहस से कह दिया।

क्यों ? नही क्यो होगा ? —रामनाथ ने आश्चर्य से पूछा।

ऐसे निठल्ले से तितली का ब्याह करके उस लडकी को क्या भाड म झोकना है। आज कई दिनो से वह घर भी नही आता। मैं मर-कुट कर गृहस्थी का काम चलाती हूँ। बावाजी, इतने दिनो स आपने भी मुझे इसी गाव मे देखा-सुना है। मैं अपने दु ख के दिन किस तरह काट रही हूँ। —कहते-कहते राजकुमारी की आँखो से आँसू भर आय।

रामनाथ हतबुद्धि-से उस स्त्री का अभिनय दखने लगे, जो आज तक अपनी चरित्र-दृढता की यश-पताका गाँव-भर मे ऊँची किये हुए थी।

राजकुमारी का, दारिद्रय म रहते हुए भी, कुलीनता का अनुशासन सव लोग जानत थे। किन्तु सहसा आज यह कैसा परिवर्तन !

रामनाथ ने पूरे, बल स इस लीला का प्रत्याख्यान करने का मन म सकल्प कर लिया। बोले—सुना राजो, ब्याह तो होगा ही। जब वात चल चुकी है, तो उसे करना ही होगा। इसमे मैं किसो की बात नही सुनूंगा, तुम्हारी भी नही। क्या तुम्हारे ऊपर मेरा कुछ अधिकार नही है ? बेटी, आज ऐसी वात ! ना, सा नही, ब्याह तो होगा ही।

राजकुमारी तिलमिला उठी थी। उसने क्रोध से जलकर कहा—कैसा होगा ? आप नही जानते हैं कि जमीदार के घर के लोगो की आख उस पर है।

इसका क्या अर्थ है राजकुमारी ? समझाकर कहो, यह पहेली कैसी ?

पहेली नही बावाजी, कुँवर इन्द्रदेव से तितली का ब्याह होगा। और मैं कहती हूँ कि मैं करा दूँगी।

रामनाथ के सिर के वाल खडे हो गय। यह क्या कह रही हो तुम ? तितली से इन्द्रदेव का ब्याह ? असम्भव है !

असम्भव नही, मैं कहती हूँ न ! आप ही सोच लीजिए। तितली कितनी सुखी होगी !

पल-भर के लिए रामनाथ न भूल की थी। वह एक सुख-स्वप्न था। उन्हान सम्हलकर कहा—मैं तो मधुबन से ही उसका ब्याह निश्चित कर चुका हूँ।

तब दोनो को ही गाव छोडना पडेगा। और आप ता दो दिन के लिए अपने बल पर जो चाहे कर लेंगे, फिर तो आप जानते हैं कि बनजरिया और शेरकोट दोनो ही निकल जायेंगे और

रामनाथ चुप होकर विचारने लगे। फिर सहसा उत्तेजित-स बडबडा उठे—तुम भूल करती हो राजो! तितली को मधुबन के साथ परदेश जाना पडे यह भी मै सह लूंगा, पर उसका ब्याह दूसरे से होने पर वह बचेगी नही।

राजकुमारी ने अब रूप बदला। बहुत तीखे स्वर से बोली—ता आप मधुबन का सर्वनाश करना चाहते हैं! कीजिए मैं स्त्री हूँ, क्या कर सकूगी। वह आँखो म आँसू भरे उठ गई।

रामनाथ भी काठ की तरह चुपचाप बैठे नही रहे। वह अपनी पोटली टटोलने के लिए झोपडी मे चले गये।

जब रामनाथ झोपडी मे से कुछ हाथ मे लिए बाहर निकले तो मधुबन दिखाई पडा। उसका मुँह क्रोध से तमतमा रहा था। कुछ कहना चाहता था, पर जैसे कहने की शक्ति छिन गई हो! रामनाथ ने पूछा—क्या घर नही गये?

गया था।

फिर तुरत ही चले क्या आये?

वहाँ क्या करता? देखिए, इधर मै घर की कोई बात आपसे कहना चाहता था, परन्तु डर से कह नही सका। राजो वह कहते-कहते रुक गया।

कहो, कहो। चुप क्यो हो गये?

मैं जब घर पहुँचा, तो मुझे मालूम हुआ कि वह चौबे आज मेरे घर आया था। उससे बात करके राजो कही चली गई है। बाबाजी

ओह, तो तुम नही जानते। वह तो यही आई थी। अभी घर भी ता न पहुँची होगी।

यहाँ आई थी!

हाँ, कहने आई थी कि तितली का ब्याह मधुबन स न हाकर जमीदार इन्द्रदेव स होना अच्छा होगा।

यहाँ तक। मैंने तो समझा था कि

पर तुम क्यो इस पर इतना क्रोध और आश्चय प्रकट करो! ब्याह तो होगा ही!

मैं वह बात नही कह रहा था। मुझ तो तहसीलदार ही की नस ठीक करने की इच्छा थी। अब देखता हूँ कि इस चौबे को भी किसी दिन पाठ पढ़ाना

होगा। वह लफगा किस साहस पर मेरे घर पर आया था ! आप कहते हैं क्या ! मैं तो उसका खून भी पी जाऊँगा।

रामनाथ ने उसके बढते हुए क्रोध को शान्त करने की इच्छा से कहा—सुना मधुबन ! राजो फिर भी ता स्त्री है। उसे तुम्हारी भलाई का लोभ किसी न दिया होगा। वह बेचारी उसी विचार से

नही बाबाजी। इसम कुछ और भी रहस्य है। वह चाहे मैं अभी नही समझ सका हूँ ।—कहते-कहते मधुबन सिर नीचा करके गम्भीर चिन्ता म निमग्न हो गया।

अन्त मे रामनाथ न दृढ स्वर स *कहा—पर तुमको तो आज ही शहर जाना* हागा। यह लो रुपय सब वस्तुएँ इसी सूची के अनुसार आ जानी चाहिए।

मधुबन ने हताश होकर रामनाथ की ओर दखा, फिर वह वृद्ध अविचल था।

मधुबन का शहर जाना पडा।

दूर से तितला सब सुनकर भी जैसे कुछ नही सुनना चाहती थी। उस अपने ऊपर क्रोध आ रहा था। वह क्यो ऐसी विडम्बना म पड गई ! उसको लेकर इतनी हलचल ! वह लाज म गडी जा रही थी।

शैला का छोटी कोठी से भी हट जाना रामदीन को बहुत बुरा लगा। वह माधुरी, श्यामदुलारी और इन्द्रदव से भी मन-ही-मन जलने लगा। लडका ही तो था, उसे अपने साथ स्नेह से व्यवहार करने वाली शैला के प्रति तीव्र सहानुभूति हुई। वह बिना समझे-बूझे मलिया के कहने पर विश्वास कर बैठा कि शैला को छोटी कोठी से हटाने मे गहरी चालबाजी है, अब वह इस गाव मे भी नही रहने पावेगी, नील-कोठी मे भी कुछ ही दिनो की चहल-पहल है।

रामदीन रोप स भर उठा। वह कोठी का नौकर है। माधुरी ने कई हेर-फेर लगाकर उसे नील-कोठी जाने से रोक लिया। मेम साहब का साथ छोडना उसे अखर गया। शैला ने जाते-जाते उस एक रुपया देकर कहा—रामदीन, तुम यही काम करो। फिर मैं माँ जो से कहकर बुला लूंगी। अच्छा न!

लडके का विद्रोही मन इस सान्त्वना से धैर्य न रख सका। वह रोने लगा। शैला के पास कोई उपाय न था। वह तो चली गई। किन्तु, रामदीन उत्पाती जीव बन गया। दूसरे ही दिन उसने लैम्प गिरा दिया। पानी भरने का तावे का घडा लेकर गिर पडा। तरकारी धोने ले जाकर सब कीचड से भर लाया। मलिया को चिकोटी काटकर भागा। और, सबस अधिक बुरा काम किया उसने माधुरी के सामने तरेर का देखने का, जब उसको अनवरी को मुँह चिढ़ाने के लिए वह डाँट रही थी।

उसका सारा उत्पात देखत-देखते इतना बढा कि बडी कोठी म से कई चीज खो जाने लगी। माधुरी तो उधार खाये बैठी थी। अब अनवरी की चमडे की छोटी-सी थैली भी गुम हो गई, तब तो रामदीन पर बे-भाव की पडी। चोरी के लिए वह अच्छी तरह पिटा, पर स्वीकार करने के लिए वह किसी भी तरह प्रस्तुत नही।

माधुरी ने स्वभाव के अनुसार उसे खूब पीटन के लिए चौबे से कहा। चौबेजी न कहा—यह पाजी पीटने से नही मानेगा। इसे तो पुलिस म देना ही चाहिए। ऐसे लौंडो की दूसरी दवा ही नही।

माधुरी न इन्द्रदेव का बुलाकर उसका सब वृत्तान्त कुछ नोन-मिर्च लगाकर सुनाते हुए पुलिस मे भेजने के लिए कहा । इन्द्रदेव न सिर हिला दिया । वह गम्भीर होकर सोचने लगे । वात क्या है ! शैला के यहाँ से जाते ही रामदीन को हो क्या गया !

इसम भी आप साच रहे है ! भाई साहब, मैं कहती हूँ न, इसे पुलिस मे अभी दीजिए, नही तो आगे चलकर यह पक्का चोर बनेगा और यह देहात इसके अत्याचार से लुट जायगा । —माधुरी ने झल्लाकर कहा ।

इन्द्रदेव को माधुरी की इस भविष्यवाणी पर विश्वास नही हुआ । उन्होंने कहा—लडको को इतना कडा दण्ड देने से सुधार होने की सम्भावना तो बहुत ही कम होती है, उलटे उनके स्वभाव म उच्छृङ्खलता बढती है । उसे न हो तो शैला के पास भेज दो । वहाँ ठीक रहेगा ।

माधुरी आग हो गई—उन्ही के साथ रहकर तो बिगडा है । फिर वहा न भेजूंगी । मैं कहती हूँ, भाई साहब, इसे पुलिस मे भेजना ही होगा ।

अनवरी ने भी दूसरी ओर स आकर क्रोध और उदासी से भरे स्वर म कहा —दूसरा कोई उपाय नही ।

अनवरी का बेग गुम हो गया था, इस पर भी विश्वास करना ही पडा । इन्द्रदेव को अपने घरेलू सम्बन्ध म इस तरह अनवरी का सब जगह बोल देना बहुत दिनो से खटक रहा था । किन्तु आज वह सहज की सीमा को पार कर गया । क्रोध से भरकर प्रतिवाद करने जाकर भी वह रुक गये । उन्होने देखा कि हानि तो अनवरी की ही हुई है, यहाँ तो उसे बोलने का नैतिक अधिकार ही है ।

रामदीन बुलाया गया । अनवरी पर जो क्राध था उसे किसी पर निकालना ही चाहिए, और जब दुर्बल प्राणी सामने हो तो हृदय के सन्तोप के लिए अच्छा अवसर मिल जाता है । रामदीन न सामने आते ही इन्द्रदेव का रूप देखकर रोना आरम्भ किया । उठा हुआ थप्पड रुक गया । इन्द्रदेव ने डाँटकर पूछा—क्यो बे, तूने मनीबेग चुरा लिया है ?

मैने नही चुराया । मुझे निकालन क लिए डाक्टर साहब बहुत दिनो से लगी हुई है । एँ-एँ-एँ ! एक दिन कहती भी थी कि तुझे पुलिस मे भेजे बिना मुझे चैन नही । दुहाई सरकार की, मेरा खेत छुडाकर मेरी नानी को भूखो मारने की भी धमकी देती थी ।

इन्द्रदेव ने कडककर कहा—चुप बदमाश ! क्या तुमसे उनकी कोई बुराई है जा वह एसा करेगी ?

मैं जो मेम साहब का काम करता हूँ । मलिया भी कहती थी कि बीबी रानी मेम साहब को निकालकर छोड़े गी और तुमको भी हूँ-हूँ-ऊँ-ऊँ ।

उसका स्वर तो ऊँचा हुआ, पर बीबी-रानी अपना नाम सुनकर क्षोभ और क्रोध से लाल हो गईं । —सुना न, इस पाजी का हौसला देखिये । यह कितनी झूठी-झूठी बाते भी बना सकता है । —कहकर भी माधुरी रोने-रोने हो रही थी । आगे उसके लिए बोलना असम्भव था । बात मे सत्याश था । वह क्रोध न करके अपनी सफाई देने की चेष्टा करने लगी । उसने कहा—बुलाओ तो मलिया का कोई सुनता है कि नही ।

इन्द्रदेव ने विप्य का भीषण आभास पाया । उन्होने कहा—कोई काम नही । इस शैतान को पुलिस मे देना ही होगा । मैं अभी भेजता हूँ ।

रामदीन की नानी दौडी आई । उसके रोने-गाने पर भी इन्द्रदेव को अपना मत बदलना ठीक न लगा । हाँ, उन्होने रामदीन को चुनार के रिफार्मेटरी मे भेजने के लिए मजिस्ट्रेट को चिट्ठी लिख दी ।

शैला के हटते ही उसका प्रभु-भक्त बाल-सेवक इस तरह निकाला गया ।

इन्द्रदेव ने देखा कि समस्या जटिल होती जा रही है । उसके मन मे एक बार यह विचार आया कि वह यहाँ से जाकर कही पर अपनी बैरिस्टरी की प्रैक्टिस करने लगे । परन्तु शैला ! अभी तो उसके काम का आरम्भ हो रहा है । वह क्या समझेगी । मेरी कायरता पर उसे कितनी लज्जा होगी । और मैं ही क्या ऐसा करूँ । रामदीन के लिए अपना घर तो बिगाड़ूँगा नही । पर यह चाल कब तक चलेगी ।

एक छोटे-से घर मे साम्राज्य की-सी नीति बरतने म उन्हे बडी पीडा होने लगी । अधिक न सोचकर वह बाहर घूमने चले गये ।

शैला को रामदीन की बात तब मालूम हुई, जब वह मजिस्ट्रेट के इजलास पर पहुँच चुका था और पुलिस ने किसी तरह अपराध प्रमाणित कर दिया था । साथ ही, इन्द्रदेव-जैसे प्रतिष्ठित जमीदार का पत्र भी रिफ़ार्मेटरी भेजने के लिए पहुँच गया था ।

८

शैला का सब सामान नील-कोठी मे चला गया था। वह छावनी मे आई थी कल के सम्बन्ध मे कुछ इन्द्रदेव से कहने; क्योकि इन्द्रदेव को उसके भावी धर्म-परिवर्तन की बात नही मालूम थी।

भीतर से कृष्णमोहन चिक हटाकर निकला। उसने हँसते हुए नमस्कार किया। शैला ने पूछा—बडी सरकार कहाँ हैं ?

पूजा पर।

और बीवी-रानी ?

मालूम नही। —कहता हुआ कृष्णमोहन चला गया।

शैला लौट कर इन्द्रदेव के कमरे के पास आई। आज उसे वही कमरा अपरिचित सा दिखाई पडा। मलिया को उधर से आते हुए देखकर शैला ने पूछा—इन्द्रदेव कहाँ हैं ?

एक साहब आये है। उन्ही के पास छोटी कोठी गये है ? आप बैठिए। मैं बीवी-रानी से कहती हूँ।

शैला कमरे के भीतर चली गई। सब अस्त-व्यस्त। किताबे बिखरी पडी थी। कपडे खूँटियो पर लदे हुए थे। फूलदान मे कई दिन का गुलाब अपनी मुरझाई हुई दशा मे पखुरियाँ गिरा रहा था। गर्द की भी कमी नही। वह एक कुर्सी पर बैठ गई।

मलिया ने लैम्प जला दिया। बैठे-बैठे कुछ पढने की इच्छा से शैला ने इधर उधर देखा। मेज पर जिल्द बँधी हुई एक छोटी-सी पुस्तक पडी थी। वह खोलकर देखने लगी।

किन्तु वह पुस्तक न होकर इन्द्रदेव की डायरी थी। उसे आश्चर्य हुआ—इन्द्रदेव कब से डायरी लिखने लगे।

शैला इधर-उधर पन्ने उलटने लगी। कुतूहल बढा। उसे पढना ही पडा—

सोमवार की आधी रात थी। लैम्प के सामने पुस्तक उलट कर रखने जा रहा था। मुझे झपकी आने लगी थी। चिक के बाहर किसी की छाया का आभास

मिला—मैं आँख मीचकर कहना ही चाहता था—'कौन ?' फिर न जाने क्यो चुप रहा। कुछ फुसफुसाहट हुई। दो स्त्रियाँ बातें करने लगी थी। उन बातो मे मेरी भी चर्चा रही। मुझे नीद आ रही थी; सुनता भी जाता था। वह कोई सन्देश की बात थी। मैं पूरा सुनकर भी सो गया। और नीद खुलने पर जितना ही मैं उन बातो का स्मरण करना चाहता, वे भूलने लगी। मन मे न जाने क्यो घबराहट हुई, किन्तु उसे फिर से स्मरण करने का कोई उपाय नही। अनावश्यक बाते आज-कल मेरे सिर म चक्कर काटती रही हैं। परन्तु जिनकी आवश्यकता होती है, वे तो चेष्टा करने पर भी पास नही आती। मुझे कुछ विस्मरण का रोग हो गया है क्या ? तो मैं लिख लिया करूँ।

मैं सब कुछ समीप होने पर चिन्तित क्यो रहता हूँ। चिन्ता अनायास घेर लेती है। जान पडता है कि मेरा कौटुम्बिक जीवन बहुत ही दयनीय है। ऊपर से तो कही भी कोई कमी नही दिखाई देती। फिर भी, मुझे धीरे-धीरे विश्वास हो चला है कि भारतीय सम्मिलित कुटुम्ब की योजना की कड़ियाँ चूर-चूर हो रही हैं। वह आर्थिक सगठन अब नही रहा, जिसमे कुल का एक प्रमुख सबके मस्तिष्क का सचालन करता हुआ रुचि की समता का भार ठीक रखता था। मैंने जो अध्ययन किया है, उसके बल पर इतना तो कह सकता हूँ कि हिन्दू समाज की बहुत-सी दुर्बलताएँ इस खिचरी-कानून के कारण है। क्या इनका पुनर्निमाण नही हो सकता। प्रत्येक प्राणी, अपनी व्यक्तिगत चेतना का उदय होने पर, एक कुटुम्ब म रहने के कारण अपन को प्रतिकूल परिस्थिति मे दखता है। इसलिए सम्मिलित कुटुम्ब का जीवन दुखदायी हो रहा है।

सब जैसे भीतर-भीतर विद्रोही ! मुँह पर कृत्रिमता और उस घडी की प्रतीक्षा मे ठहरे हैं कि विस्फोट हो तो उछलकर चले जायँ।

माधुरी कितनी स्नेहमयी थी। मुझे उसकी दशा का जब स्मरण होता है, मन म वेदना होती है। मेरी बहन ! उसे कितना दुख है। किन्तु जब देखता हूँ कि वह मुझसे स्नेह और सान्त्वना की आशा करने वाली निरीह प्राणी नही रह गयी है, वह तो अपने लिए एक दृढ भूमिका चाहती है, और चाहती है, मेरा पतन, मुझी से विरोध, मेरी प्रतिद्वद्विता ! तब तो हृदय व्यथित हो जाता है। यह सब क्यो ? आर्थिक सुविधा के लिए !

और माँ—जैसे उनके दोना हाथ दो दुर्दान्त व्यक्ति लूटने वाले—पकड कर अपनी ओर खीच रहे हो, द्विविधा म पडी हुई, दोनो के लिए प्रसन्नता—दोनो को आशीर्वाद देने के लिए प्रस्तुत ! किन्तु फिर भी झुकाव अधिक माधुरी की ओर। माधुरी को प्रभुत्व चाहिए। प्रभुत्व का नशा, ओह कितना मादक है ! मैंने थोडी

सी पी है। किन्तु मेरे घर की स्त्रियाँ तो इस एकाधिकार के वातावरण मे मुझसे भी अधिक ! सम्मिलित कुटुम्ब कैसे चल सकता है ?

मुझे पुत्र-धर्म का निर्वाह करना है। मातृ-भक्ति, जो मुझमे सच्ची थी, कृत्रिम होती जा रही है। क्यो ? इसी खीचा-तानी से। अच्छा तो मैं क्यो इतना पतित होता जा रहा हूँ। मैंने बैरिस्टरी पास की है। मैं तो अपने हाथ-पैर चला कर भी आनन्द से रह सकता हूँ। किन्तु यह आर्थिक व्यथा ही तो नही रही। इसमे अपने को जब दूसरो के विरोध का लक्ष्य बना हुआ पाता हूँ, तो मन की प्रतिक्रिया प्रबल हो उठती है। तब पुरुष के भीतर अतीतकाल से सचित अधिकार का संस्कार गरज उठता है।

और भी मेरे परिचय के सम्बन्ध मे इन लोगो को इतना कुतूहल क्यो ? इतना विरोध क्यो ? मैं तो उसे स्पष्ट षड्यन्त्र कहूँगा। तो ये लोग क्या चाहती है कि बच्चा बना रहूँ।

यह तो हुई दूसरी बात। हाँ जी दूसरे, अपने कहाँ ? अच्छा, अब अपनी बात। मैं किसी माली की सँकरी क्यारी का कोई छोटा-सा पौधा होना बुरा नही समझता; किन्तु किसी की मुट्ठी मे गुच्छे का कोई सुगंधित फूल नही बनना चाहता। प्राचीन काल मे घरो के भीतर तो इतने किवाड नही लगते थे। उतनी तो स्वतन्त्रता थी। अब तो जगह-जगह ताले, कुण्डियाँ और अर्गलाएँ ? मेरे लिए यह असह्य है।

बडी-बडी अभिलाषाएँ लेकर मैं इगलैण्ड से लौटा था। यह सुधार करूँगा, वह करूँगा। किन्तु मैं अपने वातावरण मे घिरा हुआ बेबस हो रहा हूँ। हम लोगो का जातीय जीवन सशोधन के योग्य नही रहा। धर्म और सस्कृति ! निराशा की सृष्टि है। इतिहास कहता है कि सशोधन के लिए इसमे सदैव प्रयत्न हुआ है। किन्तु जातीय जीवन का क्षण बडा लम्बा होता है न। जहाँ हम एक सुधार करते हुए उठने का प्रयत्न करते है, वही कही अनजान मे रो-रुलाकर आँसुओ से फिसलन बनाते जाते हैं। जब हम लोग मन्दिर के सुवर्ण-कलश का निर्माण करते है, तभी उसके साथ कितने पीडितो का हृदय-रक्त उसकी चमक बढ़ाने मे सहायक होता है।

तो भी आदान-प्रदान, सुख-दुख का विनिमय-व्यापार, चलता ही रहता है। मैं सुख का अधिक भाग लूँ और दुख दूसरे के हिस्से रहे, यही इच्छा बलवती होती है। व्यक्ति को छुट्टी नही। मुझे क्या करना होगा ? मैं दुख का भी भाग लूँ ?

और अनवरी—

बाहर से चपल और भीतर से गहरे मनोयोग-पूर्वक प्रयत्न करने वाली चतुर स्त्री है। उस दिन शैला और मधुबन के सम्बन्ध म हँसी-हँसी से कितना गम्भीर व्यग कर गई। वह क्या चाहती है। हँसते-हँसते अपने यौवन से भरे हुए अगा को, लोट-पाट होकर असावधानी से, दिखा देने का अभिनय करती है, और कान म आकर कुछ कहन के बहान हँसकर लौट जाती है। वह धर्म-परिवर्तन की भी बाते करती है। उसे हिन्दू आचार-विचार अच्छे लगत है। रहन-सहन, पहिनावा और खाना-पीना ठीक-ठीक। जैसे मेरे कुटुम्ब की स्त्रियाँ भी उसे अपने मे मिला लेन म हिचकगी नही। यह मुझे कभी-कभी टटोलती है। पूछती है—'क्या स्त्रियो को शैला की तरह स्वतन्त्रता चाहिए? अवरोध और अनुशासन नही? मैं तो किसी से भी ब्याह कर लूँ और वह इतनी स्वतन्त्रता मुझे दे तो मैं ऊब जाऊँगी। वह हँसी म कहती है? सब हँसने लगती है। सब लोगो को शैला पर कही हुई यह बात अच्छी लगती है। और मैं ' दबते-दबते मन म अनवरी का समथन क्या करने लगता हूँ? वह ढीठ अनवरी—माँ से हँसी करती हुई पूछती है, मैं हिन्दू हो जाऊँ तो मुझे अपनी बहू बनाइयेगा?

माँ हँस देती है।

दूसरे दिन रात को, जब सब लोग सो रहे थे, मै ऊँघता हुआ विचार कर रहा था। फिर वैसा ही शब्द हुआ। मैंने पूछा—कौन?

मैं हूँ--कहती हुई अनवरी भीतर चली आई। मेरा मन न जाने क्या उद्विग्न हो उठा।

पढते-पढते शैला न घबराकर डायरी बन्द कर दी। सोचने लगी—इन्द्रदेव कितनी मानसिक हलचल म पडे हैं और यह अनवरी। केवल इन्द्रदेव के परिवार से सहानुभूति के कारण वह मेरे विरुद्ध है, या इसम कोई और रहस्य है! क्या वह इन्द्रदेव को चाहती है?

क्षण भर सोचने पर उसने कहा—नही, वह इन्द्रदेव को प्यार कभी नही कर सकती।—फिर डायरी के पन्ने खोलकर पढने लगी। उसने सोचा कि मुझे ऐसा न करना चाहिए, किन्तु न जाने क्यो उसे पढ लेना वह अपना अधिकार समझती थी। हाँ, तो वह आगे पढने लगी—

वह मेरे सामने निर्भीक होकर बैठ गई। गम्भीर रात्रि, भारतीय वातावरण, उसम एक युवती का मरे पास एकान्त मे बिना सकोच के हँसना-बोलना। शैला के लिए तो मेरे मन म कभी एसी भावना नही हुई। तब क्या मेरा मन चोरी कर रहा है? नही, मैं उसे अपने मन से हटाता हूँ। अरे, उसे क्यों, अनवरी को? नही। उसक प्रति अपन सदिग्ध भाव को। मुझे वह छिछोरापन भला

नहीं लगा। वह भी कहने लगी—मैं सस्कृत पढ़ूँगी, पूजा-पाठ करूँगी। कुंवर साहब! मुझे हिन्दू बनाइये न। —किन्तु उसमे इतनी बनावट थी कि मन मे घृणा के भाव उठने लगे। किन्तु मेरा पाखण्ड-पूर्ण मन...कितने चक्कर काटता है ?

शैला—सामने घुसती हुई चली जाने वाली सरल और साहसभरी युवती। फिर वह तितली-सी ग्रामीण बालिका क्यो बनने की चेष्टा कर रही है ? क्या मेरी दृष्टि मे उसका यह वास्तविक आकर्षण क्षीण नही हो जायगा ? वह तितली बनकर मेरे हृदय मे शैला नही बनी रहेगी। तब तो उस दिन तितली को ही जैसा मैंने देखा, वह कम सुन्दर न थी।

अरे, अरे मैं क्या चुनाव कर रहा हूँ। मुझे कौन-सी स्त्री चाहिए ! —हाँ, प्रेम चतुर मनुष्य के लिए नही, वह तो शिशु-से सरल हृदयो की वस्तु है। अधिकतर मनुष्य चुनाव ही करता है, यदि परिस्थिति वैसी हो। मैं स्वीकार करता हूँ कि ससार की कुटिलता मुझे अपना साथी बना रही है। वह मित्र-भाव तो शैला का साथ न छोडेगा। किन्तु मेरी निष्कपट भावना . जैसे मुझसे खो गई है। मुझे सदेह होने लगा है कि शैला को वैसा ही प्यार करता हूँ, या नही !

मनुष्य का हृदय, शीतकाल की उस नदी के समान जब हो जाता है—जिसमे ऊपर का कुछ जल बरफ की कठोरता धारण कर लेता है, तब उसके गहन तल मे प्रवेश करने का कोई उपाय नही। ऊपर-ऊपर भले ही वह पार की जा सकती है। आज प्रवञ्चनाओ की बरफ की मोटी चादर मेरे हृदय पर ओढा दी गई है। मेरे भीतर का तरल जल बेकार हो गया है, किसी की प्यास नही बुझा सकता। कितनी विवशता है !

शैला ने डायरी रख दी।

इन्द्रदेव आ गये, तब भी वह आँख मूंद कर बैठी रही। इन्द्रदेव ने उसके सिर पर हाथ रखकर कहा—शैला ?

अरे, कब आ गये ? मै कितनी देर से बैठी हूँ !

मैं चला गया था मिस्टर वाट्सन से मिलने। कोआपरेटिव बैंक के सम्बन्ध मे और चकबन्दी के लिए वह आये है। कल ही तो तुम्हारा औषधालय खुलेगा। इस उत्सव मे उनका आ जाना अच्छा हुआ। तुम्हारे अगले कामो मे सहायता मिलेगी।

हाँ, पर मै एक बात तुमसे पूछने आई हूँ।

वह क्या ?

कल मैं बाबा रामनाथ से हिन्दू-धर्म की दीक्षा लूँगी।

अच्छा ! यह खिलवाड तुम्हे वैसे सूझा ? मैने तो

नही, तुम इस मेरे धर्म-परिवर्तन का कोई दूसरा अर्थ न निकालो। इसका ञ भी वोझ तुम्हारे ऊपर नही है ।

अवाक् होकर इन्द्रदेव ने शैला की ओर देखा। वह शान्त थी। इन्द्रदेव ने हस एकत्र करक कहा—तव जैसी तुम्हारी इच्छा !

तुम भी सवेरे ही बनजरिया म आना। आओगे न ?

आऊँगा। किन्तु मैं फिर पूछता हूँ कि—यह क्यो ?

प्रत्यक जाति म मनुष्य को बाल्यकाल ही मे एक धर्म-सघ का सदस्य बना की मूर्खतापूर्ण प्रथा चली आ रही है। जब उसम जिज्ञासा नही, प्रेरणा नही, । उसके धर्म-ग्रहण करने का क्या तात्पर्य हो सकता है ? मै आज तक नाम के ए ईसाई थी। किन्तु धर्म का रूप समझ कर उस मैं अब ग्रहण करूँगी। चित्र पहल शुभ्र होना चाहिए नही ता उस पर चित्र वदरग और भद्दा होगा। हृदय का चित्रपट साफ कर रही हूँ—अपने उपास्य का चित्र बनाने के लिए।

इन्द्रदव, उपास्य को जानने के लिए उद्विग्न हो गये थे। वह पूछना ही हते थे कि बीच मे टोककर शैला ने कहा—और मुझे क्षमा भी माँगनी ह।

किस बात की ?

मै यहाँ वैठी थी, अनिच्छा से ही अकेले बैठे-बैठे तुम्हारी डायरी के कुछ पृष्ठ ढ लन का अपराध मैंने किया है।

तव तुमन पढ लिया ? अच्छा ही हुआ। यह रोग मुझे बुरा लग रहा था—हकर इन्द्रदेव न अपनी डायरी फाड डाली !

किन्तु उपास्य को पूछने की बात उनके मन म दब गई।

दानो ही हँसकर बिदा हुए।

६

बनजरिया का रूप आज बदला हुआ है। झोपड़ी के मुंह पर चूना, धूल-भरी धरा पर पानी का छिड़काव, और स्वच्छता से बना हुआ तोरण और कदली के खम्भा से सजा हुआ छोटा-सा मण्डप, जिसम प्रज्वलित अग्नि के चारा ओर बाबा रामनाथ, तितली, शैला और मधुबन बैठे हुए हवन-विधि पूरी कर रहे थ। दीक्षा हो चुकी थी। रामनाथ के साथ शैला ने प्रार्थना की—

'असतोमा सद्गमय, तमसोमा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्मामृतंगमय।'

एक दरी पर सामने बैठे हुए मिस्टर वाट्सन, इन्द्रदेव, अनवरी और सुखदेव चौबे चकित होकर यह दृश्य देख रहे थ। शैला सचमुच अपनी पीली रेशमी साड़ी म चम्पा की कली-सी बहुत भली लग रही थी। उसके मस्तक पर रोली का अरुण बिन्दु जैसे प्रमुख होकर अपनी ओर ध्यान आकर्षित कर रहा था। किन्तु मधुबन और तितली भी पीले रेशमी वस्त्र पहन हुए थे। तितली के मुख पर सहज लज्जा और गौरव था। मधुबन का खुला हुआ दाहिना कधा अपनी पुष्टि मे बड़ा सुन्दर दिखाई पड़ता था। उसका मुख हवन के धुएँ से मँजे हुए ताबे के रग का हो रहा था। छोटी-मूंछे कुछ ताव म चढी थी। किसी आने वाली प्रसन्नता की प्रतीक्षा म आँखे हँस रही थी। वही गँवार मधुबन जैसे आज दूसरा हो गया था! इन्द्रदेव उसे आश्चर्य स देख रहे थे और तितली अपनी सलज्ज कान्ति म जैस शिशिर-कणो से लदी हुई कुन्दकली की मालिका-सी गम्भीर सौन्दर्य का सौरभ बिखर रही थी। इन्द्रदेव उसको भी परख लेते थ।

उधर मिस्टर वाट्सन शैला को कुतूहल से देख रह थे। मन म सोचत थे कि 'यह कैसा है?' शैला क चारो ओर जो भारतीय वायुमडल हवन-धूम, फूलो और हरियाली की सुगन्ध म स्निग्ध हो रहा था, उसने वाट्सन के हृदय पर से विरोध का आवरण हटा दिया था, उसके सौन्दर्य मे वह श्रद्धा और मित्रता को आमन्त्रित करन लगा। उन्होने इन्द्रदेव स पूछा—कुँवर साहब! यह जा कुछ हो रहा है, उसम आप विश्वास करत है न?

इन्द्रदेव ने अपने गौरव पर और भी रग चढाने के लिए उपेक्षा से मुस्करा कर कहा—तनिक भी नही। हाँ, मिस शैला की प्रसन्नता के लिए उनके उत्साह मे भाग लेना मेरे लिए आदर की बात है। मुझे इस गुरुडम मे कोई कल्याण की बात समझ मे नही आती। मनुष्य को अपने व्यक्तित्व मे पूर्ण विकास करने की क्षमता होनी चाहिए। उसे बाहरी सहायता की आवश्यकता नही।

आपकी यह बात मेरी समझ मे नही आई। विकास अव्यवस्थित तो होगा नही। उसे एक सरल मार्ग से चलना चाहिए। आपका यही कहना है न कि मनुष्य पर मानसिक नियन्त्रण उसकी विचार-धारा को एक सँकरे पथ से ले चलता है—वह जीवन के मुक्त विकास से परिचित नही होता? किन्तु जिसके व्यक्तित्व मे अदृष्ट ने अपने हाथो से सहायता दी है, वह उन बाधाओ से अनजान है, जो ससार के जगल मे भटकने वाले निस्सबल प्राणी के सामने आती हैं।

फिर मुस्कराकर वाट्सन ने कहा—स्वतन्त्र इगलैण्ड मे रह आने के कारण आप वाट्सन को हौवा नही समझते, किन्तु मैं अनुभव करता हूँ कि यहाँ के अन्य लोग मेरी कितनी धाक मानते हैं। उनके लिए मैं देवता हूँ या राक्षस, साधारण मनुष्य नही। यह विषमता क्या परिस्थितियो से उत्पन्न नही हुई है?

इन्द्रदेव को अपने साम्पत्तिक आधार पर खडा करके जो वाट्सन ने व्यग किया, वह उन्हे तीखा लगा। इन्द्रदेव ने खीझकर कहा—मेरी सुविधाएँ मुझे मनुष्य बनाने मे समर्थ हुई हैं कि नही, यह तो मैं नही कह सकता; किन्तु मेरी सम्मति मे जीवन को सब तरह की सुविधा मिलनी चाहिए। यह मैं नही मानता कि मनुष्य अपने सन्तोष से ही सम्राट् हो जाता है और अभिलाषाओ से दरिद्र। मानव-जीवन लालसाओ से बना हुआ सुन्दर चित्र है। उसका रग छीनकर उसे रेखा-चित्र बना देने से मुझे सन्तोष नही होगा। उसमे कहे जाने वाले पुण्य-पाप की सुवर्ण कालिमा, सुख-दु ख की आलोक-छाया और लज्जा-प्रसन्नता की लाली-हरियाली उद्भासित हो। और चाहिए उसके लिए विस्तृत भूमिका, जिसमे रेखाएँ उन्मुक्त होकर विकसित हो।

वाट्सन अपने अध्ययन और साहित्यिक विचारो के कारण ही शासन-विभाग से बदलकर प्रबन्ध म भेज दिये गये थे। उन्होने इन्द्रदेव का उत्तर देने के लिए मुँह खोला ही था कि शैला अपनी दीक्षा समाप्त करके प्रणाम करने आ गई। वाट्सन ने हँसकर कहा—मिस शैला, मैं तुमको बधाई देता हूँ। तुम्हारा और भी मानसिक विकास हो, इसके लिए आशीर्वाद भी।

इन्द्रदेव कुछ कहने नही पाये थे कि अनवरी ने कहा—और मैं तो मिस शैला की चेली बनूँगी! बहुत जल्द!

इन्द्रदेव ने उसकी चपलता पर खीझ कर कहा—उसक निए—अभी बहुत दर है मिस अनवरी।

फिर उसने अपन हाथ का फला का गुच्छा आशीर्वाद-स्वरूप शैला की ओर बढा दिया। शैला न कृतज्ञतापूर्वक उस लेकर माथे से लगा लिया और इन्द्रदव के पास ही बैठ गई।

रामनाथ ने एक-एक माला सबको पहना दी और कहा—आप लागो स मरी एक और भी प्रार्थना है। कुछ समय तो लगेगा, किन्तु आप लोग भी ठहर-कर मर शिष्य मधुबन और तितली के विवाह म आशीर्वाद दगे तो मुझे अनुगृहीत करेंगे।

इन्द्रदव तो चुप रह। उनके मन म इस प्रसग स न जान क्या विरक्ति हुई। अनवरी चुप रहने वाली न थी। उसने हँसकर कहा—वाह! तब ता ब्याह की मिठाई खाकर ही जाऊँगी।

तितली और मधुबन अभी वदी के पास बैठ थ, मुखदव किसी की प्रतीक्षा म इधर-उधर देख रह थे कि तहसीलदार साहब आते हुए दिखाई पडे।

मुखदेव न उठकर उनके कानो म कुछ कहा। तहसीलदार की कुतरी हुई छोटी-छोटी मूँछे कुछ फूल हुए तेल स चुपडे गाल—जैसा कि उतरती हुई अवस्था के मुखी मनुष्या का प्राय दिखाई पडता है, नीचे का मोटा लटकता हुआ आठ, बनावटी हँसी हँसन की चेष्टा म व्यस्त, पट्टेदार बालो पर तेल स भरी पुरानी काली टोपी, कुटिलता स भरी गाल-गाल आखे किसी विकट भविष्य की सूचना द रही थी। उन्हाने लम्बा सलाम करत हुए इन्द्रदव स कहा—म एक जरूरी काम से चला गया था। इसी स

इन्द्रदेव को इस विवरण की आवश्यकता न थी। उन्होने पूछा—नील-कोठी स आप हो आये? वहाँ का प्रवन्ध सब ठीक है न?

हाँ—एक बात आपसे कहना चाहता हूँ।

इन्द्रदव उठकर तहसीलदार की बात सुनन लगे। उधर वेदी क पास ब्याह की विधि आरम्भ हुई। शैला भी वहाँ चली गई थी। मधुबन आहुतियाँ द रहा था और तितली निष्कम्प दीप शिखा-सी उसकी बगल म बैठी हुई थी।

सहसा दो स्त्रियाँ वहाँ आकर खडी हो गईं। आगे तो राजकुमारी थी, उसके पीछे कौन थी, यह अभी किसी को नही मालूम। राजकुमारी की आँख जल रही थी। उसने क्रोध से कहा, बाबाजी, किसी का घर बिगाडना अच्छा नही। मेरे मना करने पर भी आप ब्याह करा रह हैं। किसी लडके को फुसलाना आपको शोभा नही देता।

दूसरी स्त्री चादर के घूघट म स ही बिलखकर कहन लगी—क्या इस गांव म कोई किसी की सुनने वाला नही ? मरी भतीजी का ब्याह मुझस बिना पूछे करने वाला यह बाबा कौन होता ह ? ह राम ! यह अधेर !

मिस्टर वाट्सन उठकर खड हो गये। अनवरी क मुख पर व्यगपूर्ण आश्चय था और सुखदव क क्रोध का ता जैस कुछ कुछ ठिकाना ही न था। उन्हान चिल्लाकर कहा—सरकार, आप लागा के रहते एसा अन्याय न हाना चाहिए।

क्षण-भर के लिए मधुबन रुककर क्रोध स सुखदव की आर दखन लगा। वह आसन छाडकर उठने ही वाला था। वह जैस नींद स सपना दखकर बालन का प्रयत्न करते हुए मनुष्य के समान अपन क्रोध से असमर्थ हो रहा था।

उधर रामनाथ ने चारा ओर दखकर गभीर स्वर स कहा—शान्त हो मधुबन ! अपना काम समाप्त करो। यह सब तो जा हो रहा है, उस होन दो।

और तितली की दशा, ठीक गाँव क समीप रेलव-लाइन के तार का पकडे हुए उस बालक-सी थी, जिसके सामन स डाक-गाडी भक्-भक् करती हुई निकल जाती है—सैकडा सिर खिडकिया स निकले रहत है, पर पहचान म एक भी नही आते, न ता उनकी आकृति या वणरेखाआ का ही कुछ पता चलता ह। वह अपनी सारी विडम्बना का हटाकर अपनी दृढता म खडी रहन का प्रयत्न करन लगी थी।

तो भी रामनाथ की आज्ञाआ का—आदशा का—अक्षरश पालन हा रहा था ! तहसीलदार और इन्द्रदेव वापस चल आय थे। तहसीलदार ने कहा—बाबाजी आप यह काम अच्छा नही कर रह है। तितली क घरवाला की सम्मति क बिना उसका ब्याह अपराध ता है ही, उसका कोई अर्थ भी नही।

इन्द्रदेव को चुप देखकर रामनाथ न कहा—क्या आपकी भी यही सम्मति है ?

हाँ—नही—उन लागा स ता आपको पूछ लना

किन लागा से ? तितली की बुआ ! कहाँ थी वह—जब तितली मर रही थी पानी के बिना ? और फिर आपको भी विश्वास ह कि यह तितली की बुआ ही है ? मैं भी इस गाँव की सब बात जानता हूँ। रह गई मधुबन की बात, सो अब वह लडका नही है, उसे कोई भुलावा नही दे सकता।

रामनाथ न फिर अपनी शेष विधि पूरी की। उधर दाना स्त्रियाँ उछल-कूद मचा रही थीं।

अनवरी ने धीरे स वाट्सन से कहा—क्या आपको इसम कुछ न बालना चाहिए ?

कुछ सोचकर वाट्सन ने कहा—नही, मैं इन बातो को अच्छी तरह जानता भी नही, और देखता हूँ तो दोनो ही अपना भला-बुरा समझने लायक हैं। फिर मै क्यो ?

आह! यह मेरा मतलब नही था। मैं तो प्राणी का प्राणी स जीवन-भर के सम्बन्ध म बँध जाना दासता समझती हूँ, उसम आगे चलकर दोनो के मन म मालिक बनने की विद्रोह-भावना छिपी रहती है। विवाहित जीवनो म, अधिकार जमाने का प्रयत्न करते हुए स्त्री-पुरुष दोनो ही देखे जाते है। यह तो एक झगडा मोल लेना है।

ओहो! तब आप एक सिद्धान्त की बात कर रही थी—वाट्सन न मुस्करा-कर कहा।

कुछ भी हो, बाबाजी! आपको इसम समझ-बूझकर हाथ डालना चाहिए। —न जाने किस भावना से प्रेरित होकर वदी क पास ही खडे हुए इन्द्रदेव न कहा। उनके मुख पर झुँझलाहट और सन्तोष की रेखाएँ स्पष्ट हो उठी।

रामनाथ ने उनको और तितली को देखते हुए कहा—कुँवर साहब! मधु-बन ही तितली के उपयुक्त वर है। मैं अपना दायित्व अच्छी तरह समझकर ही इसम पडा हूँ। कम-से-कम जो लोग इस सम्बन्ध म यहाँ बातचीत कर रहे है, उनसे मेरा अधिक न्यायपूर्ण अधिकार है।

इन्द्रदव तिलमिला उठे। भीतर की बात वह नही समझ रहे थे, किन्तु मन क ऊपरी सतह पर तो यह आया कि यह बाबा प्रकारान्तर स मेरा अपमान कर रहा है।

उधर से चौबे ने कहा—अधिकार! यह कैसा हठीला मनुष्य है, जो इतन बडे अफसर और अपने जमीदार क सामने भी अपने को अधिकारी समझता है! सरकार! यह धर्म का ढोग है। इसके भीतर बडी कतरनी है! इसन सारे गाँव म ऐसी बुरी हवा फला दी है कि किसी दिन इसके लिए बहुत पछताना होगा, यदि समय रहत इसका उपाय न किया गया।

इन्द्रदेव की कनपटी लाल हो उठी। वह क्रोध को दबाना चाहते थ शैला के कारण। परन्तु उन्ह असह्य हो रहा था।

शैला ने खडी होकर कहा—एक पल-भर रुक जाइए। क्या मधुबन! तुम *पूरी तरह से विचार करके यह ब्याह कर रह हो न? कोई तुमको बहका तो नही* रहा है? इसम तुम प्रसन हो?

सम्पूर्ण चेतनता स मधुबन ने कहा—हाँ?

और तुम तितली?

मैं भी।

उसका नारीत्व अपने पूर्ण अभिमान मे था।

अनवरी झल्ला उठी। मुखदेव दाँत पीसकर उठ गये। तहसीलदार मन ही-मन बुदबुदाने लगे। वाट्सन मुस्कराकर रह गये। शैला ने गम्भीर स्वर म इन्द्रदेव से कहा—अब आप लोगो से यह नवविवाहित दम्पति आशीर्वाद की आशा करता है। और मैं समझती हूँ कि यहा का काम हो चुका है। अब आप लोग नील कोठी चलिये। अस्पताल खोलने का उत्सव भी इसी समय होगा और और तितली के ब्याह का जलपान भी वही करना होगा। सब लोग मेरी ओर से निमन्त्रित हैं।

इन्द्रदेव न सिर झुकाकर जैसे सब स्वीकार कर लिया। और वाटसन न हँसकर कहा—मिस शैला! मै तुमको धन्यवाद पहले ही स देता हू।

सिन्दूर स भरी हुई तितली की माग दमक उठी।

१०

नील-कोठी म अस्पताल खुल गया। बैंक के लिए भी प्रबन्ध हो गया। वही गाव की पाठशाला भी आ गई थी। वाट्सन ने चकबन्दी की रिपोर्ट और नक्शा भी तैयार कर दिया और प्रान्तीय सरकार स बुलावा आने पर वहा लौट गय। साथ ही-साथ अपने सौजन्य और स्नेह स धामपुर के बहुत स लोगो क हृदयो म अपना स्थान भी बना गय। शैला उनके बनाये हुए नियमो पर साधक की तरह अभ्यास करने लगी।

अभी भी जमादार क परिवार पर उस उत्सव की स्मृति सजीव थी। किन्तु श्यामदुलारी के मन म एक बात खटक रही थी। उनक दामाद बाबू श्यामलाल उस अवसर पर नही आय। इन्द्रदव न उन्ह लिखा भी था, पर उनको छुट्टी कहा? पहल ही एक बोट पर गगा-सागर चलने क लिए अपनी मित्र-मण्डली का उन्हान निमत्रित किया था। कुल आयोजन उन्ही का था। चन्दा तो सब लोगो का था किन्तु किसको ताश खलना है, किस सगीत के लिए बुलाना है, और कौन व्यग विनोद से जुए म हारे हुए लोगो को हँसा सकेगा, कौन अच्छी ठढाई बनाता है, किस बढिया भोजन पकाने की क्रिया मालूम है—यह तो सभी को नही मालूम था। श्यामलाल क चल आने स उनकी मित्र-मण्डली गगा-सागर का पुण्य न लूटती। वह आन नही पाये।

तहसीलदार और चौबेजी जल उठे थे तितली के ब्याह स। जो जाल उनका था, वह छिन्न हो गया। शैला क स्थान पर जो पात्री चुनी गई थी, वह भी हाथ स निकल गई। उन्होने श्यामदुलारी के मन म अनेक प्रकार स यह दुर्भावना भर दी कि इन्द्रदव चौपट हा रहे हैं और हम लोग कुछ नही कर सकते। शैला को घर से तो हटा दिया गया, पर वह एक पूरी शक्ति इकट्ठी करके उन्ही की छाती पर जम गई।

श्यामदुलारी की खीझ बढ गई। उनक मन म यह धारणा हो रही थी कि इन्द्रदेव चाहते, और भी दो-एक पत्र लिखते, तो श्यामलाल अवश्य आते। वह इन्द्रदेव से उदासीन रहने लगी। घरलू कामो म अनवरी मध्यस्थता करने लगी।

कुटुम्ब में पारस्परिक उदासीनता का परिणाम यही होता है। श्यामदुलारी का माधुरी के प्रति अकारण पक्षपात और इन्द्रदेव पर सन्देह, उनके कर्त्तव्य-ज्ञान को चबा रहा था।

कभी-कभी मनुष्य की यह मूर्खतापूर्ण इच्छा होती है कि जिनको हम स्नेह की दृष्टि से देखते है, उन्हे अन्य लोग भी उसी तरह प्यार करें। अपनी असभव कल्पना को आहत होते देखकर वह झल्लाने लगता है।

श्यामदुलारी की इस दीनता को इन्द्रदेव समझ रहे थे, पर यह कहे किस तरह! कही ऐसा न हो कि मन मे छिपी हुई बात कह देने से माँ और भी क्रोध कर बैठे, क्योकि उसको स्पष्ट करने के लिए इन्द्रदेव का अपने प्रमाधिकार से औरो की तुलना करनी पडती, यह और भी उन्ही के लिए लज्जा की बात होगी। उनका साधारण स्नेह जितना एक आत्मीय पर होना चाहिए, उससे अधिक भाग तो इन्द्रदेव अपना समझते थे। किन्तु जब छिपाने की बात है, तो स्नेह की अधिकता का भागी कोई दूसरा ही है क्या?

श्यामदुलारी अपने मन की बात अनवरी से कहलाने की चेष्टा क्यो करती हैं? माँ को अधिकार है कि वह बच्चे का, उसके दोषो पर, तिरस्कार करे। गुरुजनो का यह कर्त्तव्य छोडकर बनावटी व्यवहार इन्द्रदेव को खलने लगा, जिसके कारण उन्हे अपने को दूर हटाकर दूसरो को अपनाना पडा है। अनवरी आज इतनी अन्तरग बन गई है!

बडी कोठी मे जैसे सब कुछ सन्दिग्ध हो उठा। अपना अवलम्ब खोजने के लिए जब इन्द्रदेव ने हाथ बढाया, तो वहाँ शैला भी नही! सारा क्षोभ शैला को ही दोषी बनाकर इन्द्रदेव को उत्तेजित करने लगा। इस समय शैला उनके समीप होती!

अनवरी से लडने के लिए छाती खोलकर भी अपने को निस्सहाय पाकर इन्द्रदेव विवश थे। विराट् वट-वृक्ष के समान इन्द्रदेव के सम्पन्न परिवार पर अनवरी छोटे-से नीम के पौधे की तरह उसी का रस चूस कर हरी-भरी हो रही थी। उसकी जडे वट को भेदकर नीचे घुसती जा रही थी। सब अपराध शैला का ही था। वह क्यो हट गई। कभी-कभी अपने कामो के लिए ही वह आती, तब उससे इन्द्रदेव की भेट होती, किन्तु वह किसानो की बात करने मे इतनी तन्मय हो जाती कि इन्द्रदेव को वह अपने प्रति उपेक्षा-सी मालूम होती।

कभी-कभी घर के कोनें से अपने और तितली के भावी सम्बन्ध की सूचना भी उन्होने सुनी थी। तब उन्होने हँसी मे उडा दिया था। कहाँ वह और कहाँ तितली—एक ग्रामीण बालिका! किन्तु उस दिन ब्याह मे जो तितली की निश्चल

सौन्दर्यमयी गम्भीरता देख कर उन्हें एक अनुभूति हुई थी, उसे वह स्पष्ट न कर सके थे। हाँ, तो शैला ने उस ब्याह में भी योग दिया। क्या यह भी कोई सकारण घटना है ?

इन्द्रदेव का मानसिक विप्लव बढ़ रहा था। उनके मन में निश्चल क्रोध धीरे-धीरे संचित होकर उदासीनता का रूप धारण करने लगा।

सायंकाल था। खेतों की हरियाली पर कहीं-कहीं डूबती हुई किरणों की छाया अभी पड़ रही थी। प्रकाश डूब रहा था। प्रशान्त गंगा का कछार शून्य हृदय खोल पड़ा था। करार पर सरसों के खेत में बसन्ती चादर बिछी थी। नीचे शीतल बालू में कराकुल चिड़ियों का एक झुण्ड मौन होकर बैठा था।

कधों से सरसों के फूलों के घनेपन को चीरते हुए इन्द्रदेव ने उस स्पन्दन-विहीन प्रकृति-खंड को आन्दोलित कर दिया। भयभीत कराकुल झुंड-के-झुंड उड़कर उस धूमिल आकाश में मंडराने लगे।

इन्द्रदेव के मस्तक पर कोई विचार नहीं था। एक सन्नाटा उसके भीतर और बाहर था। वह चुपचाप गंगा की विचित्र धारा को देखने लगे।

चौबेजी ने सहसा आकर कहा—बड़ी सरकार बुला रही हैं।

क्या ?

यह तो मैं... हाँ बाबू श्यामलाल जी आये हैं इसी के लिए बुलाया होगा।

तो मैं आता हूँ अभी जल्दी क्या है ?

उसके लिए कौन-सा कमरा ?

हूँ तो कह दो कि माँ इसे अच्छी तरह समझती होंगी। मुझसे पूछने की क्या आवश्यकता ? न हो मेरे ही कमरे में, क्यों, ठीक होगा न ? न हो तो छोटी कोठी में या जहाँ अच्छा समझें।

जैसा कहिए।

तब यही जाकर कह दो। मैं अभी ठहरकर आऊँगा।

चौबे चले गये।

इन्द्रदेव वहीं खड़े रहे। शैला को इस अन्धकार के शैशव में वहीं देखने की कामना उत्तेजित हो रही थी और वह आ भी गई। इन्द्रदेव ने प्रसन्न होकर कहा—इस समय मैं जो भी चाहता, वह मिलता।

क्या चाहते थे ?

तुमको यहाँ देखना। देखो, आज यह कैसी सन्ध्या है! मैं तो लौटने का विचार कर रहा था।

और मैं कोठी से होती आ रही हूँ।

भला, आज कितने दिनो पर ।

तुम अप्रसन्न हो इसके लिए न ! मैं क्या करूँ । —कहते-कहते शैला का चेहरा तमतमा गया । वह चुप हो गई ।

कुछ कहो शैला ! तुम क्यो आने मे सकोच करती हो ? मैं कहता हूँ कि तुम मुझे अपने शासन मे रखो । किसी से डरने की आवश्यकता नही ।

शैला ने दीर्घ नि श्वास लेकर कहा—मैं तो शासन कर रही हूँ । और अभी अधिक तुम्हारे ऊपर अत्याचार करते हुए मैं कॉंप उठती हूँ । इन्द्र ! तुम कैसे दुबले हुए जा रहे हो ? तुम नही जानते कि मैं तुम्हारे अधिक क्षोभ का कारण नही बनना चाहती । कोठी मे अधिक जाने से अच्छा तो नही होता ।

क्या अच्छा नही होता । कौन है जो तुमको रोकता । शैला ! तुम स्वय नही आना चाहती हो । और मैं भी तुम्हारे पास आता हूँ तो गॉंव-भर का रोना मेरे सामने इकट्ठा करके धर देती हो । और मेरी कोई बात ही नही ! तुम कोठी पर

ठहरो, सुन लो, मै अभी कोठी पर गई थी । वहॉं कोई बाबू आये है । तुम्हारे कमरे मे बैठे थे । मिस अनवरी बात कर रही थी । मैं भीतर चली गई । पहले तो वह घबराकर उठ खडे हुए । मेरा आदर किया । किन्तु अनवरी ने जब मेरा परिचय दिया, तो उन्होने बिल्कुल अशिष्टता का रूप धारण कर लिया । वही बीबी-रानी के पति हैं ?

शैला आगे कहते-कहते रुक गई क्योकि इन्द्रदेव के स्वभाव से परिचित थी । इन्द्रदेव ने पूछा—क्या कहा, कहो भी ?

बहुत-सी भद्दी बाते ! उन्हे सुनकर तुम क्या करोगे ? मिस अनवरी तो कहने लगी कि उन्हे ऐसी हँसी करने का अधिकार है । मैं चुप हो रही । मुझे बहुत बुरा लगा । उठकर इधर चली आई ।

इन्द्रदेव ने भयानक विषधर की तरह श्वास फेककर कहा—शैला ! जिस विचार से हम लोग देहात मे चले आये थे, वह सफल न हो सका । मुझे अब यहॉं रहना पसन्द नही । छोडो इस जजाल को, चलो हम लोग किसी शहर मे चलकर अपने परिचित जीवन-पथ पर सुख ले ! यह अभागा

शैला ने इन्द्रदेव का मुँह बन्द करते हुए कहा—मुझे यही रहने दो । कहती हूँ न, क्रोध से काम न चलेगा । और तुम भी क्या घर को छोड कर दूसरी जगह सुखी हो सकोगे ? आह ! मेरी कितनी करुण कल्पना उस नील की कोठी मे लगी-लिपटी है ! इन्द्र ! तुमसे एक बार तो कह चुकी हूँ ।

वह उदास होकर चुप हो गयी। उसे अपनी माता की स्मृति ने विचलित कर दिया।

इन्द्रदेव को उसकी यह दुर्वलता मालूम थी। वह जानते थे कि शैला के चिर दुखी जीवन म यही एक सान्त्वना थी। उन्होंने कहा—तो मैं अब यहाँ से चलन के लिए न कहूँगा। जिसमे तुम प्रसन्न रहो।

तुम कितने दयालु हो इन्द्रदेव! मैं तुम्हारी ऋणी हूँ।

तुम यह कहकर मुझे चोट पहुँचाती हो शैला! मैं कहता हूँ कि इसकी एक ही दवा है। क्या तुम रोक रही हा। हम दोना एक-दूसरे की कमी पूरी कर लग। शैला स्वीकार कर ला।—कहत-कहत इन्द्रदव न उस आर्द्रहृदया युवती क दाना कोमल हाथा को अपन हाथा म दवा लिया।

शैला भी अपनी कोमल अनुभूतिया क आवेश म थी। गद्गद कठ स बाली—इन्द्र! मुझे अस्वीकार कब था? मैं तो केवल समय चाहती हूँ। दखा, अभी आज ही वाट्सन का यह पत्र आया है, जिसम मुझे उनके हृदय के स्नेह का आभास मिला ह। किन्तु मैं

इन्द्रदेव न हाथ छोड दिया। वाट्सन!—उनक मन म द्वेषपूर्ण सन्दह जल उठा।

तभी तो शैला! तुम मुझको भुलावा देती आ रही हो।

ऐसा न कहो! तुम तो पूरी बात भी नही सुनते।

इन्द्रदेव के हृदय म उस निस्तब्ध सन्ध्या क एकान्त म सरसो के फूलो स निकली शीतल सुगन्ध की कितनी मादकता भर रही थी, एक क्षण म विलीन हो गई। उन्हे सामने अन्धकार की मोटी-सी दीवार खडी दिखाई पडी!

इन्द्रदेव ने कहा—मैं स्वार्थी नही हूँ शैला! तुम जिसम सुखी रह सका।

वह कोठी की ओर चलन के लिए घूम पडे। शैला चुपचाप वहीं खडी रही। इन्द्रदेव ने पूछा—चलोगी न?

हाँ, चलती हूँ—कहकर वह भी अनुसरण करन लगी।

इन्द्रदेव के मन म साहस न होता था कि वह शैला के ऊपर अपन प्रेम का पूरा दवाव डाल सके। उन्हे सन्देह होने लगता था कि कही शैला यह न समझे कि इन्द्रदेव अपन उपकारा का बदला चाहते है।

इन्द्रदेव एक जगह रुक गये और बाले—शैला, मे अपने बहनोई साहब के किये हुए अशिष्ट व्यवहार के लिए तुमसे क्षमा चाहता हूँ।

शैला न कहा—तो यह मेरे डायरी पढने की क्षमा-याचना का जवाब है

न ! मुझे तुमसे इतने शिष्टाचार की आशा नही। अच्छा अब मैं इधर से जाऊँगी। महौर महतो से एक नौकर के लिए कहा था। उससे भेट कर लूँगी। नमस्कार !

शैला चल पडी। इन्द्रदेव भी वही से घूम पड। एक बार उनकी इच्छा हुई कि बनजरिया मे चलकर रामनाथ से कुछ बातचीत करे। अपने क्रोध से अस्त-व्यस्त हो रहे थे, उस दशा म श्यामलाल से सामना होना अच्छा न होगा—यही सोचकर रामनाथ की कुटी पर जब पहुँचे, तो देखा कि तितली एक छोटा-सा दीप जलाकर अपन अचल से आड किये वही आ रही है, जहाँ रामनाथ बैठे हुए सन्ध्या कर रहे थे। तितली ने दीपक रख कर उसको नमस्कार किया, फिर इन्द्रदेव को और रामनाथ को नमस्कार करके आसन लाने के लिए कोठरी में चली गई।

रामनाथ ने इन्द्रदेव को अपने कम्बल पर बिठा लिया। पूछा—इस समय कैसे ?

यो ही इधर घूमते-घूमते चला आया।

आपका इस देहात मे यश फैला रहा है। और सचमुच आपने दुखी किसानो के लिए बहुत-से उपकार करने का समारम्भ किया है। मेरा हृदय प्रसन्न हो जाता है; क्योकि विलायत से लौटकर अपने देश की सस्कृति और उसके धर्म की ओर उदासीनता आपने नही दिखाई। परमात्मा आप-जैसे श्रीमानो को सुखी रखे।

किन्तु आप भूल कर रहे है। मै तो अपने धर्म और सस्कृति से भीतर-ही-भीतर निराश हूँ। मैं सोचता हूँ कि मेरा सामाजिक बन्धन इतना विशृखल है कि उसम मनुष्य केवल ढोंगी बन सकता है। दरिद्र किसानो से अधिक-से-अधिक रस चूसकर एक धनी थोडा-सा दान—कही-कही दया और कभी-कभी छोटा-मोटा उपकार—करके, सहज ही म आप-जैसे निरीह लोगो का विश्वासपात्र बन सकता है। सुना है कि आप धर्म मे प्राणिमात्र की समता देखते हैं, किन्तु वास्तव मे कितनी विषमता है। सब लोग जीवन मे अभाव-ही-अभाव देख पाते। प्रेम का अभाव, स्नेह का अभाव, धन का अभाव शरीर-रक्षा की साधारण आवश्यकताओ का अभाव, दु ख और पीडा—यही तो चारो ओर दिखाई पडता है। जिसको हम धर्म या सदाचार कहते हैं, वह भी शान्ति नही देता। सबम बनावट, सबम छल-प्रपच ! मैं कहता हूँ कि आप लोग इतने दुखी है कि थोडी-सी सहानुभूति मिलते ही कृतज्ञता नाम की दासता करन लग जाते हैं। इससे तो अच्छी है पश्चिम की आर्थिक या भौतिक समता, जिसमे ईश्वर के न रहने पर भी मनुष्य की सब तरह की सुविधाओ की योजना है।

मालूम होता है, आप इस समय किसी विशेष मानसिक हलचल मे पडकर

उत्तेजित हो रहे है। मैं समझ रहा हूँ कि आप व्यावहारिक समता खोजत है, किन्तु उसकी आधार-शिला तो जनता की सुख-समृद्धि ही है न? जनता को अर्थ-प्रेम की शिक्षा दकर उस पशु बनाने की चेष्टा अनर्थ करेगी। उसम ईश्वर-भाव का आत्मा का निवास न होगा ता सब लोग उस दया, सहानुभूति और प्रेम के उद्गम से अपरिचित हो जायेंगे जिससे आपका व्यवहार टिकाऊ होगा। प्रकृति म विषमता तो स्पष्ट है। नियन्त्रण के द्वारा उसम व्यावहारिक समता का विकास न हागा। भारतीय आत्मवाद की मानसिक समता ही उसे स्थायी बना सकेगी। यान्त्रिक सभ्यता पुरानी होत ही ढीली हाकर बेकार हो जायगी। उसम प्राण बनाये रखने क लिए व्यावहारिक समता के ढाँचे या शरीर म, भारतीय आत्मिक साम्य की आवश्यकता कब मानव-समाज समझ लेगा, यही विचारन की बात है। मैं मानता हूँ कि पश्चिम एक शरीर तैयार कर रहा है किन्तु उसम प्राण देना पूर्व क अध्यात्मवादियो का काम है। यही पूर्व और पश्चिम का वास्तविक सगम हागा, जिससे मानवता का स्रोत प्रसन्न धार मे बहा करेगा।

तब उस दिन की आशा म हम लोग निश्चेष्ट बैठे रहे?

नही मानवता को कल्याण-कामना म लगना चाहिए। आप जितना कर सके, करते चलिए। इसीलिए न, मैं जितनी ही भलाई देख पाता हूँ, प्रसन्न होता हूँ। आपकी प्रशसा म मैने जो शब्द कहे थे बनावटी नही थे। मैं हृदय से आपको आशीर्वाद देता हूँ।

इन्द्रदेव चुप थे, तितली दूर खडी थी। रामनाथ ने उसकी ओर देखकर कहा—क्यो बेटी, सरदी म क्यो खडी हा? पूछ लो जो तुम्ह पूछना हो। सकोच किस बात का?

बापू, दूध नही है। आपके लिए क्या ?

अरे तो न सही, कौन एक रात मे मैं मरा जाता हूँ।

इन्द्रदेव न अभाव की इस तीव्रता म भी प्रसन्न रहते हुए रामनाथ को देखा। वह घबराकर उठ खडे हुए। उनसे यह भी न कहते बन पडा कि मैं ही कुछ भेजता हूँ। चले गये।

इन्द्रदेव को छावनी म पहुँचते-पहुँचत बहुत रात हो गई। वह आँगन से धीरे-धीरे कमरे की ओर बढ रह थ। उनके कमरे म लैम्प जल रहा था। हाथ मे कुछ लिए हुए मलिया कमरे के भीतर जा रही थी। इन्द्रदव खम्भे की छाया म खडे रह गये। मलिया भीतर पहुँची। दो मिनट बाद ही वह झनझनाती हुई बाहर निकल आई। वह अपनी विवशता पर केवल रो सकती थी, किन्तु श्याम-लाल का मदिरा-जडित कठ अट्टहास कर उठा, और साथ-ही-साथ अनवरी की

डाँट सुनाई पड़ी—हरामजादी, झूठमूठ चिल्लाती है। सारा पान भी गिरा दिया और...

इन्द्रदेव अभी शैला की बात सुन आये थे। यहाँ आते ही उन्होंने यह भी देखा। उनके रोम-रोम मे क्रोध की ज्वाला निकलने लगी। उनकी इच्छा हुई कि श्यामलाल को उसकी अशिष्टता का, ससुराल मे यथेष्ट अधिकार भोगने का फल दो घूंसे लगाकर दे दें। किन्तु माँ और माधुरी! आह? जिनकी दृष्टि मे इन्द्रदेव से बढकर आवारा और गया-बीता दूसरा कोई नहीं।

वह लौट पड़े। उनके लिए एक क्षण भी वहा रुकना असह्य था। न जाने क्या हो जाय। मोटरखाने में आकर उन्होंने ड्राइवर से कहा—जल्दी चलो।

बेचारे ने यह भी न पूछा कि 'कहाँ'? मोटर हार्न देती हुई चल पड़ी।



तृतीय खण्ड

1

निर्धन किसानो मे किसी न पुरानी चादर को पीले रग से रँग लिया, तो किसी की पगडी ही बचे हुए फीके रग म रँगी है। आज वसन्त-पचमी है न। सबके पास कोई न कोई पीला कपडा है। दरिद्रता मे भी पर्व और उत्सव तो मनाये ही जायँगे। महँगू महतो के अलाव के पास भी ग्रामीणो का एक ऐसा ही झुड बैठा है। जौ की कच्ची बालो को भून कर गुड मिला कर लोग 'नवान' कर रहे हैं, चिल ठडी नही होने पाती। एक लडका, जिसका कठ सुरीला था, बसन्त गा रहा था—

मदमाती कोयलिया डार-डार

दुखी हो या दरिद्र, प्रकृति ने अपनी प्रेरणा से सबके मन मे उत्साह भर दिया था। उत्सव मनाने के लिए, भीतर की उदासी ने ही मानो एक नया रूप धारण कर लिया था। पश्चिमी पवन के पके हुए खेतो पर से सर्राटा भरता और उन्हे रौंदता हुआ चल रहा था। बूढे महँगू के मन मे भी गुद-गुदी लगी। उसने कहा—दुलरवा, ढोल ले आ, दूसरी जगह तो सुनता हूँ कि तू बजाता है, अपने घर काज-त्योहार के दिन बजाने मे लजाता है क्या रे ?

दुलारे धीरे से उठकर घर म गया। ढोल और मँजीरा आया। गाना जमने लगा। सब लोग अपने को भूलकर उस सरल विनोद मे निमग्न हो रहे थे।

तहसीलदार ने उसी समय आकर कहा—महँगू !

सभा विश्रृखल हो गई। गाना-बजाना रुक गया। उस निर्दय यमदूत के समान तहसीलदार से सभी काँपते थे। फिर छावनी पर उसे न बुलाकर स्वय महँगू के यहाँ उनके अलाव पर खडा था। लोग भयभीत हो गये। भीतर से जो स्त्रियाँ झाँक रही थी उनके मुँह छिप गये। लडके इधर-उधर हुए, सब जैसे आतक मे त्रस्त।

महँगू ने कहा—सरकार ने बुलाया है क्या ?

बेचारा बूढ़ा घबरा गया था।

सरकार को बुलाना होता तो जमादार आता। महँगू ! मैं क्यो आया हूँ, जानते हो ! तुम्हारी भलाई के लिए तुम्हे समझान आया हूँ।

मैंने क्या किया है तहसीलदार साहब !

तुम्हारे यहाँ मलिया रहती है न। तुम जानत हो कि वह बीवी-रानी छोटी सरकार का काम करती थी। वह आज कितने दिनो स नही जाती। उसको उकसाकर बिगाडना तो नही चाहिए। डांटकर तुम कह दते कि 'जा, काम कर' तो क्या वह न जाती ?

मैं कैसे कह देता तहसीलदार साहब। कोई मजूरी करता है तो पेट भरने के लिए, अपनी इज्जत देन के लिए नही। हम लोगो के लिए दूसरा उपाय ही क्या है। चुपचाप घर भी न बैठे रह।

देखो महँगू, ये सब बाते मुँह से न निकालनी चाहिए। तुम जानते हो कि

मैं जानता हूँ कि नहीं, इससे क्या ? वह जाय तो आप लिवा जाइए। मजूरी ही तो करेगी। आपके यहाँ छोडकर मधुवन बाबू के यहाँ काम करने म कुछ पैसा बढ ता जायगा नही। हाँ, वहाँ तो उसको बोझ लेकर शहर भी जाना पडता ह। आपके यहा करे तो मेरा क्या ? पर हाँ, जमींदार मा-बाप हैं। उनके यहाँ ऐसा

मधुवन बाबू। हूँ, कल का छोकरा ! अभी तो सीधी तरह धोती भी नही पहन सकता था। 'बाबा तो सिखाकर चला गया। उसका मन बहक गया है। गसको भी ठीक करना होगा। अब मैं समझ गया। महँगू ! मेरा नाम तुम भी भूल गये हो न ?

अच्छा, आपस जो बने, कर लीजिएगा। मैंन क्या किसी की चोरी की है या कही डाका डाला है ? मुझे क्यो धमकाते हैं ?

महँगू भी अपने अलाव से सामने आवेश म क्यो न आता ? उसके सामन उसकी बखारे भरी थी। कुडो म गुड था। लडके पोते सब काम मे लगे थे। अपमान सहने के लिए उसके पास किसी तरह की दुर्बलता न थी। पुकारते ही दस लाठियाँ निकल सकती थी। तहसीलदार ने समझ-बूझकर धीरे से प्रस्थान किया।

महँगू जब आपे म आया तो उसको भय लगा। वह लडका को गाने-बजान के लिए कहकर बनजरिया की ओर चला। उस समय तितली बैठी हुई चावल बिन रही थी, और मधुबन गले म कुरता डाल चुका था कही बाहर जाने के लिए।

मलिया, एक डाली में मटर की फलियाँ, एक कद्दू और कुछ आलू लिए हुए मधुबन के खेत से आ रही थी। महँगू ने जाते ही कहा—मधुबन बाबू। मलिया को बुलाने के लिए छावनी से तहसीलदार साहब आये थे। वहाँ उसके न जाने से उपद्रव मचेगा।

तो उसको मना कौन करता है, जाती क्यों नहीं?—कहकर मधुबन ने जाने के लिए पैर बढाया ही था कि तितली ने कहा—वाह, मलिया क्या वहाँ मरने जायेगी!

क्यों, जब उसका छावनी के काम करने के लिए, फिर से रख लेने के लिए, बुलावा आ रहा है, तब जाने में क्या अडचन है?—रुकते हुए मधुबन ने पूछा।

बुलावा आ रहा है, न्योता आ रहा है। सब तो है, पर यह भी जानते हो कि वह क्यों वहाँ से काम छोड आयी है? वहाँ जायगी अपनी इज्जत देने? न जाने कहाँ का शराबी उनका दामाद आया है। उसने तो गाँव भर को ही अपनी ससुराल समझ रखा है। कोई भलामानस अपनी बहू-बेटी छावनी में भेजेगा क्यों?

महँगू ने कहा—हाँ बेटी, ठीक कह रही हो। पर हम लोग जमींदार से टक्कर ले सकें, इतना तो बल नहीं। मलिया अब मेरे यहाँ रहेगी तो तहसीलदार मेरे साथ कोई-न-कोई झगडा-झझट खडा करेगा। सुना है कि कुँवर साहब तो अब यहाँ रहते नहीं। आज-कल औरतों का दरबार है। उन्हीं के हाथ में सब-कुछ है।

मधुबन चुप था। तितली ने कहा—तो उसे यहीं रहने न दो, देखा जायगा।

महँगू ने वरदान पाया। वह चला गया।

मलिया दूर खड़ी सब सुन रही थी। उसकी आँखों से आँसू निकल रहा था। तितली ने कहा—रोती क्यों है रे, यहीं रह, कोई डर नहीं, तुझे क्या कोई खा जायगा? जा-जा देख, ईंधन की लकडी सुखाने के लिए डाल दी गई गई है, उठा ला।

मलिया आँचल से आँसू पोछती हुई चली गई। उसका चचा भी मर गया था। अब उसका रक्षक कोई न था। तितली ने पूछा—अब रुके क्यों खडे हो? नील-कोठी जाना था न?

जाना तो था। जाऊँगा भी। पर यह तो बताओ, तुमने यह क्या झझट मोल ली। हम लोग अपने पैर खडे होकर अपनी ही रक्षा कर लें, यही बहुत है। अब तो बाबाजी की छाया भी हम लोगों पर नहीं है। राजो बुरा मानती ही है। मैंने शेरकोट जाना छोड दिया। अभी संसार में हम लोगों को धीरे-धीरे घुसना

है। तुम जानती हो कि तहसीलदार मुझसे तो बुरा मानता ही है।

तो तुम डर रहे हो !

डर नही रहा हूँ। पर क्या आगा-पीछा भी नही सोचना चाहिए। बाबाजी तो काशी चले गये सन्यासी होने, विश्राम लेने। ठीक ही था। उन्होंने अपना काम-काज का भार उतार फेका। पर यदि मैं भूलता नही हूँ तो उन्होने जाने के समय हम लोगो को जो उपदेश दिया था उसका तात्पर्य यही था कि मनुष्य को जान-बूझकर उपद्रव मोल न लेना चाहिए। विनय और कष्ट सहन करने का अभ्यास रखते हुए भी अपने को किसी से छोटा न समझना चाहिए, और बडा बनने का घमण्ड भी अच्छा नही होता। हम लोग अपने कामो से ही भगवान को शीघ्र कष्ट पहुँचाने और उन्हे पुकारने लगते हैं।

बस करो। मैं जानती हूँ कि बाबाजी इस समय होते तो क्या करते और मैं वही कर रही हूँ जो करना चाहिए। मलिया अनाथ है। उसकी रक्षा करना अपराध नही। तुम कहाँ जा रहे हो ?

जाने को तो मैं इस समय छावनी पर ही था, क्योंकि सुना है, वहाँ एक पहलवान आया, उसकी कुश्ती होने वाली है, गाना-बजाना भी होगा। पर अब मैं वहाँ न जाऊँगा, नील-कोठी जा रहा हूँ।

जल्द आना, दगल देख आओ। खा-पीकर नील-कोठी चले जाना। आज वसन्त-पचमी की छुट्टी नही है क्या ?—तितली ने कहा।

अच्छा जाता हूँ—कहता हुआ अन्यमनस्क भाव से मधुवन बनजरिया के बाहर निकला। सामने ही रामजस दिखाई पडा। उसने कहा—मधुवन भइया, कुश्ती देखने न चलोगे ?

अकेले तो जाने की इच्छा नही थी, पर जब तुम भी आ गये तो उधर ही चलूँगा।

भइया ! लँगोट ले लूँ।

अरे क्या मैं कुश्ती लडूँगा ? दुत !

कौन जाने कोई ललकार ही बैठे।

इस समय मेरा मन कुश्ती लडने लायक नही।

वाह भइया, यह भी एक ही रही। मन लडता है कि हाथ-पैर। मैं देख आया हूँ उस पहलवान को। हाथ मिलाते ही न पटका आपने तो जो कहिए मैं हारता हूँ।

मधुवन अब कुश्ती नही लड सकता रामजस ! अब उसे अपनी रोटी-दाल से लडना है।

तो भी लँगोट लेते चलने म कोई

अरे तो क्या मैं लँगोट घर छोड आया हूँ। चल भी।—हँसते हुए मधुवन ने रामजस को एक धक्का दिया, जिसमे यौवन के बल का उत्साह था। रामजस गिरते-गिरते बचा।

दोनो छावनी की आर चले।

छावनी मे भीड थी। अखाडा बना हुआ था। चारो आर जनसमूह खडा और बैठा था। कुरसी पर बाबू श्यामलाल और उसके इष्ट-मित्र बैठे थे। उनका साथी पहलवान लुगी बाँधे अपनी चौडी छाती खोले हुए खडा था। अभी तक उससे लडन के लिए कोई भी प्रस्तुत न था। पास के गावो की दो-चार वेश्याएँ भी आम के बौर हाथ म लिये, गुलाल का टीका लगाये, वहाँ बैठी थी—छावनी म वसन्त गाने क लिए आई थी। यही पुराना व्यवहार था। परन्तु इन्द्रदेव होते ता बात दूसरी थी। तहसीलदार ने श्यामलाल बाबू का आतिथ्य करने के लिए, उनस जो कुछ हा सका था, आमोद-प्रमोद का सामान इकट्ठा किया था। सवेरे ही सबकी केसरिया बूटी छनी थी। श्यामलाल देहाती सुख म प्रसन्न दिखाई देते थे। उन्ह इस बात का गर्व था कि उनके साथी पहलवान से लडने के लिए अभी तक कोई खडा नही हुआ। उन्होने मूँछ मरोरते हुए कहा—रामसिंह, तुमसे यहाँ कौन लडेगा जी। यही अपने नत्थू स जोर करके दिखा दा! सब लोग आये हुए हैं।

अच्छा सरकार!—कहकर रामसिंह न साथी नत्थू को बुलाया। दानो अपने दाव-पेंच दिखाने लगे।

रामजस ने कहा—क्या भइया, यह हम लोगा को उल्लू बनाकर चला जायगा?

मधुबन धीरे से हुँकार कर उठा। रामजस उस हुँकार से परिचित था। उसने युवको की सी चपलता से आगे बढकर कहा—सरकार! हम लोग देहाती ठहरे, पहलवानी क्या जाने! पर नत्थू से लडने को तो मैं तैयार हूँ।

सब लोग चौंककर रामजस को देखने लगे। दाँव-पेच बन्द करके रामसिंह ने भी रामजस को देखा। वह हँस पडा।

जाओ, खत मे कुदाल चलाओ लडके!—रामसिंह ने व्यग्य स कहा।

मधुबन से अब न रहा गया। उसने कहा—पहलवान साहब, खतो का अन्न खाकर ही तुम कुश्ती लडते हो।

पसेरी भर अन्न खाकर कुश्ती नही लडी जाती भाई! सरकार लोगा के साथ माल चावकर यह कसाले का काम किया जाता है। दूसरे पूत से हाथ मिलाना, हाड-हाड-से-हाड लडाना, दिल्लगी नही है।

मैं तो इसे ऐसा ही समझता हूँ।

तो फिर आ जा न मेरे यार ! तू भी यह दिल्लगी देख !

रामसिंह के इतना कहते ही मधुबन सचमुच कुरता उतार, धाती फककर अखाडे म कूद पडा। मुन्दरिया उस देहाती युवक के शरीर को सस्पृह देखने लगी। गाँव के लोगो म उत्साह-सा फैल गया। सब लोग उत्सुकता स देखने लगे ! और तहसीलदार तो अपनी गोल-गाल आखा म प्रसन्नता छिपा ही न सकता था। उसने मन मे सोचा—आज बन्नू की मस्ती उतर जायगी।

रामसिंह और मधुबन म पैंतरे, दाँव-पेच और निकस-पैठ इतनी विचित्रता से होने लगी कि लागो के मुँह से अनायास ही 'वाह-वाह' निकल पडता। रामसिंह मधुबन को नीचे ले आया। वह घिस्सा देकर चित करना ही चाहता था कि मधुबन ने उसका हाथ दबाकर ऐसा धड उढाया कि वह रामसिंह की छाती पर बैठ गया। हल्ला मच गया। देहातियो ने उछलकर मधुबन को कधे पर बिठा लिया।

श्यामलाल का मुँह तो उतर गया, पर उन्होंने अपनी उँगली से अँगूठी निकालकर, मधुबन को देने के लिए बढ़ाई। मधुबन ने कहा—मैं इनाम क्या करूँगा—मेरा तो यह व्यवसाय नही है। आप लोगा की कृपा ही वहुत है।

श्यामलाल कट गये। उन्हे हताश होते देखकर एक वेश्या ने उठकर कहा—मधुबन बाबू ! आपने उचित ही किया। बाबूजी तो हम लोगो के घर आये है, इनका सत्कार तो हमी लोगो को करना चाहिए। बड भाग्य से इस देहात म आ गये हैं न !

श्यामलाल जब उसकी चचलता पर हँस रहे थे, तब उस युवती मैना न धीरे से अपन हाथ का बीर मधुबन की ओर बढाया, और सचमुच मधुबन न उस ले लिया। यही उसका विजय-चिह्न था।

तहसीलदार जल उठा। वह झुँझला उठा था, कि एक देहाती युवक बाबू साहब को प्रसन्न करने के लिए क्या नही पटका गया। उस अपने प्रबन्ध की यह त्रुटि बहुत खली। छावनी के आगन म भीड बढ रही थी। उसने कडककर कहा—अब चुपचाप सब लोग बैठ जायँ। कुश्ती हो चुकी। कुछ गाना-बजाना भी होगा।

• श्यामलाल का यह अच्छा तो नही लगता था, क्योकि उनका पहलवान पिट गया था, पर शिष्टाचार और जनसमूह के दबाव से वह बैठे रहे। अनवरी बगल म बैठी हुई उन पर शासन कर रही थी। माधुरी भीतर चिक म उदासभाव से

यह सब उपद्रव दख रही थी। श्यामदुलारी एक ओर प्रसन्न हो रही थी, दूसरी ओर सोचती थी—इन्द्रदेव यहाँ क्यो नही है।

जब मैना गाने लगी तो वहाँ मधुवन और रामजस दोना ही न थे। सुखदेव चौबे ता न जाने क्यो मधुवन की जीत और उसक बल को देख कर काप गये। उसका भी मन गान-बजान मे न लगा। उन्होने धीरे से तहसीलदार क कान म कहा—मधुवन का अगर तुम नही दबाते, ता तुम्हारी तहसीलदारी हा चुकी। देखा न।

गभीर भाव स सिर हिलाकर तहसीलदार ने कहा—हूँ।

२

धूप निकल आयी है, फिर भी ठंढ से लोग ठिठुरे जा रहे हैं। रामजस के साथ जो लड़का दवा लेने के लिए शैला की मेज के पास खड़ा है, उसकी ठुड्ढी काँप रही है। गले के समीप कुर्ता का अंश बहुत-सा फट कर लटक गया है, जिससे उसकी छाती की हड्डियों पर नसें अच्छी तरह दिखायी पड़ती हैं।

शैला ने उसे देखते ही कहा—रामजस! मैंने तुमको मना किया था। इसे यहाँ क्या ले आये? खाने के लिए सागूदाना छोड़कर और कुछ न देना! ठंढ बचाना!

मेम साहब, रात का ऐसा पाला पड़ा कि सब मटर झुलस गई। हरी मटर शहर में बेचने के लिए जाते ले जाते तो सागूदाना ले आते। अब तो इसी को भून कर कच्चा-पक्का खाना पड़ेगा। वही इसे भी मिलेगा।

तब तो इसे तुम मार डालोगे!

मरता तो है ही! फिर क्या किया जाय?

रामजस की इस बेबसी पर शैला काँप उठी। उसने मन में सोचा कि इन्द्रदेव से कहकर इसके लिए सागूदाना मँगा दे। सब बातों के लिए इन्द्रदेव से कहला देने का अभ्यास पड़ गया था। फिर उसको स्मरण हो आया कि इन्द्रदेव तो यहाँ नहीं हैं। वह दुखी हो गई। उसका हृदय व्यथा से भर गया। इन्द्रदेव की निर्दयता पर—नहीं-नहीं, उनकी विवशता पर—वह व्याकुल हो उठी। रामजस को बिदा करते हुए उसने कहा—मधुबन से कह देना, वह तुम्हारे लिए सागूदाना ले आयेगा।

यही एक छोटा भाई है मेम साहब! माँ बहुत रोती है।

जाओ रामजस! भगवान सब अच्छा करेगा।

रामजस तो चला गया। शैला उठकर अपने कमरे में टहलने लगी। उसका मन न लगा। वह टीले से नीचे उतरी, झील के किनारे-किनारे अपनी मानसिक व्यथाओं के बोझ से दबी हुई, धीरे-धीरे चलने लगी। कुछ दूर चलकर वह जब कच्ची सड़क की ओर फिरी तो उसने देखा कि अरहर और मटर के खेत काले

होकर सिकुडी हुई पत्तियो म अपनी हरियाली लुटा चुके हैं। अब भी जहा सूर्य की किरणे नही पहुँचती हैं, उन पत्तिया पर नमक की चादर-सी पडी है। कच्चे कुएँ के जगत पर सिर पकडे हुए एक किसान बैठा है। उसके सामने भरी हुई खेती का शव झुलसा पडा है। उसकी प्रसनता और साल भर की आशाओ पर वज्र की तरह पाला पड गया। गृहस्थी क दयनीय और भयानक भविष्य के चित्र उसकी आखा के सामन, पीछे जमीदार के लगान का कँपा देने वाला भय! दैव का अत्याचारी समझकर ही जैसे वह सतोष से जीवित है।

क्यो जी? तुम्हारे खत पर भी पाला पडा है?

आप देख ता रही है मेम साहब—दुख और क्रोध से किसान न कहा। उसको यह असमय की सहानुभूति व्यग्य-सी मालूम पडी। उसने समझा मेम साहब तमाशा देखने आई है।

शैला जैसे टक्कर खाकर आगे बढ गई। उसक मन म रह-रहकर यही बात आती है कि इस समय इन्द्रदेव यहाँ क्या नही है, अपने ऊपर भी रह-रहकर उस क्रोधा आता कि वह इतनी शीतल क्यो हा गई। इन्द्रदेव को वह जाने से रोक सकती थी, किन्तु अपने रूखे-सूखे व्यवहार से इन्द्रदेव के उत्साह को उसी ने नष्ट कर दिया, और अब यह ग्राम सुधार का व्रत एक बोझ की तरह उसे ढाना पड रहा है। तब क्या वह इन्द्रदेव से प्रेम नही करती! ऐसा तो नही, फिर यह सकोच क्यो? वह सोचने लगी—उस दिन इन्द्रदेव के मन म एक सन्देह उत्पन्न करके मैने ही यह गुत्थी डाल दी है। तब क्या यह भूल मुझे ही न सुधारनी चाहिए? बसत पचमी को माधुरी ने बुलाया था, वहाँ भी न गई। उन लोगा ने भी बुरा मान लिया होगा।

उसने निश्चय किया कि अभी मैं छावनी पर चलूँ। वहाँ जाने से इन्द्रदेव का भी पता लग जायगा। यदि उन लोगा की इच्छा हुई तो मैं इन्द्रदेव को बुलाने के लिए चली जाऊँगी, और इन्द्रदेव से अपनी भूल के लिए क्षमा भी माग लूँगी।

वह छावनी की ओर मन-ही-मन सोचते हुए घूम पडी। बीच म मधुबन दिखाई पड़ा। शैला का मन प्रसन्न वातावरण बनाने की कल्पना से उत्साह स भर उठा था। उसने कहा—मधुबन! तितली से कह देना, आज दोपहर को मै उसके यहाँ भोजन करूँगी, मैं छावनी स होकर आती हूँ।

मैं भी साथ चलूँ—मधुबन ने पूछा।

नही, तुम जाकर तितली से कह दो भाई, मैं आती हूँ।—कहकर वह लम्बा

डग बढाती हुई चल पडी। छावनी पर पहुँचकर उसन देखा, बिलकुल सनाटा छाया है। नौकर-चाकर उधर चुपचाप काम कर रहे है।

शैला माधुरी के कमरे के पास पहुँचकर बाहर रुक गई। फिर उसने चिक हटा दिया। देखा ता मेज पर सिर रखे हुए माधुरी कुर्सी पर बैठी है—जैस उसके शरीर म प्राण नही।

शैला कुछ दर खडी रही। फिर उसने पुकारा—बीबी-रानी!

माधुरी सिसकने लगी। उसन सिर न उठाया। शैला ने उसके बालो को धीरे-धीरे सहलाते हुए कहा—क्या है, बीबी-रानी!

माधुरी ने धीरे से सिर उठाया। उसकी आँखे गुडहल के फूल की तरह लाल हा रही थी। शैला स आख मिलाते ही उसके हृदय का बाध टूट गया। आसू की धारा बहने लगी। शैला की ममता उमड आई। वह भी पास बैठ गई।

जी कडा करके माधुरी ने कहा—मैं ता सब तरह से लुट गई!

हुआ क्या? मैं तो इधर बहुत दिनो से यहा आई नही, मुझे क्या पता। बीबी-रानी! मुझ पर सन्देह न करो। मै तुम्हारा बुरा नही चाहती। मुझसे अपनी बीती साफ-साफ कहो न। मैं भी तुम्हारी भलाई चाहन वाली हूँ बहन!

माधुरी का मन कोमल हो चला! दुख की सहानुभूति हृदय के समीप पहुँचती है। मानवता का यही तो प्रधान उपकरण है। माधुरी ने स्थिर दृष्टि स शैला को देखत हुए कहा---यह सच है मिस शैला, कि मैं तुम्हारे ऊपर अविश्वास करती रही हूँ! मेरी भूल रही होगी। पर मुझे जो धोखा दिया गया वह अब प्रत्यक्ष हा गया। मैं यह जानती हूँ कि मरे पति सदाचारी नही है, उनका मुझ पर स्नेह भी नही, तब भी यह मरे मान का प्रश्न था और उससे भी मुझे धक्का मिला। मेरा हृदय टूक-टूक हो रहा है। मैंने कृष्णमोहन को लेकर दिन बितान का निश्चय कर लिया था। मैं तो यह भी नही चाहती थी कि वह यहाँ आवे। पर जो होनी थी वह होकर ही रही।

माधुरी का फिर रुलाई आने लगी। वह अपन का सम्हाल रही थी। शैला ने पूछा—तो क्या हुआ, बाबू श्यामलाल चले गये?

हाँ, गय, और अनवरी को लेकर गये। मिस शैला! यह अपमान मैं सह न सकूँगी। अनवरी ने मुझ पर ऐसा जादू चलाया कि मैं उसका असली रूप इसके पहले समझ ही न सकी।

यह कैसे हुआ! इसम सब इन्द्रदव की भूल है। वह यहाँ रहत तो एसी घटना न हाने पाती।—शैला न आश्चर्य छिपाते हुए कहा।

उनके रहने न रहने स क्या हाता। यह ता होना ही था। हाँ, चले जान स

मेरे-माँ के मन मे भी यह बात आई कि इन्द्रदेव को उन लोगो का आना अच्छा न लगा। परन्तु इन्द्रदेव को इतना रूखा मैं नही समझती। कोई दूसरी ही बात है, जिससे इन्द्रदेव को यहाँ से जाना पडा। जा स्त्री इतनी निर्लज्ज हो सकती है, इतनी चतुर है, वह क्या नही कर सकती ? उसी का कोई चरित्र देखकर चले गये होंगे। सुनिये, वह घटना मैं सुनाती हूँ जो मेरे सामने हुई थी—

उस दिन माँ के बहुत बकन पर मैं रात को उन्हे ब्यालू कराने के लिए थाली हाथ म लिय, कमरे के पास पहुँची। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि भीतर कोई और भी है। मैं रुकी। इतन म सुनायी पडा—बस, बस, बस, एक ग्लास मैं पी चुकी, और लूँगी तो छिपा न सकूँगी। सारा भडाफोड हा जायगा।

उन्होंने कहा—मैं भडाफोड होने से नही डरता। अनवरी ! मैंने अपने जीवन मे तुम्ही को तो एसा पाया है, जिससे मेरे मन की सब बाते मिलती है ! मैं किसी की परवा नही करता, मैं किसी का दिया हुआ नही खाता, जो डरता रहूँ। तुम यहाँ क्यो पडी हो, चला कलकत्ते म ? तुम्हारी डाक्टरी ऐसी चमकेगी कि तुम्हारे नाम का डका पिट जायगा। हम लोगो का जीवन बडे सुख से कटेगा।

लम्बी-चौडी बाते करने वाले मैंने भी बहुत-से देखे हैं। निवाहना सहज नही है बाबू साहब ! अभी बीबी-रानी सुन लें तो आपकी

चलो, देखा है तुम्हारी बीबी-रानी को। मैं .

मैं अधिक सुन न सकी। मेरा शरीर काँपने लगा। मैंने समझा कि यह मेरी दुर्बलता है। मेरा अधिकार मेरे ही सामने दूसरा ले और मैं प्रतिवाद न करके लौट जाऊँ, यह ठीक नही। मै थाली लिए घुस पडी। अनवरी अपने को छुडाती हुई उठ खडी हुई। उसका मुँह विवर्ण था। शराब की महक से कमरा भर रहा था। उन्होने अपनी निर्लज्जता को स्पष्ट करते हुए पूछा—क्या है ?

भला मैं इसका क्या उत्तर देती ! हाँ, इतना कह दिया कि क्षमा कीजिए, मैं नही जानती थी कि मेरे आने स आप लोगो को कष्ट होगा।

यह बडी असभ्यता है कि बिना पूछे किसी के एकान्त म ..

उनकी बात काटकर अनवरी न कहा—बीबी-रानी ! मैं कलकत्ते मे डाक्टरी करने के सम्बन्ध म बाते कर रही थी।

यह भी उसका दुस्साहस था ! मै तो उसका उत्तर नही देना चाहती थी। परन्तु उसकी ढिठाई अपनी सीमा पार कर चुकी थी। मैंने कहा—बडी अच्छी बात है, मिस अनवरी ! आप कब जायँगी ?

मैं अधिक कुछ न कह सकी। थाली रखकर लौट आयी। दूसरे दिन सवेरे ही अनवरी तो बनारस चली गयी और उन्होने कलकत्ते की तैयारी की ! माँ ने

बहुत चाहा कि वे रोक लिए जायँ। उन्होंने कहलाया भी, पर मैं इसका विरोध करती रही। मैं फिर सामने न गयी। वह चले गये।

शैला ने सान्त्वना देते हुए कहा—जो होना था सो हो गया। अब दुख करने से क्या लाभ?

हम लोगो का भी आज शहर जाना निश्चित है। माँ कहती है कि अब यहाँ न रहूँगी। भाई साहब का पता चला है कि बनारस मे ही है। उन्होंने बैरिस्टरी आरम्भ कर दी है। हाँ, कोठी पर वह नही रहते, अपने लिए कही बँगला ले लिया है।

वह और कुछ कहना चाहती थी कि बीच ही मे किसी ने पुकारा—बीबी-रानी!

क्या है?—माधुरी ने पूछा।

माँ जी आ रही हैं।

आती तो रही, उन्हे उठकर आने की जल्दी क्या पडी थी?

श्यामदुलारी भीतर आ गयी। उस वृद्धा स्त्री का मुख गम्भीर और दृढता से पूर्ण था। शैला का नमस्कार ग्रहण करते हुए एक कुर्सी पर बैठ कर उन्होने कहा—मिस शैला! आप अच्छी हैं? बहुत दिनों पर हम लोगो की सुध हुई।

माँ जी! क्या करूँ, आप ही का काम करती हूँ। जिस दिन से यह सब काम सिर पर आ गया, एक घड़ी की छुट्टी नही। आज भी यदि एक घटना न हो जाती तो यहाँ आती या नही, इसमे सन्देह है। आपके गाँव भर मे रात को पाला पडा। किसानो का सर्वनाश हो गया है। कई दवाएँ भी नही हैं। तहसीलदार के पास लिख भेजा था। वे आयी कि नही और...

शैला और भी जाने क्या-क्या कह जाती, क्योकि उसका मन चचल हो गया था। इस गृहस्थी की विश्रृंखलता के लिए वह अपने को अपराधी समझ रही थी। उसकी बाते उखडी-उखडी हो रही थी। किन्तु श्यामदुलारी ने बीच ही मे रोक-कर कहा—पाला-पत्थर पडने मे जमीदार क्या कर सकता है। जिस काम मे भगवान का हाथ है, उसमे मनुष्य क्या कर सकता है। मिस शैला, मेरी सारी आशाओं पर भी तो पाला पड गया। दोनों लडके बेकहे हो रहे हैं। हम लोग स्त्री हैं। अबला हैं। आज वह जीते होते तो दो-दो थप्पड लगाकर सीधा कर देते। पर हम लोगो के पास कोई अधिकार नही। ससार तो रुपये-पैसे के अधि-कार को मानता है। स्त्रियो के स्नेह का अधिकार, रोने-दुलारने का अधिकार, तो मान लेने की वस्तु है न?

अपनी विवशता और क्रोध से श्यामदुलारी की आँखो से आँसू निकल आये।

शैला सन्न हो गयी। उस भी रह-रह कर इन्द्रदेव पर क्रोध आता था। पुरुषों के प्रति स्त्रियों का हृदय प्राय विषम और प्रतिकूल रहता है। जब लोग कहते हैं कि व एक आँख से रोती हैं तो दूसरी स हँसती हैं, तब कोई भूल नही करते। हाँ, यह बात दूसरी है कि पुरुषो के इस विचार म व्यगपूर्ण दृष्टिकोण का अन्त है।

स्त्रियो को उनकी आर्थिक पराधीनता क कारण जब हम स्नेह करने के लिए बाध्य करते हैं, तब उनके मन मे विद्रोह की सृष्टि भी स्वाभाविक है। आज प्रत्येक कुटुम्ब उनके इस स्नेह और विद्रोह क द्वन्द्व से जर्जर है और असगठित है। हमारा सम्मिलित कुटुम्ब उनकी इस आर्थिक पराधीनता की अनिवाय असफलता है। उन्हें चिरकाल स वचित एक कुटुम्ब के आर्थिक सगठन को ध्वस्त करने के लिए दिन-रात चुनौती मिलती रहती है। जिस कुल से व आती हैं, उस पर से ममता हटती नही, यहाँ भी अधिकार की कोई सम्भावना न दखकर, व सदा घूमने वाली गृहहीन अपराधी जाति की तरह प्रत्येक कौटुम्बिक शासन को अव्यवस्थित करन म लग जाती है। यह किसका अपराध है? प्राचीन-काल म स्त्री-धन की कल्पना हुई थी। किन्तु आज उसकी जैसी दुर्दशा है, जितने काड उसक लिए खडे होते हैं, वे किसी स छिपे नही।

श्यामदुलारी का मन आज सम्पूर्ण विद्रोही हो गया था। लडके और दामाद की उच्छृङ्खलता ने उन्ह अपने अधिकार का सजीव करन के लिए उत्तेजना दी। उन्होंने कहा—मिस शैला! मैंन निश्चय कर लिया है कि अब किसी को मनाने न जाऊँगी। हाँ, मेरी बेटी का दु ख स भरा भविष्य है और उसके लिए मुझे कोई उपाय करना ही होगा। वह इस तरह न रह सकेगी। मैंने अपने नाम की जमीदारी माधुरी को देने का निश्चय कर लिया है। तुम क्या कहती हो? हम लोग तुम्हारी सम्मति चाहती है।

माँ जी, आपने ठीक सोचा है। बीबी-रानी को और दूसरा क्या सहारा है। मैं समझती हूँ कि इसम इन्द्रदेव स पूछने की आवश्यकता नही, क्योंकि उनके लिए कोई कमी नही। वह स्वय भी कमा सकते हैं और सम्पत्ति भी है ही।

माधुरी अवाक् होकर शैला का मुँह देखने लगी। आज स्त्रियाँ सब एक ओर थी। पुरुषो की दुष्टता का प्रतिकार करने म सब सहमत थी। श्यामदुलारी न शैला का अनुकूल मत जानकर कहा—तो हम लोग आज ही बनारस जायँगी। वहाँ पहले मैं दान-पत्र की रजिस्ट्री कराऊँगी। तुम भी चलोगी?

बिना कुछ सोचे हुए शैला ने कहा—चलूँगी।

तो फिर तैयार हो जाओ। नहीं, दो घंटे में उधर ही नील-कोठी पर आकर तुम्हें लेती चलूँगी।

बहुत अच्छा —कहकर शैला उठ खड़ी हुई। वह सीधे बनजरिया की ओर चल पड़ी। मधुबन से कह चुकी थी, तितली उसकी प्रतीक्षा में बैठी होगी।

शैला कुछ प्रसन्न-सी थी। उसने अज्ञात भाव से इन्द्रदेव को जो थोड़ा-सा दूर हटाकर श्यामदुलारी और माधुरी को अपने हाथों में पा लिया था, वह एक लाभ-सा उसे उत्साहित कर रहा था। परन्तु बीच-बीच में वह अपने हृदय में तर्क भी करती थी—इन्द्रदेव को मैं एक बार ही भूल सकूँगी? अभी-अभी तो मैंने सोचा था कि चलकर इन्द्रदेव से क्षमा माँग लूँगी, मना लाऊँगी, फिर यह मेरा भाव कैसा?

उसे खेद हुआ। और फिर अपनी भूल सुधारते हुए उसने निश्चय किया कि बुरा काम करके भी अच्छा हो सकता है। मैं इसी प्रश्न को लेकर इन्द्रदेव से अच्छी तरह बातें कर सकूँगी और अपनी सफाई भी दे लूँगी।

वह अपनी धुन में बनजरिया तक पहुँच भी गई, पर उसे मानो ज्ञान नहीं। जब तितली ने पुकारा—वाह बहन! मैं कब से बैठी हूँ, इस तरह के आने के लिए कह कर भी कोई भूल जाता है—तो वह आपे में आ गई।

मुझे झटपट कुछ खिला दो। अभी-अभी मुझे शहर जाना है।

वाह रे चटपट! बैठो भी, अभी हरे चने बनाती हूँ, तब खाना होगा। ठंडा हो जाने से वह अच्छा नहीं लगता। हम लोगों का ऐसा-वैसा भोजन, रूखा-सूखा गरम-गरम ही तो खा सकोगी। चावल और रोटियाँ भी तैयार हैं! अभी बन जाता है।

तितली उसे बैठाती हुई, रसोई-घर में चली गई। हरे चनों की छनछनाहट अभी बनजरिया में गूँज रही थी कि मधुबन एक कोमल लौकी लिए हुए आया। वह उसे बैठकर छीलने-बनाने लगा।

शैला इस छोटी-सी गृहस्थी में दो प्राणियों को मिलाकर उसकी कमी पूरी करते देखकर चकित हो रही थी। अभी छावनी की दशा देखकर आई थी। वहाँ सब कुछ था, पर सहयोग नहीं। यहाँ कुछ न था, परन्तु पूरा सहयोग उस अभाव से मधुर युद्ध करने के लिए प्रस्तुत। शैला ने छेड़ने के लिए कहा—तितली! मुझे भूख लगी है। तुम अपने पकवान रहने दो, जो बना हो, मुझे लाकर खिला दो।

आई, आई, लो, मेरा हाथ जलने से बचा।

मधुबन ने कहा—तो ले आओ न!

वह भी हँस रहा था।

पहले केले का पत्ता ले आओ। फिर जल्दी करना।

मधुबन केले का पत्ता लेने के लिए बनजरिया की झुरमुट म चला। शैला हँस रही थी। उसके सामन हरे-हरे दोनो म देहाती दही म भीगे हुए बडे और आलू-मटर की तरकारी रख दी गई। पत्ते लेकर मधुबन के आते ही चावल, रोटी दाल, हरे चने और लौकी भी सामने आ गई।

शैला खाती भी थी, हँसती भी थी। उसके मन म सन्तोष-ही-सन्तोष था। उसके आस-पास एक प्रसन्न वातावरण फैल रहा था, जैसे विरोध का कही नाम नही। इन्द्रदेव! उस रूठे हुए मन को मना लाने के लिए तो वह जा ही रही थी।

भोजन कर लेने पर शैला ने हाथ पोछते हुए मधुबन से कहा—नील कोठी की रखवाली तुम्हारे ऊपर। मैं दो चार दिन भी वहा ठहर सकती हूँ। सावधान रहना। किसी से लडाई-झगडा मत कर बैठना।

वाह! मैं सबसे लडाई ही तो करता फिरता हूँ!

दूर न जाकर घर मे तितली ही से, क्या बहन! —शैला ने हँस कर कहा।

तितली लज्जा से मुस्कराती हुई बोली—मैं क्या कलकत्ते की पहलवान हूँ बहन!

मधुबन उत्तर न दे सकने से खीझ रहा था। पर वह खीझ वडी सुहावनी थी सहसा उसे एक बात का स्मरण हुआ। उसने कहा—हाँ, एक वात तो कहना मैं भूल ही गया था। मलिया को लेकर वह तहसीलदार बहुत धमका गया है। मेरे सामने फिर आवेगा तो मैं उसके दो-चार बचे हुए दात भी झाड दूगा। वह बेचारी क्या इस गाँव मे रहने भी न पावेगी। और तो किसी से बोलने के लिए मैं शपथ खा सकता हूँ।

मधुबन! सहनशील होना अच्छी वात है। परन्तु अन्याय का विरोध करना उससे भी उत्तम है। तुम कोई उपद्रव न करोगे, इसका तो मुझे विश्वास है। अच्छा तो चलो मेरे साथ, और बहन तितली! तो मैं जाती हूँ।

तितली ने नमस्कार किया। दोनो चले। अभी बनजरिया से कुछ ही दूर पहुंचे होंगे कि मलिया उधर से आती हुई दिखाई पडी। उसकी दयनीय और भयभीत मुखाकृति देखकर शैला को रुक जाना पडा। शैला ने उसे पास बुलाकर कहा—मलिया, तू तितली के पास निर्भय होकर रह, किसी बात की चिन्ता मत कर।

मलिया की आँखो मे कृतज्ञता के आंसू भर आय। नील काठी पर पहुँचकर दो-चार आवश्यक वस्तुएँ अपने बेग म रखकर शैला तैयार हो गई। मधुवन को आवश्यक काम समझाकर वह झील की ओर पत्थर पर बैठी हुई, सडक पर माटर आने की प्रतीक्षा करने लगी। मधुवन का भूख लगी थी। उसने जान के लिए पूछा। तितली भी अभी बैठी होगी—यह जानकर शैला का अपनी भूल मालूम हुई। उसने कहा—जाओ, तितली मुझे कोसती होगी।

मधुवन चला गया। तितली की बाते सोचते-सोचते उसकी छाटी-सी मुख से भरी गृहस्थी पर विचार करते-करते, शैला के एकान्त मन म नई गुदगुदी होने लगी। वह अपनी बडी-सी नील काठी को व्यर्थ की विडम्बना समझकर, उसम नया प्राण ले आने की मन-ही-मन स्त्री-हृदय के अनुकूल मधुर कल्पना करन लगी।

आज उसे अपनी भूल पग-पग पर मालूम हो रही थी। उसन उत्साह स कहा—अब विलम्ब नही।

दूर से धूल उडाती हुई मोटर आ रही थी। ड्राइवर क पास एक पाण्डेजी बन्दूक लिये बैठे थे। पीछे श्यामदुलारी और माधुरी थी।

टीले के नीचे मोटर रुकी। चमडे का छोटा-सा बेग हाथ मे लिये फुरती से शला उतरी। वह जाकर माधुरी से सटकर बैठ गई।

माधुरी ने पूछा—और कुछ सामान नही है क्या ?

नही तो।

तो फिर चलना चाहिए।

शैला ने कुछ सोचकर कहा—आपने तहसीलदार को साथ म नही लिया। बिना उसके वह काम, जो आप करना चाहती हैं, हो सकेगा ?

क्षण-भर क लिये सन्नाटा रहा। माधुरी कुछ कहना नही चाहती थी। श्यामदुलारी ने ही कहा—हाँ, यह बात ता मैं भी भूल गई। उसको रहना चाहिए।

तो आप एक चिट लिख दे। मैं यही नील-काठी के चपरासी के पास छाड आती हूँ। वह जाकर दे देगा। कल तहसीलदार बनारस पहुँचेगा।

श्यामदुलारी ने माधुरी को नोट-बुक से पन्ना फाडकर उस पर कुछ लिखकर दे दिया। शैला उसे लेकर ऊपर चली गई।

श्यामदुलारी न माधुरी को देखकर कहा—हम लोग जितनी बुरी शैला को समझती थी उतनी तो नही है, बडी अच्छी लडकी है।

माधुरी चुप थी। वह अब भी शैला को अच्छा स्वीकार करने मे हिचकती थी।

शैला ऊपर से आ गई। उसके बैठ जाने पर हार्न देती हुई माटर चल पडी।

३

धामपुर मे फिर सन्नाटा हो गया। जमीदार की छावनी सूनी थी। बन-जरिया मे बाबाजी नहीं। नील-कोठी पर शैला की छाया नही। उधर शेरकोट के खँडहर में राजकुमारी अपने दुर्बल अभिमान में ऐंठी जा रही थी। उसका हृदय काल्पनिक सुखों का स्वप्न देखकर चचल हो गया था। सुखदेव चौबे ने अकाल-जलद की तरह उसके सयम के दिन को मलिन कर दिया था। वह अब ढलते हुए यौवन को रोक रखने की चेष्टा में व्यस्त रहती है।

उसकी झोपडी मे प्रसाधन की सामग्री भी दिखाई पडने लगी। कही छोटा-सा दर्पण, तो कहीं तेल की शीशी। वह धीरे-धीरे चिकने पथ पर फिसल रही थी। और लोग क्या कहेंगे, इस पर उसका ध्यान बहुत कम जाता। कभी-कभी अपनी मर्यादा के खोये हुए गौरव की क्षीण प्रतिध्वनि उसे सुनाई पडती, पर वह प्रत्यक्ष सुख की आशा को—जिसे जीवन मे कभी प्राप्त न कर सकी थी—छोडने मे असमर्थ थी।

मधुवन भी तो अब वहाँ नही आता। उस दिन ब्याह म राजकुमारी का वह विरोध उसे बहुत ही खला। उसे धीरे-धीरे राजकुमारी के चरित्र मे सन्देह भी हो चला था। किन्तु उसकी वही दशा थी, जैसे कोई मनुष्य भय से आँख मूंद लेता है। वह नही चाहता था कि अपने सन्देह की परीक्षा करके कठोर सत्य का नग्न रूप देखे।

मधुवन को नील-कोठी का काम करना पडता। वहाँ से उसको कुछ रुपये मिलते थे। इसी बहाने को वह सब लोगो से कह देता कि उसे शेरकोट आने-जाने मे नौकरी के लिए असुविधा थी। इसीलिए बनजरिया मे रोटी खाता था। राजकुमारी की खीझ और भी बढ़ गई थी। यो तो मधुवन पहले ही कुछ नही देता था। राजकुमारी अपने बुद्धि-बल और प्रबन्ध-कुशलता से किसी-न-किसी तरह रोटी बनाकर खा-खिला लेती थी। पर जब मधुवन को कुछ मिलने लगा, तब उसमें से कुछ मिलने की आशा करना उसके लिए स्वाभाविक था। किन्तु वह नही चाहती थी कि वास्तव म उसे मधुवन कुछ दिया करे। हाँ, वह तो यह

भी चाहती थी, मधुवन इसके लिए फिर शेरकोट म न आने लगे, और इससे नवजात विरोध का पौधा और भी बढेगा। विरोध उसका अभीष्ट था।

सन्ध्या होने मे भी विलम्ब था। राजकुमारी अपने बालो मे कघी कर चुकी थी। उसने दर्पण उठाकर अपना मुँह देखा। एक छोटी-सी बिन्दी लगान क लिए उसका मन ललचा उठा। रोली, कुकुम, सिन्दूर वह नही लगा सकती, तब ? उसने नियम और धर्म की रूढि बचाकर काम निकाल लेना चाहा। कत्थे और चुने को मिलाकर उसने बिन्दी लगा ली। फिर से दर्पण देखा। वह अपने ऊपर रीझ रही थी। हाँ, उसम वह शक्ति आ गई थी कि पुरुप एक बार उसकी ओर देखता। फिर चाहे नाक चढाकर मुँह फिरा लेता। यह तो उसकी विशेप मनोवृत्ति है। पुरुप, समाज मे वही नही चाहता, जिसके लिए उसी का मन छिपे-छिपे प्राय विद्रोह करता रहता है। वह चाहता है, स्त्रियाँ सुन्दर हो, अपन का सजाकर निकले और हम लोग देखकर उनकी आलोचना कर। वेश-भूपा के नये-नये ढग निकालता है। फिर उनके लिए नियम बनाता है। पर जो सुन्दर हान की चेप्टा करती हो, उसे अपना अधिकार प्रमाणित करना होगा।

राजो ने यह अधिकार खो दिया था। वह बिन्दी लगाकर पडित दीनानाथ की लडकी क ब्याह मे नही जा सकती थी। दु ख से उसने बिन्दी मिटाकर चादर ओढ ली। बुधिया, सुखिया और कल्लो उसके लिए कब स खडी थी। राजकुमारी को देखकर वह सब-की-सब हँस पडी।

क्या है रे ?—अपन रूप की अभ्यर्थना समझते हुए भी राजकुमारी ने उनकी हँसी का अर्थ समझना चाहा। अपनी किसी भी वस्तु की प्रशसा कराने की साध बडी मीठी होती है न ? चाहे उसका मूल्य कुछ हो। बुधिया ने कहा—चलो मालकिन ! बारात आ गई होगी !

जैसे तेरा ही कन्यादान होने वाला है। इतनी जल्दी !—कहकर राजकुमारी घर म ताला लगाकर निकल गई। कुछ ही दूर चलते-चलते और भी कितनी ही स्त्रियाँ इन लोगो के झुड म मिल गईं। अब यह ग्रामीण स्त्रियो का दल हँसते-खलते परस्पर परिहास मे विस्मृत, दीनानाथ के घर की ओर चला।

अन्नो को पका देने वाला पश्चिमी पवन सर्राटे से चल रहा था। जौ-गेहूँ के कुछ-कुछ पीले बाल उसकी झाक म लोट-पोट हो रहे थे। वह फागुन की हवा मन म नई उमग बढाने वाली थी, सुख-स्पर्श थी। कुतूहल से भरी ग्राम-बधूएँ, एक-दूसरे की आलोचना म हँसी करती हुई, अपने रग-बिरगे वस्त्रा म ठीक-ठीक शस्य-श्यामल खतो की तरह तरगायित और चचल हो रही थी। वह जगली पवन वस्त्रा से उलझता था। युवतियाँ उन्ह समेटती हुई, अनक प्रकार स अपने

अगों को मरोर लेती थी। गाँव की सीमा म निर्जनता थी। उन्हे मनमानी बात-चीत करने के लिए स्वतत्रता थी। पीली-पीली धूप, तीसी और सरसा के फूलों पर पड रही थी। वसन्त की व्यापक कला से प्रकृति सजीव हो उठी थी। सिचाई से मिट्टी की सोधी महँक, वनस्पतियो की हरियाली की और फूलो की गन्ध उस वातावरण मे उत्तेजना-भरी मादकता ढाल रही थी।

राजकुमारी इस टोली की प्रमुख थी। वह पहले ही पहल इस तरह ब्याह के निमन्त्रण मे चली थी! सयम का जीवन जैसे कारागार के बाहर आकर संसार की वास्तविक विचित्रता से और अनुभूति से परिचित हो रहा था।

राजकुमारी को दूर से दीनानाथ के घर की भीड-भाड दिखाई पडी। उसकी सगिनियो का दल भी कम न था। उसने देखा कि राग-विरागपूर्ण जन-कोलाहल मे दिन और रात की सन्धि, अपना दु ख-सुख मिलाकर एक तृप्ति-भरी उलझन से ससार को आन्दोलित कर रही है। राजकुमारी का मन उसी मे मिल जाने के लिए व्यग्र हो उठा।

जब वह पडितजी के घर पर पहुँची ता बारात की अगवानी मे गीत गाने वाली कुल-कामिनियो के झुण्ड ने अपनी प्रसन्न चेष्टा, चपल सकेतो और खिल-खिलाहट-भरी हँसी से उसका स्वागत किया। राजकुमारी ने देखा कि जीवन का सत्य है, प्रसन्नता। वह प्रसन्नता और आनन्द की लहरो मे निमग्न हो गई।

तहसीलदार बारात का प्रबन्ध कर रहे थे। इसलिए गोधूली म जब बारात पहुँची तो वही सबके आगे था। इधर दीनानाथ के पक्ष से चौबे अगवानी कर रहे थे। द्वारपूजा होकर बारात वापस जनवासे मे लौट गई। वहाँ मैना का नाच होने लगा।

इधर पडितजी के घर पर स्त्रिया का कोलाहल शान्त हो रहा था। बहुत-सी तो लौटने लगी थी। पर राजकुमारी का दल अभी जमा था। गाना-बजाना चल रहा था। लग्न समीप था, इसलिए ब्याह देखकर हो इन लोगो की जाने की इच्छा थी।

तितली, जो भीड मे दूसरी ओर बैठी थी, उठकर आगन की ओर आई। वह जाने के लिए छुट्टी माँग चुकी थी। छपे हुए किनारे की सादी खादी की धोती। हाथो मे दो चूडियाँ और मुनहले कडे। माथे मे सौभाग्य सिन्दूर। चादर की आवश्यकता नही। अपनी सलज्ज गरिमा को ओढे हुए, वह उन स्त्रियो की रानी-सी दिखलाई पडती थी।

पडित की बडी लडकी जमुना शहर म ब्याही थी। उसने तितली का जाते

देखा। देहात म यह ढग ! वह चकित हो रही थी। मित्रता के लिए चचल हो कर वह सामने आकर खडी हो गई।

वाह बहन ! तुम चली जाती हो। यह नही होगा। अभी नही जाने दूँगी। चलो, बैठो। ब्याह देखकर जाना।

वह गाने वाले झुण्ड की ओर पकडकर उस ले चली। राजकुमारी ने तितली को देखा और तितली ने राजकुमारी को। तितली उसके पास पहुँची। आँचल का कोना दोनो हाथो म पकडकर गाँव की चाल से वह पैर छूने लगी। राजकुमारी अपने रोष की ज्वाला मे धधकती हुई मुँह फेर कर बैठ गई।

जमुना को राजा के इस व्यवहार पर क्रोध आ गया। वह तो तितली की मित्र थी। फिर दबने वाली भी नही। उसने कहा—बेचारी तो पैर छू रही है और तुम अपना मुँह घुमा लेती हो, यह क्या है। तुम तो तितली की ननद हो न!

मै कौन हूँ ? यह सिर चढी तो स्वय ही दूल्हा खोज कर आई है। भला इस दिखावट की आवभगत स क्या काम ?

राजकुमारी का स्वर बडा तीव्र और रूखा था।

अब तो आ गई हूँ जीजी—तितली ने हँसकर कहा।

कुछ युवतियो ने उसकी बात पर हँस दिया। परन्तु एक दल ऐसा भी था, जो तितली से उग्र प्रतिवाद की आशा रखता था। गाना-बजाना बन्द हो गया। तितली और राजकुमारी का द्वन्द्व देखने का लोभ सब को उसी ओर आकर्षित किये था।

एक ने कहा—सच तो कहती है, अब तो वह तुम्हारे घर आ गई है। तुमको अब वह सब बाते भुला देनी चाहिए।

मैं कर क्या रही हूँ। मैं तो कुछ बोलती भी नहीं। तुम लोग झूठ ही मेरा सिर खा रही हो। क्या मैं चली जाऊँ ?—कहती हुई राजकुमारी उठ खडी हुई। जमुना ने उसका हाथ पकड कर बिठलाया, और तितली भौचक-सी अपने अपराध को खोजने लगी। उसने फिर साहस एकत्र किया और पूछा—जीजी, मेरा अपराध क्षमा न करोगी ?

मैं कौन होती हूँ क्षमा करनेवाली ? तुमको हाथ जोडती हूँ, तुम्हारे पैरो पड़ती हूँ, तुम राजरानी हो, हम लोगो पर दया रखो।

राजकुमारी और कुछ कहना ही चाहती थी कि किसी प्रौढ़ा ने हँसकर कहा— बेचारी के भाई का जादू-विद्या से इस कल की छोकरी ने अपने वश म कर लिया है। उसे दुख न हो ?

राजकुमारी ने देखा कि वह बनाई जा रही है, फिर भी तितली की ही विजय रही। वह जल उठी। चुप होकर धीरे से खिसक जाने का अवसर देखने लगी। पडित दीनानाथ कुछ क्रोध से भरे हुए घर म आये और अपनी स्त्री से कहने लगे—मैं मना करता था कि इन शहरवालो के यहाँ एक ब्याह करके देख चुकी हो, अब यह ब्याह किसी देहात म ही करूँगा। पर तुम मानो तब तो। माँग पर-माँग आ रही है। अनार-शरबत चाहिए। ले आओ, है घर म ? इस जाडे म भी यह ढकोसला ! मालूम होता है, जेठ-वैसाख की गरमी से तप रहे है।

जमुना की माँ धीरे स उठकर अपनी कोठरी म गई और बोतल लिये हुए बाहर आई। उसने कहा—फिर समधी हैं, अनार-शरबत ही तो मागते है। कुछ तुमसे शराब तो मागते नही। घबडाने की क्या बात है ? सुखदेव चौबे से कह दो, जाकर दे आव और समझा दे कि हम लोग देहाती हैं, पडित जी को साग सत्तू ही दे सकते है, ऐसी वस्तु न माँगे जो यहा न मिल सकती हो।

जमुना की मा की एक बहन बडी हँसोड थी। उसने देखा कि अच्छा अवसर है। वह चिल्ला उठी—छिपकली।

पडित जी—कहा—कहत हुए उछल पडे। सब स्त्रियाँ हँस पडी। जमुना की माँ न कहा—छिपकली के नाम पर उछलते हो, यह सुनकर समधी तो तुम्हारे ऊपर सैकडो छिपकलियाँ उछाल देंगे।

पडित जी ने कहा—तुम नही जानती हो, इसके गिरने स शुभ और अशुभ देखा जाता है। यह है बडी भयानक वस्तु। इसका नाम है 'विपतूलिका। सामने गिर पडे तो भी दु ख देती है।

पडित जी जब 'विपतूलिका का उच्चारण अपने ओठो को बना कर बडी गभीरता स कर रह थ और सब स्त्रियाँ हँस रही थी, तब राजकुमारी ने तितली की ओर देखकर मन-ही मन घृणा स कहा—विपतूलिका। उस समय उसकी मुखाकृति बडी डरावनी हो गई थी। परन्तु सुखदेव चौबे को सामने देखते ही उसका हृदय लहलहा गया। रधिया का न जाने क्या सूझा, ढोल बजाती हुई सुखदेव के नाम के साथ कुछ जोडकर गाने लगी। सब उस परिहास म सहयोग करने लगी। तितली उठकर मर्माहत-सी जमुना के पास चली गई।

रात हो गई थी। राजकुमारी भी छुट्टी माँगकर अपनी बुधिया, कल्लो को लेकर चली। राह मे ही जनवासा पडता था। रावटियो के बाहर बडे-से-बडे चँदोवे के नीचे मैना गा रही थी—

राजकुमारी कुछ काल के लिए रुक गई। बुधिया ने कहा—चलो, न मालकिन ! दूर से खडी होकर हम लोग भी नाच देख ले।

नही रे ! कोई देख लेगा।

कौन देखता है, उधर अँधेरे म बहुत-सी स्त्रियाँ है। वही पीछे हम लोग भी घूँघट खींचकर खडी हो जायँगी। कौन पहचानेगा ?

राजकुमारी के मन की बात थी। वह मान गई। वह भी जाकर आम के वृक्ष की घनी छाया मे छिपकर खडी हो गई। बुधिया और कल्लो तो ढीठ थी, आगे बढ गईं। उधर गाँव की बहुत-सी स्त्रियाँ और लडके बैठे थे। वे सब जाकर उन्ही मे मिल गईं। पर राजकुमारी को साहस न हुआ। आम की मजरी की मीठी मतवाली महँक उसके मस्तिष्क को बेचैन करने लगी।

मैना उन्मत्त होकर पञ्चम स्वर मे गा रही थी। उसका नृत्य अद्भुत था। सब लोग चित्रलिखे-से देख रहे थे। कही कोई भी दूसरा शब्द नही सुनाई पडता था। उसके मधुर नूपुर की झनकार उस वसन्त की रात को गूँजा रही थी।

राजकुमारी ने विह्वल होकर कहा—बालेपन से, साथ ही एक दबी सास उसके मुँह से निकल गई। वह अपनी विकलता से चचल होकर जल्दी से अपनी कोठरी म पहुँचकर किवाड बन्द कर लेने के लिए घबडा उठी। पर जाय तो कैसे। बुधिया और कल्लो तो भीड मे थी। वहाँ जाकर उन्हे बुलाना उसे जँचता न था। उसने मन-ही-मन सोचा—कौन दूर शेरकोट है। मैं क्या अकेली नही जा सकती। कब तक यही खडी रहूँगी ?—वह लौट पडी।

अन्धकार का आश्रय लेकर वह शेरकोट की ओर बढने लगी। उधर स एक बाहा पडता था। उसे लाँघने के लिए वह क्षण भर के लिए रुकी थी कि पीछे से किसी ने कहा—कौन है ?

भय से राजकुमारी के रोएँ खडे हो गये। परन्तु अपनी स्वाभाविक तेजस्विता एकत्र करके वह लौट पडी। उसने देखा, और कोई नहीं, यह तो सुखदेव चौबे है।

गाव की सीमा मे खलिहानो पर से किसानो के गीत सुनाई पड रहे थे। रसीली चाँदनी की आर्द्रता से मथर पवन अपनी लहरो से राजकुमारी के शरीर मे रोमाञ्च उत्पन्न करने लगा था। सुखदेव ज्ञानविहीन मूक पशु की तरह, उस आम की अँधेरी छाया मे राजकुमारी के परवश शरीर के आलिगन के लिए, चचल हो रहा था। राजकुमारी की गई हुई चेतना लौट आई। अपनी असहायता मे उसका नारीत्व जगकर गरज उठा। अपने को उसने छुडाते हुए कहा—सुख-

देव ! मुझे सब तरह से मत लूटो। मेरा मानसिक पतन हो चुका है। मैं किसी ओर की न रही, तो तुम्हारी भी न हो सकूँगी। मुझे घर पहुँचा दो।

मुखदेव अनुनय करने लगा। रात और भी भीगने लगी। ज्तो-ज्यो विलम्ब हो रहा था, राजकुमारी का मन खीझने लगा। उसने डाँटकर कहा—चलो घर पर, मैं यहाँ नही खड़ी रह सकती।

विवश हो कर दोनो ही शेरकोट की ओर चले।

उधर बारात मे नाच-गाना, खाना-पीना चल रहा था। सब लोग जब आनन्द-विनोद मे मस्त हो रहे थे, तब एक भयानक दुर्घटना हुई। एक हाथी, जो मस्त हो रहा था, अपने पीलवान को पटककर चिघाडने लगा। उधर साटे-बरदार, बरछी वाले दौडे, पर चँदोवे के नीचे तो भगदड मच गई। हाथी सच-मुच उधर ही आ रहा था। मधुवन भी इसी गडवडी मे अभी खड़ा होकर कुछ सोच ही रहा था, कि उसने देखा, मैना अकेली किंकर्त्तव्यविमूढ-सी हाथी के सूँड़ की पहुँच ही के भीतर खडी थी। बिजली की तरह मधुवन झपटा। मैना को गोद मे उठाकर दैत्य की तरह सरपट भागने लगा। मैना वेसुध थी।

उपद्रव की सीमा से दूर निकल आने पर मधुबन को भी चैतन्य हुआ। उसने देखा, सामने शेरकोट है। आज कितने दिनो पर वह अपने घर की ओर आया था। अब उसे अपनी विचित्र परिस्थिति का ज्ञान हुआ। वह मैना को बचा ले आया, पर इस रात मे उसे रखे कहाँ। उसने मन को समझाते हुए कहा—मै अपना कर्त्तव्य कर रहा हूँ। इस समय राजो को बुलाकर इस मूर्च्छित स्त्री को उसका रक्षा मे छोड़ दूं। फिर सवेरे देखा जायगा।

मैना मूर्च्छित थी। उसे लिए हुए धीरे-धीरे वह शेरकोट के खँडहर मे घुसा। अभी वह किवाड के पास नही पहुँचा था कि उसे सुखदेव का स्वर सुनाई पडा—खोल दो राजो ! मैं दो बात करके चला जाऊँगा। तुमको मेरी सौगन्ध।

मधुवन के चारो ओर चिनगारियाँ नाचने लगी। उसने मैना को धीरे से दालान की टूटी चौकी पर सुलाकर सुखदेव को ललकारा—क्यों चौबे की दुम। यह क्या ?

सुखदेव ने घूमकर कहा—मधुबन ! बे, ते मत करो !

साथ ही मधुबन के बलवान हाथ का भरपूर थप्पड मुँह पर पड़ा—नीच कही का। रात को दूसरो के घर की कुडिया खटखटाता है और धन्नासेठी भी बघारता है। पाजी !

अभी सुखदेव सम्हल भी नही पाया था कि दनादन लात-घूँसे पडने लगे। सुखदेव चिल्लाने लगा। मैना सचेत होकर यह व्यापार देखने लगी। उधर से

राजा भी किवाड खोलकर बाहर निकल आई। मधुवन का हाथ पकड कर मैना ने कहा—बस करो मधुवन बाबू !

राजो तो सन थी। सुखदेव ने साँस ली। उसकी अकड के बन्धन टूट चुके थे।

मैना ने कहा—हम लोग यही रात बिता लेंगे। अभी न जाने हाथी पकडा गया कि नहीं। उधर जाना तो प्राण देना है।

सुखदेव चतुरता से चूकने वाला न था। उसने उखडे हुए शब्दों में अपनी सफाई देते हुए कहा—मैं क्या जानता था कि हाथी से प्राण बचाने जाकर बाघ के मुँह मे चला गया हूँ।

मैना को हँसी आ गई। पर मधुबन का क्रोध शान्त नहीं हुआ था। वह राजकुमारी की ओर उस अन्धकार में घूरने लगा था। राजो का चुप रहना उस अपराध मे प्रमाण बन गया था। परन्तु मधुबन उस अधिक खोलने के लिए प्रस्तुत न था।

मैना एक वेश्या थी। उसके सामने कुलीनता का आडम्बर रखने वाले घर का यह भंडाफोड। मधुबन चुप था। राजकुमारी ने कहा—अच्छा, भीतर चलो। जो किया सो अच्छा किया। यह कौन है ?

अब मधुबन का जैसे थप्पड लगा।

मैना का प्राण बचाकर उसने अच्छा ही किया था। पर थी तो वह वेश्या ! उतनी रात को उसे उठाकर ले भागना, फिर उसे अपने घर ले आना ! गाँव-भर में लोग क्या कहेंगे ! और सब तो जो होगा, देखा जायगा, इस समय राजकुमारी को क्या उत्तर दे। उसका सकोच उसके साहस को चबाने लगा।

मधुबन की परिस्थिति मैना समझ गई। उसने कहा—मैं यहाँ नाचने आई हूँ। हाथी बिगडकर मुझी पर दौडा। यदि मधुवन बाबू वहाँ न आ जाते तो मैं मर चुकी थी। अब रात भर मुझे कही पडे रहने के लिए जगह दीजिए, सवेरे ही चली जाऊँगी।

राजकुमारी का समझौता करना था। दूसरा अवसर होता तो वह कभी न ऐसा करती। उसने कहा—अच्छा आओ मैना—उसके साथ भीतर चलते हुए मधुबन का हाथ पकडकर मैना बोली—सुखदेव को वहीं पडा न रहने दीजिए। रात है, अभी न जाने हाथी कुचल दे तो बेचारे की जान चली जायगी।

मधुबन कुछ न बोला। वह भीतर चला गया।

सुखदेव सवेरा होने के पहले ही धीरे-धीरे उठकर बनजरिया की ओर चला। उसका मन विषाक्त हो रहा था। वह राजकुमारी पर क्रोध से भुन रहा था।

मधुबन को कभी चबाना चाहता था। परन्तु मधुबन के थप्पड़ों को भूलना सहज बात नही। वह बल से तो कुछ नही कर सकता था, तब कुछ छल से काम लेने की उसे सूझी। अपनी बदनामी भी बचानी थी।

बनजरिया के ऊपर अरुणोदय की लाली अभी नही आई थी। मलिया झाड़ू लगा रही थी। तितली ने जागकर सवेरा किया था। मधुबन की प्रतीक्षा मे उसे नीद नही आई थी। वह अपनी सम्पूर्ण चेतना से उत्सुक-सी टहल रही थी। सामने से चौबेजी आते हुए दिखाई पडे। वह खडी हो गई। चौबे ने पूछा—मधुबन बाबू अभी तो नही आये न ?

नही तो।

रात को उन्होने अद्भुत साहस किया। हाथी बिगड़ा तो इस फुरती स मैना को बचाकर ले भागे कि लोग दग रह गये। दोनो ही का पता नही। लोग खोज रहे हैं। शेरकोट गये होगे।

तितली तो अनमनी हो रही थी। चौबे की उखड़ी हुई गोल-मटोल बाते सुनकर वह और भी उद्विग्न हो गई। उसने चौबे से फिर कुछ न पूछा। चौबेजी अधिक कहने की आवश्यकता न देखकर अपनी राह लगे। तितली को इस सवाद के कलक की कालिमा बिखरती जान पडी। वह सोचने लगी—मैना ! कई बार उसका नाम सुन चुकी हूँ। वही न ! जिसने कलकत्ते वाले पहलवान को पछाडने पर उनको बौर दिया था। तो...उसको लेकर भागे। बुरा क्या किया। मर जाती तो ? अच्छा तो फिर यहाँ नही ले आये ? शेरकोट राजकुमारी के यहाँ ! जो मुझसे उनको छीनने के लिए तैयार ! मुझको फूटी आँखो भी नही देखना चाहती। वही रात बिताने का कारण ?

वह अपने को न सँभाल सकी। रामनाथ की तेजस्विता का पाठ भूली न थी। उसने निश्चय किया कि आज शेरकोट चलूँगी, वह भी तो मेरा ही घर है, अभी चलूँगी। मलिया से कहा—चल तो मेरे साथ।

तितली उसी वेश मे मधुबन की प्रतीक्षा कर रही थी जिसमे दीनानाथ के घर गई थी। वहाँ, आँखे जगने से लाल हो रही थी। दोनों शेरकोट की ओर पग बढाती हुई चली।

ग्लानि और चिन्ता से मधुबन का भी देर तक निद्रा नही आई थी। पिछली रात मे जब वह सोने लगा तो फिर उसकी आँख ही नही खुलती थी। सूर्य की किरणो से चौंककर जब झुंझलाते हुए मधुबन ने आखे खोली ता सामने तितली खडी थी। घूमकर देखता है तो मैना भी बैठी मुस्करा रही है। और राजो वह जैसे लज्जा-सकोच से भरी हुई, परिहास-चचल अधरो मे अपनी वाणी को पी

रही है। तितली को देखते ही उससे न रहा गया। उसका हाथ पकड़कर वह अपनी कोठरी में ले जाते हुए बोली—मैना ! आज मेरे मधुबन की बहू अपनी ससुराल में आई है। तुम्हीं कुछ मंगल गा दो। बेचारी मुझसे रूठकर यहाँ आती ही न थी।

मधुबन अवाक् था। मैना समझ गयी। उसने गाने के लिए मुँह खोला ही था कि मधुबन की तीखी दृष्टि उस पर पड़ी। पर वह कब मानने वाली। उसने कहा—बाबूजी, जाइए, मुँह धो आइए। मैं आपसे डरने वाली नहीं। ऐसी सोन-सी बहू देखकर गाने का मन न करे, वह कोई दूसरी होगी। भला मुझे यह अवसर तो मिला।

मधुबन ने तितली से पूछा भी नहीं कि तुम कैसे यहाँ आई हो। उसने बाहर की राह ली। तितली इस आकस्मिक मेल से चकित-सी हो रही थी। उस दिन राजो के घर धूम-धाम से खाने-पीने का प्रबन्ध हुआ। मधुबन जब खाने बैठा तो मैना गाने लगी। तितली की आँखों में सन्देह की छाया न थी। राजो के मुँह पर स्पष्टता का आलोक था। और मधुबन ! वह कभी शेरकोट को देखता, कभी तितली को।

मैना रामकलेवा के चुने हुए गीत गा रही थी। मलिया अपने विलक्षण स्वर में उसका साथ दे रही थी। मधुबन आज न जाने क्यों बहुत प्रसन्न हो रहा था।

४

जब से श्यामदुलारी शहर चली गई, धामपुर म तहसीलदार का एकाधिपत्य था। धामपुर के कई गाँवो मे पाला ने खेती चौपट कर दी थी। किसान व्याकुल हो उठे थे। तहसीलदार की कडाई और भी बढ़ गई थी। जिस दिन रामजस का भाई पथ्य क अभाव स मर गया और उसकी माँ भी पुत्रशोक म पागल हो रही थी, उसी दिन जमीदार की कुर्की पहुँची। पाला से जो कुछ वचा था, वह जमींदार के पेट म चला गया। खडी फसल कुर्क हो गई। महँगू भी इस ताक मे बैठा ही था। उसका कुछ रुपया बाकी था। आज-कल करते बहुत दिन बीत गये। रामजस क बैलो पर उसकी डीठ लगी थी। रामजस निर्विकार भाव स जैसे प्रतीक्षा कर रहा था कि किसी तरह सब कुछ लेकर ससार मुझे छोड दे और मैं भी माता के मर जान के वाद इस गाँव को छाड दूं। दूसरे ही दिन उसकी माँ भी चल वसी। मधुवन न उसे बहुत समझाया कि ऐसा क्यो करते हो, मम साहब को आन दो, कोई-न-कोई प्रबन्ध हो जायगा, परन्तु उसके मन म उस जीवन से तीव्र उपेक्षा हो गई थी। अब वह गाँव म रहना नही चाहता। मधुवन के यहाँ कितने दिन तक रहेगा। उसे तो कलकत्ता जाने की धुन लगी थी।

उस दिन जब बारात म हाथी विगडा और मैना को लेकर मधुवन भागा ता गाँव-भर म यह चचा हो रही थी कि मधुबन ने बडी वीरता का कार्य किया। परन्तु उसके शत्रु तहसीलदार और चौबेजी ने यह प्रवाद फैलाया कि 'मधुबन बाबा रामनाथ के सुधारक दल का स्तभ है। उसी ने ऐसा कोई काम किया कि हाथी बिगड गया, और यह रग-भग हुआ! क्योकि वे लोग बारात म नाच-रग क विरोधी थे।'

महँगू के अलाव पर गाँव भर की आलोचना होती थी। रामजस का वेकारी म दूसरी जगह बैठन की कहाँ थी। महँगू ने खाँसकर कहा—मधुवन बाबू को ऐसा नही करना चाहता था। भला ब्याह-बारात मे किसी मगल काम मे, ऐसा गडवड करा देना चाहिए।

झूठे है, जा लोग ऐसी बात कहते हैं महतो !—रामजस न उत्तेजित होकर कहा।

और यह भी झूठ है कि रात भर मैना को अपने घर ले जाकर रखा। भाई, अभी लड़के हो, तुम भी ता उसी दल के हो न ! देह म जब बल उमगता है तब सब लोग ऐसा कर बैठते है। फिर भी लोक-लाज तो कोई चीज है। मधुबन अभी और क्या-क्या करते है, देखना, मेरा भी नाम महँगू है।

तुम बूढे हो गये, पर समझ स तो कोसों दूर भागते हो। मधुबन क ऐसा काई हो भी। देखो तो वह लड़को को पढाता है, नौकरी करता है, खेती-बारी सम्भालता है, अपने अकेले दम पर कितने काम करता है। उसने मैना का प्राण बचा दिया ता यह भी पाप किया ?

तुम्हारे जैसे लोग उसके साथ न हुगे ता दूसरे कौन होगे। उसी की बात सुनत-सुनते अपना सब कुछ गँवा दिया, अभी उसकी बडाई करन से मन नही भरता।

रामजस को कोडा-सा लगा। वह तमककर खडा हो गया। और कहने लगा—चार पैस हो जाने स तुम अपने को बडा समझदार और भलेमानुस समझने लगे हो। अभी उसी का खेत जाततेजोतते गगरी मे अनाज दिखाई देने लगा, उसी को भला-बुरा कहते हो। मैं चौपट हो गया तो अपने दुर्दैव स महँगू ! मधुबन ने मेरा क्या बिगाडा। और तुम अपनी देखो।—कहता हुआ रामजस त्रिगडकर वहाँ से चलता बना। वह तो बारात देखने के लिए ठहर गया था। आज ही उसका जाने का दिन निश्चित था। मधुबन से मिलना भी आवश्यक था। वह बनजरिया की ओर चला। उसके मन मे इस कृतघ्न गाँव के लिए घोर घृणा उत्तेजित हो रही थी। वह साचता चला जा रहा था कि किस तरह महँगू का उसकी हेकडी का दण्ड देना चाहिए। कई बात उसके मन म आईं। पर वह निश्चय न कर सका।

सामने मधुबन को आते दखकर वह जैसे चौक उठा। मधुबन के मुँह पर गहरी चिन्ता की छाया थी। मधुबन ने पूछा—क्या रामजस, कब जा रह हो ?

मैं तो आज ही जाने को था, परन्तु अब कल सबेरे जाऊँगा, मधुबन भइया। एक बात तुमसे पूछूँ तो बुरा नही मानागे ?

बुरा मान कर कोई क्या कर लेता है रामजस ! तुम पूछो !

भइया, तुमको क्या हो गया जो मैना को लेकर भागे ? गाँव-भर म इसकी बडी बदनामी है। वह ता कहो कि हाथी ही बिगडा था नही तो इस पर परदा डालने के लिए कौन-सी बात कही जाती ?

और हाथी को भी तो मैंने ही छेड़कर उत्तेजित कर दिया था। यह क्या तुम नही जानते ?

लोग तो ऐसा भी कहते हैं।

तब फिर मैना के लिए क्या ऐसा नही किया जा सकता। जिन लोगो के पास रुपया है वे तो रुपया खर्च कर सकते हैं। और जिसके पास न हो तो वह क्या करे ?

नही, यह बात मैं नही मानता। मेरे भाभी के पैर की धूल भी तो वह नही है।

तेरी भाभी भी यही बात मानती है।

तब यह बात किसने फैलायी है, जानते हो भइया, उसी पाजी महँगू ने ! तुम्हारा ही खाकर मोटा हुआ है, तुम्हारी ही बदनामी करता है ! अपने अलाव पर बैठकर हुक्का हाथ म ले लेता है तब मालूम पडता है कि नवाब का नाती है। अभी उससे मेरी एक झपट हो गई है। भइया, मैंने सब गँवा दिया अब तो मुझे यहाँ रहना नही है। कहो तो रात म उसको ठीक करके कलकत्ते खिसक जाऊँ। किसको पता चलेगा कि किसने यह किया है।

नही-नही रामजस ! उसके ऊपर तुम सन्देह न करो। यह सत्य है कि उसके पास चार पैसा हो गया है। उसके पास साधन-बल और जनबल भी है। इसी स कुछ बहकी हुई बात करने लगा है, पर वह मन का खोटा नही है ! सम्पन्न होने स इस तरह का अभिमान आ जाते देर नही लगती। इस तरह की बात, जब तुम गाँव छोडकर परदेश जा रहे हो तब, न सोचना चाहिए। न जाने किस अपराध के कारण तुमको यह दिन दिखाई पडा तब सचमुच तुम चलते-चलते अपने माथे कलक का टीका न लो। मैं जानता हूँ जो यह सब कर रहा है। पर मैं अभी उसका नाम न लूगा।

बता दो भइया, मैं तो जा ही रहा हूँ। उसको पाठ पढाकर जाता तो मुझे खुशी होती। मेरा गाँव छोडना सार्थक हो जाता।

ठहरो भाई ! हम लोगो के सम्बन्ध म लोगो की जब ऐसी धारणा हो रही है तो सोच-समझकर कुछ कहना चाहिए। जिसकी दुष्टता से यह सब हो रहा है उसके अपराध का पूरा प्रमाण मिले बिना दण्ड देना ठीक नही। परन्तु रामजस, न कहने स पेट म हूक-सी उठ रही है। तुमसे कहूँ लज्जा मेरा गला दबा रही है।

कहते कहते मधुबन रुककर सोचने लगा। उसका श्वास विषधर के फुफकार की तरह सुनाई पड़ रहा था। फिर उसने ठहरकर कहना आरम्भ कर दिया—

म उसे युद्ध करना है । वह घडी भर मन बहलाने के लिए जिस तरह चाहे रह सकता है । उसके आचरण में, कर्म में, नदी की धारा की तरह प्रवाह होना चाहिए । तालाब के बँधे पानी-सा उसके जीवन का जल सडने और सूखने के लिए होगा तो वह भी जड और स्पन्दन-विहीन होगा ।

अभी-अभी रामजस क्या कह गया है ? उसका हृदय कितना स्वतन्त्र और उत्साहपूर्ण है । मैं जैसे इस छोटी-सी गृहस्थी के बंधन में बँधा हुआ, बैल की तरह अपने सूखे चारे को चबाकर सन्तुष्ट रहने में अपने को धन्य समझ रहा हूँ । नहीं, अब मैं इस तरह नहीं रह सकता । सचमुच मेरी कायरता थी । चौबे का उसी दिन मुझे इस तरह छोड देना नहीं चाहता था । मैं डर गया था । हाँ अभाव ! झगडे के लिए शक्ति, संपत्ति और साहाय्य भी तो चाहिए । यदि यही होता । तब मैं उसे संग्रह करूँगा । पाजी बनूँगा सब करते क्या हैं । संसार में चारों ओर दुष्टता का साम्राज्य है । मैं अपनी निर्बलता के कारण ही लूट में सम्मिलित नहीं हो सकता । मेरे सामने ही वह मेरे घर में घुसना चाहता था । मेरी दरिद्रता को वह जानता है । और राजो । ओह ! मेरा धर्म झूठा है । मैं क्या किसी के सामने सिर उठा सकता हूँ । तब रामजस सत्य कहता है । संसार पाजी है, तो हम अकेले महात्मा बनकर मर जायँगे ।

मधुबन घर की ओर मुडा । वह धीरे-धीरे अपनी झोपडी के सामने आकर खडा हुआ । तितली उसकी ओर मुँह किये एक फटा कपडा सी रही थी । भीतर राजो रसोई-घर में से बोली—बहू, सरसों का तेल नहीं है । ऐसे गृहस्थी चलती है, आज ही आटा भी पिस जाना चाहिए ।

जीजी, देखो मलिया ले आती है कि नहीं ! उससे तो मैंने कह दिया था कि आज जो दाम मटर का मिले उससे तेल लेते आना ।

और आटे के लिए क्या किया ?

जौ, चना और गेहूँ एक में मिलाकर पिसवा लो । जब बाबू साहब को घर की कुछ चिन्ता नहीं तब तो जो होगा घर में वही न खायँगे ?

कल का बोझ जो जायगा उसमें अधिक दाम मिलेगा करजा सब बिनवा चुकी हूँ । बनिये ने माँगा भी है । गेहूँ कल मँगवा लूँगी । उनकी बात क्या पूछती हो । तुम्हीं तो मुझसे चिढकर उनके लिए मैना को खोज लाई हो, जीजी !—कहती हुई तितली ने हँसी को बिखराते हुए व्यंग्य किया ।

भाड में गई मैना ! बहू, मुझे यह हँसी अच्छी नहीं लगती । आ तो आज तेरी चोटी बाँध दूँ ।

मधुबन यह बातें सुनकर धीरे से उल्टे पाँव लौटकर बनजरिया के बाहर

चला गया। वह मैना की बात सोचने लगा था। कितनी चचल, हँसमुख और सुन्दर है, और मुझे...मानती है। चाहती होगी ! उस दिन हजारो के सामने उसने मुझे जब वौर दिया था, तभी उसके मन मे कुछ था।

मधुबन को शरीर की यौवन भरी सम्पत्ति का सहसा दर्प भरा ज्ञान हुआ। स्त्री और मैना-सी मनचली ! यह तो...तब इस कूडा-करकट मे कब तक पड़ा रहूँगा ? रामजस ठीक ही कहता था !

न जाने कह, हृदय की भूमि सोंधी होकर वट-बीज-सा बुराई की छोटी-सी बात अपने मे जमा लेती है। उसकी जडे गहरी और गहरी भीतर-भीतर घुसकर अन्य मनोवृत्तियो का रस चूस लेती हैं। दूसरा पौधा आस-पास का निर्बल ही रह जाता है ?

मधुबन ने एक दीर्घ नि.श्वास लेकर कहा—स्त्री को स्त्री का अवलम्बन मिल गया। तितली, मैना के भय से राजो का पकड कर उसकी गोद म मुँह छिपाना चाहती है। और राजो, उसकी भी दुर्बलता साधारण नही। चलो अच्छा हुआ एक-दूसरे को सम्हाल लेंगी।

मधुबन हल्के मन से रामजस को खोजने के लिए निकल पडा।

तहसीलदार की बैठक मे बैठे चौबेजी पान चबाते हुए बोले—फिर सम्हालते न बनेगा। मैं देख रहा हूँ कि तुम अपना भी सिर तुडाओगे और गाँव-भर पर विपत्ति बुलाओगे। मैं अभी देखता आ रहा हूँ, रामजस बैठा हुआ अपने उपरवार खेत का जौ उखाड कर होला जला रहा था, बहुत-से लडके उसके आसपास बैठे हैं।

उसका यह साहस नही होता यदि और लोग उसे न उकसाते। यह मधुबन का पाजीपन है। मैं उसे बचा रहा हूँ, लेकिन देखता हूँ, लेकिन देखता हूँ कि वह आग मे कूदने के लिए कमर कसे है। बडा क्रोध आता है, चौबे, मैं भी तो समय देख रहा हूँ। बीबी-रानी के नाम से हिस्सेदारी का दाखिल-खारिज हो गया है। मुखतारनामा मुझे मिल जाय तो एक बार इन पाजियो को बता दूँ कि इसका वैसा फल मिलता है।

वह तो सबसे कहता है कि मेरे टुकड़ो से पला हुआ कुत्ता आज जमीदार का तहसीलदार बन गया। उसको मैं समझता क्या हूँ !

पला तो हूँ, पर देख लेना कि उससे टुकड़ा न तुड़वाऊँ तो मैं तहसीलदार नही। मैं भी सब ठीक कर रहा हूँ। बनजरिया और शेरकोट पर घमण्ड हो गया

है ! सुखदेव ! अब क्या यहाँ इन्द्रदेव या श्यामदुलारी फिर आवेगी ? देखना, इन सबको मैं कैसा नाच नचाता हूँ ।

तहसीलदार के मन मे लघुता को—पहले मधुवन के पिता के यहाँ की हुई नौकरी के कलक को—धो डालने के लिए बलवती प्रेरणा हुई—यह कल का छोकरा सबसे कहता फिरता है तो उसको भी मालूम हो जाय कि मैं क्या हूँ—कुछ विचार करक उसने सुखदेव से कहा—

तुम जाकर एक बार रामजस को समझा दो । नही तो अभी उसका उपाय करता हूँ । मैं चाहता हूँ कि भिडना हो तो मधुवन पर ही सीधा वार किया जाय। दूसरो को उसके साथ मिलन का अवसर न मिले ।

मैं जाता तो हूँ, पर यदि वह मुझसे टर्राया और तुम फिर चुप रह गये तो यह अच्छी बात न होगी ।—कहकर सुखदेव चौबे रामजस के खेत पर चले । वहाँ लडको की भीड जुटी थी । पूरा भोज का-सा जमघट था । कोई बेकार नही । कोई उछल रहा है, कोई गा रहा है, कोई जौ के मुट्ठो को पत्तियाँ जलाकर झुलस रहा है । रामजस ने जैस टिड्डियो को बुला लिया है । वह स्थिर होकर यह अत्याचार अपने ही खेत पर करा रहा है । जैसे सर्वनाश म उसको विश्वास हो गया हो । अपनी झोपडी मे से, जो रखवाली के लिए वहाँ पडी थी, सूखे खरो को खीचकर लडको को दे रहा था । लडका म पूरा उत्साह था । जिनके यहाँ कोल्हू चल रहा था, वे दौडकर अपने-अपन घरो से ऊख का रस ले आते थे । ऐसा आनन्द भला वे कैसे छोड सक्ते थे । एक लडके ने कहा—रामजस दादा, कहो तो ढोल ले आवे ।

नही वे, रात को चौताल गाया जायगा । अभी तो खूब पेट भरकर खा ले । फिर

अभी बात पूरी न हो पाई थी कि सामने से सुखदेव ने कहा—यह क्या हो रहा है रामजस ! कुछ पीछे की भी सुध है ? क्या जेल जान की तैयारी कर रहे हो ?

क्या तुम हथकडी लेकर आये हो ?

अरे नही भाई ! मैं तो तुमको समझाने आया हू । देखो ऐसा काम न करो कि सब कुछ चौपट हो जान के बाद जेल भी जाना पड । यह खेत

यह खेत क्या तुम्हारे बाप का है ? मैंने इसे छाती का हाड तोड कर जोता बोया है, मेरा अन्न है, मैं लुटा देता हूँ, तुम होते कौन हो ?

पीछे मालूम होगा, अभी तुम मधुबन के बहकाने मे आ गये हो, जब चक्की पीसनी होगी, तब हेकडी भूल जायगी ।

कहे देता हूँ कि सीधे-सीधे चले जाओ, नही तो तुम्हारी मस्ती उतार दूँगा।
कहकर रामजस सीधा तनकर खडा हा गया। सुखदेव ने भी क्रोध मे आकर कहा—दूँगा एक झापड, दाँत झड जायेगे। मैं तो समझ रहा हूँ, तू बहकता जा रहा है।

तो तुमने मुझको भी मधुबन भइया समझ रखा है न। अच्छा तो लेते जाओ बच्चू!—कहकर रामजस ने लाठी घुमाकर हाथ उसके मोढे पर जड दिया। जब तक चौबे सम्हले तब तक उसने दुहरा दिया।

चौबेजी वही लेट गये। लडके इधर-उधर भाग चले। गाँव भर म हल्ला मचा। लोग इधर-उधर से दौडकर आये।

महँगू ने कहा—यह बडा अधर है। ऐसी नवाबी तो नही देखी। भला कुर्क हुए खेत को इस तरह तहस-नहस करना चाहिए।

पाडेजी ने कहा—चौबेजी को तो पहले उठा ले चलो, यहाँ खडे तुम लोग क्या देख रहे हो।

पाडेजी के कहन पर लोगो को मूर्छित चौबे का ध्यान आया। उन्हे उठाकर जब लोग जा रहे थे तब मधुबन वहाँ आया। उसने सुना लिया कि सुखदेव पिट गया। मधुबन ने क्षण भर मे सब समझ लिया। उसने कहा—रामजस। अब यहा क्या कर रहे हो? चलो मेरे साथ।

उसने कहा—ठहरो दादा, लगे हाथ इस महँगू को भी समझा द।

मधुबन ने उसका हाथ पकड कर कहा—अरे महँगू बूढा है। उस बेचार ने क्या किया है? अधिक उपद्रव न बढाओ, जो किया सो अच्छा किया।

अभी मधुबन उसको समझा ही रहा था कि छावनी से दस लट्ठबाज दौडते हुए पहुँच गये। 'मार-मार' की ललकार बढ चली। मधुबन ने देखा कि रामजस तो अब मारा जाता है। उसने हाथ उठाकर कहा—भाइयो, ठहरो, बिना समझे मारपीट करना नही चाहिए।

यही पाजी तो सब बदमाशी की जड है।—कहकर पीछे से तहसीलदार ने ललकारा। दनादन लाठियाँ छूट पडी। दो-तीन तक तो मधुबन बचाता रहा, पर कब तक! चोट लगते ही उसे क्रोध आ गया। उसने लपककर एक लाठी छीन ली और रामजस की बगल में आकर खडा हो गया।

इधर दो और उधर दस। जमकर लाठी चलने लगी। मधुबन और रामजस जब घिर जाते तो लाठी टेककर दस-दस हाथ दूर जाकर खडे हो जाते। छ आदमी गिरे और रामजस भी लहू स तर हो गया।

गाँव वाले बीच म आकर खडे हो गये। लडाई बन्द हुई। मधुबन रामजस को अपन कधे का सहारा दिये धीरे-धीरे बनजरिया की ओर ले चला।

५

कच्ची सडक के दोना ओर कपड, बरतन, बिसातखाना और मिठाइया की छोटी-बडी दूकाना से अलग, चूने से पुती हुई पक्की दीवारो के भीतर, बिहारीजी का मन्दिर था। धामपुर का यही बाजार था। बाजार के बनिया की सेवा-पूजा स मदिर का राग-भोग चलता ही था, परन्तु अच्छी आय थी महन्त जी को सूद से। छोटे-छोटे किसानो की आवश्यकता जब-जब उन्ह सताती, वे लोग अपन खत बडी सुविधा के साथ यहाँ बन्धक रख देते थे।

महन्तजी मन्दिर से मिले हुए, फूलो से भर, एक सुन्दर बगीचे मे रहते थे। रहने के लिए छोटा, पर दृढता से बना हुआ, पक्का घर था। दालान मे ऊँचे तकिये के सहारे महन्तजी प्राय बैठकर भक्तो की भेट और किसाना का सूद दोना ही समभाव से ग्रहण करत। जब कोई किसान कुछ सूद छोडने के लिए प्रार्थना करता तो वह बडी गम्भीरता स कहते—भाई, मेरा तो कुछ है नही, यह तो श्री बिहारीजी की विभूति है, उनका अश लेने से क्या तुम्हारा भला होगा?

भयभीत किसान बिहारीजी का पैसा कैसे दबा सकता था? इसी तरह कई छोटी-मोटी आस-पास की जमीदारी भी उनके हाथ आ गई थी। खेता की तो गिनती न थी।

सन्ध्या की आरती हो चुकी थी। घटे की प्रतिध्वनि अभी दूर-दूर के वायु-मडल मे गूँज रही थी। महन्तजी पूजा समाप्त करके अपनी गद्दी पर बैठे ही थे कि एक नौकर ने आकर कहा—ठाकुर साहब आए हैं।

ठाकुर साहब! —जैसे चौककर महन्त ने कहा।

हाँ महाराज! —अभी वह कही रहा था कि ठाकुर साहब स्वय आ धमके। लम्बे-चौडे शरीर पर खाकी की आधी कमीज और हाफ-पैण्ट, पूरा माजा और बूट, हाथ मे हण्टर।

इस मूर्ति को देखते ही महन्तजी विचलित हो उठे। आसन से थोडा-सा उठकर कहा—

आइए, सब कुशल तो है न ?

कुर्सी पर बैठते हुए ठाकुर रामपाल सिंह इस्पेक्टर न कहा—सब आपकी कृपा है। धामपुर म जाँच के लिए गया था। वहा से चला आ रहा हूँ। सुना है कि वह चौबे जो उस दिन की मार-पीट म घायल हुआ था, आपके यहा है।

हाँ साहब ! वह बेचारा ता मर ही गया होता। अब ता उसके घाव अच्छे हो रहे है। मैंने उससे बहुत कहा कि शहर के अस्पताल म चला जा, पर वह कहता है कि नही, जा होना था, हो गया, मैं अब न अस्पताल जाऊँगा, न धामपुर, और न मुकदमा ही चलाऊँगा, यही ठाकुरजी की सेवा म पडा रहूँगा।

पर मैं तो देखता हूँ कि यह मुकदमा अच्छी तरह न चलाया गया ता यहाँ के किसान फिर आप लोगो को अँगूठा दिखा दगे। एक पैसा भी उनसे आप ले सकेंगे, इसम सन्देह है। सुना है कि आपका रुपया भी बहुत-सा इस देहात म लगा है।

ठाकुर साहब ! मैं तो आप लोगा के भरोसे बैठा हूँ। जो होगा देखा जायगा। चौबे तो इतना डर गया है कि उससे अब कुछ भी काम लेना असभव है। वह तो कचहरी जाना नही चाहता।

अच्छी बात ह, मैंने मुकदमा छावनी के नौकरो का बयान लेकर चला दिया है। कई बडी धाराएँ लगा दी हैं। उधर तहसीलदार ने शेरकोट और बनजरिया की बेदखली का भी दावा किया। अपने-आप सब ठीक हो जायेंगे। फिर आप जानें और आपका काम जान। धामपुर म तो इस घटना से ऐसी सनसनी है कि आप लोगो का लेन-देन सब रुक जायगा।

महन्तजी को इस छिपी हुई धमकी से पसीना आ गया। उन्होंने सम्हलते हुए कहा—बिहारीजी का सब कुछ है, वही जानें।

ठाकुर साहब पान इलायची लेकर चले गय। महन्तजी थाडी देर तक चिन्ता मे निमग्न बैठे रह। उनका ध्यान जब टूटा, जब राजकुमारी क साथ माधो आकर उनके सामने खडा हा गया। उन्हाने पूछा—क्या है ?

राजकुमारी न घूघट सम्हालते हुए कहा—हम लोगा का रुपये की आवश्यकता है। बन्धक रखकर कुछ रुपया दीजियगा ? बडी विपत्ति म पडी हूँ। आप न सहायता करेंगे तो सब मारे जायेंगे।

तुम कौन हो और क्या बन्धक रखना चाहती हो ? भाई आज-कल कौन रुपया दकर लडाई मोल लेगा। तब भी सुनूं।

शेरकोट का बन्धक रखकर मेरे भाई मधुबन को कुछ रुपय दीजिय। तहसीलदार ने बडा-धूम-धाम स मुकदमा चलाया है। आप न सहायता करेंगे ता मुकदम की पैरवी न हो सकेगी। सब-के-सब जेल चल जायेंगे।

घेरकाट ! भला उसे कौन बन्धक रखेगा ? तुम लोगों के ऊपर तो 'बेदखली' हो गई है । बनजरिया का भी वही हाल है । मैं उस पर रुपया नहीं दे सकता । मैं इस झंझट में नहीं पड़ूँगा ।—कहकर महन्तजी ने माधो की ओर देखकर कहा—और तुम क्या कहते हो ? रुपये दोगे कि नहीं ? आज ही न देने के लिए कहा था ?

महन्तजी, आप हमारे माता-पिता हैं । इस समय आप न उबारेंगे तो हमारा दस प्राणियों का परिवार नष्ट हो जायगा । घर की स्त्रियाँ रात को साग खोट कर ले आती हैं । वही उबाल कर नमक से खाकर सो रहती है । दूसरे-तीसरे दिन अन्न कभी-कभी, वह भी थोड़ा-सा मुँह में चला जाता है । हम लोग तो चाकरी-मजूरी भी नहीं कर सकते । मटर की फसल भी नष्ट हो गई । थोड़ी-सी ऊख रही, उसे पेरकर सोचा था कि गुड़ बनाकर बेंच लेंगे, तो आपका भी कुछ देंगे और कुछ बाल-बच्चों के खाने के काम में आयेगा ।

फिर क्या हुआ, उसकी बिक्री भी चट कर गये ? तुमको देना तो है नहीं, बात बनाने आये हो ।

महाराज ! मुनवाँ गुलौर झोंक रहा था जब उसने सुना कि जमींदार का तगादा आ गया है वह लोग गुड़ उठाकर ले जा रहे हैं तो घबरा गया । जलता हुआ गुड़ उसके हाथ पर पड़ गया । फिर भी हत्यारों ने उसको पानी पीने के लिए भी एक भली न छोड़ी । यहीं बाजार में खड़े-खड़े बिकवा कर पाई-पाई ले ली । पानी के दाम मेरा गुड़ चला गया । आप इस समय दस रुपये से सहायता न करेंगे तो सब मर जायँगे । बिहारी जी आपका

भाग यहाँ से, चला है मुझको आशीर्वाद देने । पाजी कहीं का । देना न लेना, झूठ-मूठ ढंग साधने आया है । पुजारी ! कोई यहाँ है नहीं क्या ?—कहकर महन्तजी चिल्ला उठे ।

भूखा और दरिद्र माधो सन्न हो गया । महन्त फिर बड़बड़ाने लगा—इनके बाप ने यहाँ पर जमा कर दिया है, बिहारीजी के पुछल्ले !

भयभीत माधो लड़खड़ाते पैर से चल पड़ा । उसका सिर चकरा रहा था । उसने मन्दिर के सामने आकर भगवान को देखा । वह निश्चल प्रतिमा ! ओह करुणा कहीं नहीं ! भगवान के पास भी नहीं !

माधो किसी तरह सड़क पर आ गया । वहाँ मधुबन खड़ा था । उसने देखा कि माधो गिरना चाहता है । उसे सम्हाल कर एक बार क्रूर-दृष्टि से उस चूने से पुते हुए झकाझक मन्दिर की ओर देखा ।

मधुबन गाढ़े की दोहर में अपना अंग छिपाये था । वह सबसे छिपना चाहता था । उसने धीरे से माधो को मिठाई की दूकान दिखाकर कुछ पैसे दिये और

कहा—वहीं पर जल पोकर तुम बैठो। राजा के आन पर मैं तुमको बुला लूंगा।

मधुवन ता इतना कहकर सडक के वृक्षा की अँधेरी छाया म छिप गया, और माधो जल पीने चला गया।—आज उसको दिन भर कुछ खान के लिए नही मिला था।

उधर राजो चुपचाप महन्त जी के सामने खडी रही। उसके मन मे भीषण क्रोध उबल रहा था; किन्तु महन्त जी को भी न जाने क्या हो गया था कि उसे जाने के लिए तब तक नही कहा था। राजो ने पूछा—महाराज! यह सब किसलिए!

किसलिए? यह सत्र? —चौककर महन्त जी बोले।

ठाकुरजी के घर म दुखियो और दीनो को आश्रय न मिले ता फिर क्या यह सब ढाग नही? यह दरिद्र किसान क्या थोडी-सी भी सहानुभूति देवता के घर से भीख मे नही पा सकता था? हम लाग गृहस्थ है, अपन दिन-रात के लिए जुटा-कर रखे ता ठोक भी है। अनेक पाप, अपराध, छल-छन्द करके जो कुछ पेट काटकर देवता के लिए दिया जाता है, क्या वह भी ऐसे ही कामो के लिए है? मन मे दया नही, सूखा-सा...

राजकुमारी तुम्हारा ही नाम है न? मैं सुन चुका हूँ कि तुम कर्सा माया जानती हो। अभी तुम्हारे ही लिए वह चौबे बिचारा पिट गया है। उसको मैं न रखता ता वह मर जाता। क्या यह दया नही है? तुमका भी, यहा रहो तो सब कुछ मिल सकता है। ठाकुरजी का प्रसाद खाओ, मौज से पडी रह सकती हो। सूखा-रूखा नही!

फिर कुछ रुककर महन्त न एक निर्लज्ज सकेत किया। राजकुमारी उसे जहर क घूंट की तरह पी गई। उसने कहा—तो क्या चौबे यहीं हैं।

हाँ, यहीं ता है, उसकी यह दशा तुम्ही ने की है। भला उस पर तुमका कुछ दया नही आई। दूसरे की दया सब लोग खोजते है और स्वय करनी पडे तो कान पर हाथ रख लेते हैं। थानदार उसको खोजते हुए अभी आये थे। गवाही देने के लिए कहते थे।

राजकुमारी मन-ही-मन कांप उठी। उसने एक बार उस बीती हुई घटना *का स्मरण करके अपन को सम्पूर्ण अपराधिनी बना लिया*। क्षण भर मे उसके सामन भविष्य का भीषण चित्र खिच गया। परन्तु उसके पास कोई उपाय न था। इस समय उसको चाहिए रुपया, जिससे मधुबन के ऊपर आई हुई विपत्ति टले। मधुबन छिपा फिर रहा था, पुलिस उसको खोज रही थी। रुपया ही एक

अमाघ अस्त्र था जिससे उसकी रक्षा हो सकती थी। उसका गौरव और अभिमान मानसिक भावना और वासना के एक ही झटके म, कितना जर्जर हा गया था। वही राजकुमारी ! आज वह क्या हो रही है ? और चौबेजो ! कहा से यह दुष्ट-ग्रह के समान उसक सीधे-साद जीवन म आ गया ? अब वह भी अपना हाथ दिखाव तो कितनी आपत्ति बढ़ेगी ?

साचते-साचते वह शिथिल हो गइ। महन्त चुपचाप चतुर शिकारी की तरह उसकी मुखाकृति की ओर ध्यान से देख रहा था।

इधर राजकुमारी क मन म दूसरा झोका आया ! कलक ! स्त्री क लिए भयानक समस्या—मैं ही तो इस काण्ड की जड हूँ—उसने अपना मलिन और दयनीय चित्र अपने सामने देखा। आज वह उबर नही सकती थी। वह मुँह खालकर किसी स कुछ कहन जाती है, तो शक्तिशाली समर्थ पापी अपनी करनी पर हँसकर परदा डालता हुआ उसी के प्रवाद-मूलक कलक का घूघट धीरे से उघार देता है। ओह ! वह आखा स आसू बहाती हुई बैठ गई। उसकी इच्छा हुई कि जैसे हा, जा कुछ भी करना पडे, मधुबन का इस बार बचा लेती। शैला के पास रुपया नही है, और वह मधुबन की सहायता करेगी ही क्यो। मधुबन कहता था कि उसने जाते-जाते लडाई-झगडा करन के लिए मना किया था। अब वह लज्जा से अपनी सब बात कहना भी नही चाहता। मरा प्रसग वह कैसे कह सकता था। इसीलिए शैला की सहायता से भी वचित ! अभागा मधुबन !

राजकुमारी ने गिडगिडाकर कहा—सचमुच मरा ही सब अपराध हू, मैं मर क्या न गई ? पर अब तो लज्जा आपक हाथ है। दुहाई है, मैं सौगन्ध खाता हूँ, आपका सब रुपया चुका दूगी। मरी हड्डी-हड्डी से अपनी पाई-पाई ले लीजियेगा। मधुबन न कहा ह कि वह पहले वाला एक सौ का दस्तावेज और पाच सौ यह, सब मिलाकर सूद-समत लिखा लीजिए।

और जमानत म क्या दती हा ? —कहकर महन्त फिर मुस्कराया।

राजकुमारी ने निराश होकर चारा ओर देखा। उस एकान्त-स्थान मे सन्नाटा था। महन्त क नौकर-चाकर खाने-पीने मे लगे थे। वहा किसी को अपना परिचित न दखकर वह सिर झुकाकर बोली—क्या शेरकाट स काम न चल जायगा ?

नही जी, कह तो चुका, वह आज नही ता कल तुम लोगा के हाथ से निकला ही हुआ है। फिर तुम तो अभी कह रही थी कि मरी हड्डी से चुका लना। क्यो वह बात सच है ?

अपनी आवश्यकता से पीडित प्राणी कितनी ही नारकीय यत्रणाएँ सहता है। उसकी सब चीजो का सौदा मोल-तोल कर लेने मे किसी का रुकावट नही। तिस

पर वह स्त्री, जिसके सम्बन्ध में किसी तरह का कलंक फैल चुका हो। उसके मधुबन मना कर रहा था कि वहाँ तुम मत जाओ, मैं ही बात कर लूँगा। किन्तु राजो का सहज तेज गया तो नहीं था। वह आज अपनी मूर्खता से एक नः विपत्ति खड़ी कर रही है, इसका उसको अनुमान भी नहीं हुआ था। वह क्या जानती थी कि यहाँ चौबे भी मर रहा है। भय और लज्जा, निराशा और क्रोध से वह अधीर होकर रोने लगी। उसकी आँखों से आँसू गिर रहे थे। घबराहट से उसका बुरा हाल था। बाहर मधुबन क्या सोचता होगा?

महन्त ने देखा कि ठीक अवसर है। उसने कोमल स्वर में कहा—तो राजकुमारी! तुमको चिन्ता करने की क्या आवश्यकता? शेरकोट न सही, बिहारी जी का मंदिर तो कहीं गया नहीं। यहीं रहो न ठाकुरजी की सेवा में पड़ी रहोगी और मैं तो तुमसे बाहर नहीं। घबराती क्यों हो?

महन्त समीप आ गया था; राजकुमारी का हाथ पकड़ने ही वाला था कि वह चौंककर खड़ी हो गई। स्त्री की छलना ने उसको उत्साहित किया। उसने कहा—दूर ही रहिए न! यहाँ क्यों!

कामुक महन्त के लिए यह दूसरा आमन्त्रण था। उसने साहस करके राजो का हाथ पकड़ लिया। मंदिर से सटा हुआ वह बाग एकान्त था। राजकुमारी चिल्लाती, पर वहाँ सहायता के लिए कोई न आता! उसने शांत होकर कहा—मैं फिर आ जाऊँगी। आज मुझे जाने दीजिए। आज मुझे रुपयों का प्रबन्ध करना है!

सब हो जायेगा। पहले तुम मेरी बात तो सुनो।—कहकर वह और भी *पाशव भीषणता से उस पर आक्रमण कर बैठा।*

राजकुमारी अब न रुकी। उसका छल उसी के लिए घातक हो रहा था। वह पागल की तरह चिल्लाई। दीवार के बाहर ही इमली की छाया में मधुबन खड़ा था। पाँच हाथ की दीवार नाँघते उसे कितना विलम्ब लगता? वह महन्त की खोपड़ी पर यमदूत-सा आ पहुँचा। उसके शरीर का असुरों का-सा सम्पूर्ण बल उन्मत्त हो उठा। दोनों हाथों से महन्त का गला पकड़कर दबाने लगा। वह छटपटाकर भी कुछ बोल नहीं सकता था। और भी बल से दबाया। धीरे-धीरे महन्त का विलास-जर्जर शरीर निश्चेष्ट होकर ढीला पड़ गया! राजकुमारी भय से मूच्छित हो गई थी, और हाथ से निर्जीव देह को छोड़ते हुए मधुबन जैसे चैतन्य हो गया।

अरे यह क्या हुआ? हत्या!—मधुबन को जैसे विश्वास नहीं हुआ, फिर उसने एक बार चारों ओर देखा। भय ने उसे ज्ञान दिया, वह समझ गया कि

महन्त का एक स्त्री के साथ जानकर यहाँ अभी कोई नहीं आया है, और न कुछ समय तक आवेगा। उसका अपना जान बचाने की सूझी। सामने सन्दूक का ढक्कन खुला था उसमें से रुपया की थैली लेकर उसने कमर में बाँधी। इधर राजकुमारी को ज्ञान हुआ तो चिल्लाना चाहती थी कि उसने कहा—चुप! वही दूकान पर माधो बैठा है। उसे लेकर सीधे घर चली जा। माधो से भी मत कहना। भाग! अब मैं चला!

मधुवन तो अन्धकार में चला गया। राजकुमारी थर-थर काँपती हुई माधो के पास पहुँची।

सड़क पर सन्नाटा हो गया था। देहाती बाजार में पहर भर रात जाने पर बहुत ही कम लोग दिखाई पड रहे थे। मिठाई की दूकान पर माधो खा-पीकर सतुष्टि की झपकी ले रहा था। राजकुमारी ने उसे उँगली से जगाकर अपने पीछे आने के लिए कहा। दोनों बाजार के बाहर आये। एक्के वाला एक तान छेडता हुआ अपने घोडे का खरहरा कर रहा था। राजकुमारी ने धीरे से शेरकोट की ओर पैर बढ़ाया। दोनों ही किसी तरह की बात नहीं कर रहे थे। थोडा ही दूर आगे बढ़े होंगे कि कई आदमी दौड़ते हुए आये। उन्होंने माधो को रोका। माधो ने कहा—क्या भाई! मेरे पास क्या धरा है, क्या है?

हम लोग एक स्त्री की खोज रहे हैं। वह अभी-अभी बिहारीजी के मन्दिर में आई थी—उन लोगों ने घबराये हुए स्वर में कहा।

यह तो मेरी लड़की है। भले आदमी क्या दरिद्र होने के कारण राह भी न चलने पावेंगे? यह कैसा अत्याचार? कहकर माधो आगे बढ़ा। उसके स्वर में कुछ ऐसी दृढता थी कि मन्दिर के नौकरों ने उनका पीछा छोड़कर दूसरा मार्ग ग्रहण किया।

मधुबन गहरे नशे से चौंक उठा था। हत्या ! मैंने क्या कर दिया ? फाँसी की टिकठी का चित्र उसके कालिमापूर्ण आकाश मे चारो ओर अग्निरेखा म स्पष्ट हो उठा। इमली के घने वृक्षो की छाया मे अपने ही श्वासो से सिहर कर सोचता हुआ वह भाग रहा था।

तो, क्या वह मर गया होगा ? नही—मैंने तो उसका गला ही घोट दिया है। गला घोटने से मूर्छित हो गया होगा। चैतन्य हो जायगा अवश्य ?

थोडा-सा उसके हृदय की धडकन को विश्राम मिला। वह अब भी बाजार के पीछे-पीछे अपनी भयभीत अवस्था मे सशक चल रहा था। महन्त की निकली हुई आँखें जैसे उसकी आँखो मे घुसने लगी। विकल होकर वह अपनी आँखो का मूंदकर चलन लगा, उसने कहा—नहीं, मैं तो वहाँ गया भी नही था। किसने मुझको देखा ? राजो ! हत्यारिन ! ओह उसी की बुलाई हुई यह विपत्ति है। यह देखो, इस वयस मे उसका उत्पात ! हाँ, मार डाला है मैंने, इसका दण्ड दूसरा नही हो सकता। काट डालना ही ठीक था। तो फिर मैंने किया क्या, हत्या ? नही ! और किया भी हो तो बुरा क्या किया।

उसके सामने महन्त की निकली हुई आँखो का चित्र नाचने लगा। फिर—तितली का निष्पाप और भोला-सा मुखडा। हाय-हाय। मधुबन ! तूने क्या किया ! वह क्या करेगी ? कौन उसकी रक्षा करेगा ?

उसका गला भर आया। वह चलता जाता था और भीतर-ही-भीतर अपने राने को, साँसा को, दबाना जाता था। उसे दूर स किसी के दौडने का और ललकारने का भ्रम हुआ।—अरे ! पकडा गया ता...।

क्षण-भर के लिए रुका। उसने पहचाना, यह तो मैना के घर के पीछे की फुलवारी की पक्की दीवार है। तो वह छिप जाय। यही न, अच्छा अब तो सोचने का समय नही है। लो, वह सब आ गये।

छाटी-सी दीवार फाँदते उसको क्या देर लगती। मैना की फुलवारी मे अध-

कार था। उसके कमरे की खिडकी की सधि से आलोक की पहली रेखा निकल कर उस विराट अन्धकार म निष्प्रभ हो जाती थी।

मधुबन सिरस के ऊपर चढी हुई मालती की छाया म ठिठक गया। पीछा करने वालो की आहट लेन लगा। किन्तु वहाँ तो कोई नही आया। उसने साहस भरे हृदय से विश्वास किया, यह सब मेरा भ्रम है। अभी कोई नही आया, और न जानता है कि मै कहाँ हूँ। तो यह मैना का घर है। कोई दूसरा भी तो यहाँ आ सकता है। कौन जाने वह किसी के साथ उस कोठरी म सुख लुटाती हो। वेश्या रुपये की पुजारिन ! है तो मेरे पास भी।

उसन अपनी थैली पर हाथ रखा। फिर महन्त की आँखे उसके सामन आ गईं। धीरे-धीरे बडी होने लगी। ओह ! कितनी बडी। उनसे छिपकर वह बच नही सकता। समूचा अवकाश केवल महन्त की आँख बनकर उसके सामने खडा था।

मधुबन ने आँख बन्द करके अपना सिर एक बार दोनो हाथो स दबाया। उसने कहा—तो भय क्या ! फाँसी ही न पाऊँगा ! फिर इस समय तो, अच्छा देखू कोई है तो नही।

वह धीरे-धीरे बिल्ली के-से दबे पाँवो स मैना की खिडकी के पास गया। सधि मे से भीतर का सब दृश्य दिखाई द रहा था। आँगन मे भीतर खुलने वाला किवाड बन्द था। खिडकी से लगा हुआ मैना का पलँग था। वह लालटेन के उजाल म कोई पुस्तक पढ रही थी। मधुबन को विश्वास न हुआ कि वह अकेली ही है। उसने धीरे से खिडकी के पल्लो को खोला। मैना ध्यान से पढ रही थी। उसने फिर पल्लो को हटाया। अब मैना ने घूम कर देखा।

वह चिल्लाना ही चाहती थी कि मधुबन की अँगुली मुँह पर जा पडी। चुप रहने का सकेत पाकर वह उठ खडी हुई। धीरे से किवाड खोला। उसने चकित होकर मधुबन का उस रात मे आना देखा। वह सन्देह, प्रसन्नता और आश्चर्य से चकित हो रही थी।

मधुबन ने भीतर आकर किवाड बन्द कर दिया। मैना सोच रही थी—मधुबन बाबू सबसे छिपकर मुझ वेश्या के यहाँ इस एकान्त रजनी मे अभिसार करने आये हैं ! —उस न जाने क्या विरक्ति सी हुई। उसने मधुबन को पलँग पर बैठाते हुए कहा—भला इधर से आने की

उसके मुँह पर हाथ रखकर मधुबन ने कहा चुप रहो। पहले यह बताओ कि तुम्हारे यहाँ इस समय कौन-कौन है। यहाँ कोई हम लोगो की बात सुनता तो नही है ?

वह मुस्कराने लगी। वेश्या के यहाँ आने म इतने भयभीत। क्यो ? यहा तो कोई नही सुन सकता। माँ और निद्दू तो आँगन के उस पार सडक वाले कमरे मे हैं। रधिया साई होगी। वह तो सध्या से ही ऊँघने लगती है। इधर तो मैं ही हूँ। फिर इतना डर काहे का ? कुछ चोरी ता नही कर रहे हैं। एक रात मेरे घर रहने से बहू रूठ न जायेगी। मै

मधुवन न फिर उसका चुप रहने का सकेत किया। मेना ने देखा कि मधुबन का मुँह विवर्ण और भयभीत है। उसने मधुवन के शरीर से सटकर पूछा—बात क्या है ?

मधुवन का हाथ अपने कमर म बँधी थैली पर जा पडा। ओह ! हत्या का प्रमाण तो उसी के पास है। उसने धीरे से उसे कमर से खाल कर पलँग पर रख दिया। थैली का रग लाल था। उसे देखते ही-देखते मधुबन की आख चढ गईं।

मैना न दखा कि मधुबन उन्मत्त-सा हा गया है। उस झिझोडकर उसन हिला दिया, क्याकि मधुबन का वह रूप देखकर मैना को भी भय लगा।—उसने पूछा—क्यो वोलते नही ?

मधुवन का सहसा चेतना हुई। उसने धीरे से थैली खोलकर उसमे की गिन्नियाँ और रुपय पलँग पर रख दिये। मैना को ता चकाचौध-सी लग गई।

मधुवन न धीरे-से लैम्प की चिमनी उतार कर उसकी लौ से थैली लगा दी। वह भक-भक करके जर उठी।

अब ता मना से न रहा गया। उसन मधुबन का हाथ पकडकर कहा—तुम कुछ न कहोगे ता मैं माँ को बुलाती हूँ। मुझे डर लग रहा है।

मैंने खून किया है—मधुवन ने अविचल भाव मे कहा।

बाप रे ! यह क्यो ? मुझे रुपये देने के लिए ?

मना का श्वास रुकने लगा। उसने फिर सँभलकर कहा—मैं तो बिना रुपय की तुम्हारी ही थी। यह भला तुमने क्या किया ?

जो करना था कर दिया। अब बनाओ, तुम मुझे यहाँ छिपा सकती हो कि नही ? मैं कल यहाँ से जाऊँगा। रात भर म मुये जो कुछ करना है, उस सोच लूगा। बोलो !

मधुवन बाबू ! प्राण देकर भी आपकी सेवा करूँगी, पर आप यह ता बताइए कि ऐसा क्यो ?

क्यो—मत पूछो। इस समय मुझे अकेले छोड दो। मैं सोना चाहता हूँ।

और बनावेगा कौन ? वही आपका मिसिर न !—रानी ने मुस्कराते हुए कहा।

ता फिर दूसरा कौन है ?—हताश होकर इन्द्रदेव ने उत्तर दिया।

सुनूं भी, कौन आये हैं ? कितने हैं, कैसे है ?

मिस शैला का नाम तो आपने सुना होगा ?—सकोच से इन्द्रदेव ने कहा।

ओहो ! यह तो मुझे मालूम ही नही ! तब तुम लोगा को आज यही ब्यालू करना पडेगा। मैं अपने मटर की बदनामी करान के लिए तुम्हारे मिसिर को उसे जलाने न दूँगी। मिस साहिबा किस समय भोजन करती है ? अभी तो घटे भर का समय होगा ही।

इन्द्रदेव भीतर के मन से तो यही चाहते थे। पर उन्होने कहा—उनको यहाँ

मैं समझ गई ! चलो, तुम्हारे साथ चलकर उन्हे बुला लाती हूँ। भला मुझे आज तुम्हारी मिस शैला की कहकर नन्दरानी ने परिहासपूर्ण मौन धारण कर लिया।

इन्द्रदेव नन्दरानी के बहुत आभारी और साथ ही भक्त भी थे। उसकी गरिमा का बोझ इन्द्रदेव को सदैव ही नतमस्तक कर देता। गुरुजनोचित स्नेह की आभा स नन्दरानी उन्हे आप्लावित किया ही करती।

भाभी—कहकर वह चुप रह गये।

क्यो, क्या मेरे चलने से उसका अपमान होगा। एक दिन तो वही मेरी देवरानी होने वाली हैं, क्या यह बात मैने झूठ सुनी है ?

वास्तविक बात तो यह थी कि इन्द्रदेव शैला के आ जाने से बडे असमजस मे पड गये थे, उनकी भी इच्छा थी कि नन्दरानी से उसका परिचय कराकर वह छुट्टी पा जायँ। उन्होने कहा—वाह भाभी, आप भी

अच्छा-अच्छा, चलो। मैं सब जानती हूँ, कहती हुई नन्दरानी बगल के बँगले की ओर चली। इन्द्रदेव पीछे-पीछे थे।

छोटे-से बँगले के एक सुन्दर कमरे के बाहर दालान मे आरामकुर्सी पर बैठी हुई शैला तन्मय होकर हिमालय के रमणीय दृश्यवाला चित्र देख रही थी। सहसा इन्द्रदेव ने कहा—मिस शैला ! मेरी भाभी श्रीमती नन्दरानी।

शैला उठ खडी हुई। उसने सलज्ज मुसकान के साथ नन्दरानी को नमस्कार किया।

नन्दरानी उसके व्यवहार को देखकर गद्गद हो गई। उसने शैला का हाथ पकड कर बैठाते हुए कहा—बैठिये,,इतने शिष्टाचार की आवश्यकता नही।

नन्दरानी और इन्द्रदेव दोनो ही कुर्सी खीचकर बैठ गये ! तीनो चुप थे ।

नन्दरानी ने कहा—आज आपको मेरा निमन्त्रण स्वीकार करना होगा । देखिये, बिना कुछ पूर्व-परिचय के मेरा ऐसा करना चाहे आपको न अच्छा लगे, किन्तु मेरा इन्द्रदेव पर इतना अधिकार अवश्य है और मैं शीघ्रता मे भी हूँ । मुझे ही सब प्रबन्ध करना है । इसलिए मैं अभी तो छुट्टी माँग कर जा रही हूँ । वही पर बातें होगी ।

शैला को कहने का अवसर बिना दिये ही वह उठ खडी हुई । शैला ने इन्द्रदेव की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा ।

नन्दरानी ने हँसकर कहा—इन्हे भी वही ब्यालू करना होगा ।

शैला ने सिर झुकाकर कहा—जैसी आपकी आज्ञा ।

नन्दरानी चली गई । शैला अभी कुछ सोच रही थी कि मिसिर न आकर पूछा—ब्यालू के लिए ..।

उसकी बात काटते हुए इन्द्रदेव न कहा —हम लोग आज बडे बँगले म ब्यालू करेंगे । वहाँ, धीमू से कह दो कि मेरे बगल वाले कमरे मे मेम साहब के लिए पलँग लगा दे ।

मिसिर के जाने पर शैला ने कहा—मैं तो कोठी पर चली जाऊँगी । यहाँ झझट बढाने से क्या काम है । मुझे तो यहाँ आये दो सप्ताह से अधिक हो गया । वहाँ तो मुझे कोई असुविधा नही है ।

इन्द्रदेव ने सिर झुका लिया । क्षोभ से उनका हृदय भर उठा । वह कुछ कडा उत्तर देना चाहते थे । परन्तु सम्हलकर कहा—हाँ शैला ! तुमको मेरी असुविधा का बहुत ध्यान रहता है । तुमने ठीक ही समझा है कि यहाँ ठहरने मे दोनों को कष्ट होगा ।

किन्तु यह व्यग शैला के लिए अधिक हो गया । इन्द्रदेव को वह मना लेने आई थी । वह इसी शहर मे रहन पर भी आज कितने दिनो पर उनसे भेट करने आई, इस बात का क्या इन्द्रदेव को दुख न होगा ? आने पर भी वह यहाँ रहना नही चाहती । इन्द्रदेव ने अपने मन मे यही समझा होगा कि वह अपने सुख को देखती है । शैला ने हाथ जोडकर कहा—क्षमा करो इन्द्रदेव ! मैंने भूल की है ।

भूल क्या ? मैं तो कुछ न समझ सका ।

मैंने अपराध किया है । मुझे सीधे यही आना चाहिए था । किन्तु क्या करूँ, रानी साहिबा ने मुझे वही रोक लिया । उन्होंने बीबी-रानी के नाम अपनी जमीदारी लिख दी है । उसी के लिखाने-पढ़ाने म लगी रही । और मैंने उसके लिए आकर तुम्हारी सम्मति नही ली, ऐसा मुझे न करना चाहिए था ।

मैं तो समझता हूँ कि तुमने कुछ भूल नही की। मुझे उसके सम्बन्ध मे कुछ कहना नही था। हाँ, यह बात दूसरी है कि तुम यहाँ क्यो नही आ गयी। उसे लिखाते-पढाते रहने पर भी तुम एक बार यहाँ आ सकती थी। किन्तु तुमने सोचा होगा कि इन्द्रदेव स्वय अपने लिए तग होगा, मैं वहाँ चलकर उसे और भी कष्ट दूँगी। यही न? तो ठीक तो है। अभी मेरी बैरिस्टरी अच्छी तरह नही चलती, तो भी इन कई महीनो मे सादगी से जीवन-निर्वाह करने के लिए मैं रुपये जुटा लेता हूँ। मुझे सम्पत्ति की आवश्यकता नही शैला।

शैला ने देखा, इन्द्रदेव के मुँह पर दृढ उदासीनता है। वह मन-ही-मन काँप उठी। उसने सोचा कि इन्द्रदेव को आर्थिक हानि पहुँचाने मे मेरा भी हाथ है। वह कुछ कहना ही चाहती थी कि इन्द्रदेव बीच म ही उसे रोककर कहने लगे—मैं सकुचित हो रहा था। मुझे यह कहकर माँ का जी दुखाने म भय होता था कि—मैं सम्पत्ति और जमीदारी से कुछ ससर्ग न रखूँगा। अच्छा हुआ कि उन्हा लोगा ने इसका आरम्भ किया है। तुमको अब यहाँ कुछ दिनो तक और ठहरना होगा, क्याकि नियमपूर्वक लिखा-पढी करके मैं समस्त अधिकार और अपनी सम्पत्ति माँ को दे देना चाहता हूँ। मेरे परम आदर की वस्तु 'माँ का स्नेह जिसे पाकर खोया जा सके, वह सम्पत्ति मुझे न चाहिये। और मैं उस लेकर भी क्या करूँगा? अधिक धन तो पारस्परिक बन्धन म रहने वाल को

शैला चौंककर बाल उठी—तो क्या तुम सन्यासी हाना चाहते हा? इन्द्रदेव! अन्त म यह क्या कलक भी मुझका मिलगा।

इन्द्रदेव इस अप्रिय प्रसग से ऊब उठे थे। इसे बन्द करन क लिए कहा—अच्छा, इस पर फिर बाते होगी। अभी तो चलो, वह देखो, भाभी का नौकर बुलाने के लिए आ रहा होगा। जाओ, कपडा बदलना हो तो बदल र झटपट तैयार हो लो।

शैला हँस पडी। उसन पूछा—तो क्या यहाँ किसी की साडियाँ भी मिल जायेंगी? मुझे तो तुम्हारी गृहस्थ-बुद्धि पर इतना भरोसा नही!

इन्द्रदव लज्जित-स खास उठे। शैला हाथ-मुँह धोन क लिए चली गई।

इन्द्रदव क्रमश उस घन हाउ हुए अन्धकार म निश्चेष्ट बैठे रहे। शैला भी आकर पास ही कुर्सी पर बैठकर तितली का छाटी-सी सुन्दर गृहस्थी का काल्पनिक चित्र खीच रही थी। दासी लालटेन लेकर शैला का बुलान के लिए ही आई।

इन्द्रदव न कहा—चलो शैला!

दाना चुपचाप नन्दरानी क बँगल म पहुँच। दालान म दस्तरखान बिछा था।

मुकुन्दलाल कम्बल के एक सिरे पर बैठे हुए छोटी-सी सितारी पर ईमन का मधुर राग छेड रहे थे। दमचूल्हे पर मटर हो रही थी। उसके नीचे लाल-लाल अगारों का आलोक फैल रहा था। लालटेन आड मे कर दी गई थी, बाबू मुकुन्दलाल को उसका प्रकाश अच्छा नही लगता था।

नन्दरानी उस क्षीण आलोक मे थाली सजा रही थी। सरूप निःशब्द काम करने मे चतुर था। वह नन्दरानी के सकेत से सब आवश्यक वस्तु भण्डार मे से लाकर जुटा रहा था।

शैला और इन्द्रदेव को देखते ही मुकुन्दलाल ने सितारी रखकर उनका स्वागत किया। शैला ने नमस्कार किया। सब लोग कम्बल पर बैठे। नन्दरानी ने थाली लाकर रख दी। इन्द्रदेव ने शैला का परिचय देते हुए यह भी कहा कि—आप हिन्दू-धर्म मे दीक्षित हो चुकी है। आपने धामपुर मे गाँव के किसानो की सेवा करना अपने जीवन का उद्देश्य बना लिया है।

नन्दरानी विस्मित होकर शैला के मौन गौरव को देख रही थी। किन्तु मुकुन्दलाल का ललाट, रेखा-रहित और उज्ज्वल बना रहा। जैसे उनके लिए यह कोई विशेष ध्यान देने की बात न थी। उन्होंने मटर का एक पूरा ग्रास गले से उतारते हुए कहा—भाई इन्द्रदेव, तुम जो कह रहे हो, उसे सुनकर मिस शैला की प्रशसा किये बिना नही रह सकता। यह भी एक तरह का सन्यास-धर्म है। किन्तु मैं तो गृहस्थ नारी की मगलमयी कृति का भक्त हूँ। वह इस साधारण सन्यास से भी दुष्कर और दम्भ-विहीन उपासना है।

नन्दरानी ने कुछ सजग होकर अपने पति की वह बात सुनी। उसके अधर कुछ खिल उठे। उसने कहा—इन्द्रदेव जी, और क्या दूँ ?

मुकुन्दलाल ने थोडा-सा हँसकर कहा—अपनी-सी एक सुन्दर सह-धर्मिणी।

शैला के कर्णमूल लाल हो उठे। ,और इन्द्रदेव ने बात टालते हुए कहा—मैं समझता हूँ कि भाभी जानती होगी कि इस अपने पेट के लिए जुटाने वाले मनुष्य को, उनकी-सी स्त्री की आवश्यकता नही हो सकती।

शैला और भी कटी जा रही थी। उसको इन्द्रदेव की सब बाते निराश हृदय की सतोष-भरी साँस-सी मालूम होती थी। वह देख रही थी नन्दरानी को और तुलना कर रही थी तितली से। एक की भरी-पूरी गृहस्थी थी और दूसरी अभाव से *अकिंचन; तिस पर भी दोनो परिवार सुखी और वास्तविक जीवन व्यतीत* कर रहे थे।

नन्दरानी ने कहा—इतना पेट्ट हो जाना भी अच्छा नही होता इन्द्रदेव ! अपना ही स्वार्थ न देखना चाहिए !

कहाँ भाभी ! मैंने तो अभी कुछ भी नही खाया। अभी मिठाइयाँ तो बाकी ही है। तिस पर भी मैं पेटू कहा जाऊँ ? आश्चर्य !

अरे राम ! मै खाने के लिए थोड़े ही कह रही हूँ। अभी तो तुमने कुछ खाया ही नही ! मेरा तात्पर्य था तुम्हारे ब्याह से।

ओहो ! तो मैं देखता हूँ कि कोई मूर्ख कुमारी मुझसे ब्याह करने की भीख माँगने के लिए तुम्हारे पास पल्ला पसार कर आई थी न ! उसको समझा दो भाभी ! मैं तो उसके लिए कुछ न कर सकूँगा।

नन्दरानी हँसने लगी। शैला से उसने पूछा—क्यो, आप तो कुछ ? जी नही; मुझे कुछ न चाहिए ! कहकर शैला ने उसकी ओर दीनता से देखा।

मुकुन्दलाल ने इन्द्रदेव से कहा—तुम ठीक कहते हो इन्द्रदेव, मैं भूल कर रहा था। स्त्री के लिए पर्याप्त रुपया या सम्पत्ति की आवश्यकता है ! पुरुष उसे घर मे लाकर जब डाल देता है तब उसकी निज की आवश्यकताओ पर बहुत कम ध्यान देता है। इसलिए मेरा भी अब यही मत हो गया है कि स्त्री के लिए सुरक्षित धन की व्यवस्था होनी चाहिए ! नही तो तुम्हारी भाभी की तरह वह स्त्री अपने पति को दिन-रात चुपचाप कोसती रहेगी।

नन्दरानी अप्रतिभ-सी होकर बोली—यह लो, अब मुझी पर बरस पड़े।

मुकुन्दलाल ने और भी गभीर होकर कहा—अच्छा इन्द्रदेव ! तुमसे एक बात कहूँ ? मिस शैला के सामने भी वह बात कहने में मुझे सकोच नही। यह तो तुम जानते हो कि मैं धीरे-धीरे ऋण मे डूब रहा हूँ। और जीवन के भोग के प्याले को, उसका सुख बढाने के लिए, बहुत धीरे-धीरे दस-दस बीस-बीस बूँद का घूँट लेकर खाली कर रहा हूँ। होगा सो तो होकर ही रहेगा। किन्तु तुम्हारी भाभी क्या कहेगी। मैं चाहता हूँ कि ये दोनो छोटे बँगले मैं नन्दरानी के नाम लिख दूँ। और फिर एक बार विस्मृति की लहर मे धीरे-धीरे डूबूँ और उतराऊँ।

नन्दरानी की आँखो से दो बूँद आँसू टपक पड़े। न जाने कितनी अमगल और मगल की कोमल भावनाएँ ससार के कोने-कोने से खिलखिला पड़ी। उसने मुकुन्दलाल का प्रतिवाद करना चाहा, परन्तु नारी-जीवन का कैसा गूढ रहस्य है कि वह स्पष्ट विरोध न कर सकी। इतने मे इन्द्रदेव ने कहा—भाई साहब मुझे एक रजिस्ट्री करानी है ! मैं अपनी समस्त सम्पत्ति माँ के नाम लिख देना चाहता हूँ। क्योंकि···

शैला ने तौलिये से हाथ पोछते हुए इन्द्रदेव की ओर देखा। उसने अभी-अभी इन्द्रदेव के अभावो का दृश्य देखा है। उसने सम्पत्ति से और उसकी आशा से भी वचित होने की मन मे ठानी है।

मुकुन्दलाल ने कहा—हाँ, हाँ, कहो क्योकि स्त्रियो को ही धन की आवश्यकता है। और सभवत वे ही इसकी रक्षा भी कर सकती हैं। तो फिर ठीक रहा। कल ही इसका प्रबन्ध कर दो।

सब लोग हाथ-मुँह धोकर अपनी कुर्सियो पर आराम से बैठे ही थे कि सरूप न आकर कहा—बैरिस्टर साहब से मिलने क लिए एक स्त्री आई है। उसका काई मुकद्दमा है।

सब लोग चुप रहे। शैला सोच रही थी कि क्या स्त्रियाँ सचमुच धन की लोलुप हैं। फिर उसने अपने ही उत्तर दिया —नही, समाज का सगठन ही ऐसा है कि प्रत्येक प्राणी को धन की आवश्यकता है। इधर स्त्री को स्वावलम्वन से जब पुरुष लोग हटाकर, उकके भाव और अभाव का दायित्व अपने हाथ मे ले लेते हैं, तब धन को छोडकर दूसरा उनका क्या सहारा है ?

दृतन मे सरूप गरम कमरे म चाय की प्याली सजाने लगा।

नन्दरानी भोजन करने बैठी। उससे खाया न गया।

दालान म परदे गिरा दिये गये थे। ठडी हवा चलने लगी थी। किन्तु नन्दरानी झटपट हाथ-मुँह धोकर पान मुख मे रखकर वही एक आरामकुर्सी पर अपनी ऊनी चादर मे लिपटी हुई पडी रही, उसके मन म सकल्प-विकल्प चल रहा था। आज तक का उसका त्याग, कुछ मूल्य पर बिकने जा रहा है। उसका मन यह मूल्य लेने से विद्रोह कर रहा था। तब भी जीवन के कितने निराशा भरे दिन काटने हागे। ज्योतिषी ने कह दिया है कि बाबू मुकुन्दलाल अब अधिक दिन जीने के नही हैं—उनका भीतरी शरीर भग्न पोत की तरह काल-समुद्र मे धीरे-धीरे धँसता जा रहा है, फिर भी, उस ऊर्जस्वित आत्मा का केतु अभी डुबा देने वाले जल के ऊपर ही है। उनकी अवस्था पचास वर्ष की और नन्दरानी की चालीस की है। किन्तु ससार जैसे उनके सामने अन्तिम घडियाँ गिन रहा है। गार्हस्थ्य जीवन के मगलमय भविष्य म उनका विश्वास नही। उसमे रहते हुए भी पुराना सस्कार, उन्हे थके हुए घाडे के लिए टूटा हुआ छकडा बन रहा है, वह जैसे उसे घसीट रहे हैं।

किन्तु मुकुन्दलाल के लिए यह अवस्था तभी होती है जब वह नन्दरानी को अपने जीवन के साथ मिलाकर देखते हैं। फिर जैसे अपन स्थान को लौटकर सितारी, मित्र वर्ग और उनके आतिथ्य-सत्कार मे लग जाते हैं।

नन्दरानी खिन्न होकर सो गई। उसन नही जाना कि कब शैला और इन्द्रदेव दूसरी ओर चले गये।

मुकुन्दलाल ने सोने के कमरे म जाते हुए देखा कि नन्दरानी अभी वही पडी

है। वह एक क्षण तक चुपचाप खडे रहे। फिर दासी का बुलाकर धीरे स कहा—कुछ और आढा दी। न जागे तो यहाँ आग भी सुलगा दा। देखा, परद ठीक से बाध देना। यहा गरम रहे, तुम्हारी मालकिन थक गई है। —फिर सोन चले गये।

दूसरे दिन, बरकतअली ने स्टाम्प इन्द्रदेव के पास भेज दिया और बाहर मिलने की आशा मे बैठा रहा। जब बारह बजन लगा तब घबडा कर काठी के बाहर निकल आया और आम के पेड के नीचे बैठी हुई एक स्त्री से उसने कहा—माँ जी! आज बैरिस्टर साहब एक काम मे फँसे हुए हैं। आप जाइए, कल आपका काम हो जायगा।

वह सिर झुकाये हुए बाली—कल कब आऊँ?

आठ बजे।

तब मैं जाती हूँ—कहकर स्त्री धीरे से उठी और बँगले के बाहर हा गयी।

अभी वह थोडी दूर सडक पर पहुँची होगी कि उसी फाटक से एक माटर उसक पीछे से निकली। उसका शब्द सुनकर, मोटर की आर देखती हुई, वह एक ओर हटी और उसन पहचान लिया, इन्द्रदव और शैला। उसन साहस स पुकारा—बहन शैला!

किन्तु शैला ने सुना नही। इन्द्रदेव माटर चला रहे थे। वह करुण पुकार दाना क कान मे नही पडी।

वह स्त्री धीरे धीरे फाटक म लौट आई, और आम के नीचे जाकर बैठ रही।

शैला जब रजिस्ट्री पर गवाही करके इन्द्रदव के साथ उस बँगल पर लौटी, ता उसे न जाने क्यो मानसिक ग्लानि होने लगी। वह हाथ-मुँह पोछकर बगीचे मे घूमन के लिए चली। एक छोटा-सा चमली का कुञ्ज था। उसम फूल नही थ। पत्तियाँ भी बिरल हो चली थी, वह रूखी-रूखी लता, लोहे के मोटे तारो से लिपट गई थी, तीव्र धूप म चाहे उसे कितना ही जलाता हो, फिर भी उसके लिए वही अवलम्ब था। किरणें उसम सहज प्रवेश करके उस हँसाने का उद्योग कर रही थी। शैला उस निस्सहाय अवस्था को तल्लीन होकर देख रही थी।

सहसा तितली ने उसके सामने आकर पुकारा—बहन! मैं कब स तुमका खोज रही हूँ। तुमको देखा और पुकारा भी, पर तुमने न सुना। सच है, ससार म सब मुँह माड लेते है! विपत्ति म किससे आशा की जाय।

शैला ने घूमकर देखा। यह वही तितली है? कई पखवारो म ही वह कितनी दुर्बल और रक्त-शून्य हो गई है। आँखे जैस निराशा-नदी के उद्गम-सी

बन गई है। बाहरी रूप-रेखा जैसे शून्य मे विलीन होने वाले इन्द्रधनुष-सी अपना वर्ण खो रही है। उस अभी अपन मानसिक विप्लव स छुट्टी नही मिली थी। फिर भी उसने सम्हलत हुए पूछा—तितली ! क्या हुआ है बहन ! तुम यहाँ कैसे !

वडे दु ख म पडकर मै यहाँ आई हूँ बहन ! मैं लुट गई ! —तितली की रूखी आँखो से आसू निकल पडे।

क्यो मधुबन कहाँ है। सुनने ही शैला ने पूछा।

पता नही। उस दिन गाँव म लाठी चली। रामजस को लोग मारन लगे। उन्होन जाकर रामजस को बचाया, जिसमे छावनी के कई नौकर घायल हो गये। पुलिस की तहकीकात म सब लागों ने उन्ही के विरुद्ध गवाही दी। थानेदार न रुपया माँगा। और मुकद्दमे के लिए भी रुपयो की आवश्यकता थी। महन्तजी के पास उन्हाने राजो को भेजा। राजो कहती थी कि महन्त ने उसके साथ अनुचित व्यवहार करना चाहा। इस पर वही छिपे हुए उन्होने महन्त का गला घोट दिया। राजो ता चली आई। पर उनका पता नही !

यहाँ तक ! और जब लडाई हुई, तब तुमने मुझे क्या नही कहला भेजा ? —शैला ने पूछा।

परन्तु तितली चुप रही। मेना के सम्बन्ध की बात, अपनी उदासी और राजो की सब कथा कहने के लिए जैसे उसके हृदय मे साहस नही था।

तब क्या किया जाय ? उनका पता कैसे लगेगा बहन ! इधर शेरकोट पर बेदखली हो गई है। और बनजरिया पर भी डिग्री हुई है, कोई रुपया देता नही। मुकदमा कैसे लडा जाय ? मुझे कोई सहायता नही देना चाहता। मैं तो सब ओर से गई। यहाँ कई वकीलो के पास गई। वे कहते है, पहले रुपया ले आओ, तब तुम्हारी बात सुनेंगे। फिर एक सज्जन ने बताया कि यही कही मिस्टर देवा नाम के एक सज्जन वैरिस्टर रहते है। वे प्राय दीन-दुखियो के मुकदम बिना कुछ लिये लड देते है। मैं उन्ही को खोजती हुई यहाँ तक पहुँची।

शैला घबरा गई। वह अभी तो इन्द्रदेव के सर्वस्व-त्याग करन का दृश्य देखकर आई थी। उसके मन मे रह-रहकर यही भावना हो रही थी, कि यदि मैं इन्द्रदेव को थोडा-सा भी विश्वास दिला सकती, तो उनके हृदय म यह भीषण विराग न उत्पन्न होता। वह फिर अपने को ही इन्द्रदेव की सासारिक असफलता मानती हुई मन-ही-मन कोस रही थी कि तितली का यह दुख से दग्ध ससार उसके सामने अनुनय की भीख माँगने के लिए खडा था। वह किस मुँह से इन्द्रदेव से उसकी सहायता के लिए कहे। यदि नही कहती है तो अपनी सब दुर्बल-

ताएँ तितली से स्वीकार करनी होगी। जिसको हम प्यार करते हैं, जिसके ऊपर अभिमान करने का ढोंग कई बार संसार में प्रचलित कर चुके हैं, उसके लिए यह कहना कि 'वह मुझसे अप्रसन्न है, मैं नहीं ' कितनी छोटी बात है! वह कैसे निराश करती। उसने तितली से कहा—अच्छा, ठहरो। मैं आज इसका कोई उपाय करूँगी! तितली! क्या यह जानती हो कि यह मिस्टर देवा कोई दूसरे नहीं, तुम्हारे जमींदार इन्द्रदेव ही हैं।

तितली सन्न हो गई। उसने अपने चारों ओर निराशा के सिन्धु को लहराते हुए देखा। वह रो पड़ी और बोली—बहिन! तब मुझे छुट्टी दो। मैं जाऊँ, कहीं दूसरी शरण खोजूँ।

प्यार से उसकी पीठ थपथपाते हुए शैला ने कहा—नहीं, तुम दूसरी जगह न जाओ, मैं आज अपनी ही परीक्षा लूँगी। तुमको यह नहीं मालूम कि आज ही उन्होंने अपनी जमींदारी का स्वत्व त्याग दिया है।

क्या कहती हो बहन!

हाँ तितली! इन्द्रदेव ने अपने एश्वर्य का आवरण दूर फेंक दिया है। वह भी आज हमी लोगों के-से श्रमजीवी-मात्र हैं। मुझे तुम्हारे लिए बहुत-कुछ करना होगा। गाँव का सुधार करने मैं गई थी। क्या एक कुटुम्ब की भी रक्षा न कर सकूँगी? चलो तुम मेरे कमरे में नहा-धोकर स्वस्थ हो जाओ। मैं इन्द्रदेव से पूछ कर तुमको बुलाती हूँ।

इतना कहकर शैला ने तितली का हाथ पकड़कर उठाया। और अपनी कोठरी में ले गई।

उधर इन्द्रदेव चाय की टेबल पर बैठे हुए शैला की प्रतीक्षा कर रहे थे। उनका हृदय हल्का हो रहा था। त्याग का अभिमान उनके मुँह पर झलक रहा था और उसमें छिपा था एक व्यंग भरा रूठने का प्रसंग। शैला भी क्या सोचेगी। मन में मनुष्य अपने त्याग से जब प्रेम को आभारी बनाता है तब उसका रिक्त कोश बरसे हुए बादलों पर पश्चिम के सूर्य के रत्नालोक के समान चमक उठता है। इन्द्रदेव को आज आत्मविश्वास था और उसमें प्रगाढ़ प्रसन्नता थी।

शैला आई और धीरे से एक कुर्सी खींचकर बैठ गई। दोनों ने चुपचाप चाय की प्याली खाली कर दी। फिर भी चुप! दोनों किसी प्रसंग की प्रतीक्षा में थे।

परन्तु इन्द्रदेव का हृदय तो स्पष्ट हो रहा था। उन्होंने चुप रहने की आवश्यकता न समझ कर सीधा प्रश्न किया—तो मैं समझता हूँ कि, कल तुम धामपुर जाओगी? आज तो यहीं कोठी पर रुकना पड़ेगा! क्योंकि मैंने तुम्हारा

अधूरा काम पूरा कर दिया है। उसे तो जाकर माँ से कहोगी ही! फिर समय कहाँ मिलेगा। कल सवेरे जाओगी। एँ।

शैला मेज के फूलदार कपडे पर छपे हुए गुलाब की पखुरियाँ नोच रही थी? सिर नीचा था और आँखे डवडबा रही थी। वह क्या वोले?

इन्द्रदेव ने फिर कहा—तो आज यही रहना होगा!

क्या तुम चाहते हो कि मैं अभी चली जाऊँ? —बडे दु ख से शैला ने उत्तर दिया।

यह लो, मैं पूछ रहा हूँ। नही-नही—मैं तो तुम्हारी ही वात कर रहा हूँ। तुम तो उसी दिन चली जा रही थी। मैंने देखा कि तुम अपना काम अधूरा ही छोडकर चली जा रही हो, इसीलिए रोक लिया था। अब तो मैं समझता हूँ कि तुम अपने ग्राम-सुधार की योजना अच्छी तरह चला लोगी। माँ को समझा देना कि जब इन्द्रदेव को ही अपने लिए सम्पत्ति की आवश्यकता नही रही, तब उन्ह चाहिए कि यह सचित सम्पत्ति अधिक-से-अधिक दीन-दु.खियो के उपकार मे लगाकर पुण्य और यश के भागी बनें।

तो, तुम अब भी गाँव के सुधार मे विश्वास रखते हो?

मेरे इस त्याग मे इस विचार का भी एक अश है शैला कि जब तक उस एकाधिपत्य से मैं अपने को मुक्त नही कर लेता, मेरी ममता उसके चारो ओर प्रेम की छाया की तरह घूमा करती। अब मेरा स्वार्थ उससे नही रहा। मै तो समझता हूँ कि गावो का सुधार होना चाहिए। कुछ पढ़े-लिखे सम्पन्न और स्वस्थ लोगो को नागरिकता के प्रलोभनो को छोडकर देश के गाँवो मे बिखर जाना चाहिए। उनके सरल जीवन मे—जो नागरिको के ससर्ग से विषाक्त हो रहा है। —विश्वास, प्रकाश और आनन्द का प्रचार करना चाहिए। उनके छोटे-छोटे उत्सवो म वास्तविकता, उनकी खेती में सम्पन्नता और चरित्र मे सुरुचि उत्पन्न करके उनके दारिद्रय और अभाव को दूर करने की चेष्टा होनी चाहिए। इसके लिए सम्पत्तिशालियो को स्वार्थ-त्याग करना अत्यन्त आवश्यक है।

किन्तु अधिकार रखते हुए तो उसे तुम और भी अच्छी तरह कर सकते थे। शक्ति-केन्द्र यदि अधिकारो के सचय का सदुपयोग करता रहे, तो नियन्त्रण भली-भाँति चल सकता है, नही तो अव्यवस्था उत्पन्न होगी। तुम्हारे इस त्याग का अच्छा ही फल होगा, इसका क्या प्रमाण है? मैं तो समझती हूँ कि तुमने किसी क्षोक म आकर यह कर डाला।

शैला की यह वात सुनकर इन्द्रदेव हँसने लगे। उसी हँसी मे अवहेलना भरी थी। फिर उन्होने कहा—ससार के अच्छे-से-अच्छे नियम और सिद्धान्त बनते

और बिगडते रहेगे। मैं सबको प्रसन्न और सन्तुष्ट रखन के लिए अपन-आपका जकडकर रखना नही चाहता। जो होना हो वह हो ले। मैंने जो अच्छा समझा, वही किया। अच्छा, तो अब अपनी कहा। क्या निश्चय हुआ ?

मैं कल जाना चाहती थी। पर अब तो कुछ दिनो क लिए रुकना पडा।

क्यो—कोई आवश्यक काम आ पडा क्या ?

हाँ, पहले मैं तुम्हारे त्याग की ही परीक्षा करूँगी, फिर दूसरो के किवाड खटखटाऊँगी।

शैला ! मुनू भी। मुझे क्या परीक्षा देनी है ?

तितली बडी विपत्ति म पडकर सहायता के लिए आई है। उसका शेरकोट बेदखल हो रहा है। बनजरिया पर भी लगान की डिग्री हो गई है। उधर आपक तहसीलदार ने एक फौजदारी करवा दी है, जिसमे मधुबन पर पुलिस न वारण्ट निकलवाया है। और भी, बिहारीजी के महन्त ने डाके का मुकदमा भी उस पर चलाया है। मधुबन का पता नही। तितली का कोई सहायक नही। उसके ब्याह के बाद ही गाव वाला का एक विरोधी-दल इन लोगो के विनाश का उपाय साच रहा था। हम लागो के हटत ही यह सब हा गया। क्या उसका तुम कानूनी सहायता दे सकोगे ?

एक सास म यह सब कहकर शैला उत्सुकता से उत्तर की प्रतीक्षा करन लगी। इन्द्रदेव चुप रहे। फिर धीरे-धीरे उन्होने कहा—मैं अब उस गाव के सम्बन्ध म कुछ करना नही चाहता! शैला ! तुम जानती हो कि इसका क्या फल हागा ?

मै सब जानती हूँ। पर तुम अभी कह रह थे कि मैं जाकर वहा सुधार का काम अधिक वेग स आरम्भ करूँ। यदि मरे कुछ समर्थको का इस तरह दमन हो जायगा, तो मैं क्या कर सकूगी ? अभी तो चकबन्दी के लिए कितने झगडे उठाये जायँगे। ता मैं समझ लू कि तुम मुझे कानूनी सहायता भी न दोगे !

मैं तो श्रमजीवी हूँ शैला ! मुझे जा भी फीस देगा, उसी का काम करने के लिए मुझे परिश्रम करना पडेगा।

तुमको फीस चाहिए ! क्या कहत हा इन्द्रदव ! इसालिए तितली की महायता करन म तुम आनाकानी कर रहे हा न ? —शैला की वाणी म वदना थी।

अपनी जीविका क लिए मै अब दूसरा काइ काम खाज लू। फिर और लागो का काम बिना कुछ लिए ही कर दिया करूँगा। तब तक क लिए क्या

तुम क्षमा नही कर सकती हो ? —इन्द्रदेव की मुक्तिमयी निश्चिन्त अवस्था व्यग कर उठी ।

शैला के हृदय मे जो आन्दोलन हो रहा था उसे और भी उद्वेलित करते हुए इन्द्रदेव ने फिर कहा—और यह पाठ भी ता तुम्ही से मैंने पढा है । उस दिन, तुमने जब मेरा प्रस्ताव अस्वीकार करते हुए कहा था कि 'काम किये विना रहना मेरे लिए असम्भव है, अपनी रियासत म मुझे एक नौकरी और रहने की जगह देकर बोझ से तुम इस समय के लिए छुट्टी पा जाओ,' तब तुम्हारी जो आज्ञा थी, वही तो मैंने किया । अपने इस त्यागपत्र मे नील-कोठी को सर्वसाधारण कामो —अर्थात् औपधालय, पाठशाला और हो सके तो ग्रामसुधार सम्बन्धी अन्य कार्यालय—के लिए, दान करते हुए मैंने एक निधि उसमे लगा दी है जिसका निरीक्षण तुमको ही आजीवन करना होगा । उसके लिए तुम्हारा वेतन भी नियत है । इसके अतिरिक्त ।

ठहरो इन्द्रदेव ! क्या तुम मुझे बन्दी बनाना चाहते हो ? मैं यदि अब वह काम न करूँ तो ? —बीच ही मे रोककर शैला ने पूछा ।

नही क्यो ? तुमने मुझे जो प्रेरणा दी है, वही करके भी मैं क्या भूल कर गया ? और तुमने तो उस दिन दीक्षा लेते हुए कहा था कि 'तुम्हारे और समीप होने का प्रयत्न कर रही हूँ,' तो क्या यह सब करके भी मैं तुम्हारे समीप होने नही पाऊँगा ?

क्यो नही ? —कहते हुए सहसा नन्दरानी ने उसी कमरे म प्रवेश किया ।

शैला और इन्द्रदेव दोनो ही जैसे एक आश्चर्यजनक स्वप्न देखकर ही चौंक उठे ।

फिर नन्दरानी ने हँसते हुए कहा—मिस शैला, आप मुझे क्षमा करेंगी । मैं अनधिकार प्रवेश कर आई हूँ । इन्द्रदव से क्षमा माँगने की तो मैं आवश्यकता नही समझती ।

इन्द्रदेव जैसे प्रकृतिस्थ होकर बोले—बैठिए भाभी ! आप भी क्या कहती हैं ।

शैला ने लज्जा स अब अवसर पाकर नन्दरानी को नमस्कार किया । नन्दरानी न हँसकर कहा—ता मैं तुम दाना को ही आशीवाद देती हूँ, यह जोडी सदा प्रसन्न रहे ।

अभिमान स भरा हुआ शैला का हृदय अपने को ही टटाल रहा था—क्या मेरे समीप आने के लिए ही इन्द्रदेव का वह त्याग है ?—यह प्रश्न भीतर-भीतर स्वय उत्तर बन गया ।

शैला ने नन्दरानी की प्रसन्न आकृति मे विनोद की मात्रा देखी, वह क्षण भर के लिए अपने को वास्तविक जगत मे देख सकी। उसने एक साँस मे निश्चय किया कि 'हा' कह दूं। किन्तु अब प्रस्ताव करने मे कौन आगे बढे ? वह लज्जा और आनन्द से मुस्कुरा उठी।

नन्दरानी ने भाव पहचानते ही कहा—मिस शैला ! जब तुम इन्द्रदेव को बहुत दूर तक अपने पथ पर खीच लाई हो, तब यो अकेले छोड देना क्या कायरता नही ? बोलो, मैं किस दिन अपने इष्ट-मित्रों को निमंत्रित करूँ ? मुझे इन्द्रदेव का ब्याह करने का अधिकार है। मैं उनकी कुटुम्बिनी हूँ। अब मुझे केवल तुम्हारी स्वीकृति चाहिए।

शैला का सिर नीचे झुका हुआ था। उसकी ठुड्डी उठाकर नन्दरानी ने कहा—अब बहाना करने से काम नही चलेगा। कहो 'हाँ', बस मैं सब कर लूंगी।

बहन ! मैं स्वीकार करती हूँ। परन्तु इधर मेरे मन की जो दशा है, वह जब तक तितली का कुछ उपाय...।

चुप भी रहो; तितली, बुलबुल, कोयल, सबो का स्वागत होगा। पहले वसत का उत्सव तो होने दो। मैं तितली को अपने पास रखूंगी। और इन्द्रदेव को उसकी सहायता करनी होगी।

शैला को चुप देखकर फिर नन्दरानी ने कहा। इन्द्रदेव ! तुम बोलते क्यो नही ? क्या मैं तुम्हारी वकालत करूँ और तुम बुद्ध बैरिस्टर बन कर बैठे रहो ?

इन्द्रदेव हँसकर बोले—भाभी ! ससार मे कई तरह के न्यायालय होते है। आज जिस न्यायालय मे खडा हूँ, वहाँ आप जैसे वकीलो का ही अधिकार है।

तो फिर मैं ही तुम्हारी ओर से स्वीकृति देती हूँ। कल अच्छा दिन है। यही मेरे बँगले मे यह परिणय होगा। इन्द्रदेव, तुम्हारा महत्त्वपूर्ण आडम्बर हट गया है, तब तुम अपने मनुष्य के रूप मे वास्तविक स्वतन्त्रता का सुख लो। केवल स्त्री और पुरुष ही का सयोग जटिलताओ से नही भरा है। ससार के जितने सम्बन्ध-विनिमय है, उनमे निर्वाह की समस्या कठिन है। तुम जानते हो कि मैंने उसका त्यागपत्र फाड कर फेंक दिया और रजिस्ट्री कराने के लिए उन्हे नही जाने दिया उनसे सब अधिकार लेकर मैं उनको अपदस्थ करके नही रखना चाहती। वे मेरे देवता हैं। उनकी बुराइयाँ तो मैं देख ही नही पाती हूँ। हाँ, अर्थ-सकट है सही, पर यही उनकी मनुष्यता है। धोखा देकर कई बार उनसे कुछ ध्वंस लेने वाले मित्र भी फिर उनसे कुछ ले लेने की आशा रखते हैं। क्या यह मेरे गौरव की

वस्तु नही है ? मैंन उसका त्यागपत्र अस्वीकार कर दिया है, परन्तु अब मैं अर्थ सचिव बन गई हूँ। अब वे सीधे मेरे पास सब कुछ भेज देते हैं। मैं कहती हूँ कि पुरुष और स्त्री को ब्याह करना ही चाहिए। एक-दूसरे के सुख-दुख और अभाव आपदाओ को प्रसन्नता मे बदलने के लिए सदैव प्रयत्न करना चाहिए। इसीलिए तुम दोना को मैं एक म बाँध देना चाहती हूँ।

शैला ने इन्द्रदेव की ओर जिज्ञासा भरी दृष्टि से देखा। इन्द्रदेव ने मिसिर को पुकार कर कहा—देखो, तितली नाम की एक स्त्री बाहर है, उसे बुला लाओ।

तितली आई। उसने नमस्कार किया। इन्द्रदेव ने कुर्सी दिखलाकर कहा—बैठो।

सहसा उनके मन मे वह बात चमक गई जो उनके और तितली के ब्याह के लिए धामपुर म एक बार अदृष्ट का उपहास बनकर फैल गई थी। फिर प्रकृतिस्थ होकर, तितली के बैठ जाने पर, इन्द्रदेव न कहा—मुझे तुम्हारी सब बात मालूम हैं। मैं सब तरह की सहायता करूँगा। किन्तु जब मधुबन इस समय कहो जाकर छिप गया है, तब सोच-समझ कर कुछ करना होगा। मैं उसका पता लगान का प्रयत्न करूँगा। और रह गया शेरकोट, उसका कागज मैं देख लूंगा तब कहूँगा। बनजरिया का लगान जमा करवा दूँगा। फिर उसका भी प्रवन्ध कर दिया जायगा। तब तक तुम यही रहो। क्या शैला! कल क लिए तुम तितली का निमत्रित न करोगी ?

तितली न चुपचाप सुन लिया। शैला ने कहा—तितली! कल के लिए, मेरी ओर से निमन्त्रण है, तुमको यही रहना होगा।

तितली के मुह पर उस निरानन्द म भी एक स्मित-रेखा झलक उठी।

दूसरे दिन वैवाहिक उत्सव क समाप्त हो जाने पर, तितली वहाँ स विना कुछ कहे सुने कही चली गई। शैला और इन्द्रदेव दाना ही उसको बहुत खोजते रहे।

८

चुनार की एक पहाडी कन्दरा म रहते हुए, मधुवन को कई सप्ताह हो चुके थे। वह निस्तब्ध रजनी मे गगा की लहरो का, पहाडी के साथ टकराने का, गम्भीर शब्द सुना करता। उसके हृदय म भय, क्रोध और घृणा का भयानक सघर्ष चला करता। उसके जीवन म आरम्भ से ही अभाव था, पर वह उसे उतना नही अखरता था जितना यह एकान्तवास। सब कुछ मिलाकर भी जैसे उसके हाथ से निकल गया। छोटी-सी गृहस्थी, उसमे तितली-सी युवती का सावधानी से भरा हुआ मधुर व्यवहार; और भी भविष्य की कितनी ही मधुर आशाएँ सहसा जैसे आने वाले पतझड के झपेटे मे पडकर पत्तियो की तरह बिखर कर तीन-तेरह हो गईं।

वह अपने ही स्वार्थ को देखता, दूसरा के पचडे मे न पडा होता, तो आज यह दिन देखने की बारी न आती। उसने मन-ही-मन विचार किया कि समूचा जगत मेरे लिए एक षड्यन्त्र रच रहा था। और मूर्ख मैं, एक भावना मे पडकर, एक काल्पनिक महत्त्व के प्रलोभन मे फँसकर, आज इस कष्ट मे कदर्थित हो रहा हूँ।

उसके जीवन का गणित भ्रामक नही था। और फल अशुद्ध निकलता दिखाई पड रहा है। तब यह दोष उसका हो ही नही सकता। नही, इसमे अवश्य किसी दूसरे का हाथ है!

मुझे पिशाच के भयानक चगुल मे फँसाकर सब निर्विघ्न आनन्द ले रहे हैं। कौन। राजो...तितली...मैना...सुखदेव .तहसीलदार ..और शैला ! सब चुप चाप ? तब मैं कितने दिनो तक छिपा-छिपा फिरूँगा ? और शेरकोट, बनजरिया, उसम तितली का सुन्दर-सा मुख—सोचते-सोचते उसे झपकी आ गई। भूख से भी वह पीडित था। दिन ढल रहा था; परन्तु जब तक रात न हो जाय, बाजार तक जाने म वह असमर्थ था। उसकी निद्रा स्वप्न को खीच लाई।

उसने देखा—तितली हँसती हुई अपनी कुटिया के द्वार पर खडी है। उधर से इन्द्रदेव घाटे पर उसी जगह आकर उतर गय। उन्होंने तितली से कुछ पूछा

और तितली ने मन्द मुस्कान के साथ न जाने क्या उत्तर दिया। इन्द्रदेव प्रसन्न-से फिर घोडे पर चढकर चले गये।

उस समय अपने को उसने घुमची की लता की आड म पाया। वह छिपकर देख रहा है। —हाँ।

फिर मुखदेव आता है। वह भी तितली से बात करके चला जाता है। स्वप्न की सध्या दिन को ढुलका कर रात को बुला लाई। अँधेरा हो गया। तारे निकल आये। उसे फुसफुसाहट सुनाई पडी। तितली अपने अचल मे दीप लिये किसी को पथ दिखलाने के लिए खडी है। उसका मुख धूमिल है। वह घबराई-सी जान पडती है।

दूसरा दृश्य, अन्धकार म और भी मलिन, कलुषपूर्ण हृदय की भूमिका मे अत्यन्त विकृत होकर प्रतिभासित हो उठा। शेरकोट—खँडहर, उसम भीतरी यह लिपि-पुती चूने से चमकीली एक छोटी-सी कोठरी। और राजो बन ठन कर बैठी है। क्यो? किवाड बन्द है। भीतर ही वह शीशे मे अपना रूप देख रही है। बाहर किवाडा पर खट-खट का शब्द होता है। वह मुस्कुराकर उठ खडी होती है।

स्वप्न देखते हुए भी मधुबन और वल पूर्वक पलको को दबा लेता है। आँखें जो बन्द थी, वह मानो फिर से बन्द हो जाती हैं। आगे का दृश्य देखने मे वह असमर्थ है।

तव, वह पुरुष है। उसको मान के लिए मर मिटना चाहिए, परन्तु यह नीच व्यापार यो ही चलता रहे। कुत्सित प्राणियो का कालिमापूर्ण .नही अब नही। ससार उसको अपने एक कोने म, सुख नही, आनन्द नही, किसी तरह जीवन को बिता लेने के लिए भी अवसर नही देना चाहता। तो जिनको मैं परम प्रिय मानता हूँ, उनका अपमान, चाहे वह उन्ही की स्वीकृति से हो रहा हो—नहीं होने दूँगा। नही—वह सपने का वीर हुङ्कार कर उठा।

पहले तितली ही—हाँ, उसी का गला घोंटना होगा। उसे प्यार करता हूँ। नही तो ससार मे न जाने क्या कहाँ हो रहा है, मुझे क्या? नही, तितली को मेरी रक्षा के बाहर ससार मे जाने से अपमान, कुत्सा और दु ख भोगना पडेगा। मैं चढूँगा फाँसी पर और चढने के पहले एक बार सबको जी खोलकर गाली दूँगा। ससार को—हाँ, इसी पाजी, नीच और कृतघ्न ससार को—जिसने मेरा मूल्य नही समझा और मुझे हाहाकार मे व्यथित देखकर धीरे-धीरे मुस्कुराता हुआ अपनी चाल पर चला जा रहा है ..यह क्या रहने के उपयुक्त है? तब .. ठीक तो. अन्धकार है।

वह फिर उसी बनजरिया म घुसता है।

फिर तितली का भोला-सा सुन्दर मुख !

उसका साहस विचलित होता है। शरीर कांपने लगता है और आँखे खुल जाती हैं। वह पसीने से तर उठ बैठता है।

दिन ढल चुका है। वह धीरे-धीरे अपनी कन्दरा से बाहर आया। गगा की तरी मे खेत सुनसान पडे थे। फसल कट चुकी थी। दूर पर किले की भद्दी प्राचीर ऊँची होकर दिखाई पडी। वह धीरे-धीरे बाजार की ओर न जाकर किले की ओर चला। सूर्य डूब रहे थे। अभी कोयले से भरी हुई छोटी-छोटी हाथ-गाडियाँ रिफार्मेटरी के लडके ढकेल रहे थे। मधुबन ने आँख गडाकर देखा, वह, वह, रामदीन तो नही है। है तो वही।

वह वेग से चलने लगा और रामदीन के पास जा पहुँचा। उसने कहा—रामदीन !

रामदीन ने एक बार इधर-उधर देखा, फिर जैसे प्रकृतिस्थ हो गया। इधर कई महीना से वह धामपुर को भूल गया था। उसे अच्छा खाना मिलता। काम करना पडता। तब अन्य बातो की चिन्ता क्यो करे ? आज सामने मधुबन ! क्षण भर म उसे अपने बन्दी-जीवन का ज्ञान हो गया। वह स्वतन्त्रता के लिए छटपटा उठा।

मधुबन बाबू ! —वह चीत्कार कर उठा।

क्या तू छूट गया रे, नौकरी कर रहा है ?

नही तो, वही जेल का कोयला ढो रहा हूँ।

और कौन है तेरे साथ ?

कोई नही, यही अन्तिम गाडी थी। मैं ले जा रहा हूँ और लोग आगे चले गये है।

दूर पर प्रशान्त सन्ध्या की छाती को धडकाते हुए कोई रेलगाडी स्टेशन की ओर आ रही थी। बिजली की तरह एक बात मधुबन के मन म कौंध उठी। उसने पूछा—मैं कलकत्ता जा रहा हूँ—तू भी चलेगा ?

रामदीन—नटखट रामदीन ! अवसर मिलने पर कुछ उत्पात—हलचल—उपद्रव मचाने का आनन्द छोडना नही चाहता। और मधुबन तो ससार की व्यवस्था के विरुद्ध हो ही गया था। रामदीन ने कहा—सच ! चलूँ ?

हाँ, चल !

रामदीन ने एक बार किले की धुँधली छाया को देखा और वह स्टेशन की ओर भाग चला। पीछे-पीछे मधुबन !

गाडी के पिछले डब्बे प्लेटफार्म के बाहर लाइन मे खडे थे। प्लेटफार्म के ढालुवे छोर पर खडे होकर गार्ड ने धीरे-धीरे हरी झडी दिखाई। उस जगह पहुँचकर भी मधुबन और रामदीन हताश हो गये थे। टिकट लेने का समय नही। गाडी चल चुकी है, उधर लौटने से पकडे जाने का भय। गार्ड वाला डब्बा गार्ड के समीप पहुँचा। दूर खडे स्टेशन-मास्टर से कुछ सकेत करते हुए अभ्यस्त गार्ड का पैर, डब्बे की पटरी पर तो जा पहुँचा; पर वह चूक गया! दूसरा पैर फिसल गया। दूसरे ही क्षण कोई भयानक घटना हो जाती, परन्तु मधुबन ने बडी तत्परता से गार्ड को खीच लिया। गाडी खडी हुई। स्टेशन पर आकर गार्ड ने मधुबन को दस रुपये का एक नोट देना चाहा। उसने कहा—नही, हम लोग देहाती है, कलकत्ता जाना चाहते है। गार्ड ने प्रसनता से उन दोनो को अपने डब्बे मे बिठा लिया।

गाडी कलकत्ता के लिए चल पडी।

उसी समय बनजरिया मे उदासी से भरा हुआ दिन ढल रहा था। सिरिस के वृक्ष के नीचे, अपनी दोनो हथेलियो पर मुँह रखे हुए, राजकुमारी, चुपचाप आँसू की बूँदे गिरा रही थी। उसी के सामने, बटाई के खेत मे से आये हुए, जौ-गेहूँ के बोझ पडे थे। गऊ उसे सुख से खा रही थी। परन्तु राजकुमारी उसे हाँकती न थी।

मलिया भी पीठ पर रस्सी और हाथ म गगरी लिये पानी भरने के लिए दूसरी ओर चली जा रही थी।

राजकुमारी मन-ही-मन सोच रही थी—मैं ही इन सब उपद्रवो की जड हूँ। न जाने किस बुरी घडी म, मेरे सीधे-सादे हृदय मे, ससार की अप्राप्त सुख-लालसा जाग उठी थी, जिससे मेरे सुशील मधुबन के ऊपर यह विपत्ति आई। तितली भी चली गई। उसका भी कुछ पता नही। सुना है कि कल तक लगान का रुपया न जमा हो जायगा, तो बनजरिया भी हम लोगो को छोडना पडेगा। हे भगवान!

वैशाख की सन्ध्या आई। नारगी के हल्के रग वाले पश्चिम के आकाश के नीचे, सन्ध्या का प्राकृतिक चित्र मधुर पवन से सजीव हो हिल रहा था। पवन अस्पष्ट गति से चल रहा था। उसमे अभी कुछ-कुछ शीतलता थी! सूर्य की अन्तिम किरणे भी डूब चुकी थी, किन्तु राजकुमारी की भावनाओ का अन्त नही!

सहसा तितली ने पास आकर कहा—मलिया कहाँ गई ? जीजी ! क्या तुमने गऊ के ही खाने के लिए इतना-सा बोझ यहाँ डाल दिया है ?

वही दृढ़ स्वर ! वही अविचल भाव !

राजो ने चौंककर उसकी ओर देखा—तितली ! तू आ गई ! मधुबन का पता लगा ? मुकदमे मे क्या हुआ ?

कही पता नही लगा। और न तो उनके बिना आये मुकदमा ही चलता है। तब तक हम लोगो को मुँह सीकर तो रहना नही होगा जीजी ! जीना तो पडेगा ही, जितनी साँसे आने-जाने को हैं, उतनी चल कर ही रहेगी। फिर यह क्या हो रहा है ? कहकर उसने गऊ को हाँकते हुए अपनी छोटी-सी गठरी रख दी।

आग लगे ऐसे पेट मे। जीकर ही क्या होगा। भगवान मुझे उठा ही लेते, तो क्या कोई उनको अपराध लगता ! मैं तो !

मैं भी तुम्हारी-सी ही बात सोचकर छुट्टी पा जाती जीजी ! पर क्या करूँ, मैं वैसा नही कर सकती। मुझे तो उनके लौटने के दिन तक जीना पडेगा। और जो कुछ वे छोड गये हैं, उसे सम्हाल कर उनके सामने रख देना होगा।

तितली की प्रशान्त दृढता देखकर राजो झल्ला उठी। वह मन-ही-मन सोचने लगी—पढी-लिखी स्त्रियाँ क्या ऐसी ही होती हैं ? इतनी विपत्ति मे भी जैसे इसको कुछ दुख नही ! न जाने इसके मन मे क्या है !

मनुष्य इसी तरह प्राय दूसरे को समझा करता है। उसके पास थोडा-सा सत्यांश और उस पर अनुमानो का घटाटोप लादकर वह दूसरे के हृदय की ऐसी मिथ्या मूर्ति गढ कर ससार के सामने उपस्थित करते हुए निस्सकोच भाव से चिल्ला उठता है कि लो यही है वह हृदय, जिसको तुम खोज रहे थे। मूर्ख मानवता !

राजकुमारी ने एक वार और भी किया—तितली ! कल लगान का रुपया न जमा होने से बनजरिया भी जायगी।

तितली ने गठरी खोल कर अपना कडा, और भी दो-एक जो अँगूठी-छल्ला था, राजकुमारी के सामने रख दिया।

राजो ने पूछा—यह क्या ?

इसको बेच कर रुपये लाओ जीजी। लगान का रुपया देकर जो बचे उससे एक दालान यही बनवाना होगा। मैं यहाँ पर कन्या-पाठशाला चलाऊँगी। और खेती के सामान मे जो कुछ कमी हो, उसे पूरा करना होगा। गाये बेच दो।

आवश्यकता हो तो बैल खरीद लेना। तुम देखा खेती का काम, और मैं पढाई करूँगी। हम लोगा का इस भीषण ससार से तब तक लडना होगा, जब तक व लौट नही आते।

फिर ठहर कर तितली न कहा—जी मिचलाता है, थोडा जल दो जीजी!

अन्त सत्वा तितली के उस उत्साह भर पीले मुंह का राजा आश्चर्य स दख रही थी। मलिया ने आकर उसका पैर छू लिया। बनजरिया म दिया जल उठा।

चतुर्थ खण्ड

१

मधुबन और रामदीन दोनो ही, उस गार्ड की दया स लोको आफिस म कोयला ढाने की नौकरी पा गये। हबडा के जनाकीर्ण स्थान मे उन दोनो ने अपने को एसा छिपा लिया, जैस मधु-मक्खिया के छत्ते म कोई मक्खी। उन्ह यहा कौन पहचान सकता था। सारा शरीर काला, कपडे काले और उनके लिए ससार भी काला था। अपराध करके वे छिपना चाहते थे।

ससार मे अपराध करके प्राय मनुष्य अपराधा को छिपाने की चेष्टा नित्य करते है। जब अपराध नही छिपते तब उन्हे ही छिपना पडता है। और अपराधी ससार उनकी इसी दशा से सन्तुष्ट हाकर अपने नियमो की कडाई की प्रशसा करता हैं। वह बहुत दिना से सचेष्ट है कि ससार से अपराध उन्मूलित हा जायँ। किन्तु अपनी चेष्टाओ से वह नये नये-नये अपराधा की सृष्टि करता जा रहा है।

हाँ, तो व दोनो अपराधी थे। कोयले की राख उनक गालो और मस्तक पर लगी रहती, जिसमे आँखे विलक्षणता से चमका करती। मधुबन प्राय रामदीन से कहा करता—जैसा किया उसका फल तो खूब मिला। मुँह म कालिख लगाकर देश-निकाला इसी को न कहते हैं?

भइया, सबका दिन बदलता है। कभी हम लोगो का दिन पलटेगा—रामदीन ने कहा।

उस दिन दोना को छुट्टी मिल गई थी। उनके टीन से बन मुहल्ले म अभी सन्नाटा था। अन्य कुली काम पर स नही आये थे। सूर्य की किरणे उनकी छाजन के नीचे हो गई थी। उनका घर पूर्व के द्वार वाला था। सामने एक छोटा-सा गढा था, जिसम गँदला पानी भरा था। उसी म वे लोग अपने बरतन माँजते थे। एक बडा-सा ईंटा का ढेर वही पडा था, जो चौतरे का काम दता है। मधुबन मुँह साफ करने के लिए उसी गढ़े के पास आया। घृणा से उसको रोमाच

हो आया। उसकी आँखों में ज्वाला थी। शरीर भी तप रहा था। ज्वर के पूर्व लक्षण थे। वह अंजली मे पानी भरकर उँगलियों की सधि से धीरे-धीरे गिराने लगा। रामदीन एक पीतल का तसला माँज रहा था। वहाँ चार ईंटो की एक चौकी थी। चिरकिट उस चौकी पर अपना पूर्ण अधिकार समझता था। वह जमादार था। आज उसके न रहने पर ही रामदीन वही बैठकर तसला धो रहा था।

मधुवन ने कहा—रामदीन, उस बम्बे से आज एक बाल्टी पानी ले आओ। मुझे ज्वर हो आया है। उसमे से एक लोटा गरम करके मेरे सिरहाने रख देना! मैं सोने जाता हूँ।

भइया, अभी तो किरन डूब रही है। तनिक बैठे रहो। अभी दीया जल जाने दो।—रामदीन ने अभी इतना ही कहा कि चिरकिट ने दूर से ललकारा—

कौन है रे चौतरिया पर बैठा ?

रामदीन उठने लगा था। मधुबन ने उसे बैठे रहने का सकेत किया। वह कुछ बोला भी नही, उठा भी नही। चिरकिट यह अपमान कैसे सह सकता। उसने आते ही अपना बरतन रामदीन के ऊपर दे मारा। मधुबन को कोयले की कालिमा से जितनी घृणा थी, उससे अधिक थी चिरकिट के घमण्ड से। वह आज कुछ उत्तेजित था। मन की स्वाभाविक क्रिया कुछ तीव्र हो उठी। उसने कहा—यह क्या चिरकिट ! तुमने उस बेचारे पर अपने जूठे बरतन फेक दिये !

फेक तो दिये, जो मेरे चौतरिया पर बैठेगा वही इस तरह...वह आगे कुछ कह न सके, इसलिए मधुबन ने कहा—चुप रहो—चिरकिट तुम पाजीपन भी करते हो और सबसे टर्राते हो ! वह बरतन माँजकर ईंटे नही उठा ले जायगा। हट जाता है तो तुम भी माँज लेना।

नही, उसको अभी हटना होगा।

अभी तो न हटेगा। गरम न हो। बैठ जाओ। वह देखो, तसला धुल गया।

क्रोध से उन्मत्त किरकिट ने कहा—यहाँ धाँधली नही चलेगी। ढोयेंगे कोयला, बनेंगे ब्राह्मण-ठाकुर। तुम्हारा जनेऊ देखकर यहाँ कोई न डरेगा। यह गाँव नहीं है, जहाँ घास का बोझ लिये जाते भी तुमको देखकर खाट से उठ खड़ा होना पड़ेगा !

मधुबन ने अपने छोटे कुर्ते के नीचे लटकते हुए जनेऊ को देखा, फिर उस चिरकिट के मुँह की ओर। चिरकिट उस विकट दृष्टि को न सह सका। उसने मुँह नीचे कर लिया था, तब भी झापड़ लगा ही। वह चिल्ला उठा—अरे मनवा, दौड रे ! मार डाला रे !

कुली इकट्ठे हो गये। मधुबन उन सबो मे अविचल खडा रहा। उसने सोचा कि "अभी समय है। यदि झगडा बढा और पुलिस तक पहुँचा तो फिर. .?" क्षण भर मे उसने कर्त्तव्य निश्चित कर लिया। कडककर बोला—सुनो चिरकिट ! समय पडन पर मेहनत-मजूरी करके खाने से जनेऊ नीचा नही हो जायगा। आज से फिर कभी तुम ऐसी बात न बोलना, और तुमको मेरा यहाँ रहना बुरा लगता हो तो लो, हम लोग चले। जहाँ हाथ-पैर चलावेंगे वही पसा लेंगे।

रामदीन समझ चुका था। उसने कम्बल की गठरी बाँधी; दोनो चले। मधुबन को रोककर कुलियो को उससे झगडा करने का उत्साह न हुआ। उसकी भी कलकत्ते मे रहने की इच्छा थी। हावडा के पुल पर आकर उसने एक नया ससार देखा। जनता का जगल ! सब मनुष्य जैसे समय और अवकाश का अतिक्रमण करके, बहुत शीघ्र, अपना काम कर डालने मे व्यस्त हैं। वह चकित-सा चला जा रहा था। घूमता हुआ जब मछुआ बाजार के भीड से आगे बढा तो उसको ज्वर अच्छी तरह हो आया था। फिर भी उसे विश्राम के लिए इस जनाकीर्ण नगर मे कही स्थान न था।

पटरी पर एक जगह भीड लग रही थी। एक लडका अपनी भद्दी सगीत-कला से लोगो का मनोरजन कर रहा था। रामधारी पाडे एक मारवाडी कोठी का जमादार था। उसके साथ दस-बारह बलिष्ठ युवक रहते थे। उसके नाम के लिए तो नौकरी थी, परन्तु अधिक लाभ तो उसको इन नवयुवको के साथ रहने का था। सब लोग, इस कानून के युग मे भी, बाहुबल से कुछ आशा, भय और सहानुभूति रखते थे। सुरती-चूना मलते हुए प्राय. तमोली की दूकान पर वह बैठा दिखाई पडता और एक-न-एक तमाशा लगाये रहने से बाजार उसके बहुत-से काम सधा करते थे। रहीम नाम का एक बदमाश मछुआ मे उन दिनो बहुत तप रहा था। इसीलिए रामधारी की पाँचो उँगलियाँ घी मे थी !

रहीम के दल का ही वह लडका था। उसका काम था कही भी खडे होकर नाच-गाकर कुछ भीड इकट्ठी कर लेना। उसी समय उसके अन्य साथी गिरहकट लडके जेब कतरते थे। उन सबो की रक्षा के लिए रहीम के दो-एक चर भी रहते थे, जा आवश्यकता होने पर दो-चार हाथ इधर-उधर चलाकर लडको के भागने मे सहायता करते थे। रामधारी और रहीम म सन्धि थी। साधारण बातो पर वे लोग कभी झगडते न थे। जिनसे पूरी थैली मिलती, उनके लिए कभी-कभी दो-चार खोपडियो का रक्त निकाल दिया जाता था, वह भी केवल दिखाने के लिए !

कलकत्ता मे यह व्यापार खुली सडक पर चला करता। हाँ, तो वह लडका

गा रहा था। भीड इकट्ठी थी। काइ अच्छी-सी ठुमरी का टुकडा, उसके कामल कठ स निकलकर, लागो का उलझाए था। इतन हा म भीड क उसी आर, जिधर मधुवन खडा था, गडबडी मची। किसा मारवाडी युवक का जब कटा। उसन गिरहकट का हाथ नाट क पुलिन्दा क साथ पकडा, साथ ही चमड के हण्टर की गाँठ उसक सिर पर बैठी। वह अभी तिलमिला ही रहा था कि रामधारी न दखा कि उस युवक की काठी से कुछ मिलता है। अब उसका बालना बन्द हा गया। उसन 'हाँ हाँ' करते हुए उछल कर मारन वाला का पकड हा लिया। फिर भी पाडे न भूल की। उसका काई साथी वहाँ न था। उधर रहीम क दल वाले वहाँ उपस्थित थ। फिर क्या, चल गई। रामधारी पूरी तरह स घिर गया, और वह अधेड भी था। तब भी उसकी वीरता दखते ही बनी। मधुवन तो इस अवसर स अपन का कभी वचित नही कर सकता था। वह भी एक कोना पकडकर यह दृश्य दखन लगा। तीन-चार मिनट म एक काण्ड हो गया। कई दर्शका क भी सिर फटे और रामधारी कले क छिलक पर फिसलकर गिर चुका था। सहसा मधुवन न रहीम क दल वाल क हाथ स लकडी छीन ली और उधर नटखट रामदीन ने उस लडके क हाथ स नाटा का बडल पहल ही झटक लिया था। मधुबन न जब रहीम क दल का भागन के लिए बाध्य किया, तब तक रामधारी के साथी और उधर स रहीम के दल वाल और भी जुट गय थे। इतन म पुलिस का हल्ला भी पहुचा।

अब तक जा युवक चुपचाप बडी तन्मयता से मधुबन के शरीर और उसके लाठी चलान को देख रहा था, उसके पास आकर बोला—तुम पकडे जाना न चाहत हा तो मेरे साथ आओ।

मधुबन समझ गया। युवक के पीछे मधुबन और रामदीन एक दूसरी गली मे घुस गय।

उस गली के भीतर भी, कितन मोडो स घूमते हुए वे लोग जब एक छाटे स घर के किवाडो को खालकर भीतर घुसे तो मधुबन ने देखा कि यहाँ दरिद्रता का पूरा साम्राज्य है। एक गगरी म जल और फटे हुए गूदड का बिछावन, बस और कुछ नही।

युवक न कहा—मै समझता हूँ कि तुमका नोटा की आवश्यकता नही है, क्याकि उन्ह लेकर जब तुम कही भुनाने जाओगे, तुरन्त वही पकड लिए जाओगे, इसलिए उन्ह ता मरे पास रख छोडा। और लो यह पाँच रुपये। अपने लिए सामान रखकर दो-चार दिन यही काठरी मे पडे रहो। फिर देखा जायगा।

इतना कहकर उसन एक हाथ ता नोटो के लने क लिए बढाया और दूसर

से पाच रुपये देने लगा। मधुबन चकित होकर उसका मुंह देखने लगा—कैसे नोट ?

इतन मे रामदीन ने नोटो का बडल निकालकर सामने रख दिया। मधुबन ने पूछा—अरे तून इतने नोट कहाँ से पाये ? क्या उससे तूने छीन लिया पाजी ! क्या फिर यहाँ चोरी म पकडवायेगा।

यह है कलकत्ता ! मालूम होता है कि तुम लाग अभी नय आय हा। भाई यहाँ ता छीना-झपटी चल ही रही है। तुम्ह धर्म के नाम पर भूख मरना हो तो चल जाओ गगा-किनार। लाखा पर हाथ साफ करक सवरे नहाने वाले किसी धार्मिक की दृष्टि पड जायगी तो दो-एक पाई तुम्हे दे ही देगा। नही ता हाथ साफ करो, खाओ पियो, मस्त पडे रहो।

मधुबन आश्चर्य स उसका मुंह दख रहा था। युवक ने धीरे ही स नाटो के बडल को उठात हुए फिर कहा—आनन्द से यही पडे रहो। देखो, उधर जा काठ का टूटा सन्दूक है, उसे मत छूना। मैं कल फिर आऊँगा। काइ पूछे तो कह देना कि वीरू बाबू न मुझे नौकर रखा है। बस।

वह युवक फिर और कुछ न कहकर चला गया। मधुबन हक्का-बक्का-सा स्थिर दृष्टि से उस भयानक और गदी कोठरी को दखन लगा। उसका सिर घूम रहा था। वह किस भूलभुलैया मे आ गया। 'यह किस नरक मे जान का द्वार है ? यही वह बार-बार अपने मन स पूछ रहा था। उसन परदश म फिर वही मूर्खतापूर्ण काय क्या किया, जिसके कारण उस घर छोडकर इधर-उधर मुंह छिपाना पड रहा है। मरता वह, मुझे क्या जो दूसरे का झगडा माल लेकर यहा भी वही भूल कर बैठा जो धामपुर म एक बार कर चुका था। उसे अपन ऊपर भयानक क्राध आया। उसके घाव भी ठढे हाकर दुख रहे थ। रामदीन भी सन्न हो गया था। फिर भी उसका चचल मस्तिष्क थोडी ही देर म काम करने लगा। उसने धीरे से एक रुपया उठा लिया, और उस घर के बाहर निकल गया।

मधुवन अपनी उधेडबुन म बैठा हुआ अपने ऊपर झल्ला रहा था। रामदीन बाजार से पूरी-मिठाई लेकर आया। उसन जब मधुबन के सामने खाना खाकर उसका हाथ पकडकर हिलाया तब उसका ध्यान टूटा। भूख लगी थी, कुछ न कहकर वह खाने लगा।

दोनो सो गय। रात कब बीती, उन्हे मालूम नही। हारमानियम का मधुर स्वर उनकी निद्रा का बाधक हुआ। मधुबन ने आँख खोलकर देखा कि उसी घर के आँगन म छ-सात युवक और बालक खड होकर मधुर स्वर स भीख माँगन

वाला गाना आरम्भ कर चुके है, और बीरू बाबू उनके नायक की तरह गेरुआ कपडा सिर से बाँधे बीच म खडे है।

मधुबन जैस स्वप्न देख रहा था। उसका सम्मिलित गान बडा आकर्षक था। वे धीरे-धीरे बाहर हो गये। दो लडका के हाथ मे गेरुए कपडे का झोला था। एक गले म हारमानियम डाले था बाकी गा रहे थे। भिखमगा का यह विचित्र दल अपन नित्य कर्म के लिए जब बाहर चला गया तब मधुबन अँगडाई ले उठ बैठा।

आज सवेरे स बदली थी। पानी बरसन का रग था। रामदीन सरसो का तेल लेकर मधुबन क शरीर म लगाने लगा। वह इस अनायास की अमीरी का आँख मूदकर आनन्द ले रहा था। वह जैसे एक नये ससार म आश्चर्य के साथ प्रवेश करने का उपक्रम कर रहा था। उसके जीवन की स्वचेतना—जो उसे अभी तक प्राय समझ-बूझकर चलने के लिए सकेत किया करती थी—इस आकस्मिक घटना से अपना स्थान छोड चुकी थी। जीवन के आदर्शवाद मस्तिष्क से निकलने की चिन्ता म थे। दोपहर होन आया, वह आलसी की तरह बैठा रहा।

बीरू बाबू का दल लौट आया। झोली म चावल और पैसे थे, जो अलग कर लिये गये। बीरू पैसा का लकर साग-भाजी लेने चला गया। और लोग भात बनाने म जुट गये। बडा सा चूल्हा दालान म जलन लगा और चावल धोते हुए ननीगोपाल न कहा—बीरू आज भी मछली लाता है कि नही। भाई, आज तीन दिन हो गये साग खाकर हारमोनियम गल म डाले गली-गली नही घूमा जा सकता। क्या रे सुरेन !

सुरस हँस पडा। ननी फिर बौखला उठा—पाजी कही का, तुझस कहा था न मैंन कि दो-चार आन उनम स टरका देना।

और बीरू बाबू की घुडकी कौन सहता ?

मर बीरू और सुरेन, मैं ता जाता हूँ अड्डे पर। दखूं एकाध चिलम, चरस।

बीरू क प्रवेश करते ही सब वाद-विवाद बन्द हो गया था। उसन तरकारी की गठरी रखते हुए कहा—

आज भी मछली की ब्यात नही लगा।

मैं तो बिना मछली के आज खा नही सकता—कहते हुए मधुबन न एक रुपया अपनी कोठरी म से फक दिया। वह निर्विकार मन स इन बातो को सुनन का आनन्द ले रहा था। ननी दौड पडा—रुपये की ओर। उसने कहा—

वाह चाचा ! तुम कहाँ से मेरा दुर्बुद्धि की तरह इस घर की खोपड़ी में छिपे थे। तो खाली मछली ही न कि और भी कुछ।

वीरू ने ललकारा—क्या रे ननी तरकारी न बना ? कहा चला ?

जब एक भलेमानस कुछ अपना खर्च करके खाने खिलाने का प्रबन्ध कर रहे हैं तब भी वीरू चाचा ! चूल्हे में डाल दूंगा तुम्हारा सूखा भात हां—कहते हुए रुपया लेकर दौड़ गया। मधुवन मुस्करा उठा। वह आज पूरी अमीरी करना चाहता है।

ठाट-बाट से वीरू के दल की ज्योनार उस दिन हुई। भोजन करके सबको एक-एक बीड़ा सौंफ और लौंग पड़ा हुआ पान मिला। नारियल भी गुड़गुड़ाया जाने लगा। ताश भी निकला। मधुवन को बातों में ही मालूम हुआ कि उस घर में रहने वाले सब ठलुए बेकार हैं। इस दल के संयोजक हैं 'वीरू बाबू'। उन्होंने परोपकार-दृष्टि से ही इस दल का संघटन किया है। उनकी आस्तिक बुद्धि बड़ी विलक्षण है। अपने दल के सामने जब वह व्याख्यान देते हैं तो सदा ही मनु-स्मृति का उद्धरण देते हैं। जब अनायास, अर्थात् बिना किसी पुलिस के चक्कर में पड़े, कोई दल का सदस्य अर्थलाभ कर ले आता है, उसे ईश्वर को धन्यवाद देते हुए व पवित्र धन समझते हैं। उसे ईश्वर की सहायता समझकर दरिद्रों के लिए, अपने दल की आवश्यकता की पूर्ति के लिए व्यय करने में कोई संकोच नहीं करते। चाहे वह किसी तरह से आया हो। उन्होंने स्कूल की सीमा पर खड़े होकर कालेज को दूर से ही नमस्कार कर दिया था। वह तब भी व्याख्यान-वाचस्पति थे। लेखक-पुंगव थे। बंगाल की पत्रिकाओं में दरिद्रों के लिए बरा-बर लेख लिखा करते थे। मधुवन की उदारता को संदेह की दृष्टि से देखते हुए उस दिन संघ के धन को मितव्ययिता से खर्च करने का उपदेश देते हुए जब अंत में कहा कि ईश्वर सबका निरीक्षण करता है, उसके पास एक एक दान का हिसाब रहता है, तब झल्लाते हुए ननी ने कहा—

अरे भाई, तुमने मनुष्य को अच्छी तरह समझ लिया क्या, जो अब ईश्वर के लिए अपनी बुद्धि को लंगड़ी टाँग अड़ा रहे हो ? हम लोग हैं भूखे, सब तरह के अभावों से पीड़ित। पहले हम लोगों की आवश्यकता पूरी होने दो। जब ईश्वर हमसे हिसाब मांगेंगे तब हम लोग भी उनसे समझ लेंगे। एक दिन मछली मां सान एकादशी के बाद मिली, वह भी तुमसे देखा नहीं जाता।

वीरू ने देखा कि उसके बड़प्पन में बट्टा लगता है। उसने सम्हल कर हंसते हुए कहा—अरे तुम चिढ़ गये अच्छा भाई, वही सही। अच्छी बात का प्रमाण यही है कि वह सबकी समझ में नहीं आती तो ठीक है।

मधुबन चुपचाप इस विचित्र परिवार का दृश्य देख रहा था। उसके मन में समय पर निर्भय होकर निश्चिन्त भाव से संसार-यात्रा करते रहने का विचार घनीभूत होता जा रहा था। उसमें अन्य मनुष्यों से सहायता मिलने का लोभ भी छिपा था, वह मानसिक परावलम्बन की ओर ढुलक रहा था। मनुष्य का कुछ चाहिए। वह किस तरह से आ रहा है, इस पर ध्यान देने की इच्छा नहीं रह गई।

दूसरे दिन बीरू ने एक रिक्शा-गाड़ी मधुबन के लिए खरीद दी। मधुबन रात को उसे लेकर निकलता। वह सरलता से दो-तीन रुपये ले आने लगा। रामदीन उस दल का सेवक बन गया। दिन का कोई काम न करके, रात का निकलने में मधुबन को कोई असुविधा न थी। कुछ लोग भीख माँगते हुए, कुछ लोग अवसर मिलने पर रात को कुली का काम भी कर लेते। महीनों के भीतर ही एक रिक्शा और आ गई। अच्छी आय होने लगी। उस दल के उड़िया, बंगाली और युक्तप्रान्तीय आनन्द से एक में रहते थे।

रात के दस बजे थे। हबड़ा से चाँदपाल घाट को जानेवाली सड़क पर मधु-बन अपनी रिक्शा लिए धीरे-धीरे चला जा रहा था। वह बैण्ड बजने वाले मंडों पर खड़ा होकर गंगा की धारा को क्षण भर के लिए देखने का प्रयत्न करने लगा। इतने में एक स्त्री का हाथ पकड़े हुए एक बाबू साहब लड़खड़ाती चाल से रिक्शा के सामने आकर खड़े हो गये। मधुबन रुककर आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगा। दोनों ही मदिरा के नशे में झूम रहे थे। मधुबन ने पूछा—हबड़ा?

तुम पूछकर क्या करोगे, मैं जिधर चलता हूँ उधर चलो।

क्या?—मधुबन ने पूछा।

बड़ा बकवादी है।

तो फिर बैठ जाइए।

दोनों रिक्शा पर बैठ गये। मधुबन उन्हें खींच ले चला। हाँ, उन मदोन्मत्त विलासी धनियों के लिए वह पशु बन गया था। गंगा का स्पर्श करके आती हुई शीतल वायु धीरे धीरे बह रही थी। मधुबन रिक्शा खींचते हुए सोच रहा था—

यदि मैं न छिपता तो फाँसी होती। और न होगी, कभी मैं न पहचान लिया जाऊँगा, इसी पर कैसे विश्वास कर लूँ। यह दुष्ट मनुष्यों का बोझ मैं गधों की तरह ढो रहा हूँ। मेरी शिक्षा! मेरा वह उन्नत हृदय! सब कहाँ गया। क्या मैं छाती ऊँची करके दण्ड झेलने में असमर्थ था। और भय का वह पहला झोंका, उसी में मैना ने मुझे भगाने के लिए हाँ, मैना, वह वेश्या! उसने मुझसे

रुपये भी लिये और मुझे उस समय निकाल बाहर भी किया। मैं पापी था, अछूत था, पर वह चादी के चमकीले टुकडे—उनमे पाप कहा ! धीरे से उन्हे वह रख आई। और मैं भगा दिया गया।

रिक्शा पर बैठे हुए बाबू साहब ने कहा—अरे बहुत धीरे-धीरे चलता है।

मधुबन अडियल टट्टू की तरह रुक गया। उसने कहा—तो बाबू साहब, मैं घोडा नहीं हूँ। आप उतर कर चले जाइए।

मारे हटरों के खाल खीच लूँगा। नवाबी करने की इच्छा थी तो रिक्शा क्यो खीचने लगा। चल, तुझे दौडकर चलना होगा।

अच्छा उतरो नही तो मधुबन को आगे कुछ करने से रोक कर उस स्त्री ने कहा—बड़ा हठी है। थोडी दूर तो हवडा का पुल है। वही तक चल।

नही इसे सूतापट्टी के मोड तक चलना होगा मैना ! अनवरी के दवाखाने तक ! ठीक, वहाँ तक बिना पहुँचे श्यामलाल उतरने के नहीं।

मधुबन के शरीर म बिजली-सी दौड गई। मैना ! और यह श्यामलाल वही दगल वाले बाबू श्यामलाल ! यही कलकत्ता म ठीक तो ! उसके क्रोध के कितने कारण एकत्र हो गये थे। अब वह अपने को रोक न सका। उसने रिक्शा छोड दी। वह झटके से पृथ्वी पर आ गिरा, और मैना के साथ बाबू श्यामलाल भी।

मैना भी गहरे नशे मे थी, श्यामलाल का तो कहना ही क्या था। दोनों रिक्शा से लुढककर नीचे आ गिरे। मधुबन की पशु प्रवृत्ति उत्तेजित हो उठी थी। उसने एक लात कस कर मारते हुए कहा—पाजी ! श्यामलाल गो-गो करने लगा। उसकी पँसली चरमरा गई थी। किन्तु मैना चिल्ला उठी। थोडी दूर खडी पुलिस उधर जब दौडकर आने लगी तो मधुबन अपना रिक्शा खीचकर आगे बढा। पुलिस ने उसे दौडकर पकड लिया। मधुबन को विवश होकर, फिर उन्ही दोनो को लादकर पुलिस के साथ जाना ही पडा।

दूसरे दिन हवालात मे मैना और मधुबन ने एक-दूसरे को देखा। मैना चिल्ला उठी—मधुबन !

मैना !—मधुबन ने उत्तर दिया।

दोनो चुप थे। पुलिस ने दोनो का नाम नोट किया। श्यामलाल और मैना अनवरी क दवाखाने म पहुँचाई गई। मधुबन पर अभियोग लगाया गया। केवल उसी घटना के आधार पर नही, पुलिस के पास उस भगोडे के लिए भी वारट था, जिसने बिहारीजी के महन्त के यहाँ डाका डालकर रुपये लिए थे और उनकी हत्या की चेष्टा की थी। पुलिस के सुविधानुसार उपयुक्त न्यायालय म मधुबन की व्यवस्था हुई। उसके ऊपर डाके डालने के दोनो अभियोग थे। न्यायालय म जब

मैना ने उसे पहचानते हुए कहा कि उस रात मे रुपया की थैली लेकर छिपने के लिए मधुवन मेरे यहाँ अवश्य आया था, पर मैंने उस अपने यहाँ रहने नही दिया, वह रुपये लकर उसी समय चला गया, ता मधुवन उसके मुंह को एकटक देख रहा था। मेना ! वही तो बोल रही थी। वह वहाँ धन की प्यासी पिशाची उसका सकेत, उसकी सहृदयता, सब अभिनय ! रुपये पचा लेने की कारीगरी !

मधुवन को काठ मार गया। वह चेतना-विहीन शरीर लेकर उस अद्भुत अभिनय को देख रहा था। उसे दस वर्ष सपरिश्रम कठोर कारावास का दण्ड मिला।

वीरू बाबू ने रिक्शा खरीदने की रसीद दिखाकर रिक्शा पर अपना अधिकार प्रमाणित कर दिया। रिक्शा उन्हे मिल गया। उस परोपकार सघ मे मूर्ख रामदीन फिर रिक्शा खीचने लगा। हाँ, ननीगोपाल उस सघ स अलग हो गया। उसे बीरू बाबू से अत्यन्त घृणा हो गई।

२

नील-कोठी मे इधर कई दिनो से भीड लगी रहती है। शैला की तत्परता से चकबन्दी का काम बहुत रुकावटो मे भी चलने लगा। महँगू इस बदले के लिए प्रस्तुत न था। उसकी समझ म यह बात न आती थी। उसके कई खेत बहुत ही उपजाऊ थे। रामजस का खेत उसके घर से दूर था, पर वह तीन फसल उसम काटता था। उसको बदलना पडेगा। यह असम्भव है। वह लाठी टेकता हुआ भीड मे घुसा।

वाट्सन के साथ बैठी हुई शैला मेज पर फैले गाव के नक्शे को देख रही थी। किसानो का झुण्ड सामने खडा था। महँगू न कहा—दुहाई सरकार मर जायँगे।

शैला ने चौंककर उसकी ओर देखा।

मेरा खेत। उसी से बाल-बच्चो की रोटी चलती है। उस टुकडे को मैं न बदलूगा।

महँगू की आँखो म आँसू तो अब बहुत शीघ्र यो ही आते थे। वृद्धावस्था म मोह ओर भी प्रबल हो जाता है। आज जैसे आँसू की धारा ही नही रुकती थी।

शैला ने वाट्सन की ओर देखा। उस देखने म एक प्रश्न था। किन्तु वाट्सन न कहा—नही, तुम्हारा वह खेत तुम्हारी चरनी और कोल्हू से बहुत दूर है। उसको तो तुम्हे छोडना ही पडेगा। तुम अपन समीप का एक टुकडा क्यो नही पसन्द करते।

वाट्सन ने नक्शे पर उँगली रखी। शैला चुप रही। इतने म तितली एक छोटा-सा बच्चा गोद मे लिए यही आई। उसे देखते ही दूसरी कुर्सी पर बैठने का सकेत करते हुए शैला न कहा—वाट्सन! यही मेरी बहन 'तितली' है। जिसके लिए मैंने तुमसे कहा था। कन्या-पाठशाला की यही अध्यापिका है। बीस लडकियाँ तो उसम बाई को हिन्दी-परीक्षा के लिए इस साल प्रस्तुत हो रही हैं और छोटी-छोटी कक्षाओ म कुल मिलाकर चालीस होगी।

आहो, आप वैठिए। मुझे तो यह पाठशाला देखनी ही होगी। यह सुनकर मैं बहुत प्रसन्न हुआ। —कहते हुए वाट्सन न फिर वैठन के लिए कहा।

किन्तु तितली वैसी ही खडी रही। उसने कहा—आपकी कृपा है। किन्तु मैं इस समय आपके पास एक दूसरे काम से आई हूँ। मरा कुछ खेत महँगू महता जोत रहे है। मैं नही जानती कि मेरे पति न वह खेत किन शर्तों पर उन्हे दिया है। किन्तु मुझे आवश्यकता है अपने स्कूल के लिए और भी विस्तृत भूमि की। बनजरिया पर लगान तो लग ही गया है। उसम लडकिया के खलन की जगह बनाने से मेरी खती की भूमि कम हा गई है। मैं चाहती हूँ महँगू क पास जा मरा खेत है, वह महँगू का दे दिया जाय, और बनजरिया स सटा हुआ रामजस वाला खत मुझे बदले म दिला दिया जाय।

वाट्सन ने घूमकर शैला स कहा—मैं तो समझता हूँ कि उस बदले स यह अच्छा हागा। क्यो महँगू ? तुमको तो यह प्रस्ताव मान लेना चाहिए।

शैला चुपचाप तितली और अपने सम्बन्ध को विचार रही थी। वह साच रही थी कि तितली क्यो मुझसे इतना अलग रहना चाहती है। मैं कहती हूँ कि 'यहाँ वैठ जाओ' तो वह वैठना ही अपमान समझती है।

वाट्सन ने शैला के कान म धीरे से कहा—तुम चुप क्या हो ? यह तो वही लडकी मालूम होती है, जिसके ब्याह म मैं उपस्थित था। ठीक है न ?

शैला ने दु ख से कहा—हाँ, इसका शेरकोट तो जमीदार ने वेदखल करा लिया। अब बनजरिया बची है, उस पर भी लगान लग गया। पहले माफी थी। और वाट्सन ! तुमने तो यह न सुना होगा कि इसके पति को डकैती के अपराध मे कारावास का दड मिला है।

वाट्सन ने एक बार फिर उस तेजस्विनी तितली को देखा। वही एक किसान थी, जिसने सबके पहले बदले को प्रसन्नता से स्वीकार किया है। महँगू तो इस प्रस्ताव को सुनकर और भी क्रुद्ध हो गया। उसे अपने जो खेत जहाँ पर हैं वही रहना अच्छा मालूम होता है, क्योकि उसके अन्तर मे यह अज्ञात भावना है कि उसके लडके-पोते एक म न रहेंगे, फिर एक जगह खत इकट्ठा लेकर क्या होगा। उसने गुर्रा कर कहा—साहब ! आप मालिक हैं, जो चाहे कीजिए। कहिए तो गाँव ही छोड कर चल जायँ।

वाट्सन इस उत्तर से अव्यवस्थित हो गये। उनके मन म झटका लगा—क्या हम किसाना के हित के विरुद्ध कुछ करन जा रहे है ?—तुरन्त ही उन्हान तितली से घूमकर पूछा—

क्या दूसरा खेत तुम नहीं पसन्द कर सकती ? और भी तो खेत तुम्हारे पास हैं ?

नहीं, दूसरे खेत मेरे काम के नहीं। यदि बदलना हो तो उसी से बदल लूँगी ?

वाट्सन ने देखा कि यही पहला अवसर है कि एक किसान बदलने का प्रस्ताव करता है—वह भी उचित; तो फिर अस्वीकार कैसे किया जाय।

वाट्सन ने कहा—यह बदला फिर मान लिया जाय; क्योंकि खेत के परते मे भी कोई अन्तर नहीं है।

महँगू खिसिया गया। उसकी आँखों मे फिर आँसू निकलने लगे। तब तितली ने अपने बच्चे को लहराते हुए कहा—तो मैं जाती हूँ, बच्चा भूखा है ! धन्यवाद !

शैला ने देखा कि एक ठोकर खाया हुआ हृदय अपनी दुरवस्था मे उपेक्षा से उनका तिरस्कार कर रहा है, शैला इन्द्रदेव से ब्याह कर लेने पर बहुत दिनों तक धामपुर नहीं आई। लिखा-पढ़ी करने पर इस सरदी में वाट्सन अपना काम पूरा करने आये। तब तो उसको आना ही पड़ा, और आकर भी वह तितली से मिलने का अवसर न पा सकी; क्योंकि वाट्सन साथ ही आये थे। इधर इन्द्रदेव ने भी बड़े दिनों में वहीं आने के लिए कह दिया था। शैला कुछ-कुछ मानसिक चंचलता मे थी। तितली को यह अखर गया। वह दुर्बल थी, असहाय थी। उसकी खोज लेना बड़े लोगों का धर्म हो जाता है। इसीलिए तितली काम करके तुरन्त लौट जाना चाहती थी। उसने जो वाक्य अपने जाने के लिए कहा, वह भी सीधे शैला से नहीं। तब भी शैला कुर्सी से उठ कर तितली के पास आई। उसका हाथ पकड़े हुए दूसरे कमरे में चली गई।

वाट्सन ने तितली को एक शुभ लक्षण समझा। भला इस स्त्री ने पहले-पहल उस काम की महत्ता को समझा तो। काम आरम्भ हो गया। अब धीरे-धीरे वह किसानों को साँचे में ढाल लेगा। उसे शैला की मनस्तुष्टि के लिए क्या-क्या नहीं कर लेना चाहिए। उसने काम को आगे बढ़ाया।

शैला ने तितली के बच्चे को उसकी गोद से लेकर कहा—बड़ा सुन्दर और प्यारा बच्चा है !

परन्तु अभागा है—तितली ने कहा।

तुम क्या अभी उसको प्यार करती हो ? वह...। —शैला आगे कुछ बुरे शब्द मधुबन के लिए न कह सकी।

तितली ने कहा—वह ! डाकू, हत्यारा और चोर था या नहीं, सो तो मैं नहीं कह सकती; क्योंकि चौबीसों घंटे मैं साथ रही, फिर भी शैला ! वह...।

आगे वह भी कुछ न बोल सकी, उसकी आँखो से आँसू बहने लगे। शैला ने बात का ढग बदलने के लिए कहा—अच्छा, तुमसे एक बात पूछती हूँ।

क्या ?

यही कि उस दिन तुम बिना कहे-सुने क्या चली आईं। इन्द्रदेव ने तो तुम्हारी सहायता करने के लिए कहा था न ?

मैं यह सब समझती हूँ। वे कुछ करते भी, इसका मुझे विश्वास है, परन्तु मैंने यही समझा कि मुझे दूसरो के महत्व-प्रदर्शन के सामने अपनी लघुता न दिखानी चाहिए। मैं भाग्य के विधान से पीसी जा रही हूँ। फिर उसमे तुमको, तुम्हारे सुख से घसीट कर, क्या अपने दुख का दृश्य देखने के लिए बाध्य करूँ ? मुझे अपनी शक्तियो पर अवलम्ब करके भयानक ससार स लडना अच्छा लगा। जितनी सुविधा उसने दी है, उसी की सीमा मे मैं लडूँगी, अपने अस्तित्व के लिए। तुमको साल भर पर अब यहाँ आने का अवसर मिला है। तो मेरे समीप जो है उसी को न मैं पकड सकूँगी। वह बनजरिया! वे ही थोडे-से वृक्ष! और साधारण-सी खेती! तब मुझे यहाँ पाठशाला चलानी पडी। जानती हो, आज मेरे परिवार में कितने प्राणी हैं ? दा को तुम यही देख रही हो। राजो, मलिया और तीन छोटी-छोटी अनाथ लडकियाँ, जिनमे कोई भी छ महीने से अधिक बडी नही है! और अभी जेल से छूटकर आया हुआ रामजस, जिसके लिए न एक बित्ता भूमि है और न एक दाना अन्न।

तीन छोटी-छोटी लडकियाँ हैं ? वे कहा से आ गईं ? शैला ने आश्चर्य से पूछा।

ससार भर मे परम अछूत! समाज की निर्दय महत्ता के काल्पनिक दम्भ का निदर्शन! छिपाकर उत्पन्न किये जाने योग्य सृष्टि के बहुमूल्य प्राणी, जिन्हे उनकी माताएँ भी छूने मे पाप समझती हैं। व्यभिचार की सन्तान!

शैला की आँखे जैसे बढ गईं। उसन तितली का हाथ पकड कर कहा—बहन! तुम यथार्थ मे बाबाजी की बेटी हो। तुम्हारा काम प्रशसनीय है, यहाँ वाले क्या तुम्हारे काम से प्रसन्न है ?

हा या न हो, मुझे इसकी चिन्ता नही। मैंने अपनी पाठशाला चलाने का दृढ निश्चय किया है। कुछ लोगो ने इन लडकियो के रख लेने पर प्रवाद फैलाया। परन्तु वे इसम असफल रहे। मैं तो कहती हूँ, कि यदि सब लडकियाँ पढना बन्द कर दे, तो मैं साल भर म ही ऐसे कितनी ही छोटी-बडी अनाथ लडकियाँ एकत्र कर लूँगी, जिनसे मेरी पाठशाला और खेती-बारी बराबर चलती रहेगी। मैं इस कन्या-गुरुकुल बना दूँगी!

तितली का मुँह उत्साह से दमकने लगा, और शैला विमुग्ध होकर उसकी मन-

हीं-मन सराहना कर रही थी। फिर शैला ने कहा—तितली ! मेरी एक बात मानोगी ? मैं इन्द्रदेव के आने पर तुमको बुलाऊँगी। मैं चाहती हूँ कि तुम उनसे एक बार कहो कि वे मधुबन के लिए अपील करें।

मुझे पहले ही जब लोगों ने यह समाचार नहीं मिलने दिया कि उनका मुकद्दमा चल रहा है, तो अब मैं दूसरों के उपकार का बोझ क्या लूं ? मैं ! कदापि नहीं। बहन शैला ! अब उसमें क्या धरा है ? उनके यदि अपराध न भी होंगे, तो चार-छ बरस ब्रह्मा के दिन नहीं। आँच में तपकर सोना और भी शुद्ध हो जायगा।—कहकर तितली उठने लगी।

तो फिर एक बात और मैं कह लूं। बैठ जाओ। मैं कहती हूँ कि तुम मेरे साथ आकर यहीं नील-कोठी में काम करो। यहीं मैं बालिकाओं की पाठशाला भी अलग खुलवा दूंगी।

तितली बैठी नहीं, उसने चलते-चलते कहा—नहीं, मुझे अपना दुख-सुख अकेली भोग लेने दो। मैं द्वार-द्वार पर सहायता के लिए घूम कर निराश हो चुकी हूँ। मुझे अपनी निस्सहायता और दरिद्रता का सुख लेने दो। मैं जानती हूँ कि तुम्हारे हृदय में मेरे लिए एक स्थान है। परन्तु मैं नहीं चाहती कि मुझे कोई प्यार करे। मुझसे घृणा करो बहन !

शैला आश्चर्य से देखती रह गई और तितली चली गई। दूसरी ओर से इन्द्रदेव ने प्रवेश किया। शैला ने मीठी मुस्कान से उनका स्वागत किया।

इसके कई दिन बाद बनजरिया की खपरैल में जब लड़कियाँ पढ़ रही थीं, तब उसी के पास एक छोटे-से मिट्टी के टीले को काटकर ईंट बन रही थी। मलिया मिट्टी का लोदा बनाकर साँचे में भर रही थी और रामजस उससे ईंटें निकालता जा रहा था। राजो एक मजूर से बेला के लिए जान्हरी का ढेठा कटवा रही थी। सिरस के पेड़ में एक झूला पड़ा था, उसमें तीन भाग थे। छोटे-छोटे निरीह शिशु उसमें पड़े हुए धूप खा रहे थे, और तितली अपने बच्चों को गोद में लिए लड़कियों को पहाड़ा रटा रही थी। उसी समय वाट्सन, शैला और इन्द्रदेव वहाँ आये। वाट्सन ने टाट पर बैठकर पढ़ती हुई लड़कियों को देखा। उनको देखते ही तितली उठ खड़ी हुई। अपने हाथ से बनाये हुए मोढ़े लाकर लड़कियों ने रख दिये। सब लोगों के बैठने पर इन्द्रदेव ने कहा—शैला ! तुमने अपने प्रबन्ध में इस पाठशाला के लिए कोई व्यवस्था नहीं की है ?

नहीं, यह सहायता लेना ही नहीं चाहती।

क्यों ?

वह तो मैं नहीं कह सकती।

सचमुच यह सराहनीय उद्योग है।—वाट्सन ने कहा—मुझे तो यह अद्भुत मालूम पडता है बडा ही मधुर और प्रभावशाली भी। क्यो तुम कोई सहायता नही लेना चाहती ? मुझे कुछ बता सकती हो ?

आप उसे सुनकर क्या करेगे ? वह बात अच्छी न लगे तो मुझे और भी दुख होगा। आप लोगो की सहानुभूति ही मेरे लिए बडी भारी सहायता है! —तितली ने सिर नीचा कर कृतज्ञ-भाव से कहा।

परन्तु ऐसी अच्छी सस्था थोड़े-से धनाभाव के कारण अच्छी तरह न चल सके, तो बुरी बात है। मै क्या इस उदासीनता का कारण नही सुन सकता ?

मैं विवश होकर कहती हूँ। मैं अपनी रोटियाँ इससे लेती हूँ। तब मुझे किसी की सहायता लेने का क्या अधिकार है ? मैं दो आने महीना लडकियो से पाती हूँ। और उतने से पाठशाला का काम अच्छी तरह चलता है। कुछ मुझे बच भी जाता है। जमीदार ने मेरी पुरखा की डीह ले ली। मुझे माफी पर भी लगान देना पड रहा है। और मुझे इस विपत्ति मे डालने वाले है यहाँ के जमीदार और तहसीलदार साहब! तब भी आप लोग कहते है कि मैं उन्ही लोगो से सहायता लूँ!

हाँ, मैं तो उचित समझता हूँ। इस अवस्था मे तो तुम्हे और भी सहायता मिलनी चाहिए और तुमने तो मेरे चकबन्दी के काम मे ।

सहायता की है—यही न आप कहना चाहते हैं ? वह तो मेरे हित की बात थी, मेरा स्वार्थ था। देखिए, उस खेत के मिल जाने से मैं अपना पुराना टीला खुदवाकर उसकी मिट्टी से ईंटे बनवा रही हूँ। उधर समतल होकर वह बनजरिया को रामजस वाले खेत से मिला देगा।

तुमसे मैं और भी सहायता चाहता हूँ।

मैं क्या सहायता दे सकूँगी ?

तुम कम से-कम स्त्री-किसानो को बदले के लिए समझा सकती हो जिससे गाँव मे सुधार का काम सुगमता से चले।

जमीदार साहब के रहते वह सब कुछ नही हो सकेगा। सरकार कुछ कर नही सकती। उन्हे अपने स्वार्थ के लिए किसानो मे कलह कराना पडेगा। अभी-अभी देखिए न, घूर के लिए मुकदमा हाईकोर्ट मे लड रहा है! तहसीलदार को कुछ मिला! उसने वहाँ से एक किसान को उभाडकर घूर न फेकने के लिए मार-पीट करा दी। वह घूर फेकना बन्द कर उस टुकडे को नजराना ले कर दूसरे के साथ बन्दोबस्त करना चाहता है। यदि आप लोग वास्तविक सुधार करना चाहते हो, तो खेतो के टुकडो को निश्चित रूप मे बाट दीजिए और सरकार उन पर

मालगुजारी लिया करे। —कहते हुए तितली ने व्यंग से इन्द्रदेव की ओर देखा और फिर उसने कहा—क्षमा कीजिए, मैंने विवश होकर यह सब कहा।

इन्द्रदेव हतप्रभ हो रहे थे, उन्होंने कहा—अरे, मैं तो अब जमीदार नही हूँ।

हाँ, आप जमीदार नही है तो क्या, आपने त्याग किया होगा। किन्तु उससे किसानो को तो लाभ नही हुआ। —घुटते ही तितली ने कहा।

उसका बच्चा रोने लगा था। एक बडी-सी लडकी उसे ले कर राजा के पास चली गई।

किन्तु तुम ता ऐसा स्वप्न देख रही हो जिसम आँख खुलने की देर है।—वाट्सन ने कहा।

यह ठीक है कि मरने वाले का कोई जिला नही सकता। पर उसे जिलाना ही हो, तो कही अमृत खोजने के लिए जाना पडेगा।—तितली ने कहा।

उधर शैला मौन होकर तितली के उस प्रतिवाद करने वाले रूप को चकित होकर देख रही थी। और इन्द्रदेव सोच रहे थे—तितली! यही तो है, एक दिन मेरे साथ इसी के ब्याह का प्रस्ताव हुआ था। उस समय मैं हँस पडा था, सम्भवत मन-ही-मन। आज अपनी दुर्बलता मे, अभावो और लघुता मे, दृढ़ होकर खडी रहने मे यह कितनी तत्पर है! यही ता हम खाज रहे थे न। मनुष्य गिरता है। उसका अन्तिम पक्ष दुर्बल है—सम्भव है कि वह इसीलिए मर जाता है। परन्तु परन्तु जितने समय तक वह ऐसी दृढता दिखा सके, अपने अस्तित्व का प्रदर्शन कर सके, उतने क्षण तक क्या जिया नही। मैं तो समझता हूँ कि उसके जन्म लेने का उद्देश्य सफल हो गया। तितली वास्तव मे महीयसी है, गरिमामयी है। शैला! वह अपने लिए सब कुछ कर लेगी। स्वावलम्बन! हाँ, वह उसे भी पूरा कर लेगी। किन्तु स्त्री का दूसरा पक्ष पति! उसके न रहने पर भी उसकी भावना को पूरी करते रहना, शैला से भी न हो सकेगा। वह अपने पैरो पर खडी हो सकती है, किन्तु दूसरे को अवलम्ब नही दे सकती।

वाट्सन भी चुपचाप होकर सोच रहे थे। उन्होने कहा—मैंने कागज-पत्र दखकर निश्चय कर लिया है कि शेरकोट पर तुम्हारा स्वत्व हैं। क्या तुम उसके बदले यह सटी हुई परती ले लोगी? मैं जमीदार को इसके लिए बाध्य करूँगा।

बिना रुके हुए तितली ने कहा—वह मेरा घर है, खेत नही, उसको मैं उसके ही स्वरूप म ले सकती हूँ। उससे बदला नही हो सकता।

वाट्सन हतबुद्धि होकर चुप हो गय। शैला न तितली का ईर्ष्या स देखा। यह गँवार लडकी। अपनी वास्तविक स्थिति मे कितनी सरलता स निर्वाह कर रही है। सो भी पूरी स्वतन्त्रता के साथ! और मैं, मैंने अपना जीवन, थाडा-सा

काल्पनिक सुख पाने के लिए, जैसे बेच दिया। उस दरिद्र भूतकाल न मुझे सुख के लिए लोलुप बना दिया। क्या मैं सचमुच इन्द्रदेव का प्यार करती हूँ। मैं उतना ही कर सकती हूँ, जितना मधुबन के लिए तितली कर रही है। उसके भीतर स जैसे किसी ने कहा 'ना'। वह अपनी नग्न मूर्ति देखकर भयभीत हो गई। उसने चारा ओर अवलम्ब खोजने क लिए आंख उठाकर देखा। आह! वह कितनी दुर्बल है। यह वाट्सन! इस सुन्दर व्यापार म कहाँ स आ गया। और अब तो मेरे जीवन के गणित मे यह प्रधान अक है। तो? उसने इन्द्रदव का और भयभीत हाकर देखा, क्या वह कुछ समझने लगा है।

इन्द्रदेव ने कहा—मैं तो समझता हूँ कि अब हम लोगा को चलना चाहिए, क्याकि आज ही रात को मुझे शहर लौट जाना है। कल एक अपील म मेरा वहाँ रहना आवश्यक है।

शैला न समझा कि यह पिण्ड छुडाना चाहता है। उस क्या सन्देह हाने लगा है? हो सकता है। एक बार इसी वाट्सन का लकर भ्रम फैल चुका है। किन्तु यह कितनी बुरी बात है। जिसने मेरे लिए सब त्याग किया !

वाट्सन ने बीच मे कहा—अच्छा, तो मै इस समय जाता हूँ। हाँ, सुना, परती के लिए एक बात और भी कह देना चाहता हूँ। क्या उसे थोडे-से लगान पर तुम ले लेना स्वीकार करोगो? इससे तुम्हारा यह खेत पूरा बन जायगा। चाहागी तो थोडा-सा परिश्रम करने पर यहाँ पेड लगाये जा सकेंगे और तब तुम्हारी खेती-बारी दोनो अच्छी तरह होने लगेगी।

हाँ, तब मै ले सकूँगी। आपको इस न्यायपूर्ण सम्मति के लिए मैं धन्यवाद देती हूँ।

तितली न नमस्कार किया। इन्द्रदेव, वाट्सन और शैला, सबने एक बार उस स्वावलम्ब के नीड—बनजरिया—को देखा, और देखा उस गर्व से भरी अबला को!

सब लोग चल गये।

तितली साँस फककर एक विश्राम का अनुभव करने लगी। इस मानसिक युद्ध म वह जैसे थक गई थी। उसने लडकियो को छुट्टी देकर विश्राम किया।

३

इन्द्रदेव चले गये। अधिकार खो बैठने का जैसे उन्हे कुछ दुख हो रहा था। सम्पत्ति का अधिकार! अब वह धामपुर के कुछ नही थे। परिवार से बिगाड और सम्पत्ति स भी वचित! माँ की दृष्टि म वह बिगडे हुए लडके रह गये। उन्होने देखा कि सम्मिलित कुटुम्ब के प्रति उनकी जितनी घृणा थी, वह कृत्रिम थी, रामजस, मलिया, राजो और तितली, उनके साथ ही और भी कई अनाथ, स्वेच्छा से एक नया कुटुम्ब बनाकर सुखी हो रहे हैं।

शैला को वाट्सन के साथ कुछ नवीनता का अनुभव होन लगा। इन्द्रदेव के लिए उसके हृदय मे जो कुछ परकीयत्व था, उसका यहाँ कही नाम नही। वह मनायोगपूर्वक बैङ्क और अस्पताल तथा पाठशाला की व्यवस्था म लगी। वाट्सन का सहयोग! कितना रमणीय था। शैला के त्याग म जो नीरसता थी, वह वाट्सन को देखकर अब और भी स्पष्ट होने लगी। वह ससार के आकर्षण मे जैसे विवश होकर खिच रही थी। वाट्सन का चुम्बकत्व उसे अभिभूत कर रहा था। अज्ञात रूप से वह जैसे एक हरी-भरी घाटी मे पहुँचने पर, आख खोलते ही, वसन्त की प्रफुल्लता, सजीवता और मलय-मारुत, कोकिल का कल-रव, सभी का सजीव नृत्य अपन चारो ओर देखने लगी। खेतो की हरयाली म उसके हृदय की हरियाली मिल जाती। वाट्सन के साथ सायकाल म गगा के तट पर वह घटा चुपचाप बिता देती।

वाट्सन का हृदय तब भी बाँध स घिरी हुई लम्बी-चौडी झील की तरह प्रशान्त और स्निग्ध था। उसम छोटी-छोटी बीचियो का भी कही नाम नही। अद्‌भुत! शैला उसम अपने को भूल जाती। इन्द्रदेव, धीरे-धीरे भूल चले थे।

रात की डाक से नन्दरानी का एक पत्र शैला को मिला। उसम लिखा था—

बहूरानी!

तुम दूसरो की सवा करन के लिए इतनी उत्सुक हो, किन्तु अपने घर का भी कुछ ध्यान है? मैं समझती हूँ कि तुम्हारे देश म स्वतन्त्रता के नाम पर

बहुत सा मिथ्या प्रदर्शन भी होता है। क्या तुम इस वातावरण म उसे भूल नही सकी हो ? यदि नही, तो मैं उसे तुम्हारा सौभाग्य कैस कहूँ ? मैं तो जानती हूँ कि स्त्री, स्त्री ही रहेगी। कठिन पीडा से उद्विग्न होकर आज का स्त्री-समाज जो करन जा रहा है वह क्या वास्तविक है ? वह ता विद्राह है सुधार के लिए। इतनी उद्दण्डता ठीक नही। तुम इन्द्रदेव के स्नही हृदय म ठेस न पहुँचाओगी। एसा ता मुझे विश्वास है। पर जब से वह धामपुर से लौट आय है, उदास रहते है। कारण क्या है तुम कुछ सोचने का कष्ट करोगी ?

हा, एक बात और है। तुम्हारी सास अपनी अन्तिम सासो को गिन रही है। क्या तुम एक बार इन्द्रदेव के साथ उनके पास न जा सकागी ?

तुम्हारी स्नहमयी
नन्दरानी

दूसर दिन बडे सबेरे—जब पूर्व दिशा की लाली का थाडे-से काले बादल ढँक रह थ गगा म स निकलती हुई भाप पर थोडा थोडा सुनहला रग चढ रहा था तब—शैला चुपचाप उस दृश्य का देखती हुई मन-ही-मन कह उठी—नही, अब साफ-साफ हो जाना चाहिए। कही यह मेरा भ्रम ता नही ? मुझे निराधार इस भाप की लता की तरह बिना किसी आलम्बन क इस अनन्त मे व्यर्थ प्रयास नही ही करना चाहिए। इन दो-एक किरणा से ता काम नही चलने का। मुझे चाहिए सम्पूर्ण प्रकाश ! मैं कृतज्ञ हूँ, इतना ही ता ! अब मुझस क्या माँग है ? इन्द्रदव के साथ क्या निभन का नही ? वह स्वतत्रता का महत्त्व नही समझ सके। उनके जीवन क चारा ओर सीमा की टेढी-मढी रखा अपनी विभीपिका स उन्हे व्यस्त रखती है। उनको सन्दह ह, और होना भी चाहिए। क्या मै बिल्कुल निष्कपट हूँ ? क्या वाट्सन ? नहो-नही वह केवल स्निग्ध भाव और आत्मीयता का प्रसार है। ता भी मैं इन्द्रदव स विरक्त क्यो हूँ ? मरे पास इसका कोई उत्तर नही। इतन थोडे-से समय म यह परिवर्तन ! मैंने इन्द्रदव के समीप होने के लिए जितना प्रयास किया था, जितनी साधना की थी, वह सब क्या ऊपरी थी ? और वाट्सन ! फिर वहा वाट्सन !

उसन झल्लाकर दूसरी ओर मुँह फेर लिया।

उधर स ही एक डागी पर वाट्सन, अपन हाथ स डाँडा चलात हुए, आ रह थ। सामन मल्लाह सिकुडा हुआ बैठा था। बादल फट गया था। सूय का बिम्ब पूरा निकल आया था। गगा धीरे-धीरे बह रही थी। सकल्प-विकल्प क कूलो म मधुर प्रणय-कल्पना-सी वह धारा सुन्दर और शीतल थी।

वाट्सन ने डोंगी तीर पर लगा दी। शैला ने झुंझलाहट से उसकी ओर देखना चाहा, परन्तु वह मुस्करा कर नाव पर चढ़ गई।

अब माँझी खेने लगा। दोनों आस पास बैठे थे। दोनों चुप थे। नाव धीरे-धीरे बह रही थी।

वाट्सन ने हँसी से कहा—शैला! तुम तो गंगा-स्नान करने सवेरे नहीं आती। फिर कैसी हिन्दू!

नाव बीच में चली जा रही थी। शैला ने देखा, एक ब्राह्मण-परिवार तट पर उस शीतकाल में नहा रहा है। शैला ने हँसकर कहा—तुम भी प्रति रविवार को गिरजे में नहीं जाते, फिर कैसे ईसाई!

तब तो न तुम हिन्दू और न मैं ईसाई!

बस केवल स्त्री और पुरुष!—सहसा शैला के मुँह से अचेतन अवस्था में निकल गया। वाट्सन ने चौंक कर उसकी ओर देखा। शैला झेंप-सी गई। वाट्सन हँस पड़े।

नाव चली जा रही थी। कुछ काल तक दोनों ही चुप हो गये, और गम्भीरता का अभिनय करने लगे। फिर ठहरकर वाट्सन ने कहा—मैं मित्र की तरह एक बात पूछता हूँ, शैला, तुम बुरा तो न मानोगी?

पूछो न क्या है?

तुम इस विवाह से सुखी हो!—अरे—मैंने कहा, सन्तुष्ट हो न?

शैला ने दीनता से वाट्सन को देखा। उसके हृदय में जो सूनापन था, वही अट्टहास कर उठा। वाट्सन ने सान्त्वना के स्वर में कहा—शैला तुमने भूल की है, तो उसका प्रतिकार भी है। मैं समझता हूँ कि तुमने अपने ब्याह की रजिस्ट्री सिविल मैरेज के अनुसार अवश्य करा ली होगी।

शैला को जैसे थप्पड़ लगा, वाट्सन के प्रश्न में जो गूढ़ रहस्य था, वह भयानक होकर शैला के सामने मूर्तिमान हो गया। उसने दोनों हाथों में अपना मुँह छिपा लिया। उसने कहा—वाट्सन, मुझे क्षमा करोगे। स्त्रियों को सब जगह ऐसी ही बाधाएँ होंगी। क्या तुम उनकी दुर्बलता को सहानुभूति से नहीं देख सकोगे?

इसीलिए मैं आज तक अविवाहित हूँ। सम्भव है कि जीवन भर ऐसा ही रहूँ। मुझसे यह अत्याचार न हो सकेगा। उहूँ, कदापि नहीं।

शैला का स्वप्न भंग हो चला। उसने जैसे आँख खोल कर बन्द कमरे में अपने चारों ओर अन्धकार ही पाया। वह कम्पित हो उठी। किन्तु वाट्सन अचल थे। उनका निर्विकार हृदय शान्त और स्मितिपूर्ण था। शैला निरवलम्ब हो गई।

शैला के मन में ग्लानि हुई। वह सोचने लगी—घृणा! हाँ, वास्तव में मुझसे घृणा करता है। वह कुलीन और मैं दरिद्र बालिका! तिस पर भी एक हिन्दू से ब्याह कर चुकी हूँ और मेरा पिता जेल-जीवन बिता रहा है। तब! वह इतनी ममता क्या दिखाता है? दया! दया ही तो, किन्तु इस मुझ पर दया करने का क्या अधिकार है?

उसने उद्विग्न होकर कहा—अब उतरना चाहिए।

वाट्सन ने मल्लाह से नाव को तट से लगा देने की आज्ञा दी। दोनों उतर पड़े। दोनों ही चुपचाप पथ पर चल रहे थे।

कुहरा छँट गया था। सूर्य की उज्ज्वल किरणें चारों ओर नाच रही थीं। वह ग्राम का जन शून्य प्रान्त अपनी प्राकृतिक शोभा में अविचल था—ठीक वाट्सन के हृदय की तरह।

घूमते-फिरते वे दोनों बनजरिया में जा पहुँचे। वहाँ उत्साह और कर्मण्यता थी। सब काम तीव्रगति से चल रहे थे। खेत की टूटी हुई मेड़ पर मिट्टी चढ़ाई जा रही थी। कहीं पेड़ रोपे जा रहे थे। आवाँ फूँकने के लिए ईंधन इकट्ठा हो गया था। पाठशाला की खपरैल में से लड़कियों का कोलाहल सुनाई पड़ता था।

शैला रुकी। वाट्सन ने कहा—तो मैं चलता हूँ, तुम ठहर कर आना। मुझे बहुत-सा काम निबटाना है।

वह चले गये, और शैला चुपचाप जाकर तितली के पास एक मोढ़े पर बैठ गई। तितली ने शीघ्रता से पाठ समाप्त करा कर लड़कियों को कुछ लिखने का काम दिया, और शैला का हाथ पकड़कर दूसरी ओर चली। अभी वह भट्ठे के पास पहुँची होगी कि उसे दूर से आते हुए एक मनुष्य को देखकर रुक जाना पड़ा। वह कुछ पहचाना-सा मालूम पड़ता था। शैला भी उसे देखने लगी।

शैला ने कहा—अरे यह तो रामदीन है!

रामदीन ने पास आकर नमस्कार किया। तब जैसे सावधान होकर तितली ने पूछा—रामदीन, तू जेल से छूट आया?

जेल से छूट कर लोग घर लौट आते हैं, इस विश्वास में आशा और सान्त्वना थी। तितली का हृदय भर आया था।

रामदीन ने कहा—मैं तो कलकत्ता से आ रहा हूँ। चुनार से तो मैं छोड़ दिया गया था। वहाँ मैं अपने मन से रहता था। रिफार्मेटरी का कुछ काम करता था। खाने को मिलता था। वहीं पड़ा था। मधुबन बाबू से एक दिन भेंट हो गई। वह कलकत्ता जा रहे थे। उन्हीं के संग चला गया था।

तितली की आँखों में जल नहीं आया, और न उसकी वाणी काँपने लगी। उसने पूछा—तो क्या तू भी उनके साथ ही रहा?

हाँ, मैं वहाँ रिक्शा खींचता था। फिर मधुवन बाबू के जेल जाने पर भी कुछ दिन रहा। पर वीरू से मेरी पटी नहीं। वह बड़ा ढोंगी और पाजी था। वह बड़ा मतलबी भी था। जब तक हम लोग उसको कमा कर कुछ देते थे, वह दादा की तरह मानता था। पर जब मधुवन बाबू न रहे तो वह मुझसे टेढ़ा-सीधा बर्ताव करने लगा। मैं भी छोड़ कर चला आया।

तितली को अभी सन्तोष नहीं हुआ था। उसने पूछा—क्यों रे रामदीन! सुना है तुम लोगों ने वहाँ पर भी डाका और चोरी का व्यवसाय आरम्भ किया था। क्या यह सच है?

रिक्शा खींचते-खींचते हम लोगों की नस ढीली हो गई। कहाँ का डाका और कहाँ की चोरी। अपना-अपना भाग्य है। राह चलते भी कलंक लगता है। नहीं तो मधुवन बाबू ने वहाँ किया ही क्या। यहाँ जो कुछ हुआ हो, उसे तो मैं नहीं जानता। वहाँ पर तो हम लोग मेहनत-मजूरी करके पेट भरते थे।

तितली ने गर्व से शैला की ओर देखा। शैला ने पूछा—अब क्या करेगा रामदीन?

अब, यहीं गाँव में रहूँगा। कहीं नौकरी करूँगा।

क्या मेरे यहाँ रहेगा?—शैला ने पूछा।

नहीं मेम साहब! बड़े लोगों के यहाँ रहने में जो सुख मिलता है, उसे मैं भोग चुका।

अरे दाना रस के लिए दीदी ने पूछा है कि...कहती हुई मलिया पीछे से आकर सहसा चुप हो गई। उसने रामदीन को देखा।

तितली ने स्थिर भाव से कहा—कहती क्यों नहीं? बोल न, क्यों लजाती है। लिवा जा, पहले अपने रामदीन को कुछ खिला।

जाओ बहन!—कहकर वह घूम पड़ी।

रामदीन!—बनजरिया में बहुत-सा काम है। जो काम तुमसे हो सके करो। चना-चबेना खाकर पड़े रहो।—तितली ने कहा।

शैला ने देखा, वह कहीं भी टिकने नहीं पाती है। कुछ लोगों को तो उसने पराया बना रखा है। और कुछ लोग उसे ही परकीया समझते हैं। वह मर्माहत होकर जाने के लिए घूम पड़ी।

तितली ने कहा—बैठो बहन! जल्दी क्या है?

तितली, तुमने भी मुझसे स्नेह का सम्बन्ध ढीला कर दिया है! मेरा हृदय

चूर हो रहा है। न जाने क्या, मरे मन म एसो भावना उठती है कि मुझे मैं 'जैसी हूँ—उसी रूप म' स्नेह करन क लिए कोई प्रस्तुत नहो। कुछ-न-कुछ दूसरा आवरण लोग चाहते हैं।

इन्द्रदेव बाबू भी ?

उनका समर्पण तो इतना निरीह है कि मैं जैसे बर्फ की-सी शीतलता म चारा आर स घिर जाती हूँ। मैं तुम्हारी तरह वा दान कर देना नही सीख सकी। मैं जैस और कुछ उपकरणो से बनी हूँ ! तुम जिस तरह मधुबन को

अरे सुनो तो, मेरी बात लकर तुमने अपना मानसिक स्वास्थ्य खा दिया है क्या ? वह ता एक कर्त्तव्य की प्ररणा है। तुम भूल गई हा। बापू का उपदेश क्या स्मरण नही है ? प्रसन्नता से सब कुछ ग्रहण करने का अभ्यास तुमने नहो किया। मन को वैसा हम लोग अन्य कामा के लिए तो बना लेते हैं पर कुछ प्रश्न ऐस होते हैं जिनमे हम लोग सदैव सशोधन चाहत हैं। जब सस्कार और अनुकरण की आवश्यकता समाज म मान ली गई, तब हम परिस्थिति के अनुसार मानसिक परिवर्तन के लिए क्या हिचक ? मरा एसा विश्वास है कि प्रसन्नता से परिस्थिति को स्वीकार करके जीवन-यात्रा सरल बनाई जा सकती है। वहन ! तुम कही भूल तो नही कर रही हो ? तुम धर्म के बाहरी आवरण स अपने को ढँककर हिन्दू-स्त्री बन गई हो सही, किन्तु उसकी सस्कृति की मूल शिक्षा भूल रही हो। हिन्दू-स्त्री का श्रद्धापूर्ण समर्पण उसकी साधना का प्राण है। इस मानसिक परिवर्तन को स्वीकार करो। देखो, इन्द्रदेव बाबू वैसे देव-प्रकृति के मनुष्य है। उस त्याग को तुम अपने प्रेम से और भी उज्ज्वल बना सकती हो।

यही तो मुझे दु ख है। मैं कभी-कभी सोचती हूँ कि मुक्त वन-विहगिनी को पिंजडे म डालने के लिए उनको इतना कष्ट सहना पडा। किसी तरह मैं अपने को मुक्त करके उनका भी छुटकारा करा सकती !

तुम अपन जीवन का, स्त्री-जीवन को, और भी जटिल न बनाओ। तुम इन्द्रदेव के स्नेह को अपनी ओर से अत्याचार मत बनाओ। मैं मानती हूँ कि कभी-कभी हित चिन्ता समाज म पति-पत्नी पर, पिता-पुत्र पर, भाई-भाई पर, अपन स्नेहातिरेक को अत्याचार बना डालता है, परन्तु उस स्नेह को उसक वास्तविक रूप मे ग्रहण कर लेने पर एक प्रकार का सुख-सतोप होता ही है।

तो तुम मधुबन का अब भी प्यार करती हो ?

इसका ता कोई प्रश्न नहो है। बहन शैला ! ससार भर उनका चोर हत्यारा और डाकू कहे, किन्तु मैं जानती हूँ कि वह ऐसे नहीं हो सकते। इसलिए मैं कभी उससे घृणा नहो कर सकती। मेरे जीवन का एक-एक कोना उनके लिए, उस

स्नेह के लिए, सन्तुष्ट है। मैं जानती हूँ कि वह दूसरी स्त्री को प्यार नही करते। कर भी नही सकते। कुछ दिनो तक मैना को लेकर जो प्रवाद चारो ओर फैला था, मेरा मन उस पर विश्वास नही कर सका। हाँ, मैं दु:खी अवश्य थी कि उन्हे क्यो लोग सन्देह की दृष्टि से देखते हैं। उतनी-सी दुर्बलता भी मेरे लिए अपकार ही कर गई। उनको मैं आगे बढने से रोक सकती थी। किन्तु तुम वैसी भूल न करोगी। इन्द्रदेव को भग्नहृदय बनाकर कल्याण के मार्ग का अवरुद्ध न करो। मानव के अन्तरतम मे कल्याण के देवता का निवास है। उसकी सवर्धना ही उत्तम पूजा है। मैं इधर मनोयोगपूर्वक पढ रही हूँ। जितना ही मैं अध्ययन करती हूँ उतना ही यह विश्वास दृढ होता जा रहा है जो कुछ सुन्दर और कल्याणमय है, उसके साथ यदि हम हृदय की समीपता बढाते रहे तो ससार सत्य और पवित्रता की ओर अग्रसर होगा।

तितली का मुँह प्रसन्नता से दमक रहा था।

शैला को अपने मन का समस्त बल एकत्र करके उससे आदर्श ग्रहण करने का प्रयत्न किया। वह एक क्षण मे ही सुन्दर स्वप्न देखने लगी, जिसमे आशा की हरियाली थी। अपनी सेवावृत्ति को जागरूक करने की उसने दृढ प्रतिज्ञा की। उसने तितली का हाथ पकडकर कहा—क्षमा करना बहन! मैं अपराध करने जा रही थी। आज जैसे बाबाजी की आत्मा ने तुम्हारे द्वारा फिर से मेरा उद्धार किया। हम दोनो ने एक ही शिक्षा पाई है सही, परन्तु मुझमे कमी है, उसे पूर्ण करना मेरा कर्त्तव्य है।

उस निर्जन ग्राम-प्रान्त मे, जब धूप खेल रही थी, दो हृदयो ने अपने सुख-दु:ख की गाथा एक-दूसरे को सुना कर अपने को हल्का बनाया। आसू भरी आँखे मिली और वे दुर्बल—किन्तु दृढता से कल्याण-पथ पर बढने वाले—हृदय, स्वस्थ होकर, परस्पर मिले।

शैला नील-कोठी की ओर चली। उसके मन मे नया उत्साह था नील-कोठी की सीढियो पर वह फुर्ती से चढी जा रही थी। बीच ही मे वाट्सन ने उसे रोका और कहा—मैं तुमसे एक बात कहना चाहता हूँ।

उसने अपने भीतर के जेब से एक पत्र निकाल कर शैला के हाथ मे दिया। उसे पढते-पढते शैला रो उठी। उसने वाट्सन के दोनो हाथ पकड कर व्यग्रता से पूछा—वाट्सन! सच कहो, मेरे पिता का ही पत्र है, या धोखा है? मै उनकी हस्तलिपि नही पहचानती। जेल से भी कोई पत्र मुझे पहले नही मिला था। बोला, यह क्या है?

शैला ! अधीर न हो। वास्तव में तुम्हारे पिता स्मिथ का ही यह पत्र है। मैं छुट्टी लेकर जब इंगलैण्ड गया था, तब मैं उससे जेल मे मिला था।

ओह ! यह कितने दुःख की बात है।—शैला उद्विग्न हो उठी थी।

शैला ! तुम्हारा पिता अपने अपराधों पर पश्चात्ताप करता है। वह बहुत सुधर गया है। क्या तुम उसे प्यार न करोगी ?

करूँगी, वाट्सन ! वह मेरा पिता है। किन्तु, मैं कितनी लज्जित हो रही हूँ। और तुम्हारी कृतज्ञता प्रकट करने के लिए मैं क्या करूँ ? बोलो !

कुछ नही, केवल चचल मन को शान्त करो। पत्र तो मुझे बहुत दिन पहले ही मिल चुका था। किन्तु मैं तुमको दिखाने का साहस नही करता था। सभव है कि तुमको...।

मुझको बुरा लगता ! कदापि नही। सब कुछ होने पर भी वह पिता है वाट्सन !

तो चलो, वह कमरे म बैठे हुए तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे है।

ऐं, सच कहना ! कहती हुई शैला कमरे मे वेग से पहुँची।

एक बूढ़ा, किन्तु बलिष्ठ पुरुष, कुर्सी से उठकर खडा हुआ। उसकी बाँहे आलिगन के लिए फैल गईं। शैला ने अपने को उसकी गोद मे डाल दिया। दोनो भर पेट रोये।

फिर बूढे ने सिसकते हुए कहा—शैला ! जेन के अभिशाप का दण्ड मैं आज तक भोगता रहा। क्या बेटी, तू मुझे क्षमा करेगी ? मैं चाहता हूँ कि तू उसकी प्रतिनिधि बन कर मुझे मेरे पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त मे सहायता दे। अब मुझको मेरे जीते-जी मत छोड देना।

शैला ने आँसू-भरी आँखो से उसके मुख को देखते हुए कहा—पापा !

वह और कुछ न कह सकी, अपनी विवशता से वह कुढने लगी। इन्द्रदेव का बन्धन ! यदि वह न होता ? किन्तु यह क्या, मैं अभी तितली से क्या कह आई हूँ ? तब भी मेरा बूढा पिता ! आह ! उसके लिए मैं क्या करूँ ? उसे लेकर मैं...।

उसकी विचार-धारा को रोकते हुए वाट्सन ने कहा—शैला ! मैंने सब ठीक कर लिया है। तुम अब विवाहित हो चुकी हो, वह भी भारतीय रीति से तब तुमको अपने पति के अनुकूल रहकर ही चलना चाहिए, और उसके स्वावलम्बपूर्ण जीवन मे अपना हाथ बटाओ। नील-कोठी का काम तुम्हारे योग्य नही है। मिस्टर स्मिथ यहाँ पर अपने पिछले थोडे से दिन शान्ति सेवा-कार्य करते हुए बिता लेंगे, और तुमसे दूर भी न रहेंगे।

शैला ने अवाक् होकर वाट्सन को देखा। उसका गला भर आया था। उपकार और इतना त्यागपूर्ण स्नेह! वाट्सन मनुष्य है?

हाँ, वह मनुष्य अपनी मानवता मे सम्पूर्ण और प्रसन्न खडा मुस्कुरा रहा था। शैला न कृतज्ञता स उसका हाथ पकड लिया। वाट्सन न फिर कहा—मोटर खडी है। जाओ, अपनी मरती हुई सास का आशीर्वाद ले लो। जब तुम लौट आओगी, तब मैं यहाँ से जाऊँगा। तब तक मैं यहाँ सब काम इन्ह समझा दूँगा। मिस्टर स्मिथ उसे सरलता से कर लेंगे। चलो कुछ खा-पीकर तुरन्त चली जाओ।

उसी दिन सन्ध्या को इन्द्रदेव के साथ शैला, श्यामदुलारी के पलग के पास खडी थी। उसके मस्तक पर कुकुम का टीका था। वह नववधू की तरह सलज्ज और आशीर्वाद से लदी थी।

श्यामदुलारी का जीवन अधिकार और सम्पत्ति के पैरो स चलता आता था। वह एक विडम्बना था या नही, यह नही कहा जा सकता। वह मन-ही-मन सोच रही थी—

जिस माता-पिता के पास स्नेह नही होता, वही पुत्र के लिए धन का प्रलोभन आवश्यक समझते हैं। किन्तु यह भीषण आर्थिक युग है। जब तक ससार मे कोई ऐसी निश्चित व्यवस्था नही होती कि प्रत्येक व्यक्ति बीमारी म पथ्य और सहायता तथा बुढापे मे पेट के लिए भोजन पाता रहेगा, तब तक माता-पिता को भी पुत्र के विरुद्ध अपने लिए व्यक्तिगत सम्पत्ति की रक्षा करनी होगी।

श्यामदुलारी की इस यात्रा म धन की आवश्यकता नही रही। अधिकार के साथ उसे बडप्पन से दान करने की भी श्लाघा होती है। तब आज उनके मन मे त्याग था।

वृद्धा श्यामदुलारी ने अपने कँपते हाथो स एक कागज शैला को देते हुए कहा—बहू, मेरा लडका बडा अभिमानी है। वह मुझे सब कुछ देकर अब मुझसे कुछ लेना नही चाहता। किन्तु मैं तो तुमको देकर ही जाऊँगी। उसे तुमको लेना ही पडेगा। यही मेरा आशीर्वाद है, लो।

शैला ने बिना इन्द्रदेव की ओर देखे उस कागज को ले लिया।

अब श्यामदुलारी न माधुरी की ओर देखा। उसने एक सुन्दर डिब्बा सामने लाकर रख दिया। श्यामदुलारी ने फिर तनिक-सी कडी दृष्टि से माधुरी को देखकर कहा—अब इसे मेरे सामने पहना भी दे माधुरी! यह तेरी भाभी है।

मानव-हृदय की मौलिक भावना है स्नेह। कभी-कभी स्वार्थ की ठोकर से

पशुत्व की, विरोध की, प्रधानता हो जाती है। परिस्थितिया ने माधुरी को विरोध करने के लिए उकसाया था। आज की परिस्थिति कुछ दूसरी थी। श्यामलाल और अनवरी का चरित्र किसी से छिपा नही था। वह सब जान-बूझ कर भी नही आये। तब! माधुरी के लिए ससार म कोई प्राणी स्नेह-पात्र न रह जायगा। श्यामदुलारी तो जाती ही हैं।

प्रेम-मित्रता की भूखी मानवता! बार-बार अपन को ठगा कर भी वह उसी के लिए झगडती है। झगडती हैं, इसलिए प्रेम करती है। वह हृदय को मधुर बनाने के लिए बाध्य हुई। उसने अपने मुँह पर सहज मुस्कान लाते हुए डिब्बे को खोला।

उसने मोतियो का हार, हीरो की चूडियाँ शैला को पहना दी; और सब गहन उसी म पडे रहे। शैला न धीरे से उन्हे पहनान के लिए माधुरी से कहा। माधुरी न भी धीरे से उसकी कपोल चूम कर कहा—भाभी!

शैला ने उसे गले से लगा लिया। फिर उसने धीरे से श्यामदुलारी के पैरो पर सिर रख दिया। श्यामदुलारी ने उसकी पीठ पर हाथ रख कर आशीर्वाद दिया।

और, इन्द्रदेव इस नाटक को विस्मय-विमुग्ध होकर देख रहे थे। उन्हे जैसे चैतन्य हुआ। उन्होने माँ के पैरो पर गिरकर क्षमा-याचना की।

श्यामदुलारी की आँखो म जल भर आया।

८

जेल का जीवन बिताते मधुबन को कितने बरस हो गये हैं। वह अब *भावना शून्य होकर उस ऊँची दीवार की लाल-लाल ईंटों को देख कर उसकी* ओर म आँखें फिरा लेता है। बाहर भी कुछ है या नही, इसका उसके मन म कभी विचार नही होता। हाँ, एक कुत्सित चित्र उसके दृश्य-पट मे कभी-कभी स्वय उपस्थित होकर उसकी समाधि म विक्षेप डाल देता था। वह मलिन चित्र था मैना का! उसका स्मरण होते ही मधुबन की मुट्ठियाँ बँध जातीं। वह कृतघ्न हृदय! कितना स्वार्थी है! उसको यदि एक बार कुछ शिक्षा दे सकता!

जँगले म से बैठे-बैठे, सामने की मौलसिरी के पेड पर बैठे हुए पक्षियो को चारा बाट कर खाते हुए वह देख रहा था। उसक मन म आज बडी करुणा थी। वह अपन अपराध पर आज स्वय विचार कर रहा था—यदि मेरे मन म मैना *के प्रति थोडा-सा भी स्निग्ध भाव न होता, तो क्या घटना की धारा ऐसी ही* चल सकती थी! यही तो मेरा एक अपराध है। तो क्या इतना-सा विचलन भी मानवता का ढाग करने वाला निर्मम ससार या क्रूर नियति नही सहन कर सकती? वह उपेक्षा करने के योग्य साधारण-सी बात नही थी क्या? मेरे सामने कैसे उच्च आदर्श थे। कैसे उत्साहपूर्वक भविष्य का उज्ज्वल चित्र मैं खीचता था! वह सब सपना हो गया, रह गई यह भीषण बगारी। परिश्रम से तो मैं कभी डरता न था। तब क्या रामदीन के नाटा का झिटक लना मेरे लिए घातक सिद्ध हुआ? हाँ, वह भी कुछ है तो, मैंने क्या नही उसे फेंक देने क लिए कहा। और कहता भी कैसे। मैंने तो स्वय महन्त को थैली ले ली थी। हे भगवान्! मेरे बहुत-से अपराध हैं। मैं तो केवल एक की ही गिनती कर सकता था। सब जैस साकार रूप धारण करके मेरे सामन उपस्थित हैं। हाँ, मुझे प्रमाद हो गया था। मैंने अपन मन को निर्विकार समझ लिया था। यह सब उसी का दण्ड है।

उसकी आँखा से पश्चात्ताप के आँसू बहने लगे। वह घण्टा अपनी काल-कोठरी म चुपचाप जँगले स टिका हुआ आसू बहाता रहा। उसे कुछ झपकी-सी लग गई। स्वप्न मे तितली का शान्तिपूर्ण मुखमडल दिखाई पडा। वह दिव्य

ज्योति से भरा था। जैसे उसके मन मे आशा का सचार हुआ। उसका हृदय एक बार उत्साह से भर गया। उसने आँखे खोल दी। फिर उसके मन मे विकार उत्पन्न हुआ। ग्लानि से उसका मन भरा गया। उसे जैसे अपने-आप से घृणा होने लगी—क्या तितली मुझसे स्नेह करेगी? मुझ अपराधी से उसका वही सम्बन्ध फिर स्थापित हो सकेगा? मैंने उसका ही यदि स्मरण किया होता—जीवन के शून्य अश को उसी के प्रेम से, केवल उसकी पवित्रता से, भर लिया होता—तो आज यह दिन मुझे न देखना पडता। किन्तु क्या वही तितली होगी? अब भी वैसी ही पवित्र! इस नीच ससार मे, जहाँ पग-पग पर प्रलोभन है, खाई है, आनन्द की—सुख की लालसा है। क्या वह वैसी ही बनी होगी?

जँगले के द्वार पर कुछ खडखडाहट हुई। प्रधान कर्मचारी ने भीतर आकर कहा—

मधुबन, तुम्हारी अच्छी चाल-चलन से सन्तुष्ट होकर तुमको दो बरस की छूट मिली है। तुम छोड दिये गये।

मधुबन ने अवाक् होकर कर्मचारी को देखा। वह उठ खडा हुआ। बेडियाँ झनझना उठी। उसे आश्चर्य हुआ अपने शीघ्र छूटने पर। वह अभी विश्वास नही कर सका था। उसने पूछा—तो मैं छूट कर क्या करूँगा।

फिर डाके न डालना, और जो चाहे करना।—कहकर वह कोठरी के बाहर हो गया। मधुबन भी निकाला गया। फाटक पर उसका पुराना कोट और कुछ पैसे मिले। उस कोट को देखते ही जैसे उसके सामने आठ बरस पहले की घटना का चित्र खिंच गया। वह उसे उठाकर पहन न सका। और पैसे? उन्हे कैसे छोड सकता था। उसने लौट कर देखा तो जेल का जँगलेदार फाटक बन्द हो गया था। उसके सामने खुला हुआ ससार एक विस्तृत कारागार के सदृश झाँय-झाँय कर रहा था।

उसकी हताश आँखो के सामने उस उजले दिन म भी चारो ओर अँधेरा था। जैसे सन्ध्या चारो ओर से घिरती चली आ रही थी। जीवन के विश्राम के लिए शीतल छाया की आवश्यकता थी। किन्तु वह जेल से छूटा हुआ अपराधी! उसे कौन आश्रय देगा? वह धीरे-धीरे बीरू बाबू के अड्डे की ओर बढ़ा। किन्तु वहाँ जाकर उसने देखा कि घर मे ताला बन्द है। वह उन पैसो से कुछ पूरियाँ लेकर पानी की कल के पास बैठकर खा ही रहा था कि एक अपरिचित व्यक्ति ने पुकारा—मधुबन!

उसने पहचानने की चेष्टा की, किन्तु वह असफल रहा। फिर उदास भाव से उसने पूछा—क्या है भाई, तुम कौन हो?

अरे ! तुम ननीगोपाल का भूल गये क्या ? बीरू बाबू के साथ !

अरे हाँ ननी ! तुम हो ? मैं तो पहचान हो न सका। इस साहबी ठाट मे कौन तुमको ननीगोपाल कहकर पुकारेगा ? कहा बीरू बाबू कहाँ हैं ?

क्या फिर रिक्शा खीचने का मन है ? बीरू बाबू तो बडे घर की हवा खा रहे हैं। उनका परोपकार का सघ पूरा जाल था। उन्होने भर पेट पैसा कमा कर अपनी प्रियतमा मालती दासी का सन्दूक भर दिया। फिर क्या, लगे गुल-छर्रे उडाने ! एक दिन मालती दासी से उनकी कुछ अनबन हुई। वह मार-पीट कर बैठे। उस दिन वह मदिरा मे उन्मत्त थे। तुम आश्चर्य करोगे न ? हाँ वही बीरू जो हम लोगो को कभी अच्छी साक-भाजी भी न खाने का, सादा भोजन करने का उपदेश देते थे, मालती के सग मे भारी पियक्कड बन गये ! दूसरो को सदुपदेश देने मे मनुष्य बड चतुर होते हैं। हाँ तो वह उसी मार-पीट के कारण जेल भेज दिये गये है !

अच्छा भाई ! तुम क्या करते हो ? —मधुवन ने जल के सहारे बासी और सूखी पूरियाँ गले मे ठलते हुए पूछा।

तुम्हारे लिए बीरू से एक बार फिर लडाई हुई। मैने उनसे जाकर कहा कि मधुवन के मुकदमे मे कोई वकील खडा कीजिए। इतना रुपया उसने छाती का हाड तोडकर अपने लिए कमाया है। उन्होने कहा, मुझसे चोरो-डकैतो का कोई सम्बन्ध नही ! मैं भी दूसरी जगह नौकरी करने लगा।

वहाँ काम करते हो ननी ! कोई नौकरी मुझे भी दिला सकोगे ?

नौकरी की तो अभी नही कह सकता। हाँ तुम चाहो तो मेरे साबुन के कारखाने की दूकान हरिहरक्षेत्र के मेले मे जा रही है, मेरे साथ वहाँ चल सकते हो। फिर वहाँ से लौटने पर देखा जायगा। पर भाई वहाँ भी कोई गडबड न कर बैठना।

तो क्या तुमको विश्वास है कि मैंने उस पियक्कड़ को लूटा था और रिक्शा से घसीट कर पीटा भी था ?

मधुवन उत्तेजित हो उठा था। उसने फिर कहा—तो भाई तुम मुझे न लिवा जाओ।

यह लो तुम तो बिगड गये। अरे मैंने तो हँसी की थी। लो वह मेरा सामान भी आ गया। चलो तुम भी, पर ऐसे नगधडग कहाँ चलोगे ! पहले एक कुरता तो तुम्हे पहना दूँ। अच्छा लारी पर बैठकर चलो हवडा, मैं कुरता लिए आता हूँ।

ननी ने सामान से लदी हुई लारी पर उसे बैठा दिया।

मधुवन नियति के अधड मे उडते हुए सूख पत्ते की तरह निरुपाय था। उसके पास स्वतन्त्र रूप से अपना पथ निर्धारित करने के लिए कोई साधन न था। वह जेल से छूटकर हरिहरक्षेत्र चला।

कई कोस का वह मला न जाने भारतवर्ष के किस अतीत के प्रसन्न युग का स्मरण-चिह्न है। सभव है, मगध के साम्राज्य की वह कभी प्रदर्शनी रहा हो। किन्तु आज भी उसमे क्या नही विकता। लोग तो यहाँ तक कहते हैं कि अब इस युग मे भी वहाँ भूत-प्रेत बिकते है!

मधुवन ने अपनी दाढ़ी नही वनवाई थी। उसके बाल भी वैसे ही बढे थे। वह दूकान की चौकीदारी पर नियुक्त था।

साबुन की दूकान सजी थी। मधुवन मोटा-सा डडा लिए एक तिपाई पर बैठा रहता। वह केवल ननी से ही बोलता। उसका स्वभाव शान्त हो गया था, या अतीव क्रुद्ध, यह नही ज्ञात होता था। ननी के बहुत कहने-सुनने पर एक दिन वह गगा-स्नान करने गया। वहाँ से लौटकर हाथियो के झुडो को देखता हुआ वह धीरे-धीरे आ रहा था।

वहाँ उसने दो-तीन बडे सुन्दर हाथी के बच्चा को खलते हुए देखा। वह अनमना-सा होकर मेले मे घूमने लगा। मनुष्य के बच्चे भी कितने सुन्दर होते होगे जब पशुआ के ऐसे आकर्षक है। यही सोचते-सोचते उसे अपनी गृहस्थी का स्मरण हो आया।

उडती हुई रेत मे वह धूसरित होकर उन्मत्त की तरह पालकी, घोड, बैल, ऊँट और गायो की पक्ति को देखता रहा। देखता था, पर उसकी समझ मे यह बात नही आती थी कि मनुष्य क्यो अपने लिए इतना ससार जुटाता है। वह सोचने के लिए मस्तिष्क पर वोझ डालता था, फिर विरक्त हो जाता था। केवल घूमने के लिए वह घूमता रहा।

सध्या हो आई। दूकानो पर आलोक-माला जगमगा उठी। डेरो मे नृत्य होने लगा। गाने की एक मधुर तान उसके कानो मे पडी। वह बहुत दिनो पर ऐसा गाना सुन सका था। डेरे के बहुत-से लोग खडे थे। वह भी जाकर खडा हो गया।

मैना हो तो है, वही...अरे कितना मादक स्वर है।

एक मनचले ने कहा—वाह, महन्तजी बडे आनन्दी पुरुष है।

मधुवन ने पूछा—कौन महन्तजी?

धामपुर के महन्त को तुम नही जानते? अभी कल ही तो उन्होंने तीन

हाथी खरीदे हैं। राजा साहब मुंह दखते रह गये। हजार-हजार रुपये दाम बढा कर लगा दिया। राजसी ठाट ह। एक-स-एक पडित और गवैय उनके साथ है। यह मैना भी ता उन्ही क साथ आई है। लोग कहते है, वह सिद्ध महात्मा हे। जिधर आख उठा द, लक्ष्मी बरस पडे।

मधुबन को थप्पड-सा लगा। मना और महन्त। तब वह यहा क्या खडा है ? उस बडे-से डेरे के दूसरी ओर वह चला।

आस-पास छोटी-छाटी छोलदारियाँ खडी थी। मधुबन उन्ही म घूमन लगा। वह अपने हृदय को दबाना चाहता था। पर विवश होकर जैसे उस डेरे क आस-पास चक्कर काटने लगा।

इतने मे एक दूसरा परिचित कठस्वर सुनाइ पडा। हा, चौबे ही तो थ। किसी से कह रहे थे—तहसीलदार साहब ! महन्तजी से जाकर कहिए कि पूजा का समय हो गया। ठाकुरजी के पास भी आवे। मैना तो कही जा नही रही है।

मरे महन्तजी, यह जितना ही बूढा हाता जा रहा है उतना ही पागल होन लगा है। रुपया बरस रहा है, और कोई राकन वाला नही। —तहसीलदार न उत्तर दिया।

मधुबन के अग स चिनगारियाँ छूटन लगी। उसके जीवन को विषाक्त करन वाले सब विषैले मच्छर एक जगह। उसके शरार म जैस भूला हुआ बल चैतन्य होन लगा।

उसने सोचा—मैं ता ससार क लिए मृतप्राय हूँ ही। फिर प्रेतात्मा की तरह मरे अदृश्य जीवन का क्या उद्देश्य है ? तो एक बार इन सबो को ।

फिर ऐठनेवाले हृदय पर अधिकार किया। वह प्रकृतिस्थ होकर ध्यान स उसकी बातो को सुनने लगा।

अभी अफ़सर लोग डेरे मे है। महन्तजी नही आ सक्ते। —एक नौकर न आकर चौबे से कहा।

तहसीलदार ने कहा—महाराज ! क्यो आप घबराते है, कुछ काम तो करना नही है। इसके साथ हम लोगो के रहने का यह तात्पर्य तो है नही कि यह सुधारा जाय। खाओ-पीओ, मौज लो। देखते नही, मै चला था धामपुर के जमीदार को सुधारने, क्या दशा हुई ! आज वही मेम सर्वस्व की स्वामिनी है। और मैं निकाल बाहर किया गया। गाँव मे किसी की दाल नही गलती। किसान लोगो के पास लम्बी-चौडी खेती हा गई। वे अब भला कानूनगो और तहसीलदारो की बात क्या

सुनगे ! अमीरो के यहाँ तो यह सब होता ही रहता है। हम लोग मन्दिर के सेवक हैं। चलने दो।

चलने दे, ठीक तो है। पर कुछ नियम ससार मे है अवश्य। उनको तोडकर चलने का क्या फल होता है, यह आपने अभी नहीं देखा क्या? देखिए, हम लोगो ने अधिकार रहने पर धामपुर मे कैसा अँधेर मचाया था। अब किसी तरह रोटी के टुकड़ो पर जी रहे है। कहाँ वह इन्द्रदेव की सरलता और कहाँ इसकी पिशाच-लीला! आपने देखा नही मुशीजी, वह लडकी, देहाती बालिका, तितली जिसकी गृहस्थी हम लोगो ने सत्यानाश कर देने का सकल्प कर लिया था, आज कितने सुख से—और सुख भी नही, गौरव से—जी रही है। उसकी गोद मे एक सुन्दर बच्चा है, और गाँव भर की स्त्रियो मे उसका सम्मान है!

मधुबन और भी कान लगाकर सुनने लगा।

बच्चा! अरे वह न जाने किसका है। उसको टाम-टाम से कोई बोलता नही। पहले का समय होता तो कभी गाँव के बाहर कर दी गई होती, और तुम आज उसकी बडी प्रशसा कर रहे हो। उसी के पति मधुबन ने तो तुम्हारी यह दुर्दशा की थी। बुरा हो चाडाल मधुबन का! उसने भाई तुम्हारा बायाँ हाथ ही झूठा कर दिया। यह तो कहो, किसी तरह काम चला लेते हो।

हाँ जी, अपने लोगो को क्या।

तो चलो, हम लोग भी वही बैठकर गाना सुने। यहाँ क्या कर रहे है।

तहसीलदार ने चौबे का हाथ पकडकर उठाया। दोनो बडे डेरे की ओर चले।

मधुबन अन्धकार मे हट गया। उसका मन उद्विग्न था। वह किसी तरह उसको शान्त कर रहा था।

मैना की स्वर-लहरी वायु-मण्डल मे गूँज रही थी। किन्तु मधुबन के मन मे तितली और उसके लडके के विषय मे विकट द्वन्द्व चलने लगा था। वह पागल की तरह लडखडाता हुआ ननीगोपाल के पास पहुँचा।

कहा—ननी बाबू! मुझे छुट्टी दीजिए। मैं अब जाता हूँ।

क्या मधुबन! क्या तुमको यहाँ कोई कष्ट है?

नही, अब मैं यहाँ नही रह सकता।

तो भी रात को कहाँ जाओगे? कल सवेरे जहाँ जाना हो, वहाँ के लिए टिकट दिला दूँगा!—ननी ने पुचकारते हुए कहा।

मधुबन ने रात किसी तरह काट लेना ही मन मे स्थिर किया। वह चुपचाप लेट रहा।

मल का कालाहल धीरे-धीरे शान्त हा गया था। रात गम्भीर हो चली थी।

मधुवन की आखा म नाद नही थी। प्रतिशाध लेन क लिए उसका पशु साँकल तुडा रहा था, और वह बार-बार उसे शान्त करना चाहता था। भयानक द्वन्द्व चल रहा था। सहसा अब उसे झपकी आन लगी थी, एक हल्ला-सा मचा—हाथी! हाथी!!

रात की अँधियारी म चारा ओर हलचल मच गई। साटे-वर्दार दौडे। पुलिस का दल कमर बाँधन लगा। लोग घबडाकर इधर-उधर भागने लगे।

मधुवन चौंककर उठ बैठा। उसके मस्तक म एक पुरानी घन्ना दौडधूप मचान लगी—मैना भी उसम थी और हाथी भी बिगडा था, और तब मधुवन ने उसकी रक्षा की थी वही स उसके जीवन मे परिवर्तन का आरम्भ हुआ था।

तो आज क्या होगा? ऊँह! जा होना हो वह होकर रह। मधुवन को ही क्या न हाथी कुचल दे। सारा झगडा मिट जाय, सारी मनोवेदना की इतिश्री हो जाय।

वह अविचल बैठा रहा।

घटा म कालाहल शान्त हुआ। काई कहता था, बीसा मनुष्य कुचल गये। काई कहता, नही कुल दस ही तो। इस पर वाद-विवाद चलन लगा।

किन्तु मधुवन स्थिर था। उसन सोचा, जिसकी मृत्यु आई उस ससार स छुट्टी मिली। चलो उतन तो जीवन-दड स मुक्त हो गये।

सवेरे जब वह जान क लिए प्रस्तुत था, ननीगोपाल स एक ग्राहक कहन लगा—भाई, मैं ता इस मले स भागना चाहता हूँ। यहा पशु और मनुष्य म भद नही। सब एक जगह बुरी तरह एकत्र किये गय हैं। कब किसकी बारी आवेगी, कौन कह सकता है। सुना है तुमन महन्त का समाचार? उनकी वेश्या, पुजारी और तहसीलदार नाम का एक कर्मचारी ता हाथी से कुचल कर मर गय। महन्त क सिर म चाट आइ है। उसके भी बचने के लक्षण नही हैं। उसी के हाथी बिगडे, तीना-के-तीनो पागल हो गये। कुछ लोग तो कहते हैं, जो राजा इन हाथियो को लेना चाहता था उसी ने कुछ इन्हे खिलवा दिया।

ननी ने कहा—मरें भी य पापी। हाँ, ता तुमका तीन दर्जन चाहिए? बाँध दो जी!

नौकर साबुन बाँधन लगे। मधुवन स्तब्ध खडा था। ननी न उससे पूछा—ता तुम जाना ही चाहते हो?

हाँ।

कुछ चाहिए?

नहीं, अब मुझे कुछ नहीं चाहिए। मैं चला!

मधुबन सिर झुकाकर धीरे-धीरे कमरे से बाहर हो गया। उसके मन में यही बात रह-रहकर उठती थी—मरते तो सभी हैं, फिर भगवान् उन्हें पाप करने के लिए उत्पन्न क्यों करता है, जो मरने पर भी पाप ही छोड़ जाते हैं! और तितली! उसके लड़का हुआ! कब हुआ! हे भगवान्! मरते-मरते भी वे सब मेरे मन में सन्देह का विष उँड़ेल गए।

वह निरुद्देश्य चल पड़ा।

५

शैला की तत्परता से धामपुर का ग्राम-सघटन अच्छी तरह हो गया था। इन्ही कई वर्षों मे धामपुर एक कृषि प्रधान छोटा-सा नगर बन गया। सडके साफ-सुथरी, नालो पर पुल करघो की बहुतायत, फूलो के खेत, तरकारियो की क्यारिया, अच्छे फलो के बाग—वह गाव कृषि-प्रदर्शनी बन रहा था। खेतो के सुन्दर टुकडे बडे रमणीय थे। कोई भी किसान ऐसा न था, जिसके पास पूरे एक हल की खेती के लिए पर्याप्त भूमि नही थी। परिवर्तन म इसका ध्यान रखा गया था कि एक खत कम-से-कम एक हल स जोतने-बोने लायक हो।

पाठशाला, बक और चिकित्सालय तो थे ही, तितली की प्रेरणा से दो-एक रात्रि-पाठशालाएँ भी खुल गयी थी। कृपको क लिए कथा के द्वारा शिक्षा का भी प्रवन्ध हो रहा था। स्मिथ उस प्रान्त मे 'बूढा बाबा' के नाम स परिचित था। उसके जीवन म नया उल्लास और विनोदप्रियता आ गई थी। हँसा हँसाकर वह ग्रामीणो को अपन सुधार पर चलने के लिए बाध्य करता।

हाँ, उसन ग्रामीणो म अखाडे और सगीत-मडलियो का भी खूब प्रचार किया। वह स्वय अखाड जाता गान-वजाने मे सम्मिलित होता, उनके रोगी होन पर कटिबद्ध होकर सेवा करता। युवको म स्वय-सेवा का भाव भी उसने जगाया।

धामपुर स्वर्ग बन गया। इन्द्रदेव न तो माँ के लौटा देने पर भी उसकी आय अपन लिए कभी नही ली। शैला के सामने धामपुर का हिसाब पडा रहता। जिस *विभाग म कमी होती, वही खर्च किया जाता। वह प्राय धामपुर आया करती।*

नन्दरानी की प्रेरणा से शैला एक चतुर भारतीय गृहिणी बन गई थी। इन्द्रदेव के स्वावलम्बन मे वह अपना अश तो पूरा कर ही देती। बैरिस्टरी की आय, उन लोगो के निजी व्यय के लिए पर्याप्त थी।

और तितली? उसके और खेत बनजरिया से मिल जान पर बीसो बीघे का एक चक हो गया था, जिसम भट्ठा की जगह बराबर करके धान की क्यारी बना दी गई थी। उसका बालिका-विद्यालय स्वतत्र और सुन्दर रूप से चल रहा था। दो जोडी अच्छे बैल, दो गाय और एक भैंस उसकी पशुशाला म थी। साफ-

मुधरी चरनो, चरा ने लिए अलग गादाम, रामजस न अधान था। अन्न का व्यवस्था राजो करती। मनिया आर रामदान की सगाइ हा गई था। उनक सामन एक छाटा सा वालक खलन लगा।

किन्तु तितली अपनी इस एकान्त साधना म कभी-कभा चाक उठती थी। माहन क मुँह पर गम्भार विपाद री रधा कभी-कभी स्पष्ट हाकर तितली का विचलित कर दता था।

माहन का अभिन्न मित्र था रामजस। वह अभा तीस वरस का नहीं हुआ था, किन्तु उसक मुँह पर वृद्धा की-सी निराशा की झलक थी। उसके हृदय म उल्लास तभी हाता, जब माहन क साथ किसी सन्ध्या म गगा का कछार रौंदत हुए वह घूमता था। वह चलता जाता था, और उसका पुराना बाता का अन्त न था। किस तरह उसका खत चला गया, कैस लाठी चली, कैस मधुवन भइया ने उसकी रक्षा की, यही उसकी बात-चात का विषय था। माहन ध्यानमग्न तपस्वी की तरह उन बाता का सुना करता।

माहन भा अब चौदह वरस का हा गया था। वह सवस ता नहो, किन्तु राजा स नटखटपन किय बिना नहीं मानता था। उस चिढ़ाता, मुँह बनाता, कभी-कभा नाच-खसाट भी करता। पर उस पर दुलार स कृत्रिम-राप प्रकट करक भा बाल-विधवा राजा एक प्रकार का सन्तोप हो पाती थी।

सच ता यह है कि राजा न ही उस यह सब सिखाया था। तितला कभी-कभी इसक लिये राजा को बात भा सुनाती। पर वह कह दता कि चल, तुझम ता यह पाजीपन नहीं करता। इतना हा पाजी ता मधुवन भी था लडकपन म, यह भी अपने बाप का बेटा है न।

राजो क मन म मधुवन के बाल्यकाल का स्नेहपूर्ण चित्र उपस्थित करते हुए मोहन उसको सान्त्वना दिया करता।

मोहन कभी-कभी माता के गम्भीर प्यार से ऊब कर रामजस क साथ घूमन चला जाता। वह आज गगा के किनारे-किनारे घूम रहा था। सध्या समीप थी। सवार और काई की गन्ध गगा के छिछले जल से निकल रहा थी। पक्षिया क झुण्ड उडते हुए, गगा की शान्त जलधारा मे अपना क्षणिक प्रतिविम्ब छाड जाते थे। वहाँ की वायु सहज शीतल थी। सब जैसे रामजस के हृदय की तरह उदास था।

रामजस को आज कुछ बात-चीत न करते दखकर माहन उद्विग्न हा उठा। उस इतना चलना खलने लगा। न जान क्या, उसका रामजस से हँसी करन का

मूझी । उसने पूछा—चाचा ! तुमने ब्याह क्यो नही किया ? बुआ तो कहती थी, लडकी बडी अच्छी है । तुम्ही ने नाही कर दी ।

हाँ रे मोहन ! लडकी अच्छी होती है, यह तू जानने लगा । कह तो, मैं ब्याह करके क्या करूँगा ? उसको खाने के लिए कौन देगा ?

मैं दूँगा, चाचा ! यह सब इतना-सा अन्न कोठरी मे रखा रहता है । हर साल देखता हूँ कि उसमे घुन लगते है, तब बुआ उसको पिसाकर इधर-उधर बाँटती फिरती है । चाची को खाना न मिलेगा ! वाह, मैं बुआ की गर्दन पर जहाँ चढा, सीधे से थाली परस देगी ।

तुम बडे बहादुर हो । क्या कहना ! पर भाई, अब तो मैं तुम्हारा ही ब्याह करूँगा ! अपना तो चिता पर होगा ।

छी-छी चाचा, तुम्ही न कहते हो कि बुरी बात न कहनी चाहिए । और अब तुम्ही...देखो, फिर ऐसी बात करोगे तो मैं बोलना छोड दूँगा ।

रामजस की आँखो मे आँसू भर आये । उसे मधुबन का स्मरण व्यथित करने लगा । आज वह इस अमृत-वाणी का सुख लेने के लिए क्यो नही अन्धकार के गर्त्त से बाहर आ जाता । उसकी उदासी और भी बढ गई ।

धीरे-धीरे धुँधली छाया प्रकृति के मुँह पर पडने लगी । दोनो घूमते-घूमते शेरकोट के खँडहर पर पहुँच गये थे । मोहन ने कहा—चाचा ! यह तो जैसे कोई मसान है ?

लम्बी साँस लेकर रामजस ने कहा—हाँ बेटा ! मसान ही है । इसी जगह तुम्हारे वश की प्रभुता की चिता जल रही है । तुमको क्या मालूम; यही तुम्हारे पुरुषो की डीह है । तुम्हारी ही यह गढी है ।

मेरी ?—मोहन ने आश्चर्य से पूछा ।

हाँ तुम्हारी, तुम्हारे पिता मधुबन का ही घर है ।

मेरे पिता । दुहाई चाचा । तुम एक सच्ची बात बताओगे ? मेरे पिता थे ! फिर स्कूल मे रामनाथ ने उस दिन क्यो कह दिया कि—चल, तेरे बाप का भी ठिकाना है !

किसने कहा बेटा ! बता, मैं उसकी छाती पर चढकर उसकी जीभ उखाड लूं । कौन यह कहता है ?

अरे चाचा ! उसे तो मैंने ही ठोक दिया । पर वह बात मेरे मन मे काँटे की तरह खटक रही है । पिताजी हैं कि मर गये, यह पूछने पर कोई उत्तर क्यो नही देता । बुआ चुप रह जाती हैं । माँ आँखो मे आँसू भर लेती हैं । तुम बताओगे, चाचा !

बेटा, यही शेरकोट का खँडहर तेरे पिता को निर्वासित करन का कारण है। हाँ, यह खँडहर ही रहा। न इस पर बक बना, न पाठशाला बनी। अपने भी उजडकर यह अभागा पडा है, और एक सुन्दर गृहस्थी को भी उजाड डाला।

तो चाचा! कल से इसको बसाना चाहिए। यह बस जायगा तो पिताजी आ जायँगे?

कह नही सकता।

तब आओ, हम लोग कल से इसमे लपट जायँ। इधर तो स्कूल मे गर्मी की छुट्टी है। दो-तीन घर बनाते कितने दिन लगगे।

अरे पागल! यह जमीदार के अधिकार म है! इसमे का एक तिनका भी हम छू नही सकते!

हम तो छुएँगे चाचा! देखो, यह बास की कोठी है। मैं इसमे से आज ही एक कैन तोडता हूँ।—कहकर मोहन, रामजस के 'हाँ-हा' करने पर भी, पूरे बल स एक पतीली-सी बास की कैन तोड लाया। रामजस ने ऊपर स तो उसे फटकारा, पर भीतर वह प्रसन्न भी हुआ। उसने सन्ध्या की निस्तब्धता को आन्दोलित करते हुए अपना सिर हिलाकर मन-ही मन कहा—है तू मधुवन का बेटा!

रामजस का भूला हुआ बल, गया हुआ साहस, लौट आया। उसने एक बार कधा हिलाया। अपनी कल्पना के क्षेत्र मे ही झूमकर वह लाठी चलाने लगा, और देखता है कि शेरकोट मे सचमुच घर बन गया। मोहन के लिए उसके बाप-दादा की डीह पर एक छाटा-सा सुन्दर घर प्रस्तुत हो ही गया।

अन्धकार पूरी तरह से फैल गया था। उसने उत्साह से मोहन का हाथ पकड-हिला दिया, और कहा—चलो मोहन! अब घर चले।

वे दानो घूमते हुए उसी घाट पर के विशाल वृक्ष के नीचे आये। उसके नीचे पत्थर पर एक मलिन मूर्ति का भ्रम मोहन को हुआ। उसने धीरे से रामजस से कहा—चाचा, वह देखो, कौन है?

रामजस न देखकर कहा—होगा कोई, चलो, अब रात हो रही है। तेरी बुआ बिगडे गी।

बुआ! वह तो बात-बात म बिगडती हैं। फिर प्रसन्न भी हो जाती है। हाँ, माँ से मुझे ।

डर लगता है? नही बेटा! तितली के दुखी मन म एक तेरा ही तो भरोसा है। वह बेचारी तुम्ही को देखकर तो जी रही है। हे भगवान्! चौदह बरस पर तो रामचन्द्र जी वनवास झेलकर लौट आये थे। पर उस दुखिया का ।

वे लोग बातें करते हुए दूर निकल गये थे। वृक्ष के नीचे बैठी हुई मलिन मूर्ति हिल उठी।

बनजरिया के पास पहुँचते-पहुँचते रात हो गई। मोहन ने कहा—चाचा! क्या वह भूल था ? तुमने मुझे देख लेने क्यो नही दिया ? इसी से लोग डर जाते हैं ?

पागल! डर की कौन बात है ? तेरा बाप तो डरना जानता ही न था ?

हाँ, मैं भी डरता नही हूँ, पर तुमने देखने क्यो नही दिया।

मोहन के मन में एक तरह का कुतूहल-मिश्रित भय उत्पन्न हो गया था। वह सुन चुका था कि एकान्त में वृक्षो के पास भूत-प्रेत रहते हैं तब भी वह अपने स्वाभाविक साहस को एकत्र कर रहा था।

तितली ने डाँटकर पूछा—क्या, तू इतनी देर तक कहाँ घूमता रहा ? छुट्टी है तो क्या घर पर पढने को नही है ?

उसने माँ की गोद में मुँह छिपाकर कहा—माँ, मैं आज अपनी पुरानी डीह देखने चला गया था। शेरकोट!

दीपक के धुँधले प्रकाश मे तितली ने उदासी से रामजस की ओर देखते हुए कहा—रामजस! इस बच्चे के मन में तुम क्यो असन्तोष उत्पन्न कर रहे हो ? शेरकोट को भूल जाने से क्या उनकी कुछ हानि होगी ?

भाभी, शेरकोट मोहन का है। तुमको उसे भी लौटा लेना पडेगा, जैसे हो वैसे। मुझे उसके लिए मरना पडे, तो भी मैं प्रस्तुत हूँ। कल मैं स्मिथ साहब के पास जाऊँगा। न होगा तो लगान पर हो उसको माँग लूँगा। मधुबन भइया लौटकर आवेगे तो क्या कहेगे।

उसको हटाने के लिए तितली ने कहा—अच्छा, जाओ। तुम लोग खा-पी लो। कल देखा जायगा।

तितली एकात मे बैठकर आज रोने लगी! मधुबन आवेगे ? यह कैसी दुराशा उसके मन में आज भीषण रूप से जाग उठी। पुरुषोचित्त साहस से उसने इन चौदह बरसो में ससार का सामना किया था। किसी से न झुकने की टेक, अविचल कर्त्तव्य-निष्ठा और अपने बल पर खडे होकर इतनी सारी गृहस्थी उसने बना ली। पर क्या मधुबन लौट आवेगे ? आकर उसके सयम और उसकी साधना का पुरस्कार देगे ? एक स्नेहपूर्ण मिलन उसके फूटे भाग्य में है ?

निष्ठुर विधाता! बचपन अकाल की गोद में! शैशव बिना दुलार का बीता! यौवन के आरम्भ में अपने बाल-सहचर 'मधुवा' का थोडा-सा प्रणय-

मधु जो मिला, वह क्या इतना अमर कर देने वाला है कि यत्रणा मे पीडित होकर वह अनन्तकाल तक प्रतीक्षा करती हुई जीती रहगी ?

उसे अपनी ससार-यात्रा की वास्तविकता मे सन्देह होने लगा। वह क्या इतनी धूम-धाम से हलचल मचाकर ससार व नश्वर लोक म अपना अस्तित्व सिद्ध करने की चेष्टा करती रही ? जियगी, ता झेलेगा कौन ? यह जीवन कितनी विषम घाटिया स होकर धीरे-धीरे अन्धकार की गुफा म प्रवेश कर रहा है। मैं निरालम्ब होकर चलने का विफल प्रयत्न कर रही हूँ क्या ?

गाव भर मुझसे कुछ लाभ उठाता है, और मुझे भी कुछ मिलता है, किन्तु उसके भीतर एक छिपा हुआ तिरस्कार का भाव है। और है मेरा अलक्षित वहिष्कार ! मैं स्वय ही नही जानती, किन्तु यह क्या मेरे मन का सन्दह नही ह ? मुझे जीभ दबाकर लोग न जाने क्या-क्या कहते ह ! यह सब चल रहा है तो भी मैं अपने म जैस किसी तरह सन्तुष्ट हा लेती हूँ।

मेरी स्व-चेतना का यही अर्थ है कि मैं और लोगो की दृष्टि मे लघुता से देखी जाती हूँ, मैं और उसकी जानकारी स अपने को अछूती रखना चाहती हैं। किन्तु यह 'लुक-छिप कब तक चला करेगी ? एक बार ध्वस होकर यह खँडहर भी शेरकोट की तरह बन जाय !

शैला ! कितनी प्यारी और स्नेह भरी सहेली है। किन्तु उससे भी मन खोलकर मैं नही मिल सकती। वह फिर भी सामाजिक मर्यादा मे मुझसे बडी है और मुझे वैसा काई आधार नही। है भी तो केवल एक मोहन का। वह कोमल अवलम्ब ! अपनी ही मानसिक जटिलताओ से अभी स दुर्बल हो चला है। वह साचने लगा है, कुढने लगा है, किसी से कुछ कहता नही। जैसे लज्जा की छाया, उसके सुन्दर मुख पर दौड जाती है। मुझसे अपनी माँ से, अपनी मन की व्यथा खोलकर नही कह सकता। हे भगवान् !

वह रोन लगी थी। हाँ, हा, रोन म आज उस सुख मिलता था।

किन्तु वह रोने वाली स्त्री न थी। वह धीरे धीरे शान्त होकर प्रकृतिस्थ होने लगी थी। सहसा दौडता हुआ मोहन आया। पीछे राजा थी। वह कह रही था—देख न, रोटी और दूध दे रही हूँ। यह कहता है, आज तरकारी क्यो नही बनी। अपने बाप की तरह यह भी मुझको खाने के लिए तग करता ही है।

मोहन तितली के पास आ गया था। तितली ने उसके सिर पर हाथ रखा, वह जल रहा था। उसने कहा—मा, मुझे भूख नही है।

अरे तुमको तो ज्वर हो रहा है ! —तितली न भयभीत स्वर मे कहा।

क्या ? अब तो इसका आज खाने को नही देना चाहिए !

यह कहकर राजो चली गयी, और मोहन माँ की गोद मे भयभीत हरिण-शावक की तरह दुबक गया।

तितली ने उसे कपडा ओढाकर अपने पास सुला लिया। वह भी चुपचाप पडा माँ का मुँह देख रहा था। दीप शिखा के स्निग्ध आलोक म उसकी पुतली, सामना पड जाने पर, चमक उठती थी। तितली उसके शरीर को सहलाती रही, और मोहन उसके मुँह का दखता ही रहा।

सो जा बेटा। —तितली ने कहा।

नीद नही आ रही है। —मोहन न कहा। उसकी आँखो मे जिज्ञासा भरी थी।

क्या है रे? —तितली ने दुलार स पूछा।

माँ मैंने पेड के नीचे, शेरकोट क पास जो घाट पर बडा-सा पेड है उसी के नीचे आज संध्या को एक विचित्र ।

क्या तू डर गया है? पागल कही का।

नही, माँ, मैं डरता नही। पर शेरकोट क पास वह कौन वैठा था। मेरे मन मे जैसे बडा

जैसे वडा, जैसा बडा! क्या बडे खायेगा? तू भी कैसा लडका है। साफ-साफ क्यो नही कहता? —तितली का कलेजा धक् धक् करने लगा।

माँ, मै एक बात पूछू?

पूछ भी—तितली न उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा। उसका पसीना अपने अचल से पोछ कर वह उसकी जिज्ञासा से भयभीत हो रही थी।

माँ!

कह भी! मुझे जीते-जी मार न डाल! मेरे लाल! पूछ! तुझे डर किस बात का है? तेरी मा ने संसार म कोई ऐसा काम नही किया है कि तुझे उसके लिए लज्जित होना पडे।

मा, पिताजी!

हाँ वेटा, तेरे पिताजी जीवित है। मरा सिन्दूर दखता नही?

फिर लोग क्यो ऐसा कहते है?

वेटा! कहने दे, मैं अभी जीवित हूँ। और मेरा सत्य अविचल होगा तो तेरे पिताजी भी आवेंगे।

तितली का स्वर स्पष्ट था। मोहन को आश्वासन मिला। उसके मन म जैसे उत्साह का नया उद्गम हा रहा था। उसने पूछा—माँ, हमी लोगा का शेर-कोट है न?

हाँ बेटा, शेरकोट तेरे पिताजी के आते ही तेरा हो जायगा। कल मैं शैला के पास जाऊँगी। तू अब सो रह।

तितली को जीवन भर म इतना मनोबल कभी एकत्र नहीं करना पडा था। मोहन का ज्वर कम हो चला था। उसे झपकी आने लगी थी।

उसी कोठरी स सटकर एक मलिन मूर्ति बाहर खडी थी। सुकुमार लता उस द्वार के ऊपर बन्दनवार-सी झुकी थी। उसी की छाया म वह व्यक्ति चुपचाप मानो कोई गम्भीर सन्देश सुन रहा था।

तितली की आखो म एक क्षणिक स्वप्न आया और चला गया। उसकी आँखे फिर शून्य होकर खुल पडी। वह बचन हो गयी। उसने मोहन का सिर सहलाया। वह निमल हल्के-से ज्वर म सो रहा था। तब भी कभी-कभी चौंक उठता था। धीरे-धीरे उसके ओठ हिल जाते थे। तितली जैसे सुनती थी कि वह बालक 'पिताजी कह रहा है। वह अस्थिर होकर उठ बैठी। उसकी वेदना अब वाणी बनकर धीरे-धीरे प्रकट होने लगी—

नही! अब मेरे लिए यह असम्भव है। इसे मैं कैस अपनी बात समझा सकूँगी! हे नाथ! यह सन्देह का विष, इसके हृदय मे किस अभागे ने उतार दिया। ओह! भीतर-ही-भीतर यह छटपटा रहा है। इसको कौन समझा सकता है। इसक हृदय म शेरकाट, अपने पुरखो की जन्मभूमि के लिए उत्कट लालसा जगी है। ओह, सम्भव ह, यह मेरे जीवन का पुण्य मुझे ही पापिनी और कलकिनी समझता हो तो क्या आश्चय। मने इतन धैय से इसीलिए ससार का सब अत्याचार सहा कि एक दिन वह आवगे, और मै उनकी थाती उन्हे सौपकर अपने दु खपूर्ण जीवन से विश्राम लूंगी। किन्तु अब नही। छाती मे झंझरिया बन गयी है। इस पीडा का कोई समझन वाला नही। कभी एक मधुर आश्वासन! नही, नही, वह नही मिला, और न मिल! किन्तु अब मैं इसका नही सम्भाल सकती। जिसने इसे ससार मे उत्पन्न किया हा वही इसका सम्भाले। तो अभी नारी-जीवन का मूल्य मैने इस निष्ठुर ससार को नही चुकाया क्या?

ठहर जाऊँ? कुछ दिन और भी प्रतीक्षा करूँ, कुछ दिन और भी हत्यारे मानव-समाज की निन्दा और उत्पीडन सहन करूँ। क्या एक दिन, एक घडी, एक क्षण भी मेरा, मरे मन का नही आवेगा—जब म अपन जीवन-मरण के दु ख-सुख म साथ रहन की प्रतिज्ञा करने वाल के मुँह स अपनी सफाई सुन लू?

नही, वह नही आन का। तो भी मनुष्य के भाग्य म वह अपना समय कब आता ह, यह नहीं कहा जा सकता। रो लूं? नही, अब रोने का समय नही है। बेचारा सो रहा है। तो चलूं। गगा की गोद मे।

तितली इस उजडे उपवन से उड जाय।

उसने पागलों की तरह मोहन को प्यार किया, उसे चूम लिया।

अचेत मोहन करवट बदल कर सो रहा था। तितली न किवाड खोला।

आकाश का अन्तिम कुसुम दूर गगा की गोद म चू पडा, और सजग होकर सब पक्षी एक साथ कलरव कर उठे।

तितली इतने ही से तो नही रुकी। उसने और भी देखा, सामने एक चिर-परिचित मूर्ति। जीवन-युद्ध का थका हुआ सैनिक मधुबन विश्राम-शिविर क द्वार पर खडा था।

उसकी आँखे आशा-विहीन सन्ध्या और उल्लास-विहीन उषा की तरह काली और रतनारी थी। कभी-कभी उनमे दिग्दाह का भ्रम होता, वे जल उठती, परन्तु फिर जैसे बुझ जाती। वह न वेदना थी न प्रसन्नता। उसके घुँघराले बाल जटा न बन पाये। छोटी-छोटी स्वत बढने वाली दाढी भी कुछ यो ही कालिमा से उसकी सुवर्ण-त्वचा को रेखाकित कर रही थी। शरीर केवल हाड से बना प्रतीत होता था; परन्तु उसमे बल का अभाव नही था। वह अभी आकर, शिप्रा के शीतल जल से स्नान कर घाट पर बैठा था। उसके मणिबन्ध मे, किसी नाग-रिका के जूडे की शिप्रा मे गिरी हुई माला पडी थी, अकारण। उसमे अभी गन्ध थी। फिर भी उसे सूँघने की इच्छा नही। वह परदेशी था। उसकी एक छोटी गठरी वही पडी थी। शिप्रा मे जल-विहार करने वालो की कमी न थी। वसन्त की सन्ध्या मे आकाश प्रसन्न था। प्रदोष का रमणीय समय, किन्तु वह तो अन-मना, थका-सा तब भी जैसे इन सब की वह उपेक्षा कर रहा था।

तूर्य-नाद और दुन्दुभि का गम्भीर घोष गूँजने लगा। चारो ओर जैसे हल-चल मची। लोग उठकर चलने लगे। परन्तु वह स्थिर बैठा रहा। किसी ने पूछा पूछा—"तुम न चलोगे क्या ?"

"कहाँ ?"

"मन्दिर मे"—

"किस मन्दिर मे ?"

"यही महाकाल की आरती देखने"—

"अच्छा"—कहकर भी वह उठा नही। घाट जन-शून्य हो गया। मन्दिर की पताका धूमिल आकाश मे लहरा रही थी। वह बैठा रहता; परन्तु चपल घोडो से सज्जित एक पुष्प-रथ, वही घाटी के समीप आकर रुका। उस पर बैठे हुए युवक ने सारथी से कहा—"बस यही, किन्तु वे सब कहाँ है, अभी नही आये। इतने मे अश्वारोहियो की एक छोटी-सी टुकडी वहाँ आकर खडी हुई। रथी ने कुछ सकेत किया। वे सब उतर पडे। शिप्रा-तट के वट की शाखाओ मे घोड़ो के

डार अटका दिय गये। कुछ परिचारक भा दौड़ते हुए आय। व मन नहीं ठहर गय। कवल एक उत्तरधारी महाकाल के गापुर की ओर बढ़न लगा। पाछे-पीछ ये लाग चल। रथी का डील-डौल साधारण था, किन्तु उसका प्रभाव असाधारण। उसके समीप स लाग हट जात।

कुतूहल और क्या पहला परदसी इन्हीं लागा क साथ, पाछे-पाछ मन्दिर म घुसा। सब लाग व्यस्त थ। पूजन आरम्भ हा चुका था। नागरिकों का झुड भी चला आ रहा था। किन्तु न जान क्यो उस रथी पर दृष्टि जाते ही जैसे सब सशक हा जात। पथ छाड दत।

मन्दिर के विशाल प्रागण म नर-नारी का भाड उमड रही था। महाकाल का प्रदाप-पूजन भारत-विख्यात था। उसम भक्ति और भाव दाना का समावेश था। सात्विक पूजा क साथ नृत्य गीत-कला का समावेश था। इसीलिए बौद्ध-शासन म भी उज्जयिनी की वह शोभा सजीव थी।

महाकाल के विशाल मन्दिर म सायकालीन पूजन हा चुका था। दर्शक अभी भी भक्ति-भाव स यथास्थान बैठ रहे थ। मण्डप क विशाल स्तम्भा स बेले क गजरे झूल रहे थे। स्वर्ण के ऊँचे दीपाधारो म सुगन्धित तैला क दीप जल रह थ। कस्तूरी अगरु स मिली हुई धूप-गन्ध, मन्दिर म फल रही थी। गर्भगृह क समीप एक मुक्तकेश ब्रह्मचारी एक सौ एक बत्तियो की जलती हुइ आरती को अपनी बडी-बडी रतनारी आँखा स देख रहा था। पुष्प-शृगार स भूपित महाकाल-मूर्ति की विशाल देहली पर बीचोबीच वह आरती जल रही थी, जिस अपनी दृढ भुजा स ब्रह्मचारी ने घुमा कर रख दा है। पटह, तूर्य शान्त नीरव थे। मण्डप का चौकोर भाग बीच म खाली था। दर्शक चुप थे। सहसा मृदग और वीणा बज उठी। न जान किधर स नूपुर का झनकारती हुई एक देवदासी उसी रिक्त भूमिका म लास्य-मुद्रा म आ खडी हुई, भावाभिनय सगीत और नृत्य साथ-साथ चला।

उमा-तपस्वी हर के समीप पुष्प-पात्र लकर जाती है। वसन्त का प्रादुर्भाव हाता है। उमा के अग-अग मे श्री, यौवन और कमनीयता तरग-सी उठने लगती है। कोयल की पचम तान, वीणा की मधुर झनकार के साथ वह अप्सरा महाकाल के समीप पुष्पाजलि बिखर देती है।

निशीथ-व्यापी सगीत-समारोह का यह मगलाचरण था। आज मन्दिर म विशेष उत्सव की आयोजना थी। दर्शको मे एक ओर रथारोही व्यक्ति बैठा था। उसके साथी भी विशेष सावधान थे। किन्तु उसकी दृष्टि देवदासी पर थी। एक बार भी देव-प्रतिमा की ओर उसन भूल से भी नही देखा। उद्विग्न होकर उसने अपन साथी से धीरे से कहा—

"यह देव-मन्दिर है या रंगशाला ?"

"कुमार ! शान्त रहिए !" साथी ने कहा।

कुमार की आखे जल उठी। उसने एक बार अपने साथियो को देखा, जैसे अपने बल का अनुमान करता हो। फिर उसने देखा अपने समीप ही खड़े हुए उस युवा पथिक को, जो तन्मय होकर अपलक आखो से नर्तकी को देख रहा था। मूर्तिमती कला का वायवीय आकर उसके हृदय के भीतर स्पर्श करके मधुरता से भर रहा था। कुमार व्यग से हँस पडा। उसने चौककर कुमार को देखा। जैसे जन्मजात दो विरोधी एक-दूसरे को अकस्मात् दीख पड़े, वही दशा उन दोनो की हुई।

नर्तकी ने गायन प्रारम्भ किया। उसकी पञ्चम तान सभा-मण्डप म गूँज उठी। और युवा परदेशी ! वह तो जैसे पागल हो उठा। उसकी आंखे जैस फैल गयी। वह कुछ पहचान लेने का प्रयत्न कर रहा था। अब वह रुक नही सकता, बोलना ही चाहता था कि नवागन्तुक कुमार ने ललकार कर कहा—"बन्द करा निन्दनीय प्रदर्शन को ! देव-मन्दिर के नाम पर विलासिता के प्रचार को बन्द करो।"

महाकाल-प्रतिमा के समीप बैठा हुआ ब्रह्मचारी तन कर खडा हो गया। उसने प्रतीक्षा की, अब जनता मे से कोई प्रतिवाद करता है। किन्तु सहसा नर्तकी के आभूपणो की तरह भनभना कर व मौन रह गये; ब्रह्मचारी ने कहा—"देवाधिदेव की स्तुति करने से रुक जाना, सो भी किसी अपरिचित की आज्ञा पर, उचित नही। इरावती ! तुम चुप क्या हो ?"

इरावती ने आरम्भ किया। कुमार का मुँह लाल हो उठा। उसने कडक कर कहा—"मौर्य साम्राज्य के कुमारामात्य बृहस्पतिमित्र का परिचय तुम नही जानते देवकुलिक !"

"शान्त ! तुम तो भाषा का भी साधारण ज्ञान नही रखते कुमार ! देवकुल मृतको का होता है देवता का नही।" ब्रह्मचारी अपनी पूर्ण मनुष्यता मे तन कर खडा था। बृहस्पतिमित्र उसकी ओर देखने का साहस छोड चुका था, परन्तु उसने ढिठाई से कहा—"कहाँ है उज्जयिनी का प्रादेशिक महामात्य। उसको मेरे आगमन की सूचना दो। और इस नर्तकी को पकड कर दुर्ग मे ले जाओ।"

बृहस्पतिमित्र का एक साथी दौड़ा हुआ बाहर गया। दूसरा सभा मण्डप मे इरावती की ओर चला। दर्शको मे भगदड़ पड़ी। रग मे भग हुआ। किन्तु युवा पथिक अब अपने को रोक न सका। वह भी मण्डप के बीच इरावती के समीप

वायु-वग से आ पहुँचा । इरावती से उसन धीरे से कहा—"इरा ! मैं हूँ, डरन की काई बात नही । मरे रहत तुम्हारा अनिष्ट नही हो सकता ।'

इरावती कृतज्ञता से उसकी आर दख कर बाली —"धन्यवाद ! अग्निमित्र ! किन्तु मैं बन्दी होना चाहती हूँ ।

ब्रह्मचारी हँस पडा । अग्निमित्र सकाच मे गड-सा गया । उसकी कृपाण कटिबन्ध म चली गई । नतमस्तक वह खडा रहा । कुमारामात्य का साथी इरावती को जब पकडकर ले चला, तब ब्रह्मचारी न धीरे से उसे अपनी ओर खीच लिया ।

बृहस्पति एठा हुआ उद्धत-भाव स दूसरी ओर दख रहा था । पलक मारते यह घटना हुई । सभा-मण्डप जन-शून्य हा गया । केवल कुमार क साथी और गर्भगृह क द्वार पर अग्निमित्र तथा ब्रह्मचारी खडे रहे ।

प्रादेशिक के आन तक सब मौन बने रह । केवल ब्रह्मचारी क नत्रा स उल्का की तरह एक ज्वाला निकलती और पिर अपने आप बुझ जाती थी । जैसे उसके हृदय की शीतलता पानी लकर खडी थी ।

प्रादशिक ने कुमार का नमस्कार किया । गर्वोद्धत कुमार बृहस्पति उचित उत्तर न देकर पूछ बैठा—"क्यो जी, तुमन धम-विजय की आयोजना और उसके सम्बन्ध मे निकली हुई आज्ञाओ का अच्छी तरह पालन किया है ? देखता हूँ कि उज्जयिनी क प्रादशिक ने साम्राज्य का कवल नियमित कर भेज देना ही अपना कर्तव्य समझ लिया है ।

' आय ! मै अपनी त्रुटि अभा तक नही समझ सका । —सविनय प्रादेशिक ने कहा ।

'क्या समझागे ! धम क नाम पर शील का पतन, काम-सुखो की उत्तेजना और विलासिता का प्रचार तुमको भी बुरा नही लगता न ! स्वर्गीय दवप्रिय सम्राट् अशोक का धर्मानुशासन एक स्वप्न नही था । सम्राट् उस धर्म-विजय को सजीव रखना चाहते है । किन्तु वह शासको की कृपा से चलने पावे तव तो । तुम्हारी छाया के नीचे य व्यभिचार क अड्डे, चरित्र के हत्यागृह और पाखण्ड क उद्गम सबल है । और तुम आँखे बन्द किये निद्रा ले रहे हा । मैं किसी के धार्मिक कृत्य मे बाधा नही देना चाहता, किन्तु चारित्र्य विनाश और हिंसा-मूलक क्रियाओ का राकना मेरा कर्तव्य है । मै वेश्याओ से घिरी हुई देव-प्रतिमा स घृणा करता हूँ । यह श्रृङ्गार-लास्य धर्म है क्या ?

अब ब्रह्मचारी स नही रहा गया । उसने कहा— धर्म क्या है और क्या नहीं है, यह महाकाल-मन्दिर का आचाय बौद्ध-धर्म-महामात्र स सीखना नही

चाहता। यह व्याख्यान मन्दिर मे न देकर कही और देने की कृपा कीजिए। मुझे ता स्पष्ट राजा की आज्ञा मिलनी चाहिए। शासक मुझसे क्या चाहता है। शासन-दण्ड-धर्म म परिवर्तन नही करा सकता। हाँ, उसके राष्ट्र म मेरा धर्म कहाँ तक बाधक है, यह मैं देख लूँगा।"

कुमार का क्रोध अब अपने म नही रह सका। उसने उच्च कठ से कहा—"तो सुनो, मौर्य-साम्राज्य की प्रधान नीति धर्म-सशोधन की है। जितने अनाचार हैं, वे सा राष्ट्र मे न हाने पावेगे।"

ब्रह्मचारी की आँखा से एक बार फिर ज्वाला निकली। महाकाल के पुजारी न दृढ कठ से कहा—"किन्तु भगवान् का ताण्डव-नृत्य क्या है? तुम नही जानते कुमार! उस नृत्य को रोकने की किसम क्षमता है! तुम्हारी समस्त शक्ति उन शक्तिनाथ की विभूति का एक कण है। वडे-वडे साम्राज्य और सम्राट् उसकी एक दृष्टि म नाश होते हैं। सावधान!

ब्रह्मचारी का वाक्य पूरा नही होन पाया था कि दा उल्काधारिया के साथ एक सम्भ्रान्त राजपुरुष न दौडते हुए आकर कहा—"कुमार की जय हा! सम्राट् शतधनुष न निर्वाण प्राप्त किया।' एक क्षण मे महान् परिवर्तन! ब्रह्मचारी ने मुस्करा दिया। अग्निमित्र चकित हा रहा था। और युवा कुमार यह नही साच सकता था कि वह शोक प्रकट करे या राज्य प्राप्त करने का हर्ष! क्योकि साम्राज्य के सिहासन पाने म वडी बाधाएँ थी। वह अवनत मस्तक चुप खडा था। राजनिधन का समाचार मन्दिर के कोने-काने म फैल गया। साथ ही—उपासका ने दव, किन्तु दृढ स्वर म कहा "यह महाकाल का काप है।

महाकुमार बृहस्पतिमित्र ने उस अवसाद से ऊपर उठने की चेष्टा करते हुए कहा—"प्रादेशिक! इस नर्तकी को अभी कुछ दिना के लिए सघ म भेज दा और मैं कुसुमपुर जा रहा हूँ। जा कर है वह भी सना के साथ मेरे पीछे-पीछे शीघ्र पहुँचे, इसम भूल न हो।'

बृहस्पतिमित्र मन्दिर-प्रागण से बाहर हा गया। और पुष्परथ पर बैठ कर वेग से उसी रात्रि के अन्धकार मे पाटलिपुत्र की ओर चल पडा। उज्जयिनी की भयभीत जनता ने देखा कि उल्काधारी अश्वारोहियो के बीच एक क्रूर पिशाच-परिवार गन्धर्व-नगर की तरह उडा जा रहा है।

जनता लौट कर प्रागण म न आई। ब्रह्मचारी निश्चल-भाव स गर्भगृह क द्वार पर खडा था। और अग्निमित्र जैसे निरुपाय छटपटा रहा था।

इरावती चुपचाप खडी थी। उसकी दृष्टि से तिरस्कार की लहर उठ रही

थी। प्रादेशिक प्रतीक्षा कर रहा था। भिक्षुणी-संघ म समाचार भेजा जा चुका था।

अग्निमित्र अपन का उलझना से बाहर करन क लिए अभी तक सघप कर रहा था। उसने कहा— इरा ! तुम भिक्षुणी होन के पहले मुझस कुछ बातें न कर लोगी ?

प्रादेशिक उद्विग्न मन से साम्राज्य के उलट-फेर की बात साच रहा था। उसन अपन साथी सैनिक से कहा— 'मैं जाता हूँ। यह स्त्री तब तक अपने इस परिचित स बात करती है, फिर भिक्षुणी-संघ से किसी के आ जान पर उसी क साथ इसे पहुँचा दना। समझा न !'

प्रादेशिक महामात्य चला गया। इरावती ने कहा—'क्या बिना मुझसे पूछे तुम रह नही सकते ? अग्नि ! मैं जीवन-रागिनी म वर्जित स्वर हूँ। मुझे छेडकर तुम सुखी न हो सकोगे।

"इरा ! यह असम्भव ह। मै तुमस अपनी असमर्थता का विवरण देना चाहता हूँ। जिस अवस्था मे मुझे तुमस अलग होना पडा !

ठहरा मुझे उसकी आवश्यकता नही। तुम यही न कहोगे कि तुम्हार गुरु-जन मरा और तुम्हारा सम्बन्ध अच्छी आखो से नही देख सके। और तुम उनका प्रत्याख्यान नही कर सकते थे। ठीक है ! गुरुजन ! बाल्य-काल म जितनी सेवा-शुश्रूपा, प्यार-दुलार और आज्ञाकारिता तुम्हारी कर चुके है उस सब का प्रति-दान चाहत है। और तुम ऋणी हो, उस चुकाना पडेगा। मेरा ता तुमसे कुछ प्राप्य नही। झिडकी मारपीट और चिढाना यह सब जा था वह तो शैशव म ही मिल चुका था। फिर अब आदान-प्रदान कैसा ?

' इरा ! तुम मुझे कहने भी न दोगी ! तुम्हारे निरुद्देश्य होने पर मैं कहाँ-कहा भटकता हुआ यहा

"मुझसे मिले, मुझे बचाना चाहते हा। यह तुम्हारी अनुकम्पा है। परन्तु मेर ऊपर मेरा भी कुछ ऋण है। मैंन भी अपने को, इतने दिनो स ससार स सार लकर—भीख माग कर—अनुग्रह से अनुरोध से जुटाकर कैसा कुछ खडा कर दिया ह। उस मूर्ति को क्यो बिगाडूँ ? स्त्री के लिए, जब देखा कि स्वावलम्बन का उपाय कला के अतिरिक्त दूसरा नही, तब उसी का आश्रय लकर जी रही हूँ। मुझे अपन म जीने दो।

"किन्तु वह भी अब कहाँ ? तुम तो भिक्षुणी बनन जा रही हो इरा !

' देवता के सामने नाच चुकी, अब देखूँ अदेवता—अनात्म मुझे कौन नाच नचाता है। घबराओ मत अग्निमित्र, मैं कदाचित् तुम्हारे लिए अपन को प्रस्तुत

करती होऊँ, वह नहीं सकती। वह देखा, भिक्षुणिया का सघ आ रहा है। मुझे जाना होगा। तुमको इस समय के लिए इसे स्वीकार करना होगा।" फिर उसने ध्यान से इन बातों को सुनने वाले ब्रह्मचारी को देख कर नमस्कार किया और कहा—"आय ! क्षमा कीजिए।"

ब्रह्मचारी ने धीरे-धीरे आकर अग्निमित्र का हाथ पकड लिया। अभी भी वह पूरी आँख नहीं खोलता था। उसकी आखों से ज्वाला निकल कर बुझ जाती थी।

इरावती ने उन भिक्षुणियों के साथ प्रस्थान किया, जो दूर प्रागण में उसकी प्रतीक्षा कर रही थी।

* * *

इस घटना को बीते कई महीने हो गये। अग्निमित्र महाकाल-मन्दिर में ब्रह्मचारी के पास रहने लगा। और ब्रह्मचारी दिन-रात पुरानी बठना को खोल-कर पुस्तकों के पढने में और कुछ लिखने में समय बिताने लगा। केवल साय-प्रात पूजन के समय गर्भगृह में दिखाई पडता।

शारदी पूर्णिमा थी। शिप्रा में छोटी-छोटी लहरें उठकर चाँदनी की झालर बना रही थी। नागरिकों की छोटी-छोटी नावें जल-विहार के लिए स्वच्छन्द घूम रही थी। उधर विहार के उपासथागार में भिक्षु-सघ एकत्र था। और उसी से सटे चक्रम पर भिक्षुणियाँ भी अपने विहार से आकर एकत्र हो रही थी। उपो-सथागार में भिक्षु-सघ प्रवारणा कर रहा था। और बाहर चक्रम पर भिक्षुणियों का छोटा-सा समूह प्रवारणा के लिए अपनी ओर से प्रतिनिधि भेजने का चुनाव कर रहा था। उत्पला भिक्षुणी चुनी गई। उसकी श्रामणेरी नीला बारह बरस की एक निराश्रया बालिका थी। नीला चक्रम के एक कोने पर खड़ी पूर्ण चन्द्रोदय देख रही थी। उसने सहसा घूमकर कहा—

"भगिनी इरा ! कैसी सुन्दर रात है।"

"मत कहो ऐसी बात श्रामणेरी नीला ! यह भावना मुग्ध में मन को फँसाने वाली है।" पास ही बैठी हुई एक भिक्षुणी ने कहा। इरा ने जैसे अब सुना। कुछ प्रत्याख्यान करने की इच्छा से उसने पूछा—"क्या कहा ?"

"रात्रि का सौन्दर्य, काम-भोग के निमित्त मन को उत्तेजित कर सकता है भगिनी। उसका वर्णन वर्जित है।"— भिक्षुणी ने कहा।

"वाह ! यह कौमुदी-महोत्सव ! और इसकी प्रशसा भी न की जाय ! यह रात तो नाचने की है भगिनी ! तुम लोग अपने दोषों को ही गिनती कर रही हो। नहीं ! मैं निर्दोष ! इसी चाँदनी की तरह शुभ्र अपने जीवन की वन्दना

करती हूँ। मैं उसकी अभ्यर्थना म नाचूंगी।" इरा का कलापूर्ण हृदय उल्लसित हा रहा था। उसन नीली सघाटी का छार फनाया। वह अभी शिणमाणा ही थी। भिक्षुणी नहीं हुई थी। उपसम्पदा नहीं मिली थी। उसन नीला को अपना दर्शक बनाया और नक्षत्र विजडित क्षुद्र आकाश-खण्ड की तरह अपन का भूली हुई-सी नाचने लगी। भिक्षुणिया के दल म स एक कोलाहल का स्वर उठा और फिर शान्त हा गया। अद्भुत! उन विहार की प्राचीर म बन्द भिक्षुणिया को यह दृश्य, जीवन का यह उल्लसित रूप देखन का कहाँ मिला था। वे भी मूक हाकर चकित-सी देखने लगी। भिक्षुणी-सघ की प्रतिनिधि उत्पला जो प्रवारणा के लिए चुनी गई थी, उपोसथागार के द्वार की आर मुँह किये सूत्र पाठ कर रही थी। वह प्रतीक्षा म थी कि भिक्षु-सघ की प्रवारणा हो जान पर वह भी उपोसथागार म जाकर भिक्षुणी-सघ की ओर से प्रवारणा करे।

भिक्षु-सघ को प्रवारणा समाप्त हुई। प्रतिनिधि उपला उपोसथागार म जाकर खडी हुई। वह कहने लगा—"आर्यो! भिक्षुणी-सघ देखे, सुने और शका किये हुए सभी दापो क लिए भिक्षु-सघ के पास प्रवारणा करता है।" इतन म एक भिक्षुणी दौडती हुई उपासथागार म पहुँची। "ऐसा कभी दखा नहीं गया—ऐसा कभी सुना नहीं गया'—उसन जैसे घबडा कर कहा। प्रवारणा रुक-सी गई।

"क्या है भगिनी? —स्थविर न पूछा।

"अद्भुत नृत्य!

"नृत्य! और विहार म!।

"यही चक्रम पर, भन्त!'

आश्चर्य और क्राध से भरे हुए भिक्षुआ का दल बाहर आया। उन लोगो ने देखा सचमुच इरा नाच रही है। सौन्दय का उन्मुक्त उल्लास! उनका क्रोध, उनकी फटकार क्षण भर के लिए स्थगित हा रही। जैसे वे भी इस अद्भुत उन्माद को हृदयगम कर लेना चाहते थ।

अकेली इरावती आँख मूद कर नाच रही थी। चक्रम क नीचे शिप्रा, ऊपर आकाश म चन्द्र, शिप्रा के कुजा मे स्निग्ध पवन सब स्तब्ध थ। स्थविर ने चिल्ला कर कहा—"बन्द करो।"

इरा विराम पर आ चुकी थी, उसने आँखे खोल दी। और देखा कितनी आँखो की रोष-भरी दृष्टि उस पर पड रही थी। आज वह दूसरी बार नृत्य करने से रोकी गई थी। उसने अपन आहत अभिमान को बटोरते हुए कहा—"क्या?"

"तुमने यह आपत्तिजनक कर्म विहार मे क्यो किया ? यह किसकी शिक्षमाणा है ? वह सामने आवे।"—स्थविर ने गभीरता से कहा।

नीला इरावती से लिपट गई थी। भय और प्रेम स वह विह्वल थी। एक भिक्षुणी ने स्थविर क समीप आकर प्रणाम किया। उसने कहा—"कई महीना से वह नर्तकी प्रादेशिक महामात्य के आज्ञानुसार भिक्षुणी-सघ म रहती है। मेरे लिए क्या आज्ञा है ?

स्थविर कुछ चिन्ता म पड गया। उसन धीर मे कहा—"वह स्वेच्छा से आई हुई नही है। तब तो राजकीय आज्ञा से भिक्षु-सघ भी परिचालित हागा। यह ता अनर्थ है।'

"मैंने किया क्या ? मेरी समझ मे तो यही आया कि मैं देवमन्दिर से छीन कर बौद्ध-विहार म भेज दी गई हूँ। यही पेट भरती हूँ, वस्त्र पहनती हूँ। यह दूसरी बात है कि मुझे ये सब अच्छे नही लगते, परन्तु इन सबका ऋण कैसे चुकाऊँगी। मेरे पास नृत्य को छोडकर और है ही क्या ? आज इतने स्त्री-पुरुषा के समारोह म मैं तो अपना कर्तव्य समझ कर ही नृत्य कर रही थी। यह भी अपराध है, तब तो मुझे छुट्टी दीजिए।

स्थविर विमूढ-सा खडा था। भिक्षु और भिक्षुणी सघ उस राजहसी-सी ग्रोवा-भगिमा को आश्चय स देख रहा था। ठहर कर, तथागत का स्मरण करते हुए वृद्ध स्थविर न कहा—' भिक्षुणी-सघ की प्रवारणा स्थगित की जाती है। भिक्षुणी-सघ अपन विहार म लौट जाय।

उत्पला के पीछे-पीछे भिक्षुणियाँ भिक्षुणी-विहार मे चली, सबक पीछे इरावती थी। इरावती भिक्षुणी-विहार में जाकर भी अपनी काठरी मे नही गइ। इस निस्तन्द्र निशीथ म वह भौंचकी-सी चुपचाप शिप्रा-तट के ऊँचे चक्रम पर जा खडी हुई। रात्रि का तृतीय पहर था और वह अपन जीवन के प्रथम प्रहर म थी। ससार नित्य यौवन और जरा के चक्र म घूमता है, परन्तु मानव-जीवन म ता एक ही बार यौवनान्माद का प्रवेश होता है, जिसम अनुबन्ध का प्रत्याख्यान और स्नह का आलिगन भरा रहता है। वह भिक्षुणिया की सतुष्ट चष्टा का आश्चय से देख रही थी। सब धीरे-धारे अपन स्थान पर जाकर साने लगी। हाँ, किसी-किसी को प्रवारणा स्थगित होन स इरावती पर झुंझलाहट भी थी। कोई यह भी सोच रही थी कि इसे भिक्षुणी-सघ म से प्रव्रजित करन का उपाय किया जाय। इरावती क प्रति उनकी अन्यमनस्कता न यह अवसर न दिया कि कोई उससे यह पूछता कि 'क्या आज जागरण ही करेगी ?'

शिप्रा के तट पर पाट की वृक्षश्रेणी तारक-खचित नीले अम्बर की किनारा

तुम्हारा उससे स्नेह था, वह तुम्हारा व्यक्तिगत स्वार्थ था। सार्वजनिक अन्याय समझ कर तुम उसका प्रतिकार नहीं कर रहे थे। और रही नैतिक समर्थन की बात, तो उपासना बाह्य आवरण है, उस विचार-निष्ठा का, जिसमे हमे विश्वास है। जिसकी दुःख ज्वाला म मनुष्य व्याकुल हो जाता है, उस विश्व-चिता म मगलमय नटराज नृत्य का अनुकरण, आनन्द की भावना, महाकाल की उपासना का बाह्य स्वरूप है। और साथ ही कला की, सौदर्य की अभिवृद्धि है, जिमस हम बाह्य म, विश्व म, मौदर्य-भावना को सजीव रख सके ह। परन्तु अब हम फिर से इसके लिए बल और स्फूर्तिदायक प्राचीन आर्य क्रियाओ का पुनरुद्धार करना होगा। इस बौद्धिक दम्भ के अवसाद को आर्य जाति म हटाने के लिए आनन्द की प्रतिष्ठा करनी होगी। समझे!

'किन्तु आय, मैं मन्दिर का पुजारी बन कर जीवित न रह सकूँगा! मुझे ऐसी आज्ञा न दीजिए।'

नाव फिर से लौट कर भिक्षुणी-विहार के समीप आ गई थी। और सूर्योदय का आरम्भ था। अग्निमित्र न देखा कि इरावती ऊपर चक्रम पर खडा है, ठीक बुझते हुए तारा की तरह! इरावती न भी देखा। उसन पुकारा—

"अग्नि! —

"इरा!

"मैं तुम्हारे साथ चलना चाहती हूँ। उस दिन मैन भूल का थी। ठहरो, नाव रोको।"

ब्रह्मचारी क चुप रहन म अग्निमित्र न नाव का घाट की ओर बढाया। किन्तु विहार म इरावती के पीछ कई भिक्षुणियो क साथ दो सैनिक भी दिखाई पड। एक सैनिक न कहा—"इरावती! तुमको कुसुमपुर पहुँचा दन क लिए म आया हूँ। चलो!

"क्या?

"सम्राट की आज्ञा है।

"मैं नहीं जाऊँगी?'

'ऐसा नही हो सकता। तुमको चलना पडगा।

"मैन क्या अपराध किया है?

"यह हम लाग नही जानत, चलो'—कह कर वह सैनिक कुछ आग बढा। सहसा एक उन्माद नाच उठा। इरावती शिप्रा म कूद पडी और अग्निमित्र भी। एक क्षण म अग्नि की बलिष्ठ भुजाओ म इरावती जल क स्तर क ऊपर दिखलाई पडी। ब्रह्मचारी न दोनो को नाव पर उठा लिया। ऊपर म सैनिको न

पुकार कर कहा—"नाव महिला-तीर्थ पर लगाओ।" ब्रह्मचारी ने नाव उसी ओर बढ़ाई। अग्निमित्र ने आश्चर्य से पूछा—"यह क्या आर्य!"

"बन्दी बन कर कुसुमपुर जाओ। मैं भी कुछ दिन के लिए उत्तराखण्ड जाता हूँ। मिलूँगा।"

बाहरी ऊँचे स्तम्भा के सहारे भीषण भाले लिए हुए प्रहरी मूर्ति-स खडे थे। सीढियो पर धनुर्धरो की पक्ति, फिर नीचे विशाल प्रागण म अश्वारोहियो के कई झुण्ड थे, जिनके खुले हुए खड्ग से प्रभात के आलोक मे तीव्र प्रभा झलक रही थी। आज साम्राज्य-परिषद् का विशेष आयोजन था। मण्डप के भीतरी स्तम्भो से टिके हुए प्रतिहार स्वर्ण-दण्ड लिए खडे थे, धनुर्धरा की पक्ति म से खुली हुई राह से साम्राज्य के कुमारामात्य, बलाधिकृत दण्डनायक व्यावहारिक, सेना क महानायक लोग धीरे-धीरे सीढी से चढकर मण्डप गर्भ मे रक्खे हुए मचो पर बैठ रहे थे। सबके मुख पर आतक और व्याकुलता थी। स्वर्ण-जटित द्वार के समीप साम्राज्य का ऊँचा सिंहासन अभी खाली था।

एक साथ ही तूय, शख पटह की मन्द ध्वनि से वह प्रदेश गूँज उठा। स्वर्ण-कपाट के दोना ओर खडे कवचधारी प्रहरियो ने स्वर्ण-निर्मित राज-चिह्न को ऊपर उठा लिया। द्वार खुल पडा। यवनियो का दल छोटे-छोटे चौडी धार वाले खड्ग हाथ मे लिये निकला। एक परिक्रमा कर उन्होंने राजसिंहासन के चारा ओर निर्दिष्ट स्थान पर अपना पैर जमाया। फिर छोटी बासुरी और डफली लिये मागधी नर्तकियो का दल सभा-मण्डप को नूपुर से गुजारित करते हुए बायी ओर जाकर खडा हो गया। फिर तो ताता-सा लग गया। भृङ्गार, पटद्रह ताम्बूल-करण्डक, धूम्र-भाजन—जिसम से अगुरु-कस्तूरी की भीनी महक निकल रही थी—लिये, रूप यौवनशालिनी अन्त पुरिकाएँ, अनुचरियाँ सिंहासन के समीप आकर खडी हो गईं। कटिबन्ध के कृपाण और हाथा म त्रिशूल लिए कौशेय वसना युवतिया का अग-रक्षक दल पीछे अर्द्ध चन्द्राकार बना रहा था। उनके आगे सम्राट् और राज-महिषी न उसी द्वार से सभा म प्रवेश किया। सब लोग खडे हो गये। तीव्र तूर्य-निनाद स दिशाएँ प्रतिध्वनित हो गईं। सम्राट् सिंहासन पर बैठे। महिषी ने अर्द्धआसन ग्रहण किया। अमात्य और सामन्तो न वन्दना की। महारानी ने ताम्बूलवाहिनी की ओर सकेत किया। उसन ताम्बूल-करण्डक आगे बढाया। महिषी न अपने हाथ म लेकर सम्राट् के सम्मुख उसे उपस्थित किया। स्मित से महाराज ने ग्रहण किया। जय जयकार स सभामण्डप गूँज कर शान्त मौन हो गया था। सम्राट् बृहस्पतिमित्र ने मन्द गभीर स्वर स पूछा—"खारवेल का दूत कहाँ है?"

साधि विग्रहिक ने विनम्र होकर कहा—"जय हो देव ! वह तारण पर आज्ञा की अपेक्षा कर रहा है।'

"बुलाओ उसे !"

"साधि विग्रहिक न महादण्डनायक पुष्यमित्र स कहा— ता महादण्डनायक उसको यहा उपस्थित करे।'

महादण्डनायक पुष्यमित्र अपन मच म उठकर सीढ़िया पर आय। उनक सकेत से मालव अश्वारोहिया के दल का नायक घोडा बढा कर सामन आया। उसने अपना खड्ग ऊँचा करके अभिवादन किया।

"नायक ! तुम द्वितीय तोरण पर जाकर कलिंग राजदूत का शीघ्र लिवा लाओ।' अश्वारोही नायक तोरण की ओर वग से बढा।

पुष्यमित्र अभी खडा था। कुछ ही क्षणो म सामन के विशाल तारण म दा अश्वारोही प्रवेश करत दिखाई पडे। अश्वारोहिया के समीप उतरकर वे सोपान की ओर अग्रसर हुए।

दूत न सोपान क ऊपर खड महादण्डनायक को नमस्कार किया। पुष्यमित्र ने कलिंग-राजदूत को अपने साथ आन का सकेत किया। साम्राज्य सिंहासन क समीप पहुँचकर राजदूत न सम्राट् की वन्दना प्रणत हा कर की। उसक दोना ओर पुष्यमित्र और नायक खडे थे। राजदूत न सकेत पाकर कहा—"महामघवान त्रिकलिंगाधिपति चक्रवर्ती खारवेल ' अभी वह इतना ही कह पाया था कि समीप क मचा से प्रतिवाद का स्वर-सा उठा। सम्राट् ने तीव्र दृष्टिपात किया। प्रतिकूल शब्द चुप हुए। सम्राट् न ही कहा—' हाँ, ता खारवेल न क्या कहा है ? '

"स्वर्ण की जिनमूर्ति, जो कलिंग की पूज्य प्रतिमा ह, जिस स्वर्गीय सम्राट् अशाक ल आये थे, उसके लिए मन्दिर का निर्माण हो चुका है। प्रतिमा को दन की कृपा अब होनी चाहिए सम्राट् !"—दूत ने बिना विशेष शिष्टाचार दिखलाय कह डाला। वह विनीत था, किन्तु मगध राज-सभा को देखकर उसक मन म क्षोभ-सा उत्पन्न हा गया था, कुछ-कुछ टोके जाने क कारण राप भी।

"दूत ! तुम्हारा चक्रवर्ती खारवेल इस समय कहाँ है ?

"सम्राट् ! दक्षिणापथ विजय कर लेने क बाद चक्रवर्ती उत्तरा सामान्त क विजय-स्कधावार म स्थित हैं।"

सम्राट् की भव कुछ तनी, नथुन फडक और तनिक सँभल कर बैठ गय। बाल—'ता यह खारवेल की प्रार्थना है या और कुछ ?"

"और कुछ तो नहीं देव ! प्रार्थना ही समझी जाय।" चतुर दूत ने उत्तर दिया। धर्म-कार्य म श्रीमान् की यह सहायता बहुमूल्य होगी।

"हा ऐसा ता मैं समझता हूँ कि खारवेल को स्वर्ण की आवश्यकता नही, किन्तु मूर्त्ति की ही हागी। अच्छा तुम्ह इसका उत्तर मिलेगा। जाओ, विश्राम करो।" सविनय नमस्कार करके दूत नायक के साथ चला गया। सभा एक क्षण तक मान रही।

वृद्ध सनापति ने साधि विग्रहिक स पूछा—"क्या सैन्य की आवश्यकता होगी ?"

"होगी भी तो सैन्य प्रस्तुत हे कहा ? —धीरे स साधि विग्रहिक न कहा। चिन्तित सम्राट् न भी यह फसफसाहट सुनी और कहा—

"हूँ"

"जय हो दव ! क्या आज्ञा है ?" सेनापति न पूछा। किन्तु सम्राट् न साधि विग्रहिक की ओर देख कर कहा—"यह तो स्पष्ट ही छेडछाड है।'

"क्या सैन्य प्रस्तुत होना चाहिए ? यह तो परम भट्टारक न यथाथ ही सोचा है।"

"देवगुप्त ! मृदगगिरि म कितने गुल्म है ?"

"एक सौ गुल्म देव !" दवगुप्त ने कहा।

"वहाँ से खारवेल का स्कन्धावार कितन योजन पर है ? किन्तु इससे क्या, आधी सेना रोहिताश्व दुर्ग मे पहुँचनी चाहिए शीघ्र। कौन सेना को लेकर शीघ्र पहुँचने का भार लेता है ?"

"जिसको आज्ञा हो ! परम भट्टारक प्रसन्न हो तो मैं ही जाऊँ। किन्तु एक निवदन है, बिना गज-सेना के वहाँ की रक्षा दृढ न होगी।" वृद्ध बलाधिकृत न कहा।

महानायक के मुख पर कुछ स्मित की रेखाएँ बन-विगड रही थी। किन्तु उसके बोले बिना काम नही चलता था। पुष्यमित्र ने छोटा-सा खड्ग निकाल कर शिर से लगाया। सम्राट् ने पूछा, "तुम कुछ कहना चाहते हो क्या ?"

"हाँ देव !"

"क्या ?"

"कुसुमपुरी की आधी गज-सना भेजी जा सकती है, अधिक नही, क्योकि शोण के तट को भी..."

"किन्तु जाता कौन है ?"

"यह तो परम भट्टारक ही कह सकते है ।"

"पुष्यमित्र ! तुमने उस दिन प्रार्थना की थी कि अग्निमित्र का कोई अपराध नही । उसने तो नदी मे कूद कर भागने वाली उस देवदासी को पकड ही लिया था ।" सम्राट् न कहा ।

"परम भट्टारक ! और यह उसकी मनुष्यता की पुकार थी । वह कुछ मनस्वो तो अवश्य है, परन्तु मालवसेना प्रतिनिधि वीर है । मैंने स्वय उसे रण-शिक्षा दी है; केवल उसकी मनस्विता के कारण ही राजभृत्य बनने से उसे वर्जित कर दिया है ।" पुष्यमित्र ने सविनय कहा ।

"उसे यहाँ उपस्थित करो ।" सम्राट् की आज्ञा मिलते ही महानायक पुष्य-मित्र ने प्रस्थान किया । एक अधीन कर्मचारी को मुद्रा देकर कुछ आदेश दिया और स्वय उसी सोपान पर खडे रहे । उनकी व्यग्रता छिपने मे असमर्थ थी । वे टहलने लगे ।

लौह-शृखला से जकडा हुआ अग्निमित्र सोपान पर चढ रहा था । सामने राजभृत्य पिता ! एक शब्द भी मेरे पक्ष मे कहने के लिए जिन्होंने मुँह नही खोला था । फिर भी ऊपर खडे महानायक पुष्यमित्र को उसने सिर झुकाया । पुष्यमित्र केवल धीरे से इतना ही बोले—"सावधान ! उत्तेजित न होना ।"

आगे दण्डनायक पिता, पीछे बन्दी पुत्र—दोनों सम्राट् के सिंहासन के समीप पहुँचे । अग्निमित्र सिर झुकाये खडा रहा । कुसुमपुर की राज-परिषद् उसने आज पहले ही देखी ।

"अग्निमित्र !"

"सम्राट् !" उसने चौंककर देखा । वही मन्दिर मे इरावती के नृत्य पर प्रतिबन्ध लगाने वाला । उसे भिक्षुणी बनाने की आज्ञा देने वाला कुमारामात्य नामधारी आज साम्राज्य के सिंहासन पर आसीन है ।

"तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो ?"

"नही ।"—उसका सक्षिप्त उत्तर था ।

"तो तुमने राजबन्दी को छीनने का प्रयत्न नही किया ?"

"ऐसी करने की इच्छा थी । किन्तु सम्राट् के सामने ही मन्दिर म जब वह बन्दी बनाई जा रही थी तभी ! किन्तु किया नही, कर भी नही सका । और वह तो तो आकस्मिक घटना थी । एक स्त्री जल मे गिर पडी है और मैं नाव पर उसी के समीप हूँ । तब मालवो की, प्रधानतः शुगवश की मनुष्यता क्या इतनी गिर गई है कि मैं उसे डूब कर मर जाने देता । नहीं सम्राट् ! मुझसे यह नही हो सकता था । यदि यही मेरा अपराध है, तो मुझे दण्ड दीजिए ।"

सम्राट् न हँस कर पुष्यमित्र की आर देखा। जैसे पूछ रहे थे कि क्या कहते हो ? इसकी प्रगल्भता देख ली न। किन्तु सहसा उसी की आर मुडकर सम्राट् ने कहा—

"ता क्या सचमुच तुम्हारी रसना की तरह ही तुम्हारी तलवार भी चलती है। यह मैं मान लूं कि अपने पिता के समान ही तुम पराक्रमी भी हा ?"

"सम्राट् ! इसकी परीक्षा ले ले। मनुष्य, व्याघ्र चाहे जिससे द्वन्द्व करा कर मरा पुरुषार्थ देख लिया जाय।"

"नही-नही, मनुष्य और व्याघ्र स लडाना मै नही चाहता। क्या न तुम हाथी से लडा दिये जाओ।" सम्राट् के वरसा के आचरण स परिषद् के बहुत-स लोगो की यह धारणा थी कि वह कुछ-कुछ झक्की और अव्यवस्थित चित्त के असयमी व्यक्ति है। अग्निमित्र न समझा यह प्राण लेने पर तुला है। निश्चय यह सदेह करता है इरावती के साथ मेरे स्नेह होने का। तब मै भी क्या न समझूं कि सम्राट् भी मनुष्य है, और वह इरावती के प्रति आकर्पित है।

सम्राट् ने सव्यग्य स्मिति के साथ कहा— 'वस हा चुका न ! अब ता बालत भी नही।'

"मैं प्रस्तुत हूँ।"

पुष्यमित्र कुछ कहन के लिए मुंह खाल रहे थ कि सम्राट् न कहा— 'महा-दण्डनायक ! पार्श्वनाथ गिरि पर एक हाथी है, उसी स लडने अग्निमित्र का जाना होगा। म महामेध नामक हाथी पर सवार होने वाले खारवेल को भी एक हाथी ही समझता हूँ।" इस व्यग्य विनोद पर परिषद् प्रफुल्ल हो उठी। सम्राट् कभी, जब इस तरह की खुली परिषद् हाती, तभी काई-न-कोई एसा विनोद करते। और उसकी चर्चा साम्राज्य भर म फैलती। परिहास की उनमे अच्छी शक्ति है, इस तो उस काल के नागरिक मानन लगे थे।

महिषी न हँस कर पान बढाया। चामरधारिणी युवतिया की कलाई-नृत्य करने लगी, परिषद् मे उत्साह फैल गया था। अग्निमित्र की शृ खलाएँ खुल गयी। सम्राट् ने उस बुलाकर खड्ग प्रदान किया। एक स्वर स सभा कह उठी—"परम भट्टारक राजाधिराज बृहस्पतिमित्र की जय !"

साधि विग्रहिक फिर आया। बृहस्पतिमित्र न पूछा—"क्या है ?"

"देव ! एक और भी चिन्ताजनक समाचार है। गान्धार से दिमित्र यवन पचनद की आर बढ रहा है। सभवत उसकी इच्छा गगा पार करन की है। उसन नियमित कर भेजना तो बहुत दिन से बद कर रक्खा है, अब यवना की इच्छा कुछ दूसरी ही है।"—महासाधि विग्रहिक ने विनम्र हाकर कहा।

सम्राट् कुछ चिन्तित हुए। उन्होंने महाबलाधिकृत को बुला कर कहा—"आप कालिंजर और गापाद्रि के अश्वारोही गुल्मों को लेकर आगे बढ़ें। यवनों को शिक्षा देनी होगी।"

वृद्ध सेनापति से अब न रहा गया। उसने अञ्जलिबद्ध होकर कहा—'जैसी आज्ञा हो देव! किन्तु एक प्रार्थना मेरी भी सुन लीजिए। सैनिकों में असंतोष है। उनके लिए महामात्य के कोष में द्रव्य नहीं। वे बराबर धर्ममहामात्र की आवश्यकताओं से छुट्टी नहीं पाते। विहारों में दिये जाने वाले राजानुग्रह अपरिमाण हो रहे हैं। युद्ध काल में मौर्य-साम्राज्य की नीति को सेना को ही देवता मानती रही है। किन्तु अब तो वे जैसे आवश्यक अंग न हो कर शोभा-मात्र रह गये हैं। फिर भी मैं तो जाता हूँ। सेना के लिए आवश्यक वस्तु और उसके समय पर पहुँचने का प्रबंध सम्राट् स्वयं न देखेंगे तो बहुत दिनों से चुपचाप बैठी हुई अनभ्यस्त सेना कुछ कर सकेगी कि नहीं, इसमें संदेह है।

'*क्या सेना कुछ न कर सकेगी?* —*सम्राट् ने रोष से पूछा।*

'सम्राट्! धर्म-विजय के सामने शस्त्र-विजय को गौण बनाते रहने का यह अवश्यम्भावी फल है। आज को सेना में कहीं लड़े हुए सैनिकों का अभाव है। जलौक के द्वारा पंचनद का प्रदेश साम्राज्य से अलग कर लेने के बाद भी मगध की आंख नहीं खुली। प्रांत सुरक्षित मान लिये गये। आज वही प्रांत यवनों के हाथ में पड़ गया है। फिर कान्यकुब्ज पर आक्रमण होते कितना विलम्ब है? मैं तो कान्यकुब्ज की रक्षा के लिए प्रस्थान करता हूँ, किन्तु एक बात कह जाता हूँ कि मगध के दक्षिणी प्रान्त दुर्ग रोहिताश्व, मुद्‌गगिरि और शोण के सम्पूर्ण तट की भी रक्षा आवश्यक है।

सम्राट् को जैसे थप्पड़-सा लगा। वह अपनी स्थिति को समझ गये। आज मगध, यवनों और खारवेल के बीच में तो है ही, आन्ध्र और विदर्भ ने भी सिर उठाया था! फिर भी साहस से कहा—'मगध का सिंह इस महामेघवाहन हाथी को तो साध ही लेगा। आप कान्यकुब्ज की रक्षा कीजिए।

सूतों, मागधों ने स्तुतिपाठ किया। सभा विसर्जित हुई। महानायक पुष्यमित्र सबके चले जाने पर भी रुके रहे। अग्निमित्र से उन्होंने कहा—"दक्षिण का सँभालना तुम्हारा काम है। देखो यह अवसर हाथ से न जाने देना।

"तात! मैं अभी युद्ध करना नहीं चाहता। मुझे तो उचित यही जान पड़ता है कि मैं दक्षिण के प्रान्त दुर्गों का संगठन कर लूं, तब तक क्या आप सम्राट् से कोई कोमल उत्तर खारवेल के पास भेजने का उपाय नहीं करेंगे?

इधर बराबर आन्ध्र, कलिंग और विदर्भ की राजनीति का अध्ययन करता

रहा हूँ। इनके गुप्तचरों ने भी मिलता रहा हूँ। किन्तु पार्श्वनाथ गिरि पर धर्म के नाम से जो अधिकार खारवेल ने कर लिया है, वह आगे चल कर क्या रंग लायेगा नहीं कहा जा सकता। अभी तो वह मित्रता का ही रूप दिखला रहा है, किन्तु स्वार्थ में बाधा पड़ते ही युद्ध की घोषणा अनिवार्य है। इसलिए खारवेल का

'अच्छा तो तुमने प्रवास के कई बरसों में यह काम अच्छा ही किया। यद्यपि हम लोगों को विश्वास था कि तुम केवल उस अज्ञातकुलशीला प्रतिवेशिनी की सुन्दरी बालिका के पीछे ही भटक रहे हो।'

"तात! क्षमा कीजिये। वही तो यह इरावती है जिसे सम्राट् ने भिक्षुणी बनने के लिए कुक्कुटाराम में भेज दिया है।'

मूर्ख बालक! क्या अभी भी वह तुम्हारे दृष्टिपथ से अलग नहीं है? जाओ, कर्तव्य तुम्हारे सामने है। —कहकर पुष्यमित्र ने मुँह फेर लिया। और अग्निमित्र धीरे-धीरे तोरण की ओर अग्रसर हुआ। तब भी उसके मन में एक बार इरावती को देख लेने की इच्छा थी। इस युद्ध से कदाचित् उसे न लौटना हो। अग्निमित्र मातृ-विहीन युवक था। पिता सैनिक, राज-अनुग्रह का अभिलाषी। इरावती की आशा उसने अभी भी छोड़ी न थी, किन्तु भिक्षुणी-विहार की प्राचीरों में से इरावती का उद्धार करना कठिन था। इसी उधेड़-बुन में कब वह गंगा-तट के प्राचीन शिवमन्दिर के समीप आ पहुँचा, उसे ज्ञान नहीं। उसने निश्चय किया कि यहाँ एकान्त है, मैं कुछ काल तक यहीं बैठ कर अपने मन को परख लूँ! आगे क्या करना होगा, इस पर भी विचार कर लूँ।

दोपहर का सूर्य अपनी प्रखर किरणमाला से गंगा का जल उद्दीप्त करता था। उस पर आँख नहीं ठहरती थी, जो मन्दिर के सभा-मण्डप में खम्भे के सहारे वह टिका हुआ विचार-निमग्न था। कुछ-कुछ तन्द्रा-सी आ चली थी। भोजन न करने की शिथिलता भी शरीर को अवसन्न कर रही थी। सहसा कुछ शब्द सुनाई पड़ा। वह जैसे सचेत होकर सुनने लगा। शब्द समीप के ही एक जीर्ण गृह से आ रहा था, जो सम्भवतः मन्दिर के पुजारी के लिए किसी काल में बना था।

"तो तुम मर भी जाओगे पर बताओगे नहीं। हे भगवान्! फिर मैं क्या करूँगी?' किसी स्त्री का रोष और धमकी से भरा सानुनासिक शब्द सुनाई पड़ा।

"उसे जान कर तुम क्या करोगी। वह मेरा कुलपरम्परागत गुप्त रहस्य है। ताम्रपत्र, नन्दराज का नहीं वह स्त्री को कभी भी नहीं बताया जा सकता।

शपथ है, उसे बता कर मै विश्वासघात नही कर सकता।" फिर उसे खाँसी आने लगी, वह चुप हो गया।

'तो मरो! छाती पर लाद कर लिये जाओ।" कहती हुई झनक कर वह बाहर आ गई। वह सचमुच सुन्दरी थी, परन्तु दुर्बल अग जैसे अपने बाझ मे व्यस्त था। लडखडाती हुई वह द्वार पर बैठ गई। उसने खम्भे की आड मे बैठे हुए अग्निमित्र को नही देखा। भीतर से किसी ने करुण स्वर मे पुकारा—"कालिन्दी, जल दो, प्यास लगी है।"

कालिन्दी अपनी उँगलियों को चटकाती हुई बोली—"मरो।" अग्निमित्र से स्त्री की यह कठोरता नही देखी गई। वह बोला—

"शुभे! क्या तुम्हारे पति बीमार हैं?"

"पति! नही भद्र! मैं तो यहाँ की परिचारिका हूँ। मन्दिर के राग-भोग और परिष्कार का काम करती हूँ। यह पूजारी!..." अब उसने अग्निमित्र की ओर देखा। वह प्राणसार शरीर! वह कलापूर्ण सुन्दर दुर्बल मुख! लम्बा युवक! कदाचित् निस्संबल, निराश्रय! कालिन्दी के मन मे आया 'क्या इसका सहयोग प्राप्त हो सकता है।' सहानुभूति से उसने पूछा—"क्या मैं आपकी कोई सेवा कर सकती हूँ?"

"मुझे भी प्यास लगी है। पुजारी के समान मरता न जाऊँगा, क्योंकि सामने गगा वह रही हैं।"

"तब भी कुछ खाकर जल पीजिए। प्रसाद कुछ ले आऊँ?"—कालिन्दी ने आत्मीयता दिखाते हुए कहा।

"जैसी तुम्हारी इच्छा। किन्तु पहले पुजारी का जल पिला दो, सम्भवत. उससे तुम कुछ जानना या लेना चाहती हो न!"—अग्निमित्र ने भी मित्रता का आदेश दिया।

कालिन्दी भीतर गई। अग्निमित्र की बात मान कर उसने पुजारी को जल पिलाया और एक मोदक और जलपात्र लेकर बाहर आई। अग्निमित्र को प्रवास मे ऐसे बहुत-से अवसर मिले थे, उनका उसने सदुपयोग भी किया था। उसने मुस्कुराकर वह आतिथ्य ग्रहण किया। उसका शरीर और मस्तिष्क कुछ स्थिर हुआ।

कालिन्दी घबरा रही थी; उसका सन्देश बढ रहा था। पुजारी बचेगा नही। उसे पूर्ण विश्वास था। उसने अग्निमित्र से कहा—"क्या आप पुजारी जी को चल कर देख लेगे?"

"चलो"—कह कर कालिन्दी के पीछे अग्निमित्र उस जीर्ण गृह मे घुसा।

पुजारी सचमुच मरणासन्न था। उसके श्वास का वेग बढ़ रहा था। उसने स्थिर दृष्टि से अग्निमित्र को देखा। उस दृष्टि में जिज्ञासा थी।

अग्निमित्र ने पूछा— 'कहिए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ ?

'तुम विदेशी हो ! मगध के तो नहीं जान पड़ते ! उसने ठहरकर पूछा।

''हाँ, मैं विदिशा का रहने वाला हूँ।'

''तब ठीक है, तुम समय पर आ गये। गंगाधर भगवान् की शपथ लेकर तुम प्रतिश्रुत होगे ?

''क्यों ?

''एक रहस्य को जानकर उसे गुप्त करने के लिए। मैं मर रहा हूँ। उसे अब दूसरे को बता देना आवश्यक है। आज अमावस्या है न ? बस ठीक है, समय हो चला है। —मरते हुए ने साहस संकलित करके कहा।

''किन्तु आप अपनी इस परिचारिका कालिन्दी को ही क्यों न बता दें। मैं यहाँ रहा न रहा, क्या ठिकाना ! —अग्निमित्र के इस कहने पर कालिन्दी प्रसन्न हो रही थी।

''नहीं, स्त्री को वह रहस्य बताया नहीं जा सकता, निषेध है। फिर तो रही जायगा। —पुजारी के स्वर में निराशा थी। वह श्वास खींचने लगा। अग्निमित्र ने कालिन्दी की ओर देखा, उसने भी जैसे स्वीकार कर लिया कि अग्निमित्र को ही वह भेद किसी प्रकार जान लेना चाहिए। वह आँखों से ही संकेत करके हट गई। अग्निमित्र पुजारी के पास जाकर बैठ गया। पुजारी ने कहा—

'शपथ लो।

''मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि वह रहस्य मैं किसी को नहीं बताऊँगा। अग्निमित्र ने कहा।

''हाँ, तो सुनो ! यह लो ताम्रपत्र !' —पुजारी ने सिरहाने से एक छोटा सा ताम्रपत्र निकाल कर दिया और कहने लगा—''मैं घड़ी भर में इस लोक को छोड़ दूँगा, भगवान् के प्रथम गणों में चला जाऊँगा। किन्तु यह ताम्रपत्र उस विश्व-विश्रुत नन्दराज की निधि की कुंजी है, जिसके सम्बन्ध में लोग कहते ही हैं, जानते नहीं। प्रधान निधि तो नहीं, तुम्हें आवश्यकता के लिए बाहरी छोटी सी निधि मिलेगी। उसमें से अपने व्यय के लिए और जब चाहे आवश्यकता-मात्र देव-सेवा के लिए ले सकते हो। नन्दी के सामने एक काला पत्थर है, जिस पर षट्कोण आकृति है, बीच में बिन्दु पर अँगूठा रखने से काम चल जायगा। —श्वास बढ़ने लगा। पुजारी रुक गया।

अग्निमित्र कुछ और पूछना चाहता था, परन्तु पुजारी ने कुछ स्वर्णमुद्राओं की एक थैली उसे दी और ठहर कर कहा—"अब कुछ मत पूछो। समय आने पर तुम्हें इसी ताम्रपत्र में सब मालूम हो जायगा। हाँ मेरा दाह कर्म इसी स्त्री से करा देना।' वह चुप हो गया। अग्निमित्र बाहर आया। उसने देखा—कालिन्दी पत्थर के खम्भे से टिकी चुपचाप खड़ी है। वह विश्वस्त-सी जान पड़ती थी। उसने चौंककर अग्निमित्र से प्रश्न किया—"बताया उसने ?

"हाँ, परन्तु नहीं के बराबर। किन्तु यह तो बताओ वह मर रहा है। जलाने के लिए लकड़ी यहाँ से कितनी दूर पर मिलेगी ?

'उसकी चिन्ता मत कीजिए। उधर पीछे बहुत-सी सूखी लकड़ी वह इक्ट्ठी कर गया है। कृपण था न। तो मैं उसे एक बार देख आऊँ ? —कह कर वह भीतर चली गई और अग्निमित्र उधर जाकर देखता है गंगातट पर ही चिता की तरह चुनी हुई लकड़ियों का ढेर पड़ा है। वह निश्चित आकर शिवालय पर बैठ गया।

कुछ क्षण बीत होंगे, कालिन्दी ने बाहर आकर कहा—' पुजारी का शरीरान्त हो गया। —अग्निमित्र ने कालिन्दी के साथ यथाविधि उसका शव संस्कार किया। समीप ही वह चुपचाप बैठा रहा, जब तक चिता जल न गई। फिर स्नान करके जब वह गंगा से ऊपर आया, तब देखा कि सूर्य अस्ताचल को जा ही रहे हैं।

अग्निमित्र ने कालिन्दी के हाथ में स्वर्ण-मुद्रा की थैली देते हुए कहा—' यह लो, इनमें से आवश्यकतानुसार व्यय करना। एक ब्राह्मण का यहाँ और रख लेना। मैं फिर आऊँगा। तुम उद्विग्न होकर यह स्थान मत छोड़ देना।

स्वर्ण से बढ़कर संसार में दूसरा कौन-सा धैर्य देने वाला है। कालिन्दी संतुष्ट थी। अग्निमित्र देवता को प्रणाम कर चला गया।

कुक्कुटाराम के भिक्षुणी-विहार के प्राचीर से सटे हुए एक लम्बे चक्रम पर, द्वार के भीतर स तीन भिक्षुणियाँ बाहर आ रही हैं। सूर्यास्त हो चला है। हलका अन्धकार फैलना ही चाहता है। उनम आगे है इरावती, उसक साथ सम्भवत दो नई शिक्षमाणा हैं। इरावती न पूछा—"तुम लाग कितनी दूर चलोगी? अच्छा होता कि यहीं चक्रम पर बाहर का वायु सेवन कर लो।"

"आर्ये! जैसी आप आज्ञा द।"—एक न कहा। फिर तीनों धीरे-धीरे टहलन लगीं। सहसा इरावती न उन्हें सतर्क भाव से देखते हुए कहा—"न-न-न ऐसे चलन से तुम्हारे सुगठित अगो का प्रदर्शन होता है। सिर नीचा कर, सिर झुकाकर हाँ, देखो मैं किस तरह चल रही हूँ।"

दूसरी जो अब तक न बोली थी, खडी होकर मुसक्याने लगी। इरावती न पूछा—"इस तरह हँसने का अर्थ?"

"भगिनी! हम लोग तुम्हें आर्या कह रही हैं, कदाचित् तुम इसीलिए अपने सुगठित अगो को देख नहीं पाती हो। वृद्धा समझने लगी हो अपने को न!"—उसने कहा, फिर भी स्मिति म कमी न थी। इरावती उसके हँसोड़पन को जानती थी, किन्तु जैसे अपनी स्वचेतना खोती हुई वह बोला—

"यह लो, तुम्हारा मन अभी दुःख की भावना से बहुत दूर है। इस क्षण-भगुर शरीर पर सुख भावना! भला तुमको धर्मलाभ कैसे होगा! तुम मेरी हँसी उड़ाती हो। फिर मैं विनय की शिक्षा तुमको क्या द सकती हूँ। इरावती को सन्देह हुआ कोई व्यक्ति बकुल की अधकार-छाया म चला गया है। वह चुप हो रही, किन्तु साथ की दोनों न उस उकसा कर बुलवाना ही चाहा। एक न कहा—

'तो आर्या! यहीं बैठकर कुछ बातचीत न करें'—इतना कहती हुई वह ढिठाई स बैठ ही गई। और इरावती अभी दूसरी के भगिनी सबोधन पर मन-ही मन विरोध कर रही थी। प्रतिवाद करना विनय की रक्षा के लिए आवश्यक था।। फिर उसने मन को रोका—नहीं, अभी लडकियाँ है—तो क्या वह सच ही भिक्षुणी हो गई है? एक सीमा—बाला हो जाने के समीप स युवती होने का

जहाँ प्रारम्भ होता है—वही तक तो वह भी है। 'आर्या नही हा सकती, कहने के लिए चाहे जा कह लें।

दूसरी ने उसके विचारा का विखराते हुए कहा—"क्या—आर्या! इतना शासन मनुष्यता के अनुकूल है? शील और सयम की कही सीमा भी है?

इरावती ने मन-ही-मन कहा—'नही परन्तु प्रकट म उसन कहा— क्यो नहीं, हमारे दुःखा का अन्त नही, अभावा स छुटकारा नही, फिर ता हम बुद्धि क आधार पर बीच म स मार्ग निकालना है। काम गुणा से वचकर मन का आकाक्षा की लहरा स दूर ले जाना होगा। जहाँ ये सब छू न सकें।

मैं समझ गई। जब अपने कर्मों का फल ही भोगना है, तब कर्म छाड देन के अतिरिक्त दूसरा उपाय नही।' —पहली ने व्यग से कहा।

इरावती झझट म पड गई थी। वह तो फिर से सोचने लगी थी— महाकाल का मन्दिर, नही उसके भी पहले वेत्रवती का किनारा, जहा वह माता का दाहकर्म करन क बाद अकेली शरद की सध्या मे बैठी थी। और अग्निमित्र आया हाँ, उसन कहा—"इरा! तुम व्याकुल न होना। मैं हूँ न! तुमको चिन्ता किस बात की। किन्तु फिर न जाने क्या हुआ, कुछ ही दिना म उसका आना-जाना बन्द हो गया। सुनने म आया कि वह घर से लडकर परदेश चला गया। और मैं निरुपाय वहाँ से चल पडी। मुझे अवलम्ब था, इतना ही तो नही, उनकी आँखो से चुम्बक की-सी स्नेहमयी ज्वाला निकलती थी। वह विदिशा का कुलपुत्र था। और मै पथ की भिखारिणी! महाकाल मन्दिर म फिर भेट हुई। परन्तु '

एक ने फिर टोक दिया। क्यो भगिनी! क्या साच रही हो? बीती हुई बात! क्या उनमे मन का रहस्य है कुछ?

इरावती अपने को भूल-सी गई थी। उसन कहा— 'हाँ कुछ तो था ही। जैसे जीवन का एक छाटा-सा सूत्र!

तो क्या अब उसी की प्रतिक्रिया हा रही है? तुम भी भगिनी भूल कर गई हो। जानबूझ कर भी अपने को नही पहचानना चाहती हो, प्राय यही तो सब करते है। मैं भी तुम भी, देखो न भीतर ही भीतर कितना खिल रही है। उसका स्वर हँसने का सा हा रहा था। किन्तु इरावती को क्रोध आने लगा था। इन छोकडियो ने आज यह क्या कर डाला! उसने दृढता स कहा—

'मैंने बलपूर्वक अपने हृदय स उन कोमल अनुभूतिया को निकाल दूगी। काम-सुखा की स्मृतिया को कडी-से-कडी फटकार दूगी। प्रयत्न करूँगी। भगिनी! तुम भी एसा ही करो।

"हाँ, स्वामी !"

"उस व्यक्ति का नाम तुम जानता हो, जिसके पास ताम्रपत्र है ?"

"नहीं, परन्तु वह अभी यहीं पर आया है।'

"यहीं पर आया है !"

"हाँ, स्वामी !'

"अच्छा, कपिञ्जल को वहाँ ले जाकर गिगाधर की सवा-पूजा म नियुक्त कर दो, किन्तु सावधान ! एक बात भी उसे मालूम न हो !'

"अच्छा, स्वामी !'

"और उसके यहाँ आने का, या उसे देखने का भी भेद उससे कभी न कहना। जाओ।"

कालिन्दी ने आँचल के कोने से वह थैली निकाली और पुष्यमित्र के सामने रख दी। पुष्यमित्र ने उसे रखते हुए कहा—"जितनी आवश्यकता हो, वहाँ से आकर ले जाया करना। और देखो, जो लोग वहाँ जायँ, उनमें कहना कि राज-कोष से अब सवा-पूजा का प्रबन्ध हो गया है।'

कालिन्दी प्रणाम करके चली गई।

पुष्यमित्र ने एक बार फिर खोजने वाली दृष्टि लेखक पर डाली।

उससे पूछा—"कामन्दकी भी होगी ? '

"हाँ, स्वामी !'

"उसे बुलाओ।'

लेखक फिर उसी मार्ग से भीतर जाकर एक भिक्षुणी को लिवा लाया। भिक्षुणी ने कुछ स्मित से कहा—"वन्दे।" पुष्यमित्र ने सिर हिला दिया। और पूछा—"कहो तो धर्म-महामात्र की स्थविर से कैसी पटती है ?'

"इरावती को लेकर झगडा चल रहा है। सम्राट् "

'कहो न ?" लेखक की ओर देख कर पुष्यमित्र ने कहा—"वह अन्तरंग है। निर्भय होकर कहो।'

"सम्राट् इरावती को रंगशाला में देखना चाहते हैं। धर्म-महामात्र ने स्थविर से कहा कि किसी आपत्ति दोष से उसे संघ के बाहर कर दिया जाय। फिर तो उसे रंगशाला में ले जाने में सुविधा होगी।"

"किन्तु वह नहीं मानता ?"

"हाँ, परन्तु आज एक घटना हो गई है। भिक्षुणी-विहार के बाहर इरावती को मैंने अग्निमित्र नाम के एक युवक से बातें करते हुए देखा है। कहिए तो स्थविर से इसे कह दूँ, फिर तो वह संघ से "

"क्या कहा, अग्निमित्र !"

"हाँ, स्वामी !"

"नही, तुम चुप रहो। दोनो का समाचार फिर मुझे देना। जाओ।"

कामन्दकी चली गई। पुष्यमित्र ने सिर खुजलाते हुए लेखक से कहा—'देवदास ! मौर्य-साम्राज्य की अन्तरग नीति बडी जटिल होती जा रही है। मैं इसे '

"स्वामी ! इसलिए तो दौवारिक, आन्तर्वेशिक, दडपाल और दुर्गपाल भी आपके अधीन कर दिए गए है। आपका यह नवीन पद बडा ही विकट है, किन्तु कुछ चिन्ता नही स्वामी ! आपकी प्रजा सब का पार लगायेगी।'

"तो भी कभी कभी ऐसा जान पडता है कि आँधी आने वाली है।

"नही स्वामी। आ पहुँची समझिए।

"ठीक कहते हो। अच्छा जाओ विश्राम करो।'—लखक देवदास चला गया। पुष्यमित्र अकेले चिन्तित बैठे रहे। सेवक ने आकर पूछा—"कुमार आ गये हैं, उन्हे "

"भेज दो, नही अभी ठहरो। देखो मधुकर आया है !"

"वह तो कभी से आकर मुचकुन्द की छाया मे बैठा है।'

"बुलाओ उस !"

सेवक जाकर मधुकर को लिवा लाया। उसने प्रणाम किया। महादण्ड-नायक कुछ अन्यमनस्क थे, देखा नही। अपने-आप कहने लगे—"इस मनुष्य का पता नही चलता कि क्या है। पतजलि ! लोग उसे मुनि कहते है, तपस्वी है, विद्वान् है, और भी क्या नही है ?

"स्वामी ! वह सचमुच सिद्ध है और साथ ही निस्पृह भी है।'—मधुकर ने कहा।

"मधुकर ! तुम सत्य कह रहे हो।'

"हाँ, स्वामी ! वैसा पुरुष पाखण्ड नही हो सकता। एक दिन आप भी चलिए।"

"नही मधुकर ! अभी उसकी और परीक्षा लो। फिर मैं कभी चलूंगा। जाओ, कुमार अग्निमित्र को बुला लाओ।"

मधुकर चला गया।

अग्निमित्र सामने आया, उदास और गम्भीर, जैसे विषाद से भरा हुआ। पुष्यमित्र ने पूछा—"तुम कहाँ रहे ?"

"यो ही घूमता रहा।"

"यो ही ! कदाचित् भावी सेनानायक के लिए यो ही घूमना लाभ कारक नही है । यह तुम जानते होगे ।"

"पिताजी ! क्षमा कीजिए । वरसा बन्दीगृह म रहने के बाद घूम लेने की इच्छा स्वाभाविक ही है ।'

"किन्तु एक नायक को साहसिक की तरह जहाँ वही चले जाना, जिस किसी का शव जलाना, भिक्षुणी-विहार के समीप चक्कर काटना आपत्ति से खाली नही ।'—पुष्यमित्र ने कुछ कर्कश स्वर स कहा । अग्निमित्र जैसे ठोकर लगन के समान आहत होकर देखने लगा । वह हाँ भी नही कह सकता था, नहो भी नही ।

उसका पिता क्या सर्वज्ञ है ! अभी वह सोच ही रहा था कि पुष्यमित्र न कडक कर कहा—"लाओ वह ताम्रपत्र कहाँ है ?

"ताम्रपत्र !

"हाँ, ताम्रपत्र ! जिस पुजारी न तुमको दिया ह । जानत हो, वह राज-सम्पत्ति है ।"

"अग्निमित्र को वह मिला है पिताजी ! और इस नियम पर कि उसका रहस्य किसी का न बताया जाय ।' —दृढता से अग्निमित्र न कहा ।

"हाँ, तब ता ठीक है ।

"और सुनिए, मैं इस अत्याचारी मगध-सम्राट् का कोई भी कार्यभार अपने कधा पर नही उठाता । आप मुझे नायकत्व से छुट्टी दिला दीजिए । मैं अनुग्रह का भिखारी नही ।

वह तो मैं स्वय ही कहने जा रहा था । तुम अविश्वसनीय हो । तुम पर ऐसा गुरुभार देना, मूर्खता होगी । अच्छा, अब तुम मुक्त रहना चाहते हो, या बन्दीगृह मे ?"

"जैसी आपकी आज्ञा होगी !'

"मैं पिता हूँ, इसीलिए तुम मुझ पर इतना अत्याचार कर रहे हो । नही तो "

"मै जानता हूँ कि अब तक मैं कहाँ हाता, परन्तु जब एक अत्याचारी सम्राट् का इतना समर्थन आप करत है, तब क्या एक पुत्र के लिए भी कुछ न करेगे ।"—अग्निमित्र भरा हुआ था । यह जानकर पुष्यमित्र ने उसे छेडा नही । पुष्यमित्र अभी भी मन-ही-मन कह रहा था कि अग्नि निरपराध है । कर्त्तव्य और स्नेह का युद्ध हो रहा था । महादण्डनायक ने क्षण भर रुककर कहा—"अच्छा तुम जैसे चाहो रहो, परन्तु मेरी पद-मर्यादा का तुम्हे ध्यान रखना चाहिए । जाओ विश्राम करो । अन्यथा मैं केवल तुम्हारा पिता ही नही, मगध का महादण्डनायक भी हूँ ।"

पाटलिपुत्र में हलचल है। प्रान्त दुर्गों से सैनिकों का ताँता लग रहा है। गंगा के किनारे शिविरों की श्रेणी में उनका तात्कालिक निवास है। वृद्ध सेनापति और पुष्यमित्र कई दिनों से उन्हें, नावों के द्वारा कान्यकुब्ज और रोहिताश्व भेजने में व्यस्त हैं। रोहिताश्व जानेवाली सेना शोण के जलपथ से मणिभद्र की नायकता में जा चुकी है। अश्वारोहियों के साथ अग्निमित्र जायगा—ऐसी धारणा सबके मन में है, किन्तु कान्यकुब्ज के लिए, आज अश्वारोही सेना के साथ सेनापति प्रस्थान करने वाले हैं। नगर में भारी उत्साह और प्रदर्शन है।

सैनिकों के लिए स्थान-स्थान पर आमोद-प्रमोद के साथ विदाई का समारोह है। नागरिकाएँ पुष्पमाला और चंदन से उन्हें अभिनन्दित कर रही हैं। आपानक और संगीत भी चल रहा है।

धर्म-विजय की इच्छा रखने वाले सम्राट बृहस्पतिमित्र शस्त्र-विजय के लिए उत्सुक हैं। महागज पर चढ़कर नगर के पश्चिम द्वार से सेना-प्रयाण का निरीक्षण कर रहे थे। वीरों के खड्ग से सम्राट् की वन्दना हो रही है। बृहस्पतिमित्र इस उत्साह में भी जैसे सशंक हैं। अन्त पुरिकाएँ गज-पंक्ति पर बैठी हुई पुष्प-वर्षा कर रही हैं। घोड़ों के हींसने का शब्द तूर्यनाद के साथ दिशाओं को विकम्पित कर रहा है। शंखों का उन्मुक्त स्वर दुंदुभी के साथ तोरण के ऊपर से आकाश-मंडल को गूँजा रहा है। किन्तु सम्राट् के मन में जैसे उत्साह नहीं सिंह की ध्वजा की छाया में सेना के पीछे वृद्ध सेनापति धीरे धीरे प्रकाण्ड श्वेताश्व पर सम्राट् के दृष्टिपथ में आए। गजराज बैठा दिया गया। सेनापति ने खड्ग शिर से लगाकर कहा— सम्राट् बृहस्पतिमित्र की जय।' घोर जयनाद से दिशाएँ प्रतिध्वनित हुईं। सम्राट् ने सेनापति को चन्दन का तिलक लगाया। वृद्ध ने अश्रुपूर्ण लोचन होकर कहा—"सम्राट्! मैं तो चला! जिस दिन की प्रतीक्षा में मेरे केश धवल हो गए, वह सामने है। मेरे लिए आज से बढ़कर कौन सा पुण्य-दिवस होगा, किन्तु मगध! जिसने शताब्दियों से वीरता और संस्कृति में भारत का प्रमुख वनने का गुरुभार अपने ऊपर लिया है, उसकी मर्यादा जीवित रहे। हम लोग साधारण शब्द-जाल से ऊँचे उठकर सच्ची कर्मण्यता का—प्राणों का मोह छोड़कर भी—पालन करें यह मेरी, इस वृद्ध शस्त्र-व्यव-

सायी की प्रार्थना है। जिस धर्म और शान्ति तथा सभ्यता के लिए *मगध-निवासी* मरे जा रहे हैं, वह शक्ति के बिना रह नहीं सकती। मगध के एक-एक अन्न, एक-एक प्राणी का जिसमे सदुपयोग हो, वही व्यवस्था कीजिए सम्राट् !—मगध की जय !"

वृद्ध का कंठ गद्‌गद हो रहा है। वीर-श्री से उसका मुख-मण्डल दीप्त था। किन्तु धर्म-विजय करने वाले सम्राट् के मुख से एक शब्द भी न निकला। पुष्यमित्र अपने घोडे पर से कूदकर वृद्ध के समीप आया। सेनापति का चरण पकडकर उसने उच्च *कठ* से कहा—"सेनापति ! *आर्य* ! विश्वास कीजिए ! पुष्यमित्र के जीवित रहते मगध का विनाश न होगा। आपकी आज्ञा अक्षरश पालन की जायगी।"

वृद्ध ने स्नेह से पुष्यमित्र के सिर पर हाथ फेरकर कहा—"मुझे तुमसे ऐसी ही आशा है। मगध की जय।"—और श्वेत अश्व बढ चला। सम्राट् हतप्रभ ! *एक शब्द भी मुँह से न निकला। वे दूर धर्म-महामान की शिविका देख रहे थे।*

सेनापति चले गये। धूल से अब उनकी सेना छिप गई थी। महाराज धीरे-धीरे गजसेना के साथ नगर से राजप्रासाद की ओर चले। पुष्यमित्र ने वहीं खडे-खडे एक बार चारों ओर देखा। अग्नि जो पीछे घोडे पर था, बोला—"क्या आज्ञा है !"

"तुमको सीधे पार्श्वनाथ गिरि जाना होगा। डरो मत। युद्ध नहीं, कुछ बात करनी होगी। जा सकोगे ?"

"यदि आपकी आज्ञा हो तो, किन्तु जाने से कोई लाभ नहीं।"

"क्यों ?"

"इसलिए कि मगध का निमन्त्रण अब खारवेल को मिल चुका होगा। सभवत वह मगध में अपनी गजसेना के साथ कुछ ही दिनों में आ जायगा।"

"तुम कहते क्या हो ?"

"यह देखिए सम्राट् के पत्र की यह प्रतिलिपि है।"—कहकर *अग्निमित्र* ने एक पत्र हाथ पर रख दिया। पुष्यमित्र ने कहा—"मैं इसे अंधकार में नहीं पढ सकता। तुम कहो न ! इसमें लिखा क्या है ?"

"इसमें लिखा है—आप स्वयं आकर भगवान् अग्र जिनकी स्वर्णप्रतिमा उत्सव के समारोह के साथ ले जायँ।"

दोनों *के* घोडे बराबर सटे हुए चल रहे थे। पुष्यमित्र स्तब्ध थे। उनका अश्व धीमे-धीमे चल रहा था। और वह जैसे निर्जीव-से उस पर बैठे थे। एक उल्काधारी कब से उनके साथ हो गया था—यह उन लोगों को नहीं मालूम।

वह भी धीरे-धीरे अश्वारोहियो के आगे-आगे चल रहा था। सहसा पुष्यमित्र ने कहा—

"तुम्हारा क्या नाम है ?"

"पिंगलक स्वामी !"

"अच्छा जाओ, तुम्हारा काम नही है, अभी हम लोग कुछ और घूम कर आवेंगे।"

पिंगलक चला गया। राजपथ अन्धकारपूर्ण था। प्रासाद की ओर न जाकर पिता-पुत्र दोनो ही पूर्व नगर-द्वार की ओर लौट पडे।

"तब तो जान पडता है कि मौर्य-साम्राज्य की सध्या आ गई है। यवना का आक्रमण, उधर से खारवेल का घेरा ! इस मूर्खता की भी कोई सीमा है।"

"किन्तु मैने उस निमत्रण को जाने दिया है, यही समझकर कि उस सकट के समय सभवत. खारवेल से कुछ काम निकल जाय।"

प्रसन्नता से पुष्यमित्र ने अग्नि की पीठ थपथपाई, किन्तु वह प्रसन्नता क्षण-भर की थी। पुष्यमित्र के निशस्त्राण से टकरा कर एक तीर अलग जा गिरा। दोनो सशक होकर अधकार मे आँख गडाकर देखने लगे। अग्नि ने कहा—

"चलिए, उद्यान-गृह समीप है। शत्रु चारो ओर है। मैं आपको पहुँचा कर फिर टोह लेने जाऊँगा।"

पुष्यमित्र ने बाग मोडी। दोनो शीघ्र ही उद्यान के द्वार पर आये। उल्का-धारी प्रहरी सामने आकर खडे हो गये। घोडो से उतर कर दोनो बातें करते हुए मुचकुन्द वृक्ष की छाया मे क्षण-भर के लिए खड हो गये।

"जान पडता है कि कुसुमपुरी कटको से भर गई है, यह गुप्त आक्रमण !"

"पिताजी ! यह स्वस्तिक दल का कार्य है।"

"स्वस्तिक दल !"

"हाँ, विद्रोहियो की एक सस्था है। मुझे उसी से खारवेल के निमत्रण का पता चला।"

किन्तु तुम कैसे उनसे मिले ?"

"फिर बताऊँगा ! इस समय मुझे आज्ञा दीजिए।"

"किन्तु . अच्छा जाओ। पर एक बात मेरी स्मरण रखना। मगध का साम्राज्य नष्ट न होने पाए इस कर्तव्य को भूलना मत ! हो सके तो रोहिताश्व जाने वाले अश्वारोहियो की सेना पर नायक बनने का अवसर न छोड देना। क्योकि इस समय बल-सचय की आवश्यकता है।

"वही होगा; किन्तु इस समय मुझे आप जाने की आज्ञा दीजिए"—कहते

हुए अग्निमित्र ने अपनी कमर स लगी हुई तलवार टटाली, फिर सिर झुकाकर नमस्कार करते हुए वह चला गया।

पुष्यमित्र को आश्चय क साथ अग्नि पर क्रोध भा आया। उसन झुंझला कर कहा—'इसका जन्म ही मूल नक्षत्र मे हुआ था और तभी ज्योतिषी न कहा था कि बारह वर्ष यह पिता क सामने न आवे। किन्तु आज बीस वर्ष की अवस्था म भी क्या इसक साथ दखा मुनी की जा सकती है? जैसा नाम वैसा ही काम, जैस अग्नि का दूत! ता फिर जाय! —पुष्यमित्र भीतर चला गया।

नगर के पूर्वीय द्वार की ओर न जाकर अग्निमित्र उत्तर म सुगाग प्रासाद का ओर धीर धीर अन्धकार की छाया म बढता जा रहा है। प्रहरियो के चक्र से बचता हुआ एक स्थान पर वह रुका ही था कि किसी ने उसके कन्धे पर हाथ रख दिया। उसने चौक कर अपनी छोटी-सी कृपाण निकाल ली। परन्तु उस व्यक्ति न कहा— डरा मत! मित्र स डरने की कोई बात नही। तिस पर स्त्री! मेरी स्वामिनी विपन्न है, आप उनकी सहायता के लिए वचन दे चुके हैं न! तो फिर आइए!

'तुम कौन हो?

''कालिन्दी दवी की परिचारिका!

'अच्छा चला। —स्त्री न उसका हाथ पकड कर एक शिला खण्ड पर खडा कर दिया। फिर न जान कौन-सी क्रिया की कि वह पत्थर नीचे धँस चला! अग्निमित्र सशक हुआ, फिर भी साहस न छोडकर वह चुपचाप रहा। पत्थर क रुकन पर उसन देखा कि वह सुरग क भीतर खडा है। दूर स एक तीव्र नीला आलाक आ रहा है। आख चौध गईं। फिर दखा तो वह अकेला है और पत्थर ऊपर से बन्द हा गया है उसन आगे बढन का ही निश्चय किया। सुरग के दूसरे सिरे पर सात सीढिया थी। अग्नि कृपाण हाथ म लिए ऊपर चढा। जब वह द्वार स निकल कर बाहर आया, तो देखा एक स्त्री वहा खडी है। वह छाटा-सा उद्यान कुजा और झुरमुटा से भरा ह, जिनसे भीनी महक और हलका-सा आलाक चारा ओर फैल रहा है। स्त्री न काह—''स्वागत! चल आइए।

चमली क कुजा स बने हुए छाया-पथ म स्त्री क पीछे-पीछे चलन लगा। सामन खम्भे पर एक सुन्दर दालान थी जिस पर कोई लता चढ़ी थी। अग्निमित्र वहाँ जाकर ठहर गया। परदा हटा कर स्त्री न भीतर प्रकाष्ठ म झाक कर देखा, फिर हट गई। अग्नि का उसन भीतर जान का सकेत किया।

चकित और सशक अग्निमित्र न भीतर जाकर देखा, सुन्दर शैया पर आधी

लेटी हुई एक सुन्दरी जिसके रत्नालकारों की प्रभा से आँखे झलमलाने लगी। प्रकोष्ठ बहुत बडा था। उसमे स्थान-स्थान पर बहुमूल्य आसन, मच और पुतलियों के दीपाधार थे। भित्ति पर सुन्दर चित्र बने थे। अग्निमित्र पहले तो चकित-सा यही सब देख रहा था; परन्तु जब युवती ने थोडा-सा उठ कर कहा—

"आइए बैठिए !"—तब जैसे उसे सदेह होने लगा कि मैंने यह स्वर कही सुना है, फिर अपना भ्रम समझ कर वह चुप रहा। शिष्टाचारवश आँखे जमाकर उस सुन्दर मुख को देखता भी न था।

युवती हँस पडी। अग्निमित्र ने अब कहा—"मुझसे कालिन्दी ने कहा था कि एक विपन्ना स्त्री आपकी सहायता चाहती है। प्रासाद के पूर्वी भाग मे रात्रि के पहले प्रहर मे जाने से आप उसकी सहायता कर सकेंगे। किन्तु यहाँ तो देखता हूँ कि कोई विपन्न नही—तब मुझको ही धोखा दिया गया है क्या ?"

सुन्दरी खिलखिला कर हँसने लगी। अग्निमित्र का रोष बढ रहा था। उसने कधा कुछ चमकाकर, घूमकर द्वार की ओर जाना चाहा, परन्तु सहसा वही सुन्दरी उठकर उसके कधे पर हाथ रखकर बोली—"जब कही मनुष्य जाता है, तब उसे आतिथ्य-सत्कार ग्रहण. .।"

"अरे, यह तुम—नही मुझे भ्रम हो रहा है। मुझे छोड दो"—अग्नि ने कहा।

"वाह ! यह अच्छी रही। सुनूँ भी, आप का भ्रम क्या है ?"—"सुन्दरी ने हाथ पकड़कर शैया पर बिठलाते हुए कहा।

"तुम कौन हो ?"

मे'''समझ लीजिए मैं कालिन्दी हूँ।'

"हो ही, समझ क्या लूँ ! परन्तु इस छल का क्या तात्पर्य ! क्या तुम जो बात यहाँ कह सकती हो, वह गगाधर मन्दिर मे नही कह सकती थी ?"

"कालिन्दी मैं नही हूँ, यह बात वहाँ कैसे विश्वास की जा सकती है ?"—कहती हुई वह अग्निमित्र के समीप शैया पर बैठ गई। उसके अंग-अग से लावण्य की ज्योति, यौवन का स्फुलिंग छूट रहा था। सुगध से बसा हुआ उसका उत्तरीय खिसक चला था, जूडे मे लगी बमेली की माला महकने लगी थी। हाँ, मुख के नि श्वासो मे कादम्ब की भीनी महक, आँखो मे मादकता के डोरे ! अग्निमित्र ने देखा सचमुच कालिन्दी ही तो है। विकृत वेश मे उसे, उसने मन्दिर मे देखा था। उसने आश्चर्य से पूछा—"इस माया का क्या तात्पर्य है ?"

"मैं दासी हूँ न, आपकी सेवा करने के लिए यह...!" वह कुछ सलज्ज हो रही थी।

"अच्छा, बताओ तुम कौन हो ?"

"आप नही जानते ?"

"जानना सहज नही, फिर ऐसी मायाविनी का ! कालिन्दी, तुमने मुझे यहाँ क्यो बुलाया, अपना अर्थ स्पष्ट कहो। मैं अधिक नही ठहर सकता।"

"हा देव ! स्त्री का मुँह कुछ बातो के लिए बद रहता है, यह क्या आप नही जानते ?"

"जानता हूँ, परन्तु वे तुम्हारी जैसी नही होती। तुम छद्म-वेशधारिणी दासी हो या राजरानी हो, कह नही सकता। तिस पर भी तुम चाहे कुछ हो, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ, यह तो तुम्ही को बताना होगा।"

"मेरी विपत्ति अभी तक नही समझ सके निष्ठुर ! मैंने जिस दिन से गंगा मन्दिर पर तुमको.. ।"

"चुप रहो कालिन्दी, मैं स्त्रियो के प्रेम का रहस्य नही समझ पाया हूँ। जब वह चचल लास्य मन से मन को अथवा, जाने दो मैं प्रणय के स्वाध्याय मे असफल विद्यार्थी हूँ। दूसरी कोई बात हो तो कहो।'

"अग्निमित्र, चौको मत। मैं तुम्हारा परिचय जान गई हूँ और मैं कालिन्दी हूँ, इसमे सन्देह नही, परन्तु परिचारिका नही। मगध के विश्वविश्रुत नन्दराज का रक्त मेरी धमनियो मे है। मैं कुमारी हूँ, समझो। मैं तुम्हारे प्रणय के उपयुक्त हूँ। भिक्षुणी इरावती से कही अधिक ।'

अग्निमित्र ने उत्तेजित होकर उसके मुँह पर हाथ रख दिया—"चुप रहो।"

"क्या उसका नाम भी न लूं। वाह ! इतना पक्षपात।' —फिर वह खिलखिला कर हँस पडी। अग्निमित्र असन्तुष्ट होकर खडा हो गया, किन्तु कालिन्दी भी साथ ही खडी होकर कहने लगी—"देखो अग्निमित्र ! मै राजगृह की धर्मशाला की घटना सब जानती हूँ। तुमने जिस पथ पर चलना निश्चित किया है, वही तो मेरा भी है। फिर. ।"

"अरे ! तो क्या तुम्ही धर्मशाला के खँडहर मे उस भयावनी रात्रि के सन्नाटे को भग करती हुई रो रही थी।"

"हाँ ! मैं ही थी, जिसे बचाने के लिए तुम वायु वेग से अपने अश्व पर दौडे हुए आये थे। फिर क्या हुआ वह तो सब तुम्हे विदित है।" अग्निमित्र उस रहस्यमयी को तीखी दृष्टि से देखता हुआ फिर बैठ गया।

"हा, यह ठीक है। पहले कुछ खा-पी लो। तुम्हारा मन स्वस्थ हो जाय, तब हम लोग बाते करे।" —यह कहकर उसने स्वादु पक्व मास और मधुर गध-वाली सुरा सामने रख दी। चौकी समीप खिसका कर बोली—"कहिए तो मैं

ही खिला दूँ।" —फिर वही तीव्र कटाक्ष और रसीली मुसकान। अग्निमित्र ने कहा, "नही, इसकी आवश्यकता नही। —वह भूखा था ही, कुछ-कुछ खाने लगा। और मन-ही-मन अपनी अवस्था पर विचार भी करने लगा। उसे सोचने का अवसर मिला, इस रहस्यमयी रमणी के साथ कैसा व्यवहार किया जाय। उसने धीरे से एक पात्र कादम्ब चढा लिया, फिर बोला—

"मैं तो उस दिन की घटना भी कुछ नही समझ सका कालिन्दी। तुम जानती हो कि मगध मरे लिए नया है, विशेपत यह रहस्यो की नगरी कुसुमपुरी। मैं तो अभी इनको समझ भी नही पाया हूँ। मैं राजगृह की ओर जा रहा था। मार्ग अपरिचित होने से भटक रहा था। रात हो गई थी। तुम्हारा क्रन्दन-स्वर सुनाई पडा, वहाँ चला गया, परन्तु वह घटना तो मुझे गधर्व नगर की-सी जान पडती है। कुछ समझ मे नही आया। उस टूटी कोठरी मे जब तुम्हारा शब्द सुनकर मैं पहुँचा तो वहाँ अधकार था। किसी ने धीरे से मुझसे कहा—'चुप रहिये। ' फिर जैसे किसी स्त्री ने मरा हाथ पकड लिया। उसका हाथ थर-थर काँप रहा था। सम्भवत भय स वह मुझसे लिपट जाना चाहती थी।"

कालिन्दी अपनी हँसी न रोक सकी। इधर अग्निमित्र पर कादम्ब ने रग चढा दिया था। वह कहने लगा—

"तुम हँसती हो, हाँ तो सुनो, तुम्हारे पास की ही कोठरी म पाँच मनुष्य जो ठहरे थे, वे बाहर निकल पडे। यह जानने के लिए कि कोई उपद्रव तो नही हो रहा है। वे इधर-उधर अधकार मे खोजने लगे। इतने मे एक पुलिन्दा मेरी कोठरी मे आया। साथ ही चार नही मैं भूल कर रहा हूँ, पाँच व्यक्ति चुन्नटदार काली धोतियाँ डाले, जिसमे कनटोप भी सिला था, जिसपर लाल स्वस्तिक लगा था, काठरी मे घुस आये। किवाड बन्द हो गया था। अब हम लोग सात व्यक्ति उसमे थे। उस स्त्री न अवगुण्ठन खीच लिया था। क्याकि कोठरी के किसी गुप्त स्थान पर से आवरण हटा देने से जब प्रकाश हो गया ता मैं चकित हो गया था। और वे मुझको देखकर आश्चर्य मे थे। कदाचित् वे मुझ पर आक्रमण किया ही चाहते थे, परन्तु स्त्री ने सकेत स उन्हे रोक दिया। मैं अपन खड्ग पर हाथ रखकर भविष्य की प्रतीक्षा कर रहा था। उन्होने वण्डल खोल डाला। उसम स बहुमूल्य आवरण म लिपटा हुआ एक पत्र निकालकर वे पढ़ने लगे। कदाचित् वे न पढ सके।"

'हाँ, तब मैंने सकेत किया तुम्हे चुपचाप पढ़ लेन के लिए। फिर तुमन काना म कहा—'यह खारवेल के लिए जिनमूर्ति ले जान का निमन्त्रण है। मगध सम्राट् ने उन्हे बुलाया है।' फिर वह पुलिन्दा उसी तरह बाँधकर छोड दिया गया।

और हम सब बाहर एक गुप्त मार्ग से निकल गये। तुमने कहा गया कि देखो इसका चर्चा मत करना परन्तु तुमने पिता से उस बात को कह दिया। और इसका दण्ड भी उन भयानक स्वस्तिक चिह्न वाला ने तुमको देना चाहा। परन्तु तुम बच गये। यहाँ क्या न तुम रहना चाहते हो? —कालिन्दी ने हँसकर कहा।

अग्निमित्र बालक की तरह उसका मुँह देख रहा था। कालिन्दी ने फिर कहा— मैं तुम्हें सावधान कर देना चाहती थी परन्तु अवसर न मिला। स्वस्तिक के गुप्तचर तुम दोनों—पिता-पुत्र के पीछे लगे थे। अच्छा ही हुआ कि कोई घायल नहीं हुआ।

कालिन्दी तुम क्या हो? वहाँ तुम क्यों गई थी?

मुझे मालूम था कि खारवेल के दूत के साथ बृहस्पतिमित्र का दूत जा रहा है। वह क्या सन्देश है? यह जान लेना स्वस्तिक के लिए आवश्यक था। राजगृह के बाहर ही धर्मशाला में उनका ठहरना के लिए तत्पर कराया गया और कौशल से वह राजसंदेश पढ़ लिया गया। बस इतनी तो बात है। न जाने वहाँ से तुम भूल भटककर उसी समय वहाँ पहुँच गये थे।

परन्तु तुम यह सब क्या करती हो?

इसलिए कि कोई वीर पुरुष सहसा मेरा सहायक नहीं। मैं अपने आण गृह में चुपचाप दुख के दिन काट रही थी। मृत सम्राट शतधनुष ने कदाचित् मुझे अपना काम-वासना तृप्त करने के लिये पकड़वा मँगाया। संयोग मैं जिस दिन सुगांग प्रसाद के इस कोने में आई उसी दिन दुर्घटना ने शतधनुष की मृत्यु हो गई। आन्तर्वेशिक ने मेरे निए सब उपकरण अलकार दास, दासी और अन्य व्यवस्था ठीक कर दी थी। मैं यहीं रह गई और उसी का प्रतिशोध चाहती हूँ। मौर्यों ने नन्दों का विनाश किया था। मैं मौर्यों का विनाश करूँगी — कहते-कहते कालिन्दी तनकर खड़ी हो गई। उसके मुख पर उन्माद के लक्षण दिखाई पड़े। नसें फूल गई थीं। मुख आरक्तिम और भयानक हो गया था। धीरे से उसने मणिमेखला में से पतली धार की कृपाण निकाल ली। उसका उत्तरीय खिसक कर गिर पड़ा था। उन्नत वक्षस्थल पर नीली रेशमी पट्टी मात्र बँधी थी। वह अर्द्ध नग्न-सी थी। मोतिया की एकावली के नीचे छाती पर अग्निमित्र ने आश्चर्य से देखा कि वहीं लाल रंग का, माणिक्य में काटकर बनाया हुआ स्वस्तिक झूल रहा था।

अग्निमित्र क्षण भर के लिए स्तब्ध था। फिर सहसा अपने को सँभाल कर उसने कहा— कालिन्दी! सावधान!

'हा, मैं सावधान हूँ, प्राण हथेली पर लिये मैं किसी भी भविष्य की प्रतीक्षा म हूँ। अग्निमित्र ! मैं फिर भी राजनन्दिनी हूँ। यह अभियान मेरे मन म नहीं गया है ! नन्द की निधि मेरी सम्पत्ति ह। और होगी। किन्तु तुम न जान कहा से बीच म आ पडे। मैं स्त्री हूँ। आह ! तुम अग्निमित्र ! अब तक जीवित न रहते। परन्तु मैं अपने हृदय से हारी हूँ। मैं राजप्रेयसी ! राजनन्दिनी ! अनुग्रह की क्षमता खो नही सकी हूँ। अग्नि ! लो मैं अपना बहुमूल्य प्रणय तुम्हे दान करती हूँ।'

कालिन्दी सचमुच निग्रह और अनुग्रह की क्षमता रखने वाली साम्राज्ञी-सी दिखाई पडती थी। उसकी पतली काया उस रत्न और आलोक की छाया म महिमा और गौरव से पूर्ण थी। वह सिंहनी थी। अग्निमित्र ने यह सब देखा फिर हँस कर कहा—"तो कालिन्दी ! मुझे सोचने का अवसर न दोगी ! क्या *तुम मुझसे झूठा वाक्य चाहती हो। यह प्राण के भय स भी मैं नहीं कर सकूगा।* मुझे सोच लेने दो, मैं प्रणय या अनुग्रह का भिखारी नही किन्तु हृदयहीन भी नही हूँ। विश्वास रखो मैं इसका उत्तर कल दूगा ?

कालिन्दी ने अपने को अपमानित समझा। उसके नेत्र आरक्तिम हो उठे। परन्तु रमणी के नेत्र ! उनम अधिक ताप होते ही जल विन्दु दिखाई पडे। कृपाण फेक कर वह गिरने की तरह शैया पर बैठ गई। अग्निमित्र को प्रमाद हुआ, उसने आज तक यह दृश्य नही देखा था। इरावती को शान्त शरद नदी *के रूप म देखा था, जिसम मीठी हिलकोर थी।* किन्तु *यह तटवृक्षो को बहा ले* जाने वाली उत्ताल तरगमयी कूलप्लाविनी वर्षा की बढी हुई महानदी उसने जीवन म आज ही देखी। आवर्त मे आ गया। उसने अपने कचुक के भीतर म ताम्रपत्र निकालकर कालिन्दी के समीप रख दिया, और कहा—

कालिन्दी ! राजनन्दिनी ! यह लो तुम्हारी निधि है, तब उसका ताम्रपत्र रखने की अधिकारिणी तुम्ही हो। और यह मेरा जीवन तो अब कमल-दल का बिंदु है। मैं रोगी नही हूँ, मरणासन्न भी नही। किन्तु किसी भी क्षण क्या होगा, कह नहीं सकता। मैं भी तुम्हारी तरह वृहस्पतिमित्र का विरोधी हूँ। आज इतना ही, फिर अभी ससार म कुछ और लेना-देना है, उसे समझकर कल तुमसे कहूँगा।

'अर्थात् पिता से ?

'नही, अपने मन म।

कालिन्दी सहसा उठकर *अग्निमित्र से लिपट गई। अग्निमित्र ने अनिच्छित* आलिंगन को प्रमाद ही समझा। धीरे-धीरे उसने अपने को अलग किया। कालिन्दी ने पान दिया, और ताली बजाते ही दासी उपस्थित हुई।

अग्निमित्र उसके पीछे-पीछे चला। कालिन्दी उसे मधुर प्रणय-दृष्टि से एकटक देख रही थी।

अन्धकार मे प्रहरियो स बचता जब अग्निमित्र घर पर आया, तो उसका मस्तिष्क जैसे विकल हो रहा था। वह शैया पर पडते ही, इरावती और कालिन्दी की तुलना करता हुआ थकावट की नीद म सो गया।

"आनन्द ! आनन्द ! आनन्द !' फिर तीव्र शृंगनाद ! सब लोग चौंक उठे। नगर मे हलचल तो थी ही। वृद्ध सेनापति के कान्यकुब्ज मे वीरगति प्राप्त होने के समाचार ने कुसुमपुर म भयानक त्रास उत्पन्न कर दिया था। सब लोग सशक होकर कुसुमपुर के अवरोध की प्रतीक्षा कर रहे थे। फिर यह तीव्र शृंगनाद ! और यह युवा बलिष्ठ ब्रह्मचारी सिर पर रुद्राक्ष की माला कठ मे यज्ञोपवीत, खुले हुए अस्त-व्यस्त केश, काषाय का अँचला डाले हुए अद्‌भुत जगाने वाले की तरह कहाँ से आ गया।

कुक्कुटराम के भिक्षुणी-विहार के द्वार पर उसका शृंगनाद वेग से हुआ था। कपाट खुला। इरावती निकल आई। जिस दिन से उन छोकडियो ने उसे छकाया, उसी दिन से वह अपन ऊपर विचार कर रही थी। वह सुनने लगी—

"दु ख का अधकार, नटराज के अग्नि-ताण्डव से जल रहा है। देखो, सृष्टि, स्थिति, सहार, तिरोभाव और अनुग्रह की नित्य लीला से समस्त आकाश भर उठा है। आत्मशक्ति के विस्मृत विद्युत्कण ! अपने स्वरूप मे चमक उठे ! उठो, मगलमय जागरण के लिए विषाद-निद्रा से उठो !

ब्रह्मचारी ने फिर शृंगनाद किया। वह आगे बढने ही वाला था कि इरावती ने कहा—"क्या कहा आपने। यह आशामय सदेश। नही यह मिथ्या है, प्रलोभन है।

अनात्म के वातावरण मे पला हुआ यह क्षणिक विज्ञान, उस शाश्वत सत्ता मे सन्देह करता है। माँ ! तुम सर्वशक्तिमती हो। आनन्द के उल्लास की मात्रा ही जीवन है, यह भूल क्यो गई हो ? —ब्रह्मचारी ने हँस कर कहा।

"परन्तु मुझे तो अपने कर्मों पर पश्चाताप की ज्वाला मे जलने की आज्ञा मिली है। और इस यातना का कभी अन्त होगा कि नही, नही कह सकती।"

'कौन-से ऐसे कर्म हैं देवि, जिन्हे हम आनन्द की भावना मे भस्म नही कर सकते। तुमसे कौन-सा अपराध हुआ है ?

'मैं नही जानती। लोग कहते हैं—मैं नाचती थी, आनन्द मनाती थी। यही मेरा अपराध हो सकता है।

माँ ! तुम शक्ति-स्वरूपा हो, अन्तर्निहित आनन्द की अग्नि प्रज्वलित करो !

सब मलिन कर्म उसम भस्म हो जायेंगे । उस आनन्द के समीप पाप आन से डरेगा ।"—कहता हुआ ब्रह्मचारी आगे बढ़ गया । वह जैसे सबको जगाने के लिए आया था । उसे ठहरने का अवसर नहीं । ठीक उसी समय विहार के दूसरी ओर से एक भिक्षु आ गया । उसने कुछ रोष से कहा

"भगिनी ! तुमने विनय का उल्लंघन किया है । एक अपरिचित पाषण्ड से तुमको ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए । मैं संघ में इसकी सूचना दूँगा । जाओ भीतर जाओ ।'

"क्या फिर अन्धकार के गह्वर में उसी निराशा के आवर्त्त में ! उसी दम घोटने वाले विषाक्त वायुमण्डल में ! ना, मैं नहीं जाऊँगा । मुझे तुम्हारा धर्म नहीं चाहिए । मुझे छोड़ दो । —इरावती जैसे रो रही थी ।

"भगिनी ! तुम उस पाषण्ड की पापमति से प्रभावित हो गई हो । जाओ, पापदेशना करना होगा ।'

कैसा भीषण जाल फैला है । विवश प्राणी जैसे पाप के कुहरे में अपने को ढँक लेने के लिए बाध्य किया जा रहा है । "आर्य ! मैं स्वीकार करती हूँ कि मैंने अपने इस छोटे-से जीवन में कोई पाप नहीं किया ! नहीं किया ।"

वह उत्तेजित होकर बोल रही थी । दूसरी भिक्षुणियाँ वहाँ आ पहुँची । भिक्षु ने उनसे कहा—"इन्हें भीतर लिवा जाओ ।

इरावती और अन्य भिक्षुणियाँ भीतर चली गईं । भिक्षु वहीं खड़ा रहा, वह किसी की प्रतीक्षा कर रहा था । महास्थविर धीरे-धीरे टहलते हुए उसी स्थान पर आये । भिक्षु के साथ ही वे आगे बढ़े । भिक्षु विनय से कहने लगा—"आर्य भिक्षुणी-विहार की दशा शोचनीय है । किसी दिन संघ को ही यह ले डूबेगा । अभी मैंने देखा कि एक पाषण्ड वहीं खड़ा होकर इरावती नाम की भिक्षुणी को अपने मत का निन्दनीय उपदेश दे रहा था । और वह भी साग्रह सुन रही थी ।"

"हूँ और भी वहाँ कोई था ?"

नहीं, वह अकेली थी ।"

महास्थविर कुछ सोचने लगे । उनके मन में धर्म-महामात्र वाली बात घूमने लगी । इरावती पर पहला अभियोग लगाया जा चुका था । धर्म-महामात्र के संकेत पर उस संघ से प्रवाजनीय दंड की व्यवस्था होने जा रही थी । फिर उसने यह उपद्रव किया । महास्थविर धर्म के अनुशासन में उतने प्रयत्नशील नहीं थे, जितने संघ की सुव्यवस्था में । राज अनुग्रह छोड़ने के लिए वे प्रस्तुत न थे । उन्होंने कहा—"तुम अभी जाओ, संघस्थविरा से कहो कि 'महास्थविर का आदेश है...' नहीं ..ठहरो, तुम इरावती के साथ उन्हें भी यहीं बुला लो, मैं यहीं खड़ा हूँ ।"

भिक्षु ने द्वार पर जाकर घंटा बजाया। भिक्षुणी ने आकर पूछा—"क्या है आर्य ?"

"संघ-स्थविरा के साथ इरावती को भेजो। महास्थविर खडे हैं।"

भिक्षुणी भीतर चली गई। साथ मे इरावती और एक वृद्धा भिक्षुणी को लेकर आई। महास्थविर की सबने वन्दना की।

"मैं यही पूछने आया हूँ कि क्या अनुशासन मे भी भिक्षुणी-विहार स्वतन्त्र होना चाहता है ? इरावती ने वही अपराध आज फिर किया है ?"

"हाँ, मैं एक तीर्थंक से बाते कर रही थी।"

"विनय भंग करके न ?"

"मैं नही कह सकती आर्य !"

"क्या तुम्हारे लिए यह अच्छा नही है कि तुम स्वय विहार छोड कर चली जाओ !" —महास्थविर ने कहा, पर रुकते हुए।

"नही आर्य ! यह सुधर जायगी। फिर अपने को सँभाल लेगी। इसकी जैसी विनय की पडिता और शील देने वाली दूसरी यहाँ कोई भिक्षुणी नही है।' —वृद्धा ने कहा।

"परन्तु मैं नही सुधर सकती। आर्या ! मुझे क्षमा कीजिए, मेरे लिए निर्वासन ही उचित है। तो क्या मैं जा सकती हूँ ?" —इरावती ने कहा।

"अरे भगिनी ! तू बावली हो गई है ! कहाँ जायगी ?"

"कही भी, इस दिवालोक मे घूमते-घूमते सन्ध्या तक कही-न कही शरण मिल ही जायगी। मैं भी देख लूँ कि इस विश्व म, मुझे खडी होने के लिए कही हाथ भर भूमि है कि नही। ऊपर तारा या मेघो की छाया मिलती है कि नही ! आर्ये ! मिलेगी ! अवश्य मिलेगी। तो मैं जाती हूँ"—कहकर उसन एक बार झुककर प्रणाम किया और चल पडी।

महास्थविर ने दीर्घ निश्वास लेकर कहा—"तथागत-व्यवस्था बिगडने के लिए जैसे प्रस्तुत है। क्या उन्होंने जो कहा था कि स्त्रिया को सघ मे लेने से केवल ५०० बरस धर्म चलेगा, वही सत्य होने जा रहा है, तो फिर क्या करूँ मैं। स्थविरा प्रणाम करके विहार मे लौट गई। उसे जैसे कोई भयानक रोग हो गया था। वह लडखडाती भीतर चली गई। और महास्थविर ने कहा—

"तुम जाओ, धर्म-महामात्र को सूचना दो कि इरावती विहार से चली गई।"

भिक्षु चला गया और महास्थविर उल्टे विहार की ओर लौटे। इरावती सचमुच बावली थी। उसे अभी आनन्द का सदेश मिल चुका था। किन्तु जन्म

की दुखिया इरावती के लिए वह जैसे सुन्दर स्वप्न था। वह चली जा रही थी।

ठीक उसी घटना के बाद, घोड़े पर चढ़ा हुआ, उद्विग्न भाव से अग्निमित्र आकर खड़ा हुआ। उसका अश्व सहसा रोक जाने से, कुछ अधिक चचल होकर पृथ्वी कुरेदने लगा। वहाँ कोई दिखाई न पड़ा। द्वार बन्द था। घबराहट में अग्निमित्र को कोई उपाय न सूझता था। सूर्य कुछ तीव्र हो चले थे। अकस्मात् द्वार खुला और भिक्षुणी दिखलाई पड़ी। अग्निमित्र ने पूछा—"क्या यहाँ इरावती नाम की कोई भिक्षुणी है ? कृपया मुझे बताइए।'

वह अभी ही इरावती वाली घटना देख चुकी थी। उसने जैसे घृणा से कहा—"परन्तु अब नही है।

"नही है ?"

'हाँ, विनय के नियमो का उल्लघन करने के कारण उस सघ से निकाल दिया गया है।'

"आर्ये ! क्या बता सकती हो वह कहाँ गई ?

"नही, वह इधर सामने चली जा रही थी। अभी अधिक विलम्ब तो नहीं हुआ"—कहती हुई वह किसी काम से दूसरी ओर चली गई।

प्रबल वेग से उसने घोड़े को दौडाया। वह अनिश्चित रूप से इरावती की खोज मे घूम रहा था। शोण और गगा के किनारो की भी परिक्रमा लगा लेने पर उसे इरावती न मिली। अग्निमित्र उससे पूछ लेना चाहता था कि 'इरावती ! तुम अपना हृदय न बदल सकोगी ?' किन्तु वह मिली नही और अश्व बुरी तरह पसीने से लथपथ हो रहा था। इस अवस्था मे जब वह एक स्थान पर आकर रुका तो देखा कि वह कुक्कुटाराम के भिक्षु-विहार के सामने खड़ा है। घोड़े से उतर कर द्वार के समीप एक विस्तृत शिला पर विश्राम लेने के लिए बैठ गया। सामने सायकाल के सूर्य की पीली किरण गेरू से पुती हुई विहार की प्राचीर पर पड़ रही थी। कुक्कुटाराम का विस्तृत द्वार खुला था। अग्निमित्र के देखते-देखते पीली किरण लाल हो चली, अब उसने सोचा, "क्या करूँ ? महा-स्थविर से मिलकर पूछने पर कोई आपत्ति तो नही खड़ी होगी।' इतने मे एक ध्यानमग्न भिक्षु नीचे सिर किये, सौम्यमुद्रा से उसी के पास से जाने लगा। अग्निमित्र क्रोध से जल रहा था। उसने पूछा—

"क्या तुम इसी कुक्कुटाराम के स्थविर हो ! —उसके स्वर मे तनिक भी नम्रता न थी।

"उपासक ! शान्त हो, इतना अविनय का प्रदर्शन क्यो ?

"शान्त ! शीतल मृत्यु की-सी शून्यता, और उसका वाग्जाल से भरा विज्ञापन मैं बहुत सुन चुका हूँ। मैं जो पूछ रहा हूँ, उसे बताओ।"

"आओ उपासक ! तुम बैठ कर अपने मन को निरुद्वेग बना लो। मैं तुम्हे निर्वाण का सन्देश सुनाऊँगा।"

"मैं निर्वाण मे विश्वास नही करता।"

"ठीक है, यौवन-काल मे तुम निर्वाण को व्यर्थ की वस्तु समझ सक्ते हो, परन्तु वह चरम लक्ष्य है युवक !"

"ठहरो भिक्षु, हम पुनर्जन्मवादी हैं। निर्वाण यदि मानव-जीवन के लिए आवश्यक ही होगा, तो उसे किसी अगले जन्म मे खोज लूंगा ? जब जीवन व्यर्थ सिद्ध हो जायगा। ओह ! तुम्हारे इस कुहर मे मनुष्य अपने जीवन को भी नही प्राप्त कर रहा है। न जाने कब इस कुक्कुटाराम को प्राचीर गिरेगी और बन्दिनी मानवता मुक्त होगी।"

"शान्त हो, तुम कितने पापमति हो ?"

"भिक्षु ! तुम्हारा पुण्य न जाने कब धोखे मे पाप बन गया है। मानव-जीवन की चैतन्य ज्वाला की उपयोगिता निर्वाण मे बुझ जाने मे नही है।" अग्निमित्र ने व्यग से हँसकर कहा। वह घोडे पर चढने के लिए उसकी ओर बढा और भिक्षु ने मन-ही-मन सोचा—"क्या यह कोई राजकर्मचारी तो नही है ?" वही धर्म-महामात्र को इरावती को निकालने का समाचार देकर आया था। तब उसने कहा—"यदि स्थविर से मिलना आवश्यक हो, तो तुम भीतर जा सकते हो।"

किन्तु अग्निमित्र उत्तेजित, क्षुब्ध और आहत-सा हो रहा था। उसने घोडे पर बैठ कर एँड लगाई। वह गगाधर मन्दिर की ओर चल पडा।

नगर के प्रान्त कुजा मे से सॉय-सॉय का शब्द निकलने लगा था। अग्निमित्र धीरे-धीरे चला जा रहा था। निर्जीव-सा वह जब मन्दिर के समीप पहुँचा, तब उसने देखा कि कालिन्दी परिचारिका-वेश मे खडी है। उसका मुँह गगा की ओर था। किसी भावना मे तल्लीन-सी वह चुपचाप गगा की धारा को देख रही थी। उस प्रवाह पर सन्ध्या अपनी गम्भीर छाया डाल रही थी। फिर भी प्रगतिशील जलपुञ्ज कूलो की हरियाली अपने वक्षस्थल पर आन्दोलित करता हुआ, तट के विरल शब्दो को प्रतिध्वनित करता चला जा रहा था। अग्निमित्र भी उसी एकान्त चित्र को बिगडने देना नही चाहता था। वह धीरे-धीरे अश्व से उतर कर सभामण्डप के समीप पहुँचा। कालिन्दी की तन्मयता भग न हुई। फिर न जाने क्या हुआ कि उसने अपने विचारो का सहसा अन्त कर देना ही उचित

समझा। कालिन्दी के मुँह से निकला—"हाँ, वह इरावती से ही प्रेम करता है, तब ? और वह भी तो नहीं अग्निमित्र को मुझसे कोई छीन नहीं सकता।" सहसा वह घूम पड़ी। देखा तो अग्निमित्र उदास और थका-सा उसी के पीछे बैठा था।

"अरे तुम आ गये ?

"हाँ कालिन्दी !'

''इरावती का पता नहीं लगा न ?

"यह तुमसे किसने कहा ?"

"वही जो सब बातें मुझे बता जाता है। मेरा गुप्तचर !' —कहकर वह मुस्कुरा उठी।

"तब तो इरावती का पता तुमको अवश्य मालूम होगा। —अग्निमित्र ने कुछ व्यंग से कहा।

"हो भी सकता है ! परन्तु क्या मैं तुम्हें बता दूँगी ?"

"तुम मुझे अवश्य बता दोगी, ऐसी निर्दय तुम नहीं हो !'

"वाह रे ! तुम्हारा विश्वास !—कह कर वह गंगा के किनारे की ओर चली और धीरे-धीरे नीचे उतरने लगी। अग्नि भी उठा। नीचे अन्धकार घना हो रहा था। वह भी कालिन्दी के पीछे चला—जल के समीप एक पत्थर पर कालिन्दी बैठ गई। उसने अग्निमित्र से कहा—"आओ, बहुत थके हो, बैठो।'

अग्निमित्र समीप ही बैठ गया। कुछ काल तक दोनों ही चुप रहे। कालिन्दी उँगली से जल की धारा काट रही थी, किन्तु वह कटती थी ? हाँ उँगली ही शीतल जल से चारों ओर घिरी रही। उसने कहा—

"तो आज उसका उत्तर मुझे दोगे न ?"

"दूँगा।"

"तो फिर कहो न ?'

"बृहस्पति का विरोध करने में, मैं तुम्हारा सहायक हूँ। उसके अत्याचार से "

"इरावती पर जो उसने किया है न ?' —कहकर कालिन्दी फिर कुछ सोचने लगी।

"और मुझ पर नहीं ?"

"तुम तो मगध के महानायक आज ही बने हो !'

"हाँ अश्वारोही सेना का मैं प्रधान हूँ। किन्तु नहीं, वह पिता की आज्ञा थी और तुम्हारा अनुरोध !"

"मेरा अनुराध ?"

"और नही तो क्या ?"

"तव तुम मेरे अनुरोध को इतना मानने लगे ! किन्तु अग्निमित्र ! मै तुम्हारी सेना की सहायता नही चाहती । मैं तुम्हे...केवल तुम्हारी सहायता इस ससार के सुख-दुख मे चाहती हूँ । कालिन्दी को और कुछ नही चाहिए । देखो, मगध का साम्राज्य तुम्हारा होगा और तुम मेरे, केवल मेरे हो जाओ । मैं जीवन मे निष्ठुर कल्पना लेकर ही जीवित हो रही थी, किन्तु तुमने उसमे न जाने कहाँ से माधुर्य की पुट लगा कर उसे कैसा कुछ बना दिया है ।"

"वह भ्रम भी हो सकता है कालिन्दी ! मुझमे जिसने मिठास भर दी थी, वही न जाने क्या हो गई ! निष्ठुर ! क्रूर । किन्तु जाने दो, उन सब बातो का अभी अवसर नही; फिर जब कभी वह क्षण आवेगा तो देखा जायगा । अभी तो हम लोग एक कर्तव्य के लिए तत्पर सहकारी ही हो सकते हैं । चलो, तुमको जो निधि का भेद नही मालूम है, वह भी बता दूँ ।"

अग्निमित्र उठा और दीर्घ श्वास लेकर कालिन्दी भी उठ खडी हुई । दोनो धीरे-धीरे नन्दी के पास आये । अग्निमित्र ने षट्कोण के बिंदु पर अँगूठा रख कर दबाया । पास की ही एक पटिया झूल पडी । अग्निमित्र ने कहा—"लो, यही निधि का गुप्त द्वार है । अब तुमको जाना हो तो भीतर जाओ ।"

"नही, इसे बन्द कर दो; अभी नही, फिर कभी साथ ही चलूँगी । देखो, कोई इधर ही आ रहा ।" कालिन्दी ने धीरे से कहा । अग्निमित्र ने फिर खटका दबाया, पटिया अपने स्थान पर आ लगी । फिर दोनो सशक आगन्तुक की ओर देखने लगे । कालिन्दी के सकेत करने पर अग्निमित्र एक ओर छिप गया और आगन्तुक ने समीप आकर चिल्लाकर कहा—"है, यही है ।" साथ ही कई सैनिक और आ गये । कालिन्दी तनकर खडी हो गई और तीखे स्वर से पूछा—

"तुम लोग किसको खोजते हो ?"

"तुम्ही को ।"

"मुझको, गगाधर की परिचारिका कालिन्दी को । भला क्यो, मैं सुनूँ भी ?"

"अरे ! तुम इस मदिर की परिचारिका हो ।"

"और नही तो क्या हूँ ?"

"यहाँ कोई भिक्षुणी नही ह ?"

"नही, सामने कुटी मे मेरी रुग्णा बहन ह । और कोई नही ।"

"उल्का ले आओ ।" पहले आगन्तुक ने कहा । देखते-देखते कई सैनिका न

मामन की कोठरी को घेर लिया। कालिन्दी क्षण-भर के लिए चञ्चल हुई। उसने अग्नि से जाकर कहा—"अब क्या होगा ?"

"क्या ?"

"उसी म इरावती है ?"

"इरावती !" रोप और घृणा स अग्निमित्र न उत्तेजित होकर पूछा। फिर दखा, तो एक उल्काधारी काठरी म घुसना ही चाहता है। अग्निमित्र व्याघ्र की तरह एक छलाग मार कर उसके सिर पर जा पहुँचा। उल्का बुझ गई।

घोर अधकार छा गया। अग्निमित्र न अब तक दो सैनिका को घायल कर दिया था। उसकी रण-गर्जना भीपण होने लगी। ज्यो-ज्यो शत्रु पक्ष जुटकर आता, घायल होकर उम पीछे हटना पडता। कालिन्दी बडी विपत्ति में पड गई। वह सोचने लगी, "अब क्या होगा ?" अकस्मात् उसके स्वस्तिक-दल के दो व्यक्ति आ गय। कालिन्दी न तीव्र कण्ठ से पुकारा—"सहायता कीजिए। य लाग न जाने कहाँ म आकर मन्दिर क समीप रक्तपात कर रह हैं।"

उल्का जल उठी। अग्निमित्र ने देखा कि वह बुरी तरह घिर गया ह। आग किवाड खोलकर इरावती खडी है। अग्निमित्र ने क्रोध स कहा।

"इरावती ! भीतर हटो !"

"नही, मेरे लिए रक्तपात की आवश्यकता नही, म चलती हूँ। इरावती न दृढ कण्ठ म कहा।

अग्निमित्र को घाव तो लग चुक थ, तिस पर यह मानसिक उथल-पुथल ! वह विमूढ-सा कुछ साचने लगा। सहसा उसके सिर पर एक कठोर आघात हुआ और वह मूर्च्छित होकर गिर पडा। कालिन्दी ने क्षण-भर विचार किया। उसने अपने दल वालो को रोक कर कहा—"ठहरा ! इरावती को ले जाने दो ! हम लोगो को क्या ?"

आक्रमणकारियो न इरावती का पकड लिया और अपने घायल सैनिको का उठाकर वहाँ से प्रयाण किया। अब कालिन्दी आहत अग्निमित्र के पास आई, और पुजारीवाला कोठरी मे उसे ले जाकर सुला दिया। उपचार करने लगी। सिर मे चोट गहरी न थी। घावो पर पट्टी बाँध दी गई। दूध लाने के लिए कहकर वह स्वय पखा झलने लगी।

स्वस्तिक-दल के दूसरे व्यक्ति ने कहा—"यह आकस्मिक घटना थी कि हम लोग पहुँच गये। मुझे सन्देह था कि कदाचित् यही आपस भेट हो जाय। एक समाचार कहना आवश्यक था।

"क्या ?"

"राजगृह क समीप खारवेल आ गया हे और गगा के किनारे शोण के उस पार कान्यकुब्ज से प्रत्यावर्तन करके आने वाली सेना का अग्र भाग पहुँच गया है।"

"राहिताश्व जान वाल अश्वारोही कहा है ? '

"शाण के इस तट पर, नावो की प्रतीक्षा है सामग्री क लिए।

कालिन्दी कुछ चिन्तित होकर बोली—"मैं जाती हूँ, अग्निमित्र को शिविका पर अश्वारोही-सना के शिविर मे ले जाओ। कहना कि इन्हे मूर्च्छित पाकर हम लाग उठा लाय हैं। फिर वहीं से चल दना और मुझसे भेट करना।

कुसुमपुर के नागरिको म भारी हलचल थी। प्रधानत धनी लोगा और उनस पोपित साधुओ का समूह व्याकुल था। राजा की धर्म-विजय का सभी लोग आदर की दृष्टि स देखते थे, अनुकरण भी करते थे। सघो के वाद-विवाद, उनके निमत्रणा को धूम पाटलिपुत्र की व्यावहारिक मर्यादा थी, किन्तु कुसुम-कोमला, दार्शनिको की कुसुमपुरी दानो ओर मे आक्रान्त थी। फिर अपनी सुविधा, प्राण-रक्षा के लिए चिन्तित होना स्वाभाविक था, विशेषत इस ससार म निश्चिन्त, परलाक-विचाररत, मनुष्यो को। पश्चिम म जाना ता असम्भव था। उधर यवनो की सना थी। हाँ, पूर्व मे दक्षिणी मगध की पहाडियाँ सुरक्षित थी। प्राय लोग उधर ही भाग रहे थे। शोण से चौथाई योजन की दूरी पर पाटलिपुत्र के दक्षिण एक विशाल झील थी, जिसम शोण का एक सोता आकर मिल गया था। इसी त्रिभुज म अश्वारोही सना का शिविर था। सनापति का पद भी पुष्यमित्र को मिला था। उस दूरदर्शी सैनिक न, नगर के बाहर अश्वा-रोहिया का शिविर इसी उद्देश्य से रक्खा था कि समय आन पर अश्वारोही दानो ओर द्रुत गति स जा सकते थे। राजगृह का पथ तो उनके अधिकार म था ही, जल घट जाने स शोण सगम तक भी अश्वारोही सेना पहुँच सकती थी।

उस झील म कमलो की भरमार थी। जल स्वच्छा था। नगर स एक पथ उसी के किनारे-किनारे दक्षिण चला गया था। सध्या समीप थी। शिविरश्रेणी म अभी तक दीपक नही जले थ। पथ से दा पथिक जा रहे थे। एक स्थूलकाय किन्तु नाटा था। दूसरा लम्बा-चौडा परन्तु सुकुमार था। दोनो थके थे, परन्तु माटे ने साहस बढाते हुए कहा —"अब तो वही कुसुमपुर है।" दूसरा उसके इस कहने पर तो वैठ ही गया। "हाँ जी, अब तो आ ही पहुँचे हैं, तनिक विश्राम कर लें।"

"अरे नही चन्दन ! सब परिश्रम नष्ट हो जायगा। इतन दिना का किया-धरा सब मिट्टी हो जायगा। अब क्या है ? थोडा-सा साहस और करो"—कहता हुआ वह दयनीय दृष्टि से उस देखने लगा।

चन्दन ने अपने पैर उठा कर उसे दिखात हुए कहा—"देखते नही, पैरो के

छाले घरवाली की तरह गाल फुलाए है। न! मैं तो इसी म से कमलगट्टे खा कर यही जल पी लूंगा। तुम मेरी चिन्ता छोडो सेठजी! जाआ अपने घर चले जाओ। तुम्हें यहाँ तक पहुँचा दिया। बस, वही सामने कुसुमपुर है। मैं शपथ-पूर्वक कहूँगा कि सेठ धनदत्त के साथ मुझे नित्य पतला यवागू मिलता रहा। कभी अजीर्ण नही हुआ। बरसो कभी रोगी नहीं हुआ। पथ्य, केवल पथ्य मिलता रहा। समझे आप!"

"किन्तु इतना रत्न लेकर अकेले उतनी दूर जा कैसे सकूँगा भाई! जब तुम इतनी दूर आये तब थोडा और सही। ऐं बस!"

किन्तु चन्दन तो लम्बा हो गया। धनदत्त बडी दुश्चिन्ता मे पडा। नगर सामने दिखलाई पड रहा है। किन्तु सध्या हो चली है। उसके पास रत्नो का ढेर! कोई भी साथी नही। वह चन्दन पर चिढने लगा था, इतने दिन खिलाया-पिलाया, साथ रखा और यहाँ आकर फैल गया। उधर चन्दन सेठजी से ऊब गया था। नगर की ओर से एक युवक आता हुआ दिखाई पडा। धनदत्त ने उसे देखकर पूछा—"सुनो तो, तुम किधर जा रहे हो?"

"मैं...मैं...मैं" उसके मुँह से अधिक कुछ न निकल सका। श्रेष्ठी धनदत्त प्राचीन व्यापारी, देश-विदेश देखा-सुना था। उन्होने डॉट कर कहा—"मे...मे भेडो की तरह न करो। मैं पूछता हूँ, तुम किधर!"

"पूछो मत! महा उपद्रव!"

"अरे कुछ कहो भी।"

"देखते नही उधर!"

धनदत्त ने उसके सकेत की ओर चौंक कर देखा—शिविरो की श्रेणी! उसने पूछा—"यह सेना कैसी?"

"पाटलिपुत्र पर दोनों ओर से आक्रमण होने वाला है। इसी से मेरी स्वामिनी बाहर चली गई है।"

"तो तुम बेकार हो? मैं तुमको अपनी सेवा मे नियुक्त कर लूंगा। चलो, मुझे मेरे घर पर पहुँचा दो।"

"वाह! यह अच्छी रही। मैं तो हिंसा से डर कर इतनी बडी अपनी स्वामिनी की निधि छोडकर चला आया। अब फिर चलूँ, मारकाट करने!"

"निधि कहा? कैसी?"

"अजी तुमने सार्थवाह धनदत्त का नाम कहाँ से सुना होगा? फिर पूरी कथा तुमको सुनाने बैठूँ, इतना अवसर मुझे नही।"

"तो धनदत्त! हाँ, हाँ, मुझसे आन्ध्र देश मे भेंट हुई थी। मैं तो वही उनके

घर जा रहा हूँ। हुआ क्या ?"—कहकर उत्तर की प्रतीक्षा मे व्याकुल धनदत्त, उसे देखने लगा।

"धनदत्त के तीन भूगर्भ सोने से भरे हैं। मैं उस पर प्रहरी था, किन्तु जब स्वामिनी मणिमाला ही अपने एक विश्वासी मित्र के साथ बाहर चली गईं तो फिर मैं प्राण देने के लिए क्यो रहूँ ? सुना है, यवन लोग राज्य करने नही आ रहे है, उन्हे तो कुसुमपुर को लूटना है। फिर मैं क्यो यहाँ रहूँ ? जाता हूँ। गाँव मे बैठकर धर्मसूत्र का पाठ करूँगा"—कह कर युवक चलने को उद्यत हुआ, तो उसे रोक कर धनदत्त ने कहा—

"भला उसका विश्वासी मित्र कौन है, यह तो बतात जाओ।"

"एक आजीवक, जिसे स्वय धनदत्त ने भेजा था। वह बात-बात मे कहा करता है 'मनुष्य कुछ कर नही सकता।' बस उसी के साथ मणिमाला अपना ऊपरी विभव लेकर चली गई। अच्छा मुझे छुट्टी दो।"

"सुनो जी तुम मिथ्या कह रहे हो। धनदत्त ऐसा मूर्ख नहीं जो अपनी स्त्री क लिए एक विश्वासी मित्र भेज दे। वह तो कोई राक्षस होगा जो, मणिमाला-जैसी साध्वी को बहका ले गया है।"

"ना, ना, ना, वह तपस्वी ! तीर्थक ! बडी-बडी जटा ! त्यागी ! भला वह पिशाच होगा !" कहता हुआ युवक चला गया।

धनदत्त ने पूरे बल से झकझोर कर चन्दन से कहा।—"चन्दन ! तू अभी सोता ही रहेगा ? अरे चल भी घर की क्या दशा है देखूँ तो ?" चन्दन आँख खोल कर बैठ गया। उसने कहा—"मुझे तो नीद आ रही है। वह सामने चैत्य है, वही जा कर सो रहूँ। कल प्रभात मे, मगल-वेला मे घर पहुँच जाऊँगा।"

इतने म एक आजीवक उसी स्थान पर आकर चन्दन से पूछने लगा—"धर्म-शाला कितनी दूर है, उपासक !"

धनदत्त कुढ़ रहा था। उसने कहा—"धर्मशाला पूछते हैं आप ? समूचा मगध धर्मशाला ही तो है। जहाँ चाहिए रहिए। पूछना क्या है, यही सुन कर तो सुदूर यवन-देश से बहुत-से अतिथि आ गये हैं।"

"मैं आपकी बात समझ नही सका।"

"आश्चर्य ! इतनी छोटी-सी बात और इस दार्शनिक मस्तिष्क मे नही आई।"

"नही भी आ सकती है। होगी वैसी बात ही, मुझे तो धर्मशाला चाहिए, न होगा तो इसी सामने वाले चैत्य-वृक्ष के नीचे पड रहूँगा।"

"पड रहिए। मैं पूछता हूँ कि मगध ही ऐसा अभागा देश है क्या, जहाँ

दरिद्र दार्शनिक उत्पन्न होते है ? जिसे कपडा नही मिला उसने सोच लिया कि माता के गर्भ से क्या कपडे पहन कर आये थे ? बस एक सिद्धान्त बन गया, नगे घूमने लगे। कभी धोखे से कोई मच्छर मुँह मे उन्ही की श्वासो से खिचकर चला गया, बस प्राणि-हिंसा हो ही गई। मुँह पर कपडे बाँध कर चलन लगे। गड गया काँटा—ढोग बनाया कि चीटियाँ दबती है। फिर तो हाथ मे झाडू वाले दार्शनिक ! शिर नही घुटा—जटाधारी अस्वस्थ हुए, पानी गरम करके पीने लगे। और ये सब सिद्धान्त बन गये। वाह रे मगध !'' धनदत्त का स्वर ऊँचा होने लगा था। उसे मणिमाला और आजीवक वाली बात स्मरण हा रही थी। सामने था आजीवक ! चन्दन को झपकी आ रही थी। सेठजी बक रहे थे। भीतर क्रोध आ रहा था मणिमाला पर। धैर्य से उसने कहा—''तो फिर चलिये उसी चैत्य पर विश्राम किया जाय ! चन्दन थक गया है, इसे भी लिवा ले चलें—''कह कर धनदत्त ने चन्दन का हाथ पकडा। वह उठ खडा हुआ। तीनो चैत्य-वृक्ष के नीचे पहुँचे। पहले तो चैत्य-वन्दना की गई, फिर एक ओर वृक्ष के नीचे आसन लगाने का डौल होने लगा।

धनदत्त ने पूछा—''तो आप धर्मशाला मे न जाइएगा ?''

''अभी तो नही जा रहा हूँ। आगे जाने नियति ! लाखो योनियो में भ्रमण कराते-कराते जैसे यहाँ तक ले आई है, वैसे और भी जहाँ जाना होगा...''

''तो अभी जाना है आपका ! अच्छा बैठिए। कुछ अँधेरा है, तो भी पास ही जल है। मोदक जो बचा है, हम तीनो बाँट कर खा ले। रात्रि मे फिर देखा जायगा।'' धनदत्त की उदारता उबल उठी थी। उसे साथी चाहिए, नगर का बाहरी प्रान्त ! पास मे रत्न और मणि ! चन्दन भी चौंक उठा। धनदत्त न पात्र म जल लाने के लिए उससे कहा। उसने कहा, ''मुझे नीद आ रही है, ऐसा न हो कि वहाँ जाकर सो जाऊँ, सो मेरा मोदक दे दीजिए। खाता हुआ वहा तक जाऊँगा, अपनी अजलि से जल पी लूँगा, फिर आप लोगो के लिए जल ला सकूँगा ! इस नीद को भगाने की दूसरी औषधि नही।''

धनदत्त ने वही व्यवस्था की, किसी तरह जलपान करके वे तीनो उस चैत्य-वृक्ष के नीचे चुपचाप बैठे। आकाश मे नक्षत्रो का उदय होने लगा। अकस्मात् धनदत्त ने कहा—आजीवक ! हम लोग तीनों मनुष्य बारी-बारी से सोयेंगे। क्यो न ! ठीक रहा ?''

''नही, मैं तो नियतिवादी हूँ। जब सोना होगा, सो जाऊँगा। तब तुम जगा ही नही सकते, अभी तो मुझे नीद आने मे कुछ विलम्ब है।'' धनदत्त ने मन मे सोचा, ''अभी-अभी इसने लड्डू खाया है। विश्वासघात तो नही करेगा,

और करेगा तो अभी नहीं, ठहर कर। तब से एक नीद ले लूं, फिर तो रात भर जागता रहूँगा।" धनदत्त सोने लगा, और चन्दन तो पहले से ही।

आजीवक ने सोचा—"कितनी दुश्चिन्ताएँ ह इसे।" टहलने लगा। रात घनी होती जा रही थी। अब पथिको का आना-जाना बन्द हो गया। किन्तु उसे सन्देह हुआ, कुछ मनुष्यो क उधर ही आने का शब्द क्रमश समीप होने लगा। आजीवक भी वही बैठ गया। कुछ समय तक वह चुप रहा, फिर तो शिविका-वाहको की 'हूँ हूँ' स्पष्ट सुनाई पडने लगी। वाहको ने शिविका चैत्य-वृक्ष की छाया मे रख दी। वे विश्राम करने लगे। साथ के दो सैनिक भी वही बैठ गये। उन्होने देखा तीन व्यक्ति पहले से वही पर हैं। सैनिक ने ऊँघते हुए चन्दन को हिला कर पूछा—"कौन हो जी तुम ?"

"मैं, राजगृह का राजवैद्य।" चन्दन स्वप्न स चौक उठा था।

"वैद्य! तब तनिक इस रोगी की परीक्षा तो करो"—कह कर उसने चन्दन को शिविका के सामीप ला खडा किया। चन्दन था तो चतुर! जो सैनिक-वेश दखा तो मन म डरा भी फिर उसने सोचा—"इनको मूर्ख बनाते क्या लगता है।' लगा मूर्च्छित व्यक्ति की नाडी दखने। सैनिको से पूछा—"विलम्ब हुआ इन्हे मूर्च्छित हुए न ?"

"हाँ।"

"ठीक है, पूर्ण विलम्बिका है। अतडिया म विद्रधि है और नाडियो मे श्लीपद।"

अकस्मात् एक अट्टहास हुआ। धनदत्त तो गिरत-गिरते बचा, परन्तु भयभीत तो सभी हो गये। धीरे-धीरे एक बलवान् ब्रह्मचारी आकर उनके सामने खडा हो गया। ब्रह्मचारी ने पूछा "वैद्यराज! नाडियो म श्लीपद।"

"देखिए उनके पैर भारी हैं। धीरे-धीरे चल रही है।" चतुर चन्दन ने कहा।

"वाह, तुम्हारे जैसे वैद्य तो मगध म ही मिलेगे! देखूं तो"—कह कर ब्रह्मचारी ने रोगी की परीक्षा की। उसन ठहर कर पूछा—"क्या इसके शरीर से, रक्त बहुत-सा बहा है ?'

"हाँ, युद्ध म घायल हुए है।' साथ क सैनिक न कहा।

"ठीक है, तुम लाग आलोक का प्रबध करा, मैं पास ही जडी लेने जाता हूँ—कहकर ब्रह्मचारी तो एक ओर चला गया। धनदत्त ने टटोल कर एक तेल से भीगी वर्तिका निकाली। पथरी से आग झाड कर जला दी गई। ब्रह्मचारी

लौट आया, उसके हाथ मे बूटी थी। धनदत्त ने पात्र उसके सामने रख दिया। ब्रह्मचारी दोनो बलिष्ठ हाथो से मसल कर उसमे से स्वरस निकालने लगा।

रोगी के समीप आकर उसने धीरे-धीरे स्वरस उसके मुख मे टपकाना आरम्भ किया। अमृत-सी यह बूटी थी। पेट मे जाते ही रागी ने आँख खोल दी। उसने पूछा—मैं कहाँ हूँ ?''

''मित्रो मे, घबराओ मत !'' ब्रह्मचारी ने कहा। उस स्वर को जैसे रोगी न पहचाना। वह टक लगा कर देखन लगा। सहसा उसके मुँह से निकला—

''गुरुदेव !''

''अग्निमित्र !''

''आर्य ! बन्दीगृह से निकलने पर आप की प्रतीक्षा नित्य करता था !'' अग्निमित्र ने गद्‌गद कण्ठ से कहा।

''शान्त हो, अवसर आने पर मैं स्वय मिल लूंगा। अभी तो तुम शीघ्र ही शिविर मे जाओ। लो यह गुटिका और मुंह मे रख लो। तुम्हारा शैथिल्य नष्ट हो जायगा।'' फिर हँसते हुए चन्दन की ओर देखकर कहा—''ऐसे वैद्यो से सावधान रहना।''

चन्दन कुछ बोलना ही चाहता था कि एक बैलगाडी और साथ मे शिविका भी उसी चैत्य-वृक्ष के नीचे आ पहुँची। शिविर मे स एक स्त्री निकल कर आलोक के समीप आ गई। उसने कहा—''हम लोग निराश्रय है। क्या यहाँ रात बिता सकने की आज्ञा मिल जायगी ?'' अभी उसने बात भी पूरी न की थी कि धनदत्त दौडकर उसके पास पहुँचा। यह चीत्कार कर उठा—''मणिमाला !''

''स्वामी !''—कह कर वह धनदत्त के पैरा से लिपट गई। किन्तु धनदत्त उस फटकार कर कहा— ''अविश्वासिनी ! दूर !''

''क्यो ?''

''मैंने सुना था कि तू एक आजीवक के साथ कही चली गई !''

''चली गई नही, चली आई कहिए। वह आजीवक भी साथ है, उन्ही की रक्षा मे तो मैं जीवित रह सकी।'' उसने गाडी की ओर देख कर पुकारा—

''आइए आर्य !''

गाडी से उतर कर एक आजीवक साधु आया। उसे देखते ही पहले आजी-वक ने चिल्ला कर करा—''अरे मैं यह क्या देखता हूँ ? मेरे गुरुदेव !''

''धनदत्त ! मैंने तुम्हारा कुछ लिया नही, यह सब लो। मैं अपनी नियति का भोग भोगने आगे बढता हूँ। आओ वत्स !'' कहता हुआ दूसरे आजीवक का

हाथ पकड कर वह चलता हुआ। अग्निमित्र के मुँह से सहसा निकला—"वे ही तो हैं, हाँ स्वस्तिक-दल के। इन्हे पकडो तो !"

साथ के दोनो सैनिको ने उनका पीछा करने का अभिनय किया। वे चारो लम्बे हुए। उधर से उल्का का आलोक और टापा का शब्द समीप आ रहा था। चैत्य के नीचे एकत्र लोगो ने आश्चर्य से देखा कि अश्वारोही प्रहरियो-द्वारा वे चारो पकड कर वही लाये गये। किन्तु आजीवका के सिर की जटा का अधिकाश सैनिक के हाथ मे था। अग्निमित्र ने और भी आश्चर्य से देखा कि अश्वारोहियो का नेता उसका पिता सेनापति सामने खडा है।

अग्निमित्र ने उठकर पिता की वन्दना की, किन्तु रोप से पुष्यमित्र न आशीर्वाद न देकर पूछा—"क्या महानायक ! यही शिविर का सैनिक कर्तव्य तुम कर रहे हो ?"

"आर्य ! मैं तो आहत होकर यहाँ तक शिविका मे आया हूँ।" अग्निमित्र ने कहा।

"आहत ! क्या वही, युद्ध ? '

"नही, आकस्मिक आक्रमण।"

"किन्तु तुम ऐसे स्थान पर गये ही क्यो ? क्या वहाँ सैनिक-चर नही जा सकते थे ?"

"भूल हुई !" सिर नीचा कर अग्नि ने कहा। किन्तु सेनापति को सतोष न हुआ। उसने घूम कर देखा —एक भव्य आकृति वाला ब्रह्मचारी ! पीछे धनदत्त और उसकी स्त्री !

"श्रेष्ठि ? तुम कब आये ? और यह सब क्या है ?" सेनापति ने डाँट कर पूछा। धनदत्त ने कुल कथा सुना दी। तब ब्रह्मचारी ने कहा—"सेनापति ! पाखण्ड छद्मवेशियो से तुम्हारी राजपुरी भर गई है। शत्रु दोनो ओर हैं, यदि तुम इन कटको का उपाय न करोगे तो विनाश मे सन्देह नही।'

पुष्यमित्र सिर नीचा कर कुछ विचार कर कर रहे थे, फिर जब सामने देखा तो वह ब्रह्मचारी वहाँ नही था।

पुष्यमित्र ने सैनिक को आज्ञा दी—"चार अश्वारोही धनदत्त और उसकी स्त्री को सब सम्पत्ति के साथ जाकर उसके घर पहुँचा दे। और चार इन छद्मवेशियो को बन्दीगृह मे ले जायँ। चन्दन यदि जाना चाहे तो धनदत्त के साथ जा सकता है। और तुम अग्नि ? मेरे शिविर मे चलो। शेप अश्वारोही मेरे पीछे रहेंगे ! अग्नि, तुम एक घोड पर बैठ जाओ। बैठ सकते हो ?"

"हाँ आर्य !"

कुछ ही क्षणा में सेनापति की आज्ञाएँ पालन की गईं। एक उल्काध अश्व से उतरकर आगे चला। अग्नि उस पर बैठकर पिता के साथ-साथ व करते-करते धीरे-धीरे शिविर की ओर अग्रसर हुआ।

मगध-नरेश की विशाल रगशाला से सटा हुआ एक लता-गृह है, जिसमे क्रीडा-शैल से एक छोटा-सा झरना दिन-रात बहता रहता है। उसके दोना किनारो पर छोटी-छोटी श्वेत प्रस्तर की शिलाएँ पडी है। इरावती उन्ही म से एक पर बैठी हुई जल के कोमल प्रवाह को देख रही है। मध्याह्न का सूर्य प्रयत्न करके भी उस सघन पत्रावली म किरणो का प्रवेश नही करा सका है। हरित अधकार से वह स्थान पूर्ण है। इरावती पर उसकी छाया अद्‌भुत रग-चढा रही है। वह ध्यान-मग्ना दोनो हाथा मे अपने घुटनो को बाधे चुपचाप बैठी है। सहसा वहाँ की छाया गम्भीर हो गई। दूर पर कुज का द्वार जैसे अवरुद्ध हा गया, वह चौककर उधर देखने लगी। बृहस्पतिमित्र मुस्कराते हुए भीतर आए। इरावती उठी नही और न उसने अभिवादन ही किया। उसकी दृष्टि ने पूछा—"तुम क्यो यहाँ आये ?"

"इरावती !

"   "

"बोलना भी नही चाहती हो ? इतना रोप क्यो !'

"   "

"मैंने तुम्हे भिक्षुणी-विहार मे भेजकर भूल की थी। तुम इसी कानन मे रहने योग्य मयूरी हा। बृहस्पति आ रहे थे।

"   "

"तो न बोलेगी ! इतना बडा अपराध मैंने किया है।' —कहते हुए सम्राट् उसके समीप आकर बैठ गये।

इरावती उठकर खडी हो गई। उसने कहा—"आप कौन हैं ?

' मुझे नही जानती हा, यह अच्छी बात है। समझ लो, मैं कोई हूँ। पर हूँ अवश्य तुम्हारा प्रेम-भिखारी !'

"प्रेम के लिए हृदय सूख गया है ! मैंने इधर बरसा तुम्हारे विहार मे सयम और शील की शिक्षा पाई है। मुझे यह सब अच्छा नही लगता। मैं जन्म की दरिद्र अकिंचना ! मेरे लिए यह सब विभव विलास केवल कुतूहल उत्पन्न कर सकते हैं,

आकर्षण नही। मुझे क्षमा करो, हाँ यदि शक्ति हो तो कोई प्रबन्ध करो, मैं इस बन्दीगृह से छूट जाऊँ।"

"तुम ऐसी बात न कहो। यह सब तुम्हारा ही है। तुम्हारी आराधना की वस्तु है, इरावती! और मैं मगध का सम्राट् बृहस्पतिमित्र, तुम्हारा अनुचर हूँ।" —कहकर उठते हुए उसने इरावती का हाथ पकड़ना चाहा, किन्तु वह झटके मे दूर निकल गई। बृहस्पति भावातुर होकर उसके समीप पहुँचा। उन्माद जैसे उद्वेलित हो रहा था! और इरावती! वह तो चोट सहते-सहते कायरता से परे हो गई थी। उसने कहा—

"आप सम्राट् हैं! तब भी मै अपने को सुरक्षित नही समझती! आपको नही मालूम कि मैं आरम्भ की देवदासी हूँ। फिर...ओह अधकार की, शून्य की उपासिका भिक्षुणी! मुझे काम सुख की प्रवचना मे फँसाना धर्म होगा?"

"इरावती! मैं अपने को समझ नही सका था। तुम्हारा नृत्य देखकर मैं उन्मत्त हो उठा था। मैंने समझा, यह कला नही, विष की बटिया है! इसमे कितने ही मर जायँगे। किन्तु वह मेरा ढोंग था, पहले मैं ही मरा। और अब दूसरा उपाय नही। चारो ओर विपत्ति की आँधी है। राज्य पर दोनो ओर से आक्रमण! पर मैं क्या क्षण-भर स्वस्थ रह कर वह सब सोच सकता हूँ। इरावती! विहार मे भेजकर भी मैं तुमको भूल नही सका हूँ। मेरे हृदय की ज्वाला तुम्ही बुझा सकती हो। आओ सुन्दरी!" —कहकर वह कामातुर सम्राट् आलिगन करने के लिए बढ़ा। चिल्लाकर इरावती पीछे हटी, गिरी और मूर्च्छित हो गई।

ठीक उसी समय "क्या है?" कहती हुई कालिन्दी वहाँ आकर खडी हो गई। कालिन्दी के चरणो मे अलक्तक और नूपुर—राग और सगीत बिखेर रहे थे। काशी का बना, स्वर्ण-तारो से खचित नीला लहँगा, जिसके ऊपर मेखला की सतलड़ी विशृङ्खल हो रही थी। मणि-जटित, कचुक-पट्ट उभडे हुए वक्ष-स्थल पर पीछे बँधा था। मरकत का हार अपनी हरियाली की छाया उस कम्बु-कण्ठ पर डाल रहा था, जिसके दोनो ओर दो बडे-बडे मोती लटक रहे थे। अधरों पर ताम्बूल राग खिला पड़ता था। अपाग मे नीलाजन की रेखा, घुँघराली वेणी के ऊपर एक महीन उत्तरीय! एक हाथ मे कुसुमस्तवक, दूसरा कुज के द्वार पर। मादन चित्र! सम्राट् जैसे अप्रतिभ हो रहे थे। 'यह रूप!' मेरे ही अन्त.पुर मे कालिन्दी की दुर्बल काया उसके लावण्य मे वृद्धि कर रही थी। वैदूर्य के ककण से किरणे निकल रही थी। कालिन्दी अपने नील वसन में आकाश मे चाँदनी-सी

खिल रही थी। विच्छित्ति पूर्ण शृङ्गार कला की सृष्टि कर रहा था। उसने पूछा—

"आप कौन है? यहाँ अन्त पुर में ऊधम मचाने से क्या फल होगा आप जानते हैं। और यह स्त्री! अरे! यह तो मूर्च्छित हो गई है।"—कहती हुई कालिन्दी मतवाली चाल से कुंजगृह की हरियाली को आन्दोलित करती हुई लता-गृह के भीतर निर्भयता से घुसी। बृहस्पतिमित्र फिर भी चुप! उसे आश्चर्य हो रहा था कि यह कौन सुन्दरी है। कालिन्दी के एक एक अंग को वह देख रहा था, परख रहा था। कालिन्दी जैसे इन बातों पर ध्यान ही नही कर रही थी। उसे तो इस समय इरावती को चैतन्य करने की धुन थी। झरने से जल लेकर उसने मुँह पर छीटे दिये। भय अधिक चोट कम होने से इरावती ने आँखें खाली इरावती ने समझा, बड़े अवसर पर महारानी आ गई हैं। उसकी रक्षा के लिए! इरावती बैठ गयी थी। उसने सिर झुकाकर कहा— 'रानी मेरी रक्षा करो।"

कालिन्दी सम्राट् की ओर देखकर मुस्कुरा उठी। वह सचमुच अन्त पुर की अधीश्वरी का अभिनय करना चाहती थी। इरावती का हाथ पकडकर उसने उठाया और सम्राट् पर व्यंग की मुसकान छोडती हुई वह बाहर हो गई। इरावती भी साथ मे चली गई। विमूढ-से सम्राट् वही बैठे रहे। पालतू पक्षियो की कोमल काकली से बीच बीच मे निस्तब्धता भंग हो जाती थी। परन्तु सम्राट् जैसे एक सपना देख रहे थे। इरावती! और यह कौन! दोनो सुन्दर चित्र! एक के बाद दूसरे की बारी रहती, एक के हटते ही दूसरा उपस्थित हो जाता। फिर नूपुरो की झनकार ने सम्राट् को चौंका दिया। अब तो कालिन्दी फिर सामने थी। इस बार उसकी आँखो मे वह चंचलता न थी। भोलापन का वह अभिनय था। उसने सम्राट् की ओर देखकर कहा—"आश्चर्य! क्या तुम अभी यही अकड़ हो। मैंने तो समझा था कि तुम चले गये होगे। कौन हो जी तुम?"

"मैं हूँ कोई। पर तुम तो बताओ यहाँ कैसे आ गई हो? अन्त पुर मे तो मैंने कभी तुमको देखा नही।" सम्राट् जैसे पहचानने का प्रयत्न कर रहे थे।

"अच्छा तो, इस अवरोध मे रसिकता की क्रीडा करने के लिए, जान पड़ता है तुम्हारा अनपूछा अधिकार है। तब तो मैं जाती हूँ। मुझको क्या, जो यहाँ का प्रहरी हो स्वयं देखे। क्षमा कीजिए।" वह नाट्य करती हुई लौटने लगी थी। सहसा सम्राट् उठ खडे हुए। उन्होने आज्ञा भरे स्वर मे कहा—"ठहरो!"

कालिन्दी जैसे भयभीत-सी रुक गई। भोली हरिनी-सी उसकी बडी-बडी आँखें प्रश्न करने लगी—"मुझे छुटकारा कब मिलेगा?"

"मैं सम्राट् वृहस्पतिमित्र हूँ।"

कालिन्दी थरथराई, कँपी, जैसे लडखडा कर घुटनो के बल बैठ गई। उसके दानों हाथ अञ्जलिबद्ध थे। आँखो मे दया की भीख ! सम्राट् कुछ हँस पडे— "अरे ! यह क्या ? तुम तो अभी-अभी मुझको धमका रही थी न !"

"क्षमा हो महाराज !"

"किन्तु तुम यहाँ आयी कैसे ?"

"मैं तो वरसा से यही हूँ, वन्दिनी ! सुगाग प्रासाद के एक कोने मे पडी रहती हूँ। मुझसे अपराध हुआ। आज भूलकर इधर चली आई थी, सो भी अन-जान म। एक द्वार जो सदैव बन्द रहता था, आज अकस्मात् खुला देखकर ही आ गई। उस भयभीत बाला को वही अपने प्रकोष्ठ मे रख आई हूँ। उसके लिए जो आज्ञा हो।" कालिन्दी का कठ कांप रहा था। उसका अभिनय अत्यन्त स्वाभाविक था।

"अच्छा किया, उसको विश्राम की आवश्यकता थी। उसे अपने समीप ही अभी रहने दो। किन्तु आश्चर्य है, मुझे नही मालूम कि तुम कौन हो ? इस सौन्दर्य का कुसुमपुर के राजमन्दिर म यह कैसा अपमान !"

"दुर्भाग्य ! सम्राट् ! मैंने तो कुछ अपराध नही किया था। हाँ, जिस दिन मैं यहाँ पकड कर लाई गई, ठीक उसी दिन सम्राट् शतधनुष की मृत्यु हुई। सभवत इसीलिए मुझे कारावास का दण्ड मिला। अन्त पुर मे और कही जाने का मुझे निषेध है।" कालिन्दी की आँखो से झडी लग रही थी।

वृहस्पतिमित्र ने उस करुण सौदर्य को आँखो भर देखा। उसके भीतर से जैसे किसी ने कहा—"ओह यह अद्भुत सौन्दर्य !" उसने हाथ पकडकर कालिन्दी को उठाया। हाँ—रोमाञ्च हो रहा था। और कालिन्दी भी अनुकूल अभिनय कर रही थी। सम्राट् ने कहा—

"डरो मत !"

"नही, मुझे क्षमा मिले, इस बन्दीगृह से छुटकारा मिले। मैं यह सब रत्न-आभूषण यही रखकर चली जाऊँगी।" कालिन्दी विह्वल, चकित और भयभीत थी।

"तुम जाओगी कहाँ, न, यह कभी हो नही सकता। अरे ! रो रही हो, क्या हुआ जो तुमने मेरी यह छोटी-सी बात जान ली। तुम मेरी सखी हो।"

सम्राट् अपनी दुर्बल मनोवृत्ति से काँप रहे थे। और कालिन्दी एक आँख से हँस रही थी, दूसरी से रो रही थी। उसके अधरो से सिसकी निकल रही थी। कि हँसी, नही समझा जा सकता था। उसने विस्मय से पूछा—"सच !"

"हाँ, सच मुझे एक सखी की आवश्यकता है, जिससे मैं अपना हृदय खोल-कर सब कुछ कह सकूँ। जो मुझसे सहानुभूति रखती हो। इस जनाकीर्ण अवरोध मे, मैं अकेला जैसे अपने को सबसे छिपाता फिरता हूँ। तुम अपना विश्वास मुझे द सकोगी ?" सम्राट् ने सरलता से कहा। कालिन्दी अपना रोना-हँसना बन्द कर चुकी थी। वाह्य अभिनय समाप्त हो चुका था। वह जैसे प्रकृतिस्थ हो रही थी। 'विश्वास' कालिन्दी दे सकेगी ! जिसके लिए वह बराबर षड्यन्त्र कर रही है, वही उसके विश्वास का भिखारी है। उसने कहा—

"क्षमा हो सम्राट् ! मैं कालिन्दी, नन्दराजवश की नन्दिनी, मुझ पर विश्वास ! नही, आप मत कीजिए।"

"अरे ! तो तुम वही हो, राजगृह मे ..हाँ, मुझे सब स्मरण हो रहा है, किन्तु क्यो ? विश्वास करने से हानि क्या है। तुम कितनी सुन्दर हो कालिन्दी ! इस रूप के भीतर अविश्वासी हृदय ! असम्भव ! तुमको मेरी सखी, सहाय करने वाली, विश्वासपात्री, और सब कुछ बनना पडेगा। चाहे और कुछ भी हो, मैंने तो तुम्हारा कोई अपकार नही किया है। फिर क्यो सन्देह करूँ ?"

"मैं अपनी बात कह चुकी। अब जैसी आज्ञा हो।" कालिन्दी ने कहा।

"तो चलूँ, तुम्हारे निभृत मन्दिर मे, मैं विश्राम चाहता हूँ !"

"नही महाराज ! मैं यही आपसे कल मिलूँगी। मैं रानियो के द्वेष का लक्ष्य बनकर आपका कुछ भी मनोरजन न कर सकूँगी। इरावती को मैं. ." कालिन्दी ने ठोकर लगाई। इरावती को बृहस्पतिमित्र भूल गये थे उन्होने कहा—"तो मेरी वह दुर्बलता तुम क्षमा नही कर सकोगी ? सखी !"

"नही महाराज ! आप धर्म की विजय करने की घोषणा कर चुके हैं।"

"वह मेरा ढोग है ! राजनीतिक दाँव-पेंच है। मैं अब तुमसे कोई बात नही छिपाऊँगा। वह नर्तकी मेरे..."

"बस सम्राट् !" मैं समझ गई। तो उसे आपके योग्य बनने का अवसर मिलना चाहिए। वह काम सुखो को भूल गई है। और एक बात कहूँ।" कालिन्दी हँस रही थी। उसकी मुस्कराहट मे सम्राट् तर हो रहे थे। उन्होने उत्सुकता से पूछा—"क्या ?"

"आप इन खिलवाडो मे लगे हैं। यवन-आक्रमण से साम्राज्य-ध्वस होना चाहता है !"

"मैंने मेघवाहन को भी तो बुला लिया है।" सम्राट् ने अपनी सरलता दिखाते हुए कहा।

"देव ! आपकी यह दूसरी भूल है। वह राजगृह से जिन-मूर्ति लेकर चला जायगा। उसे क्या—रहे मगध या जाय !

"तो तुमको यह सब भी मालूम है !" आश्चय से बृहस्पतिमित्र ने पूछा।

"हाँ, यह ध्रुवसत्य है। मेरी प्रार्थना है कि आप कुछ सोच-समझकर उपाय करे !" कालिन्दी ने अन्वेषण करने वाली दृष्टि सम्राट् पर डाली और वह कामुक व्यक्ति कालिन्दी का और भी अन्धभक्त बन गया था। उसने कहा—

"कालिन्दी ! तुम उसके कुसुमपुर आन का कोई उपाय नही कर सकती हो।"

"इरावती को आप वहाँ तक जाने की आज्ञा देगे। —कहकर कालिन्दी ने गभीरता धारण कर ली।

"इरावती तुम्हारे अधिकार म है। सखी ! जो चाहा—जो उचित समझो !" विवश-से सम्राट् ने कहा।

"मैं भी जाऊँगी।"

"तुम भी ?"

"हाँ।"

"जैसा उचित समझो' —कहकर सम्राट् ने दीर्घ निश्वास लिया।

अकस्मात् बडे गभीर स्वर म घण्टा बजने लगा। यह सूचना थी सम्राट् को मन्त्रणा-गृह मे आने की। अशोक के समय से ही यह नियम था।

सम्राट् ने उसी शब्द की ओर पैर बढाया।

श्वेत प्रस्तर के एक छोटे-से कुण्ड के समीप—जिसमें उसी प्रस्तर से बनी हुई कमलासना प्रतिमा, अपने हाथों के दोनों लीला कमल से जलधारा उछाल रही है—उदास मन से मणिमाला बैठी है। मणिमाला युवती है, रूपवती है, किन्तु वह अत्यन्त सरल भीरु प्रकृति की स्त्री है। आने वाली आपत्तियों के अतिरंजित वर्णन से, घबराकर जब वह छद्मवेशी आजीवक के साथ रक्षा की आशा से नगर के बाहर चली गई थी, तब धनदत्त को कुसुमपुर से गये दो बरस हो चुके थे। जनश्रुतियों से मणिमाला ऊब गई थी। कोई कहता 'वह कहीं मारा गया, कोई कहता 'अब लौटकर आने का नहीं', कोई कुछ कहता। उसके धैर्य का बाँध टूट गया। मानसिक उत्तेजना से विवश होकर वह चली गई। किन्तु अदृष्ट! उसी दिन धनदत्त अकस्मात् नगर के बाहर ही मिला और मणिमाला लौटकर अपने विशाल भवन में आ गई। आई तो, परन्तु वह अपराधी की तरह। उसकी आँख धनदत्त के सामने नहीं होती थी।

मणिमाला को कोई संतान नहीं। वह सचमुच अभी अपने को बालिका-सी समझती थी। और धनदत्त प्रौढ़ वयस का व्यापार-कुशल व्यवसायी था। उसका व्यवसाय था ऋण देना और रत्नों का व्यापार। मुक्ता और वैदूर्य का तो वह एकछत्र अधिकारी था। उसके स्वर्ण-भाण्डारों का पता न था कि वे कितने और कहाँ हैं? यह धनदत्त का दूसरा परिणय था। वह भी जैसे लोक-प्रथा का पालन मात्र। उसकी प्रधान प्रणयिनी थी लक्ष्मी। आते ही धनदत्त ने अपनी पहली व्यवस्था फिर से बना ली। परन्तु पति और पत्नी में तो अनबन ही रही।

पुष्यमित्र की आज्ञा न होती तो वह मणिमाला को साथ ले आता, इसमें सन्देह है। वह समझ गया कि चतुर सेनापति का इस समय पाटलिपुत्र का धन-भाण्डार कहीं जाने देना नहीं चाहते। कभी-कभी धनदत्त सोचता कि मणिमाला निरपराध है। वह एक ऐसे ही विचार का अवसर था, जब धनदत्त टहलता हुआ धीरे-धीरे मणिमाला के समीप आ रहा था। पीछे-पीछे था चन्दन।

चन्दन कह रहा था—"वह कुक्कुरव्रत वाला दार्शनिक तो हटता ही नहीं। उसी तरह गेडुरी मारे दोनों केहुनियों के बल कुत्ते की तरह पड़ा है।"

"पड़ा रहने दो।' अन्यमनस्क भाव से धनदत्त ने कहा।

"किन्तु सेनापति की आज्ञा क्या भूल गये ? ऐसे बेकार पाखंडियों को अन्न देने के लिए उन्होंने वर्जित किया है।" चन्दन ने कहा।

"हाँ, उनका उद्देश्य है कि भोजन न पाने से ये सब स्वय नगर के बाहर हो जायँगे। फिर यदि नगर का अवरोध भी होगा तो बरसो तक पाटलिपुत्र का कोई विजय नही कर सकता।" धनदत्त ने ऐसे स्वर मे कहा कि मणिमाला सुन और उसके साथ बात करने मे सम्मिलित हो जाय परन्तु वह हिली भी नही।

धनदत्त मणिमाला के समीप होता जा रहा था, परन्तु उधर न देखते हुए मणिमाला सोच रही थी—"इतनी बडी सम्पत्ति और युवती स्त्री की व्यवस्था जो पुरुष स्वय नही करता और भूल हो जाने पर उसी को तिरस्कृत करता है, वह भी क्या बुद्धिमान् है! जैसे बहुत-से निठल्ले अन्न-वस्त्र पाते हैं, उसी तरह क्या मैं भी हूँ। मैं भी यदि प्राण बचाने के लिए भयभीत होकर कही चली ही गई, तो इसमें कौन-सा अधर्म हो गया। उस दिन से मुझसे बोलते भी नही।" उधर चन्दन ने कहा—

"और भी सुनिये न! वह जो पडोस मे मालती देवी का गृह है, जिसमे नित्य सघ का निमत्रण होता था..."

"तो वहाँ क्या हो गया ?" उत्सुकता से धनदत्त ने पूछा।

"पति और पत्नी मे झगडा हो रहा है, मालती देवी कहती है, मै बिना अतिथियो को खिलाये भोजन नही करूँगी।"

तो मर जाय! स्त्रियो को जैसे समय-असमय का विचार ही नही है। कब क्या करना चाहिए, यही जो उनकी बुद्धि मे आ जाता! चन्दन! कहाँ तो नगर भर मे आतक छाया है, युद्ध की विभीषिका! कब क्या होगा, कोई नही जानता। फिर भी वह तो अपने मन की करेंगी ही। शील, कुल और विनय इनके हठ मे जैसे कपास की तरह आँधी मे उड जाते हैं।" धनदत्त ने कनखियो से देखा, जैसे आघात ठीक हुआ हो।

"इसमे कुल, शील और विनय के उड जाने का प्रसग तो नही आता।" चन्दन ने कहा।

"तुम क्या जानो, कुलवती गृहिणी की कर्तव्य-सीमा कितनी है ? अरे जिसमे धैर्य नही, सहिष्णुता नही, वह भी शील की रक्षा कर सकेगी ? सबको खिला-पिलाकर जो स्वय यज्ञशिष्ट अन्न खाती हुई, उपालम्भ न देकर प्रसन्न रहती हैं, वही गृहिणी है, अन्नपूर्णा है। बाधा, विघ्न, राग, शोक, आपत्ति, सम्पत्ति सब मे अटल अपने सब अधिकार का उपभोग करने वाली ऐसी स्त्री दुर्लभ है चदन!"

"आप क्या किसी स्मृतिग्रन्थ का पारायण कर रहे हैं ? तो मुझे आज्ञा दीजिए,

मैं यह नहीं मानता कि स्त्रियाँ सब साँच म ढली प्रतिमा की तरह अविचल रहें। और आप! ''

''मैं क्या—मैं ''

''आन्ध्र राजधानी की राजगणिका को उस दिन कितनी चाटुकारी कर रहे थ। भूल गये! ''

''दूर पागल! भला इतन महँगे मूल्य पर वह एकावली बिकती।'' चन्दन का घूरते हुए धनदत्त ने कहा। *मणिमाला के अधरो म एक रेखा दिखाई पड़ी।* उसने घूमकर देखा, धनदत्त से उसकी आँख मिली।

''और मेरे प्राणा का कोई मूल्य न था।'' अभी वह इतना ही कह पाई थी। धनदत्त भी उत्सुक था कुछ उत्तर देन के लिए, सहसा रसाइये न आकर कहा—''आर्य! मछलीवाला आज मछली नहीं द गया।''

धनदत्त बाल उठा—''न होगी मछली! बस इसी बात के लिए इतना ''

''लुब्धक और वधिक भी मांस लेकर नहीं आय। सब कहते हैं कि कुक्कुटाराम के महास्थविर ने घोषणा की है कि राष्ट्र के कल्याण क लिए, जब तक युद्ध और आक्रमण समाप्त न हो जाय, भगवान् बुद्ध की अहिंसा की अभ्यर्थना करनी चाहिए। पाटलिपुत्र म कोई जीवहिंसा न हो।' सूपकार ने एक साँस म कह डाला।

''और युद्ध म भिक्षुओ की, आजीवको की, पाद-वन्दना होगी न? चन्दन! जा, तू पहले उस कुक्कुरव्रत वाले को मेरे द्वार से भगा। मैं इन पाखण्डो को एक क्षण भी नहीं देखना चाहता।'' क्रोध से धनदत्त ने कहा।

''देखती हो मणिमाला! यह सब क्या हो रहा है? कुछ समझ म नहीं *आता।'' जैसे समझौता हो रहा था। मणिमाला भी घूम कर खड़ी हो गई।* उसी समय बाहर से शृंगनाद और 'आनन्द' का शब्द सुनाई पड़ा।

''मैं तो अहिंसावादी हूँ। कुक्कुरव्रती हो या बिडालव्रती हो, किसी का कष्ट देना हिंसा है स्वामी!''—कहकर चन्दन चला।

''अरे इसे तो देख! कौन हँसी करने आ गया। जब सब दुखी है, तब यह आनन्द मानने वाले कहाँ स आ पहुँचा।'' धनदत्त ने झुँझला कर कहा।

रसोइया और चन्दन दोनो उसी ओर दौड़े। एकान्त देखकर मणिमाला स धनदत्त न कहा—''सुनती हो कुछ!'

''सुनती भी हूँ, देखती भी हूँ।'

''क्या देखती हो, देखती तो आज खाने-पीने की ऐसी अव्यवस्था होती?''

"तो चलो हम लोग अहेर करने चलें। क्या एक दिन मांस बिना काम न चलेगा। फिर कोई प्रबन्ध हो जायगा।"

"मैं कहता हूँ, तुम तनिक महारानी के पास चली न जाओ। घर की रक्षा का प्रबन्ध हो जायगा और यह छोटी-मोटी अड़चनें भी दूर हो जायँगी।"

"राजगणिका के पास तो तुम जा सकते हो, महारानी के पास मैं जाऊँ! नहीं।"

"अरे वह मूर्ख चन्दन! तुम भी उसकी बातों को सच समझने लगी हो? मणिमाला! हृदयेश्वरी!" धनदत्त का प्रेम उद्वेलित हो चला था। और मणिमाला का विभ्रम विलक्षण रूप से चमकने लगा। दोनों में समझौता हो गया।

मणिमाला स्वतन्त्र विचार की थी। उसे बन्धन नहीं चाहिए। जो कुछ हो गया, हो गया, उसके लिए इतनी तना-तनी क्यों? चरित्रों से मनुष्य नहीं बनते। मनुष्य चरित्रों का निर्माण करते हैं। यही उसकी धारणा थी। इतने में दीर्घकाय ब्रह्मचारी 'आनन्द' की रट लगाता उस उद्यान में आता दिखाई पड़ा। धनदत्त तन गया था, उसने कहा—

"क्या है ब्रह्मचारिन!"

"भिक्षा चाहिए।"

"भिक्षा तो राजा की आज्ञा से निषिद्ध है। इस समय भोजन करने के उपयुक्त पात्र केवल सैनिक हैं।"

"मैं राजा की भिक्षा नहीं लेता। गुरुदेव की आज्ञा है, केवल वैश्य की भिक्षा लूँगा।"

"ऐसी कृपा वैश्या पर ही क्या है?"

"वैश्यों का अन्न पवित्र है। उनकी जीविका उत्तम है। क्योंकि वे दूसरे से दान ग्रहण करने की दीनता नहीं दिखाते और त्रास से दूसरों का धन भी नहीं छीन लेते। इसलिए मैं तो वैसा ही पवित्र धान्य लूँगा।" ब्रह्मचारी ने प्रसन्न मुख से कहा।

"किन्तु आज्ञा जो नहीं है। हम लोग क्या करें। यह आपत्ति तो देखिए।"

"तब जैसी तुम्हारी इच्छा। चलता हूँ।"—कह कर ब्रह्मचारी लौटा ही था कि मणिमाला ने कहा—"आइए, मैं आपको दूँगी।" उसके हृदय में आत्म-विश्वास की मात्रा बढ़ चुकी थी।

धनदत्त ने भी दब कर उन्हीं दोनों का अनुसरण किया। उसने चलते-चलते ब्रह्मचारी से पूछा—"आपके गुरुदेव कहाँ रहते हैं?"

"गंगा के किनारे विशाल वट के नीचे! कभी देखा है वह स्थान!"

"देखूँगा '—कहकर धनदत्त दूसरी आर मुडा, जिधर उसकी बडी-सी द्वार ााला थी। उस कुछ आभास मिला कि लाग उसस मिलने क लिए वहाँ उसकी ातीक्षा कर रह हैं। धनदत्त उसी आर चला और ब्रह्मचारी को साथ लिय मणि-ााला भाण्डार-गृह की आर चलो।

धनदत्त जब अपनी गद्देदार चौकी पर बैठा, तो उस दा स्त्रियाँ वही मचो ार बैठी हुई दिखायी पडी। अवगुण्ठनवती थी। उनका सौंदर्य यद्यपि उस नील आवरण म छिपता न था, परन्तु उन्ह पहचान लेना असम्भव था। एक ने सुरील न्वर म कहा—"आप ही श्रेष्ठि धनदत्त है न ?"

"शुभे! मेरा ही नाम है। कहिए क्या आज्ञा है ? ' धनदत्त न कहा। दूसरी चुपचाप प्रतिमा की तरह बैठी।

"ठीक है, तो क्या आर्य! मुझे अपनी मुक्ताआ की मजूषा दिखावेंगे ?"

"क्या नही, इन्द्रनील, वज्रमणि, पद्मराग इत्यादि भी दिखलाऊँ ?"

"नही आर्य! मरी सखी के लिए उन चमकने वाली मणियो की आवश्यकता नही। मुझे तो स्निग्ध छायावाली मुक्ता चाहिए। मरी सखी, भीतर-बाहर उसी मुक्ता की तरह स्वच्छ और क्षण-भर की ज्योति-किरणो से मुक्ता है।"

"जैसा आप को रुचे श्रीमती"— कहकर धनदत्त उठा और कुछ ही क्षणा म मोतियो की मजूषा लेकर आया। नीला वस्त्र-खण्ड बिछाकर मुक्ता की ढेरी लगा दी गई—गोल, पानीदार, बडे, छोटे, खुल और पिरोये हुए सभी तरह क मोती! नयनाभिराम! शीतलस्पर्श मुक्ता वही लम्बी रमणी छाँटन लगी। सहसा धनदत्त बोल उठा—

"मै समझ गया, आप एकावली और हाथो के लिए छोटी माला क लिए छाँट रही हैं। तो इतना परिश्रम क्यो करती हैं। इन्हे देखिए"—कह कर मजूषा का दूसरा भाग उसने खोलकर एकावली और छोटी-बडी मालाआ की ढेरी लगा दी। रमणी ने कहा—

"सचमुच मुक्ताओ का ऐसा अपूर्व सग्रह दुर्लभ है श्रेष्ठि! कुसुमपुरी का तुम्हारे ऊपर गर्व होना चाहिए।"

"क्या कहती हैं आप! मै तो " धनदत्त भीतर ही भीतर फूल रहा था, परन्तु एक झलक उस सौन्दर्य को भी देखने की उसकी इच्छा थी। कदाचित् अनजान म रमणी का अवगुण्ठन थोडा-सा हट गया। मरकत की हरियाली स धनदत्त की आँखे तर हो गईं। उससे भी अधिक गजदन्त-सी गौर भुजलता के द्वारा उसका ढँक लेना, धनदत्त के लिए कुतूहल का आकर्षण बन गया। वह टक

लगा कर देखने लगा। और मणिमाला भी वही आकर खडी हो गई। साथ मे था ब्रह्मचारी!

ब्रह्मचारी ने कहा—"श्रेष्ठि! मैं भिक्षा ले चुका, अब मैं आशीर्वाद देता हूँ।" धनदत्त ने कुढकर उसकी ओर देखा। और ब्रह्मचारी तो कहता ही गया—"आनन्द हो, तुम्हारा भय छूट जाय! आनन्द।"

दूसरी स्त्री जो अब तक चुपचाप बैठी थी, उठकर खडी हा गई। उसका अवगुण्ठन खिमक गया था। वह क्रोध मे भरी हुई बोली—

"तुम आनन्द के प्रचारक! यहाँ भी मिथ्या प्रलोभन देने आ गये न।"

"अरे! तुम बौद्ध-विहार से निकलकर यहाँ चली आई हो। कैसे! किन्तु ठीक है, मिथ्या ससार से मुक्त होकर वास्तविक जगत् मे आ गई हो देवि!" ब्रह्मचारी ने प्रसन्न भाव से कहा।

मणिमाला चकित होकर उन दोनो मुन्दरियो को देख रही थी और भी देख रही थी, अतृप्त लोचनो से धनदत्त का उन्हें देखना। मोती छाँटने वाली ने अपना सिर नही उठाया, उसे जैसे इन व्यर्थ की बातो से कोई सम्बन्ध नही। किन्तु साथ वाली तो उत्तेजित थी। उसने कहा—"रानी! अब चलो न! मुझे इन पाखण्ड-वेशधारियों से अत्यन्त घृणा है। मैं नही ठहर सकती।"

मणिमाला लाल हो रही। उसने कहा—"तो अपनी घृणा अपने तक ही परिमित नही रख सकती हो। किसी का अपमान करने मे यदि आप को सुख मिलता हो, तो थोड़ी-सी दासियाँ मोल ले लीजिए। आज-कल तो वर्बर और यवन देश से बहुत-सी बिकने आई हैं।

धनदत्त ने कहा—"अरे! यह क्या तुम भूल गई हो कि जो लोग मेरे ग्राहक हैं, वे आदरणीय हैं। फिर यह भी..."

"मैं जानती हूँ, किन्तु दूसरो को भी जानना चाहिए। मैं सब का आदर करती हूँ, इसका यह अर्थ नही कि मैं सबसे अनादर पाती रहूँ। मैं जा रही हूँ, ब्रह्मचारीजी के गुरुदेव का दर्शन करने। रथ के लिए कहला दीजिए।" मणिमाला उत्तेजित हो रही थी, कुछ तो ब्रह्मचारी की विलक्षण बातो से, कुछ-कुछ धनदत्त के उन स्त्रियों के प्रति आग्रह से। वह क्यो उन लोगा के प्रति इतना आवृष्ट है? न लेगी तो क्या? किन्तु धनदत्त इस समय अपना सम्मान खोना नही चाहता था। उसने कहा—

"किन्तु तुम भूल गई हो कि आज मेरे यहाँ कुछ लोग निमंत्रित हैं, और वे प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं! क्या उनका प्रबन्ध तुम कर चुकी हो? जाना चाहो तो जा भी सकती हो, पर!"

"मैं मुनि का दर्शन करने अवश्य जाऊँगी। हाँ, अतिथियों के आने के पहले ही आ जाऊँगी।' उन सुन्दरियों को देखकर मणिमाला को जैसे अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा करनी चाहिए ही।

"रानी! आप मुझको आज्ञा दीजिए कि मैं चली जाऊँ। आपको नहीं मालूम कि दरिद्रा का सत्य भी अपराध है। मैं रिक्त हूँ न! इसलिए मैं बाहर से आये हुए सम्मान और अपमान दोनों को ग्रहण कर लेती हूँ। किसी का भी तिरस्कार करने की क्षमता मुझमें नहीं।" इरावती ने कहा।

किन्तु अब साथ वाली रानी भी अपनी गभीरता स्थिर न रख सकी। उसने अपना अवगुण्ठन गिरा दिया और घूरकर मणिमाला की ओर देखा। फिर बोली—

"मेरी सखी का अपमान करने वाले को मैं कभी क्षमा नहीं कर सकती।"

उसकी वह तेजस्विनी मूर्ति देखते ही धनदत्त ने मणिमाला की ओर दीनता से संकेत किया, चुप रहने के लिए। और कहा—"क्षमा कीजिए हाँ यह तो कहिए कि इनमें से कौन-कौन आपने चुनी।"

"लेती तो मैं और भी परन्तु मुझे राजगृह जाने की शीघ्रता है। क्योंकि यहाँ निग्रन्थों का भारी जमाव है। और अग्रजिम की प्रतिमा की यात्रा का भी दर्शन करना है। मैं समझती हूँ कि अभी एक प्रहर दिन होगा। इतने समय में तो मेरे पुष्परथ को वहाँ पहुँच जाना चाहिए।"

"मणिमाला जैसे ढीली पड़ चुकी थी। उसने कहा—"अच्छा आप राजगृह जा रही हैं। चलती मैं भी परन्तु '

धनदत्त से अब नहीं रहा गया। उसने कहा—"तुम तो सब तीर्थंकरों का, महात्माओं को अपना दर्शन देने का निश्चय कर चुकी हो, यह मैं जानता हूँ।

किन्तु इस पर ध्यान न देकर मणि ने कहा—"बहन! यदि आप मेरा अपराध क्षमा कर दें, तो मैं एक बात कहूँ।"

"कहिए! इरावती मेरी प्रिय सखी है। मैं उसकी मान-रक्षा अवश्य करूँगी। किन्तु जब आप सरल चित्त से क्षमा माँग रही हैं, तब मेरी इरावती अवश्य तुमसे सौहार्द्र स्थापन कर लेगी।"

"मैं चाहती हूँ, आज आप लोग भी मेरे निमंत्रण को स्वीकार करें। कल सवेरे हम लोग भी आप के साथ राजगृह चलें, बड़ा आनन्द रहेगा। क्या? तो भोजन करने में क्या आपत्ति है?"

"फिर मैं भी इस भिक्षा को भिक्षुक को क्यों न दे दूँ? मुझे संग्रह करके रखने की आज्ञा नहीं है। किसी दासी से कह दीजिए यह ले जाय, कुक्कुरव्रती को दे आवे"—ब्रह्मचारी ने कहा और भिक्षा की झोली वहीं रख दी।

तीना ही आश्चर्य से उसका मुँह देख रही थी। ब्रह्मचारी अब स्वस्थ होकर वैठ गया था, उसे जैसे किसी की चिन्ता नही। धनदत्त ने देखा, मणिमाला घर म ही किसी तरह भी उलझ गई। इतने मे एक शबर पक्षियो के जालो का झोला लादे वही पर आ गया। ताला पर बैठने वाले पक्षी उसके पास थे। उसने कहा—"स्वामी! किसी तरह मैं इन्हे ले आया हूँ। राजभृत्या ने मुझे छोड दिया जब आप का नाम लिया। अब ता कल से न ले आ सकूँगा। इन सबका रखवा लेने की आज्ञा दीजिए।"

धनदत्त फूल रहा था, उसका इतना प्रभाव! उसने समीप खडे कर्मचारी का आज्ञा दी—"देखो इन्हे, रसोइए के पास भिजवा दो और उचित मूल्य दे दो।" जब वह कर्मचारी चला तो दूसरा दौडा हुआ आया। उसने कहा—"स्वामी! एक बडा सुन्दर रथ आया है। उस पर वैठा हुआ एक युवक आपका पूछ रहा है।"

"लिवा आओ"—कह कर गर्व से उन स्त्रिया की ओर धनदत्त न सकेत किया। कालिन्दी और इरावती ने अपना अवगुण्ठन नीचा किया।

स्निग्ध श्यामवर्ण, दाढी-मूँछ मुडा हुआ, कधो तक पीछे लटकी हुई सघन घुंघराली लटे, कौशेय का कचुक, कमर मे कटिबन्ध, उसमे छोटी कृपाण, आँखो म निश्चितता, मतवाली चाल से एक व्यक्ति धीरे-धीरे चला जा रहा था। पीछे दूरी पर एक भृत्य था। उसका देखते ही धनदत्त बैठा न रह सका। वह असाधारण शक्तिशाली युवक था। उसने धनदत्त से ही पूछा—"आप का नाम श्रेष्ठि धनदत्त है?"

धनदत्त न सविनय कहा—"श्रीमान् मैं सेवा म उपस्थित हूँ। क्या आज्ञा है? पधारिए, यह आसन है।"

युवक ने आसन पर बैठते हुए कहा—"मैं कलिग राष्ट्र का राजपुरुष हूँ, मुझे भगवान् अग्रजिन की प्रतिमा के लिए उत्तम वज्रमणियो के अलकार की आवश्यकता है।"

धनदत्त न कहा—"प्रस्तुत है श्रीमान्! देव-प्रतिमा के लिए तो कदाचित् केवल उज्ज्वल वर्ण के हीरक ही चाहिए। लीजिए मैं ले आता हूँ।"

धनदत्त ता मजूषा लाने भीतर गया। युवक न एक बार संशोधक दृष्टि चारा ओर डाली। उसने देखा दो अवगुण्ठनवती बैठी हैं और एक मुक्त आवरण कुतूहल भरा-सा मुख सामने! युवक—जैसे कोई बात स्मरण करने लगा। दूसरी ओर आँखे घूम पडी। मणिमाला का चचल कुतूहल आहत हो गया। उसने कहा—"ब्रह्मचारीजी! आइए उधर उद्यान म चलें। आप लोग भी बहनो!"

कालिन्दी ने अवगुण्ठन तनिक-सा टेढ़ा किया और उसी के भीतर से मद स्वर मे कहा—"चला बहन । बादल तो आज गम्भीर होने लगे हैं । अच्छा किया तुमने हम लोगों को निमन्त्रित कर लिया । नही तो .."

मणिमाला कुछ चमकती हुई-सी घूमी और इरावती के साथ कालिन्दी तथा ब्रह्मचारी को लिये वह चल पड़ी । युवक कुछ-कुछ विस्मित-सा उन्हे ही देख रहा था । सहसा कालिन्दी ने कहा—"अरे ला, मैं तो तुम्हारे कहने से चल पड़ी । अभी तो श्रेष्ठि से अच्छा चला—फिर आ जाऊँगी, अभी तो यही हूँ ।" कालिन्दी जैसे अपने को अधिक बड़ी-बड़ी रेखाओ से उस वातावरण म अंकित कर देना चाहती है । वह हिलकोर उठाती हुई चली गई । युवक ने जैसे ध्यान से देखा, उसने मन-ही-मन कहा—'वे ही दोना होगी । किन्तु साथ वाली तो नही मालूम होती, जिसको वहाँ राजगृह म मैंने देखा था । अवगुण्ठन से मेरी दृष्टि को धोखा नही दिया जा सकता । वह नर्तकी थी, उसके एक-एक अग कह रहे थे कि नृत्य-कला के लिए उनका निर्माण हुआ था । मैं गधर्व विद्या को जानता हूँ । वह उच्चकोटि की नर्तकी थी । किन्तु यह तो जैसे किसी अत पुर की रमणी है । तो भी उसके हीरो के आभूषण अद्भुत थे ।' .धनदत्त के आ जाने स युवक के विचारो मे बाधा पड़ी । उसने एकाग्र मन से मजूषा से निकलते हुए हीरे के आभूषणो को छाँटना आरम्भ किया । सहसा चौथे प्रहर का मद दिवालोक—जो रत्नो के लिए अधिक उपयुक्त होता है, और भी मद, क्रमश मलिन हो चला । बालको के झुण्ड आकाश मे दौड़ने लगे । सूर्यास्त मे अभी कुछ विलम्ब था, किन्तु अधकार इतना बढ़ा कि दीपक क बिना काम नही चल सकता । हताश होकर युवक ने कहा—"बस इस समय तो रहने दीजिए, इन छँटे आभूषणो को अलग रख लीजिए । मैं कल फिर आऊँगा । मुझे आज ही राजगृह लौट जाना चाहिए ।"

वणिक बुद्धि ! ग्राहक हाथ से निकल जाय, यह धनदत्त कैसे सहन कर लेता । उसने कहा—"क्षमा कीजिए तो मैं कुछ कहूँ ।'

"कहिए और मेरे रथ को ठीक कर शीघ्र बुलवाइए ।"

"कदाचित् य रत्न कल आप न ले सकेंगे । क्योकि आप देखते है कि वे अन्त पुरिकाएँ भी इन्ही के लिए आई है । राजकीय अवरोध की य स्त्रियाँ हैं । उनकी बात कैसे टाल सकूँगा ?" धनदत्त ने एक साँस मे कहने को तो कह डाला, परन्तु भीतर ही-भीतर भयभीत हो रहा था । उधर युवक की भवे कुछ चढ़ी और कुछ उतरी । मुँह कुछ तमतमाया, फिर भी जैसे उसने अपने को सँभाल लिया । और कहा—

"तो ठीक है; रथ पर से मेरे अनुचर केयूरक को बुलवाइए। और इनका मूल्य बताकर उससे मूल्य ले लीजिए।"

धनदत्त के कर्मचारी आदेश के अनुसार दौड़े, परन्तु मेघों मे उनसे भी तीव्र गति थी। पवन के सर्राटे चलने लगे थे। बड़ी-बड़ी बूँदे पड़ने लगीं। असन्तुष्ट होकर उस युवक ने आकाश की ओर देखा। उसने कहा—

"क्या कहूँ, कल दो स्त्रियाँ भगवान् का दर्शन करने गई थी। उन लोगों की रत्नावली देखकर, कलिंग के लोगों का इच्छा हुई कि ऐसी सुन्दर स्वर्ण-प्रतिमा के लिए, पाटलिपुत्र से ही रत्न क्रय किये जायँ। कलिंग राजकुल की एक महिला ने उन लोगों से पूछा तो उन स्त्रियों ने श्रेष्ठि धनदत्त का नाम बताया। इसी-लिए आना पड़ा।"

धनदत्त के मन में एक कल्पना हुई। उसने सोचा कदाचित् यही दोनों रही हों। कलिंगराज तक पहुँचकर अच्छा व्यापार किया जा सकता है। हो सकता है कि युवराजपुरुष महोदय इन्ही स्त्रियों के आकर्षण मे आ गये हों। उसने कहा—

"श्रीमान्! कुसुमपुर की नागरिकाएँ ससार से निराली मनोवृत्ति रखती हैं। हम लोग तो उनके कलापूर्ण सकेतो पर उसके लिए सुरुचिपूर्ण अलकार और शृङ्गार प्रस्तुत करते रहते हैं। देखिए न! आज्ञा होने पर मैं ही राजमन्दिर मे चला जाता, परन्तु इन्हे तो सब छाँटना है, परखना है। यहीं आ गईं।"

युवक ने कुछ उत्तर न दिया। वह कोई दूसरी बात सोच रहा था। वर्षा का वेग बढ चला। दीपक जलाये गये।

केयूरक ने थैलियाँ उछाल दी। कलिंग की स्वर्ण-मुद्राएँ उज्ज्वल आस्तरण पर बिखरी पडी रही। धनदत्त ने कहा—"यथेष्ट हैं।" उस सघन मघ मे काले केयूरक ने लाल आँखो से अलकारो को देखा। उन्हे सहेज कर मजूषा मे रख लेने पर उसने कहा—

"देव! चलना चाहिए।"

युवक का मन उलझ रहा था। उसने कहा—"पथ बडा दुर्गम है और अधकारपूर्ण। थोडा ठहर कर चलना अच्छा होगा, कदाचित् बादल छँट जायँ।"

धनदत्त स्वर्ण-मुद्राओ को सँभालने मे लगा था। उसने ध्यान नही दिया। केयूरक ने झुक कर धीरे से युवक के कान मे कहा, उसकी भाल-रेखाएँ कुछ खिची, उसने भी धीरे से कहा—"पाटलिपुत्र की एक रात्रि देखने का लोभ मैं नही सवरण कर सकता। तुम आवश्यक प्रबन्ध करो।"

केयूरक खिन्न होकर चुपचाप कुछ सोचता रहा। अब धनदत्त ने घूमकर कहा —"आप चिंता न कीजिए। कष्ट न हो तो आज रात्रि मे मेरा आतिथ्य स्वी-

कालिन्दी न अवगुण्ठन तनिक-सा टेढ़ा किया और उसी के भीतर स मद स्वर मे कहा—"चलो बहन ! बादल तो आज गम्भीर होन लगे हैं। अच्छा किया तुमन हम लागा को निमन्त्रित कर लिया। नही तो "

मणिमाला कुछ चमकती हुई-सी घूमी और इरावती क साथ कालिन्दी तथा ब्रह्मचारी को लिय वह चल पडी। युवक कुछ-कुछ विस्मित-सा उन्ह ही देख रहा था। सहसा कालिन्दी ने कहा—"अरे ला, मैं ता तुम्हारे कहने स चल पडी। अभी तो श्रेष्ठि से अच्छा चला—फिर आ जाऊँगी, अभी तो यही हूँ।" कालिन्दी जैस अपन का अधिक बडी-बडी रेखाओ से उस वातावरण म अकित कर देना चाहती है। वह हिलकोर उठाती हुई चली गई। युवक ने जैसे ध्यान से देखा, उसन मन-ही-मन कहा— वे ही दोना होगी। किन्तु साथ वाली तो नही मालूम हाती, जिसको वहाँ राजगृह म मैंने देखा था। अवगुण्ठन से मेरी दृष्टि को धोखा नही दिया जा सकता। वह नर्तकी थी, उसके एक-एक अग कह रहे थे कि नृत्य-कला के लिए उनका निर्माण हुआ था। मैं गधर्व विद्या को जानता हूँ। वह उच्चकोटि की नर्तकी थी। किन्तु यह तो जैसे किसी अत पुर की रमणी है। ता भी उसके हीरा के आभूषण अद्भुत थे।' धनदत्त के आ जान स युवक के विचारो म बाधा पडी। उसने एकाग्र मन स मजूषा से निकलते हुए हीरे क आभूषणो को छाँटना आरम्भ किया। सहसा चौथे प्रहर का मद दिवालाक—जो रत्ना के लिए अधिक उपयुक्त हाता है, और भी मद, क्रमश मलिन हो चला। बालको के झुण्ड आकाश मे दौडन लगे। सूयास्त मे अभी कुछ विलम्ब था, किन्तु अधकार इतना बढा कि दीपक क बिना काम नही चल सकता। हताश होकर युवक ने कहा—' बस इस समय तो रहने दीजिए, इन छँटे आभूपणो को अलग रख लीजिए। मैं कल फिर आऊँगा। मुझे आज ही राजगृह लौट जाना चाहिए।

वणिक बुद्धि ! ग्राहक हाथ से निकल जाय, यह धनदत्त कैस सहन कर लता। उसन कहा—"क्षमा कीजिए तो मैं कुछ कहूँ।

"कहिए और मेरे रथ को ठीक कर शीघ्र बुलवाइए।

"कदाचित् ये रत्न कल आप न ले सकेंगे। क्योकि आप देखते है कि वे अन्त पुरिकाएँ भी इन्ही क लिए आई हैं। राजकीय अवरोध की य स्त्रियाँ हैं। उनकी बात कैसे टाल सकूँगा ?' धनदत्त ने एक सास म कहने को तो कह डाला, परन्तु भीतर-ही-भीतर भयभीत हो रहा था। उधर युवक की भवे कुछ चढ़ी और कुछ उतरी। मुह कुछ तमतमाया, फिर भी जैसे उसने अपने को सँभाल लिया। और कहा—

"तो ठीक है, रथ पर से मेरे अनुचर केयूरक को बुलवाइए। और इनका मूल्य बताकर उससे मूल्य ले लीजिए।"

धनदत्त के कर्मचारी आदेश के अनुसार दौड़े, परन्तु मेघों में उनसे भी तीव्र गति थी। पवन के सर्राटे चलने लगे थे। बड़ी-बड़ी बूंदें पड़ने लगीं। असन्तुष्ट होकर उस युवक ने आकाश की ओर देखा। उसने कहा—

'क्या कहूँ, कल दो स्त्रियाँ भगवान् का दर्शन करने गई थीं। उन लोगों की रत्नावली देखकर, कलिंग के लोगों की इच्छा हुई कि ऐसी सुन्दर स्वर्ण-प्रतिमा के लिए, पाटलिपुत्र से ही रत्न क्रय किये जायें। कलिंग राजकुल की एक महिला ने उन लोगों से पूछा तो उन स्त्रियों ने श्रेष्ठि धनदत्त का नाम बताया। इसी-लिए आना पड़ा।"

धनदत्त के मन में एक कल्पना हुई। उसने सोचा कदाचित् यही दोनों रही हों। कलिंगराज तक पहुँचकर अच्छा व्यापार किया जा सकता है। हो सकता है कि युवराजपुरुष महोदय इन्हीं स्त्रियों के आकर्षण में आ गये हों। उसने कहा—

"श्रीमान्! कुसुमपुर की नागरिकाएँ संसार से निराली मनोवृत्ति रखती हैं। हम लोग तो उनके कलापूर्ण संकेतों पर उसके लिए सुरुचिपूर्ण अलंकार और शृङ्गार प्रस्तुत करते रहते हैं। देखिए न! आज्ञा होने पर मैं ही राजमन्दिर में चला जाता, परन्तु इन्हें तो सब छाँटना है, परखना है। यहीं आ गईं।"

युवक ने कुछ उत्तर न दिया। वह कोई दूसरी बात सोच रहा था। वर्षा का वेग बढ़ चला। दीपक जलाये गये।

केयूरक ने थैलियाँ उछाल दीं। कलिंग की स्वर्ण-मुद्राएँ उज्ज्वल आस्तरण पर बिखरी पड़ी रहीं। धनदत्त ने कहा—"यथेष्ट हैं।" उस सघन मेघ से काले केयूरक ने लाल आँखों से अलंकारों को देखा। उन्हें सहेज कर मंजूषा में रख लेने पर उसने कहा—

"देव! चलना चाहिए।"

युवक का मन उलझ रहा था। उसने कहा—"पथ बड़ा दुर्गम है और अंधकारपूर्ण। थोड़ा ठहर कर चलना अच्छा होगा, कदाचित् बादल छँट जायँ।"

धनदत्त स्वर्ण-मुद्राओं को सँभालने में लगा था। उसने ध्यान नहीं दिया। केयूरक ने झुक कर धीरे से युवक के कान में कहा, उसकी भाल-रेखाएँ कुछ खिंचीं, उसने भी धीरे से कहा—"पाटलिपुत्र की एक रात्रि देखने का लोभ मैं नहीं संवरण कर सकता। तुम आवश्यक प्रबन्ध करो।"

केयूरक खिन्न होकर चुपचाप कुछ सोचता रहा। अब धनदत्त ने घूमकर कहा—"आप चिंता न कीजिए। कष्ट न हो तो आज रात्रि में मेरा आतिथ्य स्वी-

कार करिए । प्रभात मे आप राजगृह को प्रस्थान करें । यही अच्छा होगा । युद्ध-काल है । रात्रि मे पथ निरापद न होगा । और आज मेरे यहाँ कुछ भद्र पुरुषो का निमन्त्रण भी है ।"

केयूरक ने बात काटकर कहा—"हम लोगो को तुम्हारे यवन-युद्ध से क्या ? श्रेष्ठि ! तुम्हारे उत्सव से भी हमे कुछ सम्बन्ध नही । हम लोग तो जाना ही अच्छा समझते हैं ।"

"तो आप लोगो के लिए अलग प्रकोष्ठ का प्रबन्ध हो जायगा । सब तरह की सुविधा और सुव्यवस्था रहेगी ।" धनदत्त ने विनीत स्वर मे कहा । पवन का वेग, बादल की गडगडाहट, बिजलिया का कौधना और बूँदो का उपद्रव बढ रहा था । धनदत्त ने एक कर्मचारी से कहा—"राजगृह के रथ को सुरक्षित स्थान मे रहने का प्रबन्ध कर दो, और साथ के भृत्यो को भी विश्राम करने के लिए स्थान बतला दो ।"

युवक जैसे इस बादल-बूँदी से मन-ही-मन प्रसन्न हो रहा था । केयूरक उद्विग्न । उसने कहा—"मैं साथ ही रहूँगा ।"

युवक ने सकेत से कहा—"नही ।" उसकी इच्छा जैसे कुतूहलपूर्ण दृश्य देखने के लिए व्याकुल हो रही थी । केयूरक ने उद्विग्न भाव से कर्मचारी के साथ प्रस्थान किया । उसी समय द्वारशाला के नीचे टापो का शब्द सुनाई पडा । युवक ने चौंक कर देखा एक दीर्घकाय बलिष्ठ मगध-सैनिक जल से भीगा हुआ अपने घोडे से उतरा । धनदत्त ने उसे देखते ही अभ्युत्थान करके स्वागत किया । विनीत शब्दो मे कहा—"इस वर्षा मे भी निमत्रण की रक्षा करके आने के लिए मैं कृतज्ञ हूँ, महानायक अग्निमित्र !"

अग्निमित्र मस्तक से जल का काछते हुए हँसकर बोला—"सैनिको के लिए इतनी-सी बाधा क्या कर सकती है श्रेष्ठि ! फिर सभवतः कल ही मुझे नासीर सेना मे जाना हो—यवन समीप आ पहुँचे है । एक रात, मित्र के उत्सव मे सम्मिलित होने का फिर अवसर मिले या न मिले ।"

वह मच पर बैठना चाहता था कि धनदत्त ने कहा—"नही, पहले आप जाकर वस्त्र बदल ले ।" अग्निमित्र सेवक के साथ गया और धनदत्त ने दूसरे परिचारक को आज्ञा दी—"उद्यान के समीप वाला छोटा कक्ष सुसज्जित कर दो, मेरे माननीय अतिथि उसमे विश्राम करेंगे । युवक चुपचाप निश्चित बैठा था । जैसे उसे कुछ करना-धरना नही ।

उधर दूसरी ओर एक बडे-से चौकोर मडप मे, जिसके सुन्दर स्तम्भ मञ्जरियो और कुसुमो की मालाओ से सजे थे, कोमल काश्मीरी कम्बलो पर बडे-बडे तकियो

के सहारे मणिमाला, कालिन्दी और इरावती बैठी थी। एक ब्रह्मचारी भी निर्लिप्त-जैसा बैठा नीचे की अमराई का अन्धकार देख रहा था। सामने वीणा और मृदंग के आगे गायक-दल। संगीत का समारोह था। पुष्प पात्रों में अगरु और कस्तूरी की वर्तियाँ जल रही थीं। बड़े-बड़े दीपाधारों में गंध तैल की दीपिकाएँ अपने अभ्रक के खोल में जल रही थी। आमोद से वह कक्ष भर उठा था। पर्दे डाल दिये गये थे। वीणा गुञ्जरित हुई। मृदंग पर थाप पड़े। वीणा ने विलम्बित स्वर लहराने लगे। पास के ही एक कक्ष में भोजन परसा जा चुका था। धनदत्त, अग्निमित्र और युवक आसन पर बैठ चुके थे। ब्रह्मचारी को बुलाने के लिए अनुचर आया। ब्रह्मचारी ने भी उन लोगों का साथ दिया। विविध मांस, मैरेय मिष्ठान्नों से परिवेषण सम्पन्न था। अपने माननीय अतिथियों के साथ उस ब्रह्मचारी को भी देखकर धनदत्त खीझ रहा था। पर करता क्या! अभद्रता होती। पान भोजन चलने लगा। उधर वीणा और मृदंग का संयोग उस भोजन में और स्वाद बढ़ा रहा था, किन्तु वह कलिंग का युवक राजपुरुष, कभी-कभी जैसे चौंक उठता। फिर सामने दूर उन सुन्दरियों को अर्द्ध अवगुण्ठन में देख लेने का कोई उपाय भी न था। उसे वीणा की कोई-कोई मूर्च्छना और गमक जैसे असंगत लगने पर चोट-सी लग जाती। फिर भी उत्तर भारत का वह शिष्ट आचार अन्वेषण की दृष्टि से देख लेता। जैसे सब सज्जित परिष्कृत पाटलिपुत्र के नागरिकों की नपी-तुली परिपाटी! उसे जैसे चमत्कारजनक दिखलाई पड़ती।

चतुर परिचारक विविध व्यंजनों को नम्रतापूर्वक परस रहे थे। सुगन्ध से सारा गृह भर रहा था। इन्द्रियों का तृप्तिकारक आयोजन सफल हो रहा था। भोजन समाप्त होने पर मणिमाला ताम्बूल लेकर मचलती हुई सामने आई। उसके अंग-अंग हँस रहे थे। युवक जैसे उसके विभ्रम का क्षण भर के लिए देखने लगा। किन्तु उसका मन तो अवगुण्ठनों में अटक रहा था। युवक ने पूछा—

"श्रेष्ठिवर! आपने ये वादक आज के लिए ही बुलवाये हैं क्या?"

"हाँ श्रीमान्!" कुछ जैसे अस्वस्थ होकर धनदत्त ने कहा।

"क्यों, क्या आप इन्हें नहीं पसन्द करते?" धीरे से अग्निमित्र ने पूछा। उसे जैसे युवक की यह बात अच्छी न लगी थी।

"हाँ नहीं यों ही पूछ लिया। क्या यहाँ उत्तर भारत में वीणा ऐसी ही बज लेती है?

"जान पड़ता है कि आप इसके मर्मज्ञ हैं!" अग्निमित्र ने व्यंग से कहा।

'मर्मज्ञ नहीं जी, मैं बजाता भी हूँ।' सदर्प युवक ने कहा।

मणिमाला बोलने का अवसर खोज रही थी। उसने कहा, और कुछ मचलते

हुए—"तो क्या हम लोगो को भी कलिंग की वीणा सुनने का अवसर आप कृपा-पूर्वक देंगे ?" यह एक रमणी का अनुरोध था। युवक ने धनदत्त की ओर देखा। उसे स्वीकार करे या अस्वीकार। ब्रह्मचारी अब जैसे अपने में से बाहर आया। उसने कहा—"अच्छा तो होगा। आनन्द की यह मात्रा, हम लोगो के लिए इस वर्षा की रात्रि मे, परम सुखकारिणी होगी।"

धनदत्त सोच रहा था—सब लोग खा-पी चुके, अब अपने स्थान पर जाकर सो रहें। छुट्टी मिले। बीच मे यह उपद्रव कैसा। वह मणिमाला पर खीझ रहा था। उसे क्या पड़ी थी। परन्तु युवक तो सगीत के स्थान की ओर बढने लगा था। अग्निमित्र कुतूहल से यह गतिविधि देख रहा था। सहसा एक परिचारक ने सविनय एक छोटा पत्र अग्निमित्र के हाथ मे दिया और कहा—"शिविर से सैनिक आया है।"

अग्निमित्र दीपाधार की ओर बढा। उसके उजाले मे मुद्रा तोड कर उसने पत्र पढ़ा—"यवनो की सेना शोण के पार पहुँच गयी है। और तुम अपनी अश्वारोही सेना लेकर रोहिताश्व जाने से बची हुई पदाति सेना शोण के पश्चिम तट पर लेकर पहुँचो। सकेत पाते ही तुम्हारा दक्षिण से आक्रमण होना चाहिए। जहाँ तक सम्भव हो, दूर दक्षिण के पार उतरना होगा। यह स्मरण रखना, एक भी सैनिक और अश्व व्यर्थ न हम खा दे।" उस पर हस्ताक्षर था सेनापति पुष्यमित्र का।

अग्निमित्र एक बार जैसे झलमलाया! उसकी इच्छा हुई कि वह तुरन्त शिविर मे पहुँचे। किन्तु वह अर्ध अवगुण्ठनवती कौन है ? इसे देखे बिना वह जा कैसे सकता है! अग्निमित्र ने चारो ओर देखा। अधकार के बीचोबीच यह छोटा-सा प्रकोष्ठ! उसे तो अपने अस्तित्व का ज्ञान खो देना था। अभी जो थोडी-सी मदिरा उसने पी ली थी, वही बरसाती घटा की तरह चारो ओर से घेर कर बरसने लगी। उसके लिए जैसे कही पथ नही था। कालिन्दी ने प्रतारित किया; इरावती ने उपेक्षा की। पिता पूर्ण विश्वास नही करते। डाँट बतलायी। किन्तु उसकी समझ मे नही आता था कि उसकी भूल कहाँ से प्रारम्भ हुई; तो फिर उसे क्या ? भूल पर भूल होती चले। उसको अपनाकर आलिंगन मे ले लेने वाला कोई नही। अवगुण्ठनवती के अवयव जैसे कुछ पहचाने से...होगी वही! जब समस्त सहानुभूति का अभाव है, तब कल तो रण-नदी मे फाँदना ही है। वह भी सगीतशाला की ओर बढा। कुछ-कुछ कलिंग के युवक की ईर्ष्या के साथ। और युवक अपने अरुण नेत्रो मे मुस्करा रहा था। उसने मणिमाला से पूछा—

"आप लोगो को भी सगीत से प्रेम है। मैं ठीक बजाऊँगा या कैसा कुछ,

इसे तो " वह रुक गया। कही बात कडवी न हो जाय, वह भी एक रमणी के प्रति ! किन्तु मणिमाला कब रुकने वाली थी। उसने कहा—"महोदय ! मेरी एक सखी ऐसी कुशल नृत्य-कला जानती है कि वह आपकी वीणा की भूलो को सहज ही पकड लेगी।" प्रगल्भता युवक को खली नही। उसने मन-ही-मन उस अज्ञात नर्तकी का आवाहन किया।

सब लोग बैठन के स्थान पर आ गए थे। कालिन्दी और इरावती भी उठ कर खडी हो गई, किन्तु उसका मुख अभी भी नहीं दीख पडता था। बडे-बडे उपाधाना के सहारे चारो पुरुष बैठे। और स्त्रिया उपाधानो को आगे करके उन्ही पर भार देकर। इससे कुछ जैसे छिपाव भी हो जाता था।

अग्निमित्र जैसे अन्यमनस्क-सा बैठ रहा था। उसके मन मे अपनी व्यर्थता और लक्ष्यहीनता व्याप्त हा रही थी। युद्ध म उसकी आवश्यकता थी। उसे कदा-चित् युद्ध की नही। जब जीवन का केवल एक पार्श्व चित्र ही उपस्थित होकर मनुष्य की दुर्बलता को उसकी अन्य सम्भावनाओ से ऊपर कर लेता है, तब उसकी स्वाभाविक गति जकडी-सी बन जाती है। अग्निमित्र के पास उसकी निज की अभिमान की कोई वस्तु, हृदय से चाहने की लालसा नही रह गयी थी ! युद्ध ! सो तो होना ही है। कल लड लगे, हो सका तो विजय प्राप्त करेंगे, नही तो प्राण दे देंगे। बस इतना ही तो। उस जैसे ढीला-सा सतोप था, उसने अपनी दुर्बलता का बोझ भाग्य से ही किसी पर लादने की सफलता नही प्राप्त की। तो फिर चलने दो। यह सगीतक भी अच्छा ही रहेगा। वह सोच रहा था और वीणा की द्रुतगति समाप्त हो रही थी। कालिन्दी और इरावती के बीच म मणिमाला बैठ गई थी।

मणिमाला ने धीरे से कहा—"सुना बहन ! यह युवक मरे वीणा बजाने वाले को मूर्ख समझता है और हम सब को भी, मैने उससे कह दिया है कि हम लोगो की एक सखी नृत्य-कला मे बडी कुशल है। तुम बजाओ तो।" मणिमाला इस समय चचल हो रही थी। और इरावती देख चुकी थी अग्निमित्र को। वह जैसे शिथिल, असयत और विमूढ-सी होने जा रही थी। सहसा कालिन्दी न टोक दिया—"पहले बजने भी दो इरावती हम लोगो की बात रख लेगी।"

स्त्रियो की यह पसफ्साहट बन्द हो गई, क्याकि वीणा और मृदग भी मौन हो गये थे। युवक ने वीणा उस वादक के हाथ से लेकर उसको कुछ ठीक-ठाक किया। फिर मृदगवादक की आर देखा। वह एक ललकार थी। मृदग पर मधुर थाप पडी। वीणा का विलम्बित स्वर-समारोह आरम्भ होने म अभी विलम्ब था,

क्योकि वीणा और मृदग फिर से मिलाये जा रहे थे। धनदत्त ने खीझ-भरे स्वर मे ब्रह्मचारी से कहा—"आपको भी सगीत से प्रेम है ?"

क्यों न हो, सगीत मेरी तन्मयता मे आनन्द की मात्रा बढान म समर्थ है। तुम लोगो के कल्पित दु ख और विवेक की अतिरजना के आवरण को वह सहज ही हटा देता है।"

"तो क्या आप समझते है कि यह विवेक की भावना निन्दनीय है ?" धनदत्त ने पूछा। युवक ध्यान से इनके विवाद को सुन रहा था ?

"इस भेदपूर्ण विवेक की सीमा खोजते हुए, जब हम आगे बढते है, तब सत्य का वही स्वरूप सामने आता हे, जिसमे हम पुद्‌गल मात्र बन जाते है और सदैव किसी उच्च, अप्राप्य, सत्य को पाने के लिए तरसते रहते है।"

युवक ने वीणा को मिलाने का काम धीमा कर दिया था। वह भी इस विवाद मे रस ले रहा था। धनदत्त को अपनी वणिक्-बुद्धि के अतिरिक्त नागरिक सस्कृति भी प्रदर्शित करने की प्रेरणा जग पडी थी। उसने कहा—

"क्या उच्च सत्य को पाने के लिए, हमें क्षुद्र विचार की नालियो का अतिक्रमण नही करना चाहिए ?"

"अतिक्रमण करके आपका विवेक ससार से आपको अलग, अपनी और भी सकुचित भूमिका मे खडा कर देगा। जहाँ केवल विराग ही नही, अपितु आसपास के फैले हुए ससार से घृणा भी नाक सिकोडने लगेगी। उस विवेक को भी हम क्या कहे, जो हमको ससार से विच्छिन्न करके, वैराग्य और अपनी पवित्रता के अभिमान मे, हमें अद्‌भुत परिस्थिति मे डाल दे। हमारा विश्व से सामञ्जस्य होना असम्भव कर दे। शकाओ से, निषेधो से हमें जकडकर काल्पनिक उच्च आदर्शों के लिए वामन की तरह उचकते रहने की हास्यजनक स्थिति मे सदैव डाल रक्खे।"

युवक ने तारो म एक बार झनकार देकर निश्चित भाव से पूछा—"तो क्या अभी इस वेश मे आप हम लोगो से अपने को विभिन्न नही प्रमाणित करते ? क्या यह वैराग्य का स्वरूप नही ? हमारे विवेक को रूप तो ग्रहण करना ही पडता है। वह चाहे नैष्ठिक ब्रह्मचारी का हो चाहे श्रमण का।"

"और इस सगीत-सभा मे मेरी उपस्थिति को आप क्या कहगे ?"

अग्निमित्र जैसे हँस पडा। उसने कहा—"ब्रह्मचारिन् ! मैं तुम्हारी बात समझ रहा हूँ। तुम प्रत्येक परिस्थिति से तादात्म्य कर लेना चाहते हो न ?"

"हाँ, मेरी विचार-धारा पंगु नही, उन्मुक्त नील आकाश की तरह विस्तृत, सब को अवकाश देने के लिए प्रस्तुत। चारो ओर आनन्द की सीमा में प्रसन्न ! और वह प्रसन्नता प्रत्येक अवस्था मे रहने वाले प्राणियो के विरुद्ध न होगी।

चारों ओर उजला-उजला प्रकाश जैसा ; जिसमें त्याग और अपनी स्वतन्त्र सत्ता अलग बनाकर लड़ते नहीं। विश्व का उज्ज्वल पक्ष अंधकार की भूमिका पर नृत्य करता-सा दीख पड़े, सबको आलिंगित करके आत्मा का आनन्द, स्वस्थ, शुद्ध और स्ववश रहे। यह स्थिति क्या अच्छी नहीं ?''

युवक ने उल्लसित नेत्रों से उस ब्रह्मचारी की ओर देखकर पूछा—

''तो क्या तुम अपनी इस अवस्था में परिवर्त्तन भी चाहोगे ?''

''चाहूँगा नहीं, अभीष्ट जैसा भी कुछ हो। ऐसा नहीं; किन्तु परिवर्तन हो तो बुरा क्या है। होगा अच्छा ही। गुरुदेव ने बतलाया है—कहीं अशिव नहीं। सर्वत्र शिव। सर्वत्र आनन्द ! फिर क्यों भय !''

स्त्रियाँ इस संवाद से उद्धार पाना चाहती थीं। मणिमाला ने कहा—''तो फिर आनन्द के लिए संगीत की योजना में आप बाधा क्या डाल रहे हैं। सुनिए कुछ।''

''ओहो, यह तो मेरा उद्देश्य नहीं। हाँ, चलने दीजिए। इन बातों को अधिक समझना हो तो महावट के नीचे गुरुदेव का दर्शन कीजिए।'' ब्रह्मचारी ने निर्लिप्त भाव से कहा।

युवक ने वीणा उठा ली। अद्भुत स्वरों का नृत्य आरम्भ हुआ। उल्का-धारिणी स्त्रियाँ पुतलियों की तरह खड़ी थीं। बाहर की वर्षा का शब्द और बादलों की गड़गड़ाहट के लिए यहाँ स्थान नहीं रह गया था। वह कलिंग का युवक वीणा को द्रुत, मध्य और विलम्बित गतियों में इस तरह चढ़ा-उतार रहा था कि सुनने वाले आश्चर्य और स्वर-संचार से मुग्ध हो रहे थे। किन्तु चंचल मणिमाला, वह चूकने वाली नहीं, उसने धीरे से इरावती के पैरों में नूपुर पहना ही दिया। अभी विलम्बित से मध्य लय में वीणा बढ़ रही थी। सहसा इरावती उठ खड़ी हुई। हाँ, जैसे अपने को भूली हुई। उसके पैरों में एक अद्भुत प्रेरणा उत्पन्न हो गई थी। वह नृत्य करने लगी। अग्निमित्र एक बार जैसे कहीं से लगे हुए धक्के को सम्भाल कर बैठा रह गया। इरावती के मदमाते नेत्र अधखुले तो थे; किन्तु वे किसी को देख रहे थे कि नहीं, कहा नहीं जा सकता था। कालिन्दी बाण चलाकर व्याध की तरह अपने दोनों लक्ष्यों को देख रही थी। किन्तु वह कलिंग का युवक! उसने तो जैसे ऐसा नृत्य कभी देखा ही न हो। इतना वह भीतर-बाहर से प्रभावित हो रहा था कि उसकी उँगलियाँ उस समय मदिरालस हो गयीं, जब कि उसे तत्काल ही द्रुतगति आरम्भ कर देनी चाहिए थी। वह नेत्रों से इरावती के कलापूर्ण अवयवों को देखता हुआ मध्य लय में उँगलियों को बहलाने लगा। इरावती के अंग-अंग से रस की सृष्टि हो रही थी।

इधर लय छूटने लगा था। सहसा युवक सावधान होकर द्रुत गति मे बढा। और नर्तकी अपनी रस-वृष्टि म चपला स भी अधिक तीव्र थी। युवक ने तीव्रतम गति म भी उसको पिछडा न पाया। उसने वीणा को विराम देते हुए 'साधुवाद से उस नर्तकी का सत्कार किया। किन्तु इरावती अब ठीक अग्निमित्र के सामने बैठ गई थी। और वह साहसी कलिंग युवक अनुराग-भरी आँखो स उसकी ओर देखता हुआ अपनी एकावली उतारने लगा। उधर अग्नि की तरह जलता हुआ अग्निमित्र अपनी कृपाण पर हाथ रख रहा था। कोई क्षण किसी भी घटना की प्रतीक्षा कर रहा था। जालीदार चादी के बडे-बडे निवात, जिनके भीत अभ्रक लगे हुए थे, अपने पचदीप को जैसे अपने भीतर-ही-भीतर जला रहे थे, ठीक उसी तरह अग्निमित्र जल रहा था। रुकावट इतनी ही थी कि थकी हुई इरावती सिर झुकाए, बकिम ग्रीवा किये, तिरछी आखो से उसी को देख रही थी। एकावली निकल चुकी थी। वह अजलि म रख कर आगे बढाई भी गई। किन्तु इरावती ने कह दिया—"मैं आय कालिन्दी की अनुचरी हूँ। मैं उपहा नही ले सकती। क्षमा कीजिए।

सबकी आँखे कालिन्दी की आर घूमी। किन्तु वह मायाविनी कालिन्दी मुस्करा कर बोली—"आर्य, क्षमा कीजिए। आप आज पाटलिपुत्र के नागरिको के अतिथि हैं। अतिथि का मनोरजन करना हम लोगो का कर्त्तव्य है, उसम पुरस्कार का प्रलोभन नही।'

युवक की भवे कुछ खिची। उसकी कुतूहलपूर्ण साहसिकता अपना आवरण उतार कर फकना चाहती थी कि केयूरक न जाने कहाँ से नग्न खड्ग लिए उछलता आ पहुँचा। उसने उन्मत्त भाव से कहा—"देव! हम लोग घिर गय है। कुछ काले वस्त्रो से ढँके सैनिको ने इस सम्पूर्ण उद्यानगृह को अवरुद्ध कर लिया है।"

युवक ने खड्ग उठा कर कहा—"नही केयूरक! घबडाओ नही। खारवेल ने जो साहसिक कर्म किया है, तो वह प्रतिकार भी जानता है।'

कालिन्दी भय दिखलाती हुई चिल्ला उठी—"कलिंग चक्रवर्ती खारवेल!' किन्तु भीतर-भीतर वह जैसे हँस रही थी। अग्निमित्र ने विनीत स्वर म कहा—"महाराज! मैं वचन देता हूँ। महानायक अग्निमित्र के जीवित रहते आप निश्चित रहे।

और खारवल न कालिन्दी का दखा। उसने कहा—"तो तुम्ही लोगो का राजगृह म मैंने देखा था।"

धनदत्त भयभीत और विमूढ़-सा हो रहा था, परन्तु ब्रह्मचारी ने कहा—
"तो अब विश्राम करना चाहिए।"

"धनदत्त ने खीझ कर कहा—"विश्राम !"

"हाँ, यदि तुम्हारे यहाँ इसका स्थान न हो तो मैं कहीं भी जाकर विश्राम कर लूँगा।" वह सचमुच चला।

अग्निमित्र और कालिन्दी की आँखें क्षण भरके लिए मिली। उत्तर म कालिन्दी ने कहा—"ब्रह्मचारीजी ; यदि आप कही भी जा सकते हैं, तो यह मुद्रा लीजिए और महाराज के समीप उपस्थित होकर कहिए कि—"कलिंगाधिपति आपकी राजधानी मे विपन्न हैं।" ब्रह्मचारी ने मुद्रा ले ली। गम्भीर होकर कहा—"तो मैं अब यहाँ लौटूंगा नही, तुम्हारा काम करता हुआ चला जाऊँगा।"

"महाराज जैसी अनुमति दें।" कालिन्दी ने कहा। अग्निमित्र ने ब्रह्मचारी के चले जाने पर खारवेल मे कहा—"यह पाटलिपुत्र के साहसिकों की क्षुद्र मडली होगी ! केयूरक ! उन लोगो के पास स्वस्तिक का चिह्न भी तुमने देखा है ?"

"हाँ, लाल स्वस्तिक।"

"वे अधिक-से-अधिक एक सौ होंगे। कोई चिन्ता नहीं। सेठ लूटा नही जा सकता। हम लोग अपने मनुष्यो को एकत्र करके व्यूह-रचना कर लेते हैं"—कह कर अग्निमित्र बाहर चला आया ! उसने देखा ब्रह्मचारी 'आन्नद !' की रट लगाता हुआ निर्भयता से बाहर की ओर उस काली रात्रि मे चला जा रहा है। उसे न तो प्रकृति की भीषणता रोक सकती है, और न मनुष्यो का भय !

धनदत्त भी घबराया सा अग्निमित्र के साथ आ गया था। अग्नि ने पूछा—"तुम्हारे पास कुछ रक्षक, प्रहरी इत्यादि हैं भी ?"

"है क्यों नही, बीस से कम न होंगे।"

"तो उन्हे इस द्वारशाला मे बुला लो।"

धनदत्त ने पास ही लगे हुए घटे पर चोट लगाई। जितने अनुचर थे दौड़कर वही आ गये। अग्निमित्र ने उन्हे देखकर कहा—ऐसा जान पड़ता है कि हम लोग आततायियों से घिर गये हैं।"

"हाँ, स्वामी ! बाहर बहुत-से मनुष्य काले वस्त्रो मे अपने को ढँक कर घूम रहे हैं, वे सशस्त्र है।" एक ने कहा।

"तुम्हारा तोरणद्वार बन्द होगा। सम्भवतः उसकी खिड़की खुली होगी।"

"हाँ स्वामी ! अभी केवल ब्रह्मचारी गये हैं।"

"आज तुम लोगों की परीक्षा का दिन है। आधे लोग द्वार पर रहे और आधे यहाँ। जब तक राजकीय सेना न आ जाय, द्वार-रक्षा होनी चाहिए। मैं

भी तुम लोगो के साथ हूँ।''—कह कर अग्निमित्र ने खड्ग कोश से निकाल कर ऊँचा किया। क्षण-भर मे बीसो खड्ग चमकने लगे। और धनदत्त ! वह तो इस रक्षा की व्यवस्था को देखकर घबरा गया था। अभी बूँदे पड रही थी। आकाश निविड कृष्ण वर्ण का हो रहा था। कालिन्दी, इरावती और केयूरक के साथ खारवेल भी वही चले आ रहे थे।

पाटलिपुत्र का राजपथ उस काली रात्रि मे सुनसान नही था। रह-रह कर घोडो के टाप सुनाई पडते थे। ऐसा जान पडता था, प्रायः सब राज-कर्मचारी सुगाग प्रासाद के विशाल प्रागण की ओर जा रहे है। ब्रह्मचारी भी इन्ही मे से एक दल के पीछे-पीछे चला। चतुष्पथ तथा और भी आवश्यक स्थानो पर उल्काएँ जल रही थी। वर्षा कुछ कम ·

[अपरिसमाप्त]

लेखक प्रसाद जी के निर्माण मे उनके व्यक्तिगत जीवन की दुर्घटनाओ का कम योगदान नही है। ११ वर्ष की अवस्था मे पिता की मृत्यु, १७ वर्ष की अवस्था मे बडे भाई श्री शभुरत्न जी की मृत्यु से घर-गृहस्थी का सारा भार अल्पायु मे ही उनके ऊपर आ पडा। लेकिन जीवन की कटु यथार्थताओ ने उन्हे साहित्य-रचना से कभी भी विरत नही किया, बल्कि इसके ठीक प्रतिकूल उनके लेखन को और अधिक धारदार बनाया। उन्होने अपने निजी यथार्थ-जीवन और रचनात्मक कल्पनालोक मे अद्भुत संगति स्थापित की। इसी के फलस्वरूप उन्होने साहित्य मे एक नवीन 'स्कूल' और नवीन जीवन-दर्शन की स्थापना की। वे 'छायावाद' के सस्थापको और उन्नायकों मे सर्वश्रेष्ठ हैं।

अपने ४८ वर्षों के छोटे से जीवन-काल म उन्होने कविता, नाटक, उपन्यास, कहानी और आलोचनात्मक निबन्ध, सभी विधाओ मे समान रूप से उच्चकोटि की रचनाएँ प्रस्तुत की। उनका सम्पूर्ण साहित्य आधुनिक हिन्दी साहित्य का प्रामाणिक दर्पण है, जिसमे अतीत के माध्यम से वर्तमान का चेहरा झांकता है।